UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182940

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP 2272 -19-11-79 10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. HAJ:A30J M611 Accession No. Par.H6100

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव

हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव

(१८७० - १९२०)

(प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० विश्वनाथ मिश्र

एम० ए०, डी० फिल०, डी० लिट्०

अध्यक्ष : हिन्दी विभाग

सनातन धर्म कॉलिज, मुजफ्फरनगर

साहित्य सदन देहरादून

प्रकाशक :
सुरेन्द्रनाथ
साहित्य सदन, देहरादून

प्रथम संस्करण
१९६३
मूल्य १५.००

मुद्रक :
सुरेन्द्रनाथ, सरस्वती प्रेस, देहरादून।

पूज्य पिता जी
स्वर्गीय पं० दामोदर जी मिश्र
की
पावन स्मृति में

निवेदन

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर, सन् १८७० से लेकर १९२० तक, अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन का, यह विनम्र प्रयास है। हिन्दी भाषा और उसके साहित्य ने, पचास वर्षों के इस थोड़े समय में, अपने अन्तर और बाह्य दोनों ही स्वरूपों को परिवर्तित कर लिया है; और यह समस्त परिवर्तन, अंग्रेजी शासन के युग में, तथा जैसा इस अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा, अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार के फलस्वरूप सम्भव हुआ है। हिन्दी भाषा एवं उसके साहित्य के आधुनिक स्वरूपों के सम्यक अनुशीलन के लिए, इस प्रकार अंग्रेजी प्रभाव का समुचित विश्लेषण अपेक्षित है। यह प्रबन्ध इसी आवश्यकता को, दृष्टि में रख कर, सन् १९५० में, प्रयाग विश्वविद्यालय के समक्ष उपस्थित किया गया था; और उसी वर्ष डी०फिल० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन का विचार, मेरे मन में, सन् १९४२-४३ में, प्रयाग विश्वविद्यालय में एम०ए० उत्तरार्ध की कक्षा में, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध संग्रह 'रसज्ञ रंजन' के 'कवि कर्त्तव्य' शीर्षक निबन्ध को पढ़ते हुए उत्पन्न हुआ था। आचार्य द्विवेदी ने, अपने इस निबन्ध में, हिन्दी कविता के नवसंस्कार के लिए, जो योजना उपस्थित की थी, वह वर्डसवर्थ के काव्य-संग्रह 'लिरिकल बैलेड्स' की प्रसिद्ध भूमिका में प्रतिपादित काव्य-सिद्धान्तों से पर्याप्त मिलती जुलती थी। उन

दिनों छायावाद को सामान्यतः, रहस्यवाद का आधुनिक स्वरूप समझा जाता था, किन्तु आचार्य द्विवेदी की उस संयोजना को देखकर, मुझे यह लगा था, कि उन्होंने हिन्दी कविता को रीतिकालीन बंधनों से मुक्त कर, स्वच्छन्दतावाद की दिशा में अग्रसर करना चाहा था, और छायावाद का अभ्युदय उन्हीं के प्रयास का परिणाम रहा होगा। छायावाद इस प्रकार मुझे रहस्यवाद नहीं, वरन् पश्चिम की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का समकक्ष प्रतीत हुआ था। इसी प्रतीति के साथ-साथ, मेरी यह भी धारणा बनी थी, कि छायावाद का उद्भव तो हिन्दी-प्रदेश की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लेकर हुआ था, किन्तु उसके विकास में अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावाद के पुनरुत्थान के कवियों—वर्डस्वर्थ, शेली, कीट्स आदि—के भी अध्ययन का विशेष योग रहा होगा। अपनी इस धारणा के सम्यक परीक्षण के लिए, मैंने अनुसन्धान के लिए, यही विषय लेने का विचार किया। प्रारम्भ में मुझे कुछ झिझक रही, कि अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के अपने सीमित ज्ञान के कारण, शायद मै इस विषय के साथ पूर्ण न्याय न कर सकूं। किन्तु डॉ० अमरनाथ झा के प्रोत्साहन पर, जो उन दिनों प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे, मैने यह विषय खोज कार्य के लिए ले लिया।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के सम्यक अनुशीलन के लिए, अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन का प्रश्न उठा, और उसमें प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर एस० सी० देव ने, मुझे विशेष सहायता दी। उनका कहना था कि अंग्रेजी के अधिकांश में उन्ही साहित्यकारो एवं रचनाओं ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य को प्रभावित किया होगा, जो हिन्दी-प्रदेश की शिक्षा-संस्थाओं के विभिन्न पाठ्य-क्रमों में, स्वीकृत रहे थे। उनके इसी परामर्श को लेकर मैने, दशवीं से लेकर एम० ए० कक्षाओं तक के सन् १८७० से लेकर १९२० तक के विभिन्न पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत अंग्रेजी साहित्यकारों एव उनकी रचनाओं की सूची बनायी, और फिर उनका अध्ययन आरम्भ किया। अपने इस अध्ययन मे, डॉ० अमरनाथ झा और प्रो० एस० सी० देव के अतिरिक्त, प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त ने भी समय समय पर मुझे विशेष सहायता दी। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के विश्लेषण में गुरुवर डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने मेरा निर्देशन किया। हिन्दी साहित्य के विभिन्न रूपों पर अंग्रेजी प्रभाव के अनुशीलन में, डॉ० फ्रेडरिक पी० उपहम के ग्रन्थ 'दि फॉरेन डेट ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर', डॉ० सैयद अब्दुल लतीफ के प्रबन्ध 'दि इन्फ्लुएंस ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर ऑन उर्दू लिट्रेचर', और डॉ० प्रियरंजन सेन के अध्ययन 'वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली लिट्रेचर' ने मेरे लिए आदर्श का कार्य किया है। इस प्रबन्ध की संयोजना इन्ही ग्रन्थों के आधार पर निर्मित हुई है। सम्पूर्ण मन से मैं इन सभी विद्वानों का

आभार स्वीकार करता हूँ ।

इस प्रबन्ध के प्रारम्भिक चार अध्याय, भूमिका स्वरूप हैं : प्रथम में विषय के महत्व, अध्ययन की दिशा और प्रस्तुत प्रबन्ध की संयोजना का निरुपण है; द्वितीय में अँग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा एव साहित्य का पर्यवेक्षण, उनके विकास में सहायक विभिन्न प्रभावो का विश्लेषण, एवं उनकी सीमाओं का निर्धारण है; तृतीय में, अंग्रेजी प्रभाव के आगमन का इतिवृत्त है; और चतुर्थ में, अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराओं का अनुशीलन उपस्थित किया गया है । इन प्रारम्भिक अध्यायो के अनन्तर, पंचम अध्याय में, अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे, हिन्दी के भाषा संबधी तथा साहित्यिक आदर्शों के निर्माण का अनुक्रम है । यह अध्याय एक प्रकार से, प्रस्तावना स्वरूप प्रारम्भिक अध्यायों के अनन्तर, अर्थोपक्षेपक है, और उसके बाद प्रबन्ध के मूल अध्याय, जिनमें हिन्दी-भाषा एव हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओ पर अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, प्रारम्भ होते है । अन्तिम अध्याय, निष्कर्ष में, अंग्रेजी प्रभाव की हिन्दी भाषा तथा साहित्य में विभिन्न उपलब्धियों की विवेचना की गयी है । इस स्थल पर, मैं यह भी स्वीकार करना चाहूगा, कि इस अध्ययन में हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के विश्लेषण से अधिक, हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं—कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि—पर, इस प्रभाव के अध्ययन को महत्व दिया गया है । हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन, एक स्वतन्त्र प्रबन्ध की अपेक्षा करता है; आशा है, शीघ्र ही कोई शोधार्थी इस दिशा में अग्रसर होगा ।

हिन्दी भाषा तथा उसके साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अंग्रेजी प्रभाव का यह अध्ययन निश्चित रूप से, एक महत्वाकांक्षा पूर्ण प्रयास रहा है । अंग्रेजी भाषा, संसार की अत्यधिक उन्नत भाषाओं में से है, उसका शब्द-भण्डार विशाल है, और उसमें अभिव्यञ्जना की असंख्य भंगिमाओं का विकास हुआ है । हिन्दी भाषा पर उसके प्रभाव का विश्लेषण, महान पांडित्य की अपेक्षा करता है । मुझ में वह नहीं है । मै तो जो कुछ कर सका हूं, वह सब गुरूजनों के सद्परामर्शों और निर्देशो से सम्भव हुआ है । अँग्रेजी साहित्य भी विश्व के उन्नततम साहित्यो में है, और उसकी अपार राशि का अवगाहन तथा हिन्दी साहित्य के विभिन्न रूपों पर उसके प्रभाव का विश्लेषण भी, विद्वज्जनों की अनुकम्पा से सम्पन्न हुआ है । गुरूजनों के आशीर्वाद तथा, विद्वज्जनों के सद्परामर्शों के फलस्वरूप इस प्रबन्ध की कुछ उपलब्धियाँ है :

(१) हिन्दी भाषा एवं साहित्य के आधुनिकीकरण की मूल प्रेरणा—अँग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराओं का विश्लेषण ।

(२) हिन्दी भाषा पर अँग्रेजी प्रभाव का अध्ययन ।

(३) साहित्यिक विधान में परिवर्तन के आधारभूत कारण—साहित्य निर्माण के केन्द्रों में परिवर्तन—का विवेचन ।

(४) अँग्रेजी प्रभाव की छाया में, हिन्दी के भाषा सम्बन्धी तथा साहित्यिक आदर्शों में परिवर्तन का अध्ययन ।

(५) हिन्दी कविता पर ऑलिवर गोल्डस्मिथ, टॉमसन, पोप, मेकॉले, वर्डस्वर्थ, सर वाल्टर स्कॉट, ब्रायरन आदि के प्रभाव का विश्लेषण ।

(६) हिन्दी नाटक के विकास में शेक्सपियर, अंग्रेजी की आचार प्रधान नाटकीय रचनाओं और मोलियर के प्रभाव का अध्ययन ।

(७) हिन्दी उपन्यास के उद्भव और प्रारम्भिक विकास में, जॉर्ज डब्ल्यू० ऐस० रेनाल्ड, जॉर्ज इलियट, हैरियट बीचर स्टो, विल्की कॉलिन्स, आर्थर कॉनन डॉयल आदि के प्रभाव का अनुशीलन ।

(८) हिन्दी कहानी के प्रारम्भ और विकास में, अँग्रेजी की गद्य एवं पद्य कथाओं के योग का अन्वेषण ।

(९) हिन्दी निबन्ध, आलोचना, जीवनी आदि के विकास में, अँग्रेजी प्रभाव के साहाय्य का अनुसंधान ।

[१०] हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर कार्य करने वाले विभिन्न प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन ।

[११] अंग्रेजी प्रभाव के मूलभूत महत्व का निर्धारण ।

इन उपलब्धियों के संबंध में, मैं पुनः यह कहना चाहूँगा, कि ये गुरुजनों के शुभाशीष का ही सुफल है, मेरा अपना इनमें कुछ भी नहीं है ।

यह अनुसंधान कार्य, मैंने दिसम्बर १९४३ में आरम्भ किया था, और जनवरी १९५० में पूरा कर सका । इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन के लिए, इतना समय उपयुक्त ही रहा है । इस प्रबन्ध का सामग्री-सकलन एवं लेखन, प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सम्पन्न हुआ, और इस सम्बन्ध में मैं, उसके उप-पुस्तकाध्यक्ष श्री त्रिवेदी के प्रति विशेष कृतज्ञता अनुभव करता हूँ । प्रयाग के 'भारती भवन', और 'काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा' के 'आर्य भाषा पुस्तकालय' के अधिकारियों के प्रति भी, मैं विशेष आभारी हूँ, जो दोपहर में मुझे, महान साहित्यकारों के साथ विचार-विमर्ष का अवसर प्रदान कर, बाहर से ताला लगा कर, चले जाया करते थे । किन्तु इस प्रबध की रचना में सबसे अधिक आभार, मैं डॉ० रामकुमार वर्मा का मानता हूँ, जिनके परम स्नेहमय एवं निरन्तर उत्साहवर्धक निर्देशन में, मैं अपने इस महत्वाकांक्षा पूर्ण प्रयास को सहज रूप में सम्पन्न कर सका ।

प्रयाग विश्वविद्यालय के नियमानुसार, मुझे अपना यह प्रबन्ध, अँग्रेजी में उपस्थित करना पड़ा था। हिन्दी भाषा एवं साहित्य पर अँग्रेजी प्रभाव के अध्ययन का यह पहला प्रयास था, अन्य प्रबन्ध, जिनमें से एक दो प्रकाशित भी हो चुके हैं, इसके बाद उपस्थित किये गये। मैं इसके प्रकाशन की इसलिए व्यवस्था नहीं कर सका, क्योंकि अँग्रजी का प्रकाशक तो मैं खोज नहीं पाया, और इसे हिन्दी रूप दे पाने के पूर्व, मैं अन्य अनुसंधान कार्य में संलग्न हो गया। सन् १९६० में मैं उससे मुक्त होने के बाद, इस प्रबन्ध के अनुवाद में तत्पर हुआ। इस अनुवादित रूप के अधिकांश अध्याय, मेरे सर्वाधिक प्रिय छात्र श्री स्वराज्य कृष्ण के लिखे हुए हैं, और शेष अनुवादों के लेखन में मुझे अपने छात्रों श्री निरञ्जन सिंह, श्री श्यामलाल गर्ग और श्री चन्द्रपाल सिंह से विशेष सहायता मिली है। इन सभी को धन्यवाद क्या, अगर दे सका तो कुछ और ही दूंगा। अन्त में मैं अपने इस प्रबन्ध के प्रकाशक श्री सुरेन्द्रनाथ के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूं, जिन्होंने सर्वप्रथम सन् १९५४ में, मुझसे, इसके प्रकाशन की इच्छा ज्ञापित की थी, किन्तु मैं तो उन्हें सन् १९६२ के जून मास में, इस प्रबन्ध के प्रकाशन का भार दे सका, और पांडुलिपि तो और भी विलम्ब से, धीरे-धीरे देता रहा। मेरे मंदगतिक प्रयास की तुलना में, वास्तव में उन्होंने जेट की त्वरा के साथ कार्य किया है, और इसके लिए मैं उनका परम आभारी हूँ।

गुरुवार, ६ दिसम्बर १९६२ —विश्वनाथ मिश्र

संयोजना

प्रथम अध्याय

अध्ययन की दिशा एवं सीमाएं

प्राक्कथन : भाषा एवं साहित्य के विकास में सहायक शक्तियां : परम्परा-युग की प्रेरणा : नवीन प्रभाव : अंग्रेजी प्रभाव सभी के मूल में सक्रिय-अंग्रेजी राज्य-व्यवस्था मूलत : भिन्न : अंग्रेजी प्रभाव के विषय में विभिन्न धारणाएं : अन्य भारतीय भाषाओं एवं साहित्यों पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन : कालावधि के कारण : प्रस्तुत अध्ययन की रूपरेखा : अंग्रेजी प्रभाव का तात्पर्य : अंग्रेजी भाषा और साहित्य का प्रभाव : कुछ अमरीकी और यूरोपीय साहित्यकारों के प्रभाव की भी चर्चा: प्रभाव सीधा : प्रकारान्तर से : हिन्दी साहित्य पर प्रभाव का विशेष अध्ययन। पृ० १७-२४

द्वितीय अध्याय

अंग्रेजो प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा और साहित्य

हिन्दी भाषा एवं साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन : विकास में सहायक विभिन्न प्रभाव : अपभ्रंश : संस्कृत, फारसी : हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियां : सीमाएं।

पृ० २५-४२

तृतीय अध्याय

अंग्रेजी प्रभाव का आगमन

प्रथम सम्पर्क : अंग्रेजी राज्य का विस्तार : अंग्रेजी शासन की स्थापना : अंग्रेजी प्रभाव के विभिन्न केन्द्रों का सूत्रपात। पृ० ४३-५३

चतुर्थ अध्याय

अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराएं

अंग्रेजी प्रभाव का आगमन : नवीन संस्कृति से सम्पर्क : यूरोपीय पुनर्जागरण से साम्य : विभिन्न धाराएं। नवीन वातावरण : शिक्षा संस्थाए : फोर्ट विलियम कालेज का कार्य : हिन्दी प्रदेश में राजकीय शिक्षा संस्थाएं : जनता द्वारा स्थापित : ईसाई प्रचारकों के शैक्षिक प्रयास : ईसाई प्रचारकों का प्रचार कार्य : धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन : प्रेस एवं पत्र-पत्रिकाए : सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संस्थाएं : निष्कर्ष। पृ० ५४-१०७

पञ्चम अध्याय

अंग्रेजी प्रभाव की छाया में हिन्दी के भाषा संबंधी एवं साहित्यिक आदर्शों का निर्माण

भाषा गत आदर्श : नवीन साहित्यिक केन्द्रों की स्थापना : वाक्यादर्श में परिवर्तन नाटक : उपन्यास : कहानी : निबन्ध : आलोचना : जीवनी आदि : निष्कर्ष। पृ० १०८-१०३

षष्टम अध्याय

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव

विषय का आरम्भ : अंग्रेजी भाषा की प्रमुख विशेषताएं : प्रभाव का आरम्भ : शब्द भण्डार पर प्रभाव : हिन्दी में सर्व प्रथम अंग्रेजी शब्द : 'उदन्त मार्तण्ड-समाचार : सुधा वर्षण : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में अंग्रेजी शब्द : बालकृष्ण भट्ट : गृहीत शब्द : अनुवादित शब्द : नागरी प्रचारिणी सभा : 'पारिभाषिक शब्द कोष' : 'सरस्वती' में अंग्रेजी के मूल रूप में गृहीत एवं अनुवादित शब्द : अंग्रेजी से अनुवादित शब्दावलियां : मुहावरे : कहावतें : हिन्दी व्याकरण का निर्माण : अंग्रेजी वाक्य-विन्यास का प्रभाव : विराम चिह्न : अभिव्यञ्जनागत प्रभाव : गद्य-पद्य : हिन्दी भाषा की अभिव्यंजना शक्ति की अभिवृद्धि। पृ० १३४-२०३

सप्तम अध्याय

हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव

अंग्रेजी प्रभाव के आगमन से साहित्य निर्माण के केन्द्रों में परिवर्तन: अंग्रेजी

प्रभाव: अंग्रेजी कविता का प्रभाव: हिन्दी प्रदेश में विभिन्न पाठ्यक्रमों में स्वीकृत अंग्रेजी कवि और काव्य रचनाएं : अंग्रेजी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां : अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद : अन्य प्रभाव : संस्कृत काव्य-रचनाओं का प्रभाव : लोक गीतों का प्रभाव : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्य-रचनाओं पर अंग्रेजी प्रभाव : वर्णनात्मकता की वृद्धि : प्रकृति के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण : राष्ट्रीय भावना : सम्बोधन गीत (ओड) बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' पर गोल्डस्मिथ का प्रभाव : 'दि डेजर्टेड विलेज' का प्रभाव 'जीर्ण जनाद' पर : शोकाश्रु बिन्दु' हिन्दी का प्रथम शोक काव्य (एलेजी): श्रीधर पाठक: 'जगत सचाई सार' पर लॉगफेलो के 'साम ऑफ लाइफ' का प्रभाव टॉमसन के 'दि सीजन्स' का प्रकृति-परक रचनाओं पर प्रभाव : 'देहरादून' पर बायरन के 'चाइल्ड हेरोल्डस पिलग्रिमेज' का प्रभाव . शवशिलालेख एपीटैफ : लोचन प्रसाद पांडेय : 'प्रवासी' पर गोल्डस्मिथ के 'दि ट्रैविलर:' और पोप के 'एसे ऑन मैन' का प्रभाव : 'मेवाड़ गाथा' पर मेकॉले के 'लेज ऑफ एन्शेन्ट रोम' का प्रभाव : गोल्डस्मिथ और टॉमसन के प्रकृति परक दृष्टिकोण का प्रभाव : वर्डसवर्थ का प्रभाव : चतुर्दशपदी (सानेट) और अमित्राक्षर छन्द (ब्लैंक वर्स') के प्रयोग : 'श्रीधर' कृत 'चारण' : सर वाल्टर स्कॉट के दि ले ऑफ लास्ट मिन्स्ट्रेल' तथा मेकॉले के 'दि लेज ऑफ एन्शेन्ट रोम' का सम्मिलित प्रभाव : समाधि लेख : भूखंड-चित्रण : स्वच्छन्दतावाद की विभिन्न वृत्तियों का उपयोग : जयशंकर प्रसाद : स्वच्छन्दतावाद का उन्मेष : 'प्रेम राज्य' स्वच्छन्दतावादी प्रेमाख्यान: 'चित्राधार' : 'कानन कुसुम' : 'प्रेम पथिक' पर गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का प्रभाव : प्रकृति के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण : विश्व प्रेम का आदर्श : अन्य कवि : 'अयोध्यासिंह उपाध्याय' : मैथिली शरण गुप्त : निष्कर्ष : हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख प्रवृत्तियाँ । पृ० २०४-२५६

अष्टम अध्याय

हिन्दी नाटक पर अंग्रेजी प्रभाव

हिन्दी नाटक : अंग्रेजी प्रभाव की धाराएं : अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद : बंगला से अनुवाद : पारसी रंगमंच : भारतेन्दु हरिश्चन्द : श्रीनिवास दास : केशवराम भट्ट : जी० पी० श्रीवास्तव : अन्य नाटककार : निष्कर्ष । पृ० २६०-२८८

नवम अध्याय

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव

हिन्दी में औपन्यासिक विधा के विलम्ब से उद्भव के कारण: अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व भारतीय साहित्य में उपन्यास : संस्कृत के गद्य-काव्य : अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न

धाराएं : हिन्दी-प्रदेश मे विभिन्न पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत अंग्रेजी उपन्यासकार : अंग्रेजी उपन्यास की मुख्य प्रवृत्तियां : अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद : अन्य प्रभाव : संस्कृत, फारसी, उर्दू, : प्रथम प्रयोग एवं ग्रहण : श्रीनिवास दास का 'परीक्षा गुरु' : अंग्रेजी शैली का प्रथम उपन्यास : किशोरीलाल गोस्वामी पर रेनाल्ड का प्रभाव : गोपालदास गहमरी पर पंचकौडी दे, आर्थर कॉनन डॉयल, राइडर हेगर्ड आदि का प्रभाव प्रेमचन्द पर जार्ज इलियट, हैरियट बीचर स्टो आदि का प्रभाव : अन्य उपन्यासकार निष्कर्ष : हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख प्रवृत्तियां। पृ० २८९-३२०

दशम अध्याय

हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव

हिन्दी कहानी : अंग्रेजी प्रभाव की सृष्टि: हिन्दी-प्रदेश में विभिन्न पाठ्यक्रमों में स्वीकृत अंग्रेजी कहानीकार : अंग्रेजी कहानी की मुख्य विशेषताएं : हिन्दी में अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व कथात्मक रचनाएं: अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से प्रारम्भिक प्रयोग 'सरस्वती' में विभिन्न प्रयोग : अंग्रेजी कहानियों के अनुवाद : ग्रहण : अन्य प्रभाव संस्कृत कथा साहित्य : लोक कथाओं का प्रभाव : बंगला कहानियों के अनुवाद किशोरीलाल गोस्वामी तथा अन्य प्रारम्भिक कथाकार. गोपालराम गहमरी : पंचकौड़ी दे की जासूसी कहानियो के अनुवाद : अंग्रेजी के अनुवाद : आर्थर कॉनन डॉयल की अन्वेषण पद्धति का ग्रहण : जयशंकर प्रसाद की कहानियों पर अंग्रेजी प्रभाव : जी० पी० श्रीवास्तव : प्रेमचन्द : अन्य कहानीकार : निष्कर्ष : हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव की मुख्य प्रवृत्तियां। पृ० ३२१-३३८

एकादश अध्याय

हिन्दी निबन्ध, आलोचना आदि पर अंग्रेजी प्रभाव

अध्ययन की दिशा : निबन्ध की परिभाषा : हिन्दी-प्रदेश में विभिन्न पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत अंग्रेजी निबन्धकार : अंग्रेजी निबन्धों के अनुवाद और ग्रहण : हिन्दी में निबन्ध रचना के प्रथम प्रयोग : बालकृष्ण भट्ट : प्रताप नारायण मिश्र : बालमुकुन्द गुप्त : पद्मसिंह : अन्य निबन्धकार : आलोचना की परिभाषा : हिन्दी-प्रदेश में विभिन्न पाठ्य क्रमो में स्वीकृत अंग्रेजी आलोचक और उनकी रचनाएं : प्रारम्भिक प्रयोग : गंगाप्रसाद अग्निहोत्री: 'समालोचना' : पोप के 'एसे ऑन क्रिटिसिज्म' का अनुवाद : 'आलोचादर्श' उसका प्रभाव : मिश्र बन्धु : श्याम सुन्दर दास : अन्य आलोचक : जीवनी : इतिहास : प्रेरणात्मक रचनाएं : पत्र एवं पत्रिकाएं : निष्कर्ष। पृ० ३३९-३५६

द्वादश अध्याय

निष्कर्ष: अंग्रेजी प्रभाव की मुख्य उपलब्धियां

हिन्दी भाषा एवं साहित्य में द्रुतगति के विकास-क्रम का सूत्रपात : नवीन साहित्यिक केन्द्रों की स्थापना : आधुनिक साहित्यिक वृत्तियों का समावेश : अंग्रेजी भाषा और साहित्य से सम्पर्क : उनका प्रभाव : हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख प्रवृत्तियां : साहित्य के विभिन्न रूपों पर अंग्रेजी प्रभाव : नवीन साहित्यिक विधाओं का सूत्रपात : परम्परा से प्राप्त विधानों का नवीनीकरण : विभिन्न प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन : अन्तिम निष्कर्ष : पृ० ३५७-३६१

परिशिष्ट

(क) 'अवध अखबार' का अवतरण। पृ० ३६२-३६५

(ख) अंग्रेजी के, हिन्दी-प्रदेश में विभिन्न पाठ्यक्रमों में स्वीकृत साहित्यकार और उनकी रचनाओं की कालानुक्रम एवं विधानुसार सूची। पृ० ३६६-३६८

(ग) अंग्रेजी से अनुवादित रचनाएं। पृ० ३६९-७४

(ग) बंगला से अनुवादित रचनाएं। पृ० ३७५-७७

(ङ) विशेष सहायक ग्रंथों की सूची। पृ० ३७८-८८

: १ :

अध्ययन की दिशा एवं सीमाएं

हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकासक्रम में आधुनिक युग का विशेष महत्व है; उसका सर्वतोमुखी विकास तो वस्तुतः इसी काल में सम्भव हुआ है। जर्मनी में गटे के युग के अतिरिक्त, जब साहित्यिक प्रतिभा का व्यापक और द्रुतगति पूर्ण विकास देखने को मिला था, साहित्य के इतिहास में कोई दूसरा युग नहीं हुआ है, जिसकी तुलना इस छोटे से युग से की जा सके, जिसमें हिन्दी ने, अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के साथ, असाधारण साहित्यिक प्रगति उपस्थित की है।[१] हिन्दी गद्य और उसके विभिन्न रूपों का विकास तो इसी युग में हुआ है। आधुनिक युग में ही हिन्दी साहित्य में उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना, जीवनी, इतिहास आदि साहित्यिक विधाओं का सूत्रपात हुआ है। हिन्दी में नाटक रचना का प्रारम्भ भी, समुचित रूप में, वर्तमान काल में ही हुआ है। हिन्दी कविता ने भी, इस युग में, अपने अन्तर और बाह्य दोनों रूपों को परिवर्तित कर दिया है। हिन्दी भाषा ने भी इसी काल में जीवन के विभिन्न पक्षों और ज्ञान की अनेक धाराओं को अभिव्यक्त करने की शक्ति अर्जित की। हिन्दी भाषा और साहित्य के बाह्य-रूप और अन्तर्धारा में यह समस्त

---

१ डा० अमरनाथ झाः 'भारतीय साहित्य के सौ वर्ष', 'हिन्दुस्तानी', खण्ड आठ, (१९३७), पृष्ठ २२०

परिवर्तन अंग्रेजी शासन के युग में ही हुआ है, इसलिये यह तो निश्चित-सा प्रतीत होता है कि अंग्रेजी प्रभाव ने उसमें सक्रिय योग दिया हो, नहीं तो इतना व्यापक विकास सम्भव ही न हो पाता। इस अध्ययन में इसी प्रभाव के मूल्यांकन का प्रयास किया जा रहा है।

किसी भी देश के भाषा एवं साहित्य के विकास-क्रम का अनुशीलन किया जाये तो उनकी प्रगति में योग देने वाले तीन प्रधान स्रोत मिलते हैं—उसकी अपनी भाषा-गत एवं साहित्यिक परम्पराएं, नवीन प्रभाव और युग-विशेष की अनुभूतियां। हिन्दी भाषा और साहित्य की आधुनिक प्रगति में भी, इन सभी स्रोतों का योग रहा है। इस काल के प्रारम्भ में हम, अपने देश के प्राचीन साहित्य एवं भाषा के प्रति, अनुराग का पुनर्जागरण देखते हैं। नवीन प्रभाव, अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के सम्पर्क के रूप में, नवस्फूर्ति एवं नव चेतना का संचार करता रहा है। युग की नयी अनुभूति, अंग्रेजी राज्य के ऊपर के सुख शांति के वातावरण में, भीतर ही भीतर, धन-धान्य सम्पन्न देश का आर्थिक शोषण, रही है, जिसने हिन्दी ही नहीं समस्त भारतीय साहित्य में बड़ी प्रबल विद्रोह की भावना का संचार किया है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य को गति प्रदान करने वाले इन तीनों ही स्रोतों के मूल में अंग्रेजी प्रभाव विशेष रूप से सक्रिय दृष्टिगत होता है। आधुनिक काल में, देश के प्राचीन साहित्य और संस्कृति के प्रति अनुराग का जो पुनर्जागरण हुआ है, उसके मूल में भी अंग्रेजी प्रभाव है। पश्चिम में पुनरुत्थान की भावना का सूत्रपात तुर्कों द्वारा कुस्तुनतुनिया की विजय (१४५३) के अनन्तर हुआ था : जब यूनान के प्राचीन साहित्यिक और वैज्ञानिक ग्रन्थ शरणार्थियों के साथ समस्त योरप में फैल गए थे और उनका अध्ययन-अनुशीलन प्रारम्भ हुआ था। हमारे देश में भी अंग्रेजों की विजय और राज्य-स्थापना के अनन्तर ही, प्राचीन भाषा और साहित्य के अध्ययन के प्रति, अनुराग बढ़ा; और इस क्षेत्र में कुछ उदारमना पाश्चात्य विद्वानों ने ही कार्यारम्भ भी किया था। इस प्रसंग में मैक्स मूलर, विन्टरनिट्ज, ग्रियर्सन आदि के नाम सदा स्मरणीय रहेंगे। सन् १७८४ में सर विलियम जोन्स ने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना करके, तथा कर्नल कनिंघम ने सन् १८५७ में पुरातत्व विभाग की व्यवस्था द्वारा, नव शिक्षित भारतीयों के मन में अपने देश की प्राचीन कला और साहित्य के प्रति रुचि जगाई थी।

आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रेरणा का दूसरा स्रोत, नया प्रभाव, विशेष रूप से अंग्रेजी प्रभाव ही रहा है। अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्ययन, तथा इन्हीं के माध्यम से, अन्य यूरोपीय देशों के साहित्य से परिचय, आधुनिक युग में

हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में वैज्ञानिक, आलोचनात्मक और मानवतावादी जीवन-दृष्टियों के विकास की मूल प्रेरणा रहे हैं। हिन्दी भाषा ने अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क से पर्याप्त शक्ति अर्जित की है। उसका शब्द-भंडार बढ़ा है, अभिव्यंजना की नयी भंगिमाएं विकसित हुई हैं और अभिव्यक्ति की क्षमता का अभूतपूर्व विस्तार हुआ है। हिन्दी साहित्य ने अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से उपन्यास, कहानी आदि नये साहित्यिक रूपों को ग्रहण किया है; तथा प्राचीन एवं नवीन दोनों प्रकार की साहित्यिक विधाओं के लिये विषय-वस्तु, विचार, तत्व, भाव-भंगिमा और रचना-कौशल की दृष्टि से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त की है।

अंग्रेजी शासन का अनुभव, भारतीय जनसाधारण के लिए पूर्णतः नया रहा है। मध्य युग में उसने, अनेक विदेशियों को अपने यहां आकर, विजय प्राप्त करने के अनन्तर, यहीं बसते हुये देखा था। उन विदेशियों ने एक प्रकार से इस देश को ही अपना देश स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार के मध्ययुगीन शासकों में से कुछ बड़े नृशंस, निरंकुश और स्वेच्छाचारी भी थे; किन्तु वे प्रजा के हितों की भी समुचित रक्षा करते थे। कम से कम, भारतीय धनराशि को तो बाहर नहीं भेजते थे; और न राजकीय आय की अभिवृद्धि में ही बाधक होते थे। इस प्रकार मध्ययुगीन विदेशी शासन, धार्मिक असहिष्णुता को छोड़कर, जो कभी कभी बड़ी असह्य हो उठती थी, प्राचीन युग के स्वदेशी शासन से भिन्न न था; किन्तु अंग्रेजी शासन का अनुभव मूलतः दूसरे ही प्रकार का था। भारतवर्ष के जनसाधारण ने पहली बार, अपने देश के धन-धान्य को अबाध गति से, सात समुद्र पार, अपने शासकों के देश में जाते हुए, और अपने को निर्धन एवं दरिद्र होते हुये देखा। अंग्रेजी शासन की इस शोषण-नीति ने, हमारे शताब्दियों के आध्यात्मिक, भावुक और कल्पनाशील दृष्टिकोण को, सहसा एक झटके के साथ, भौतिक, यथार्थोन्मुख और वस्तुवादी बना दिया।

अंग्रेजी प्रभाव का इतना व्यापक स्वरूप, प्रस्तुत अध्ययन को विशेष महत्वपूर्ण बना देता है। इस प्रभाव के सम्बन्ध में विद्वानों ने अब तक तीन धारणाएँ प्रकट की हैं: (१) अंग्रेजों का सम्पर्क हिन्दी साहित्य में शृंगारिक परम्परा को बाधित करने और आधुनिक प्रवृत्तियों के सूत्रपात का मूल कारण रहा है;[1] (२) अंग्रेजी संस्कृति के सम्पर्क से ही आज हिन्दी साहित्य प्रगति कर रहा है, किन्तु जनसाधारण ने प्राचीन परम्पराओं को छोड़ दिया है, इसलिए यह गतिशीलता सदा उचित दिशा की ओर ही नहीं है;[2] (३) अंग्रेजी प्रभाव ने कुछ समय के लिए हमें अंधा-सा कर दिया, जैसे

१. डॉ० श्यामसुन्दर दास : 'हिन्दी साहित्य' (१९४४), पृ० १६१-६२
२. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (१९४०), पृ० १३५

उसके पीछे आँखें मूँद कर चलने के अतिरिक्त हमारे लिए कोई मार्ग ही न हो।[1] इन तीनों ही धारणाओं में, इतना समान रूप से स्वीकृत है, कि अंग्रेजी प्रभाव का आगमन एक जीवनमय शक्ति के रूप में हुआ था। यह सम्पर्क, हिन्दी भाषा एवं साहित्य के लिए किस सीमा तक लाभप्रद रहा है, इसका निर्णय तो इस अध्ययन के अंत में ही सम्भव होगा।

अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी ही नहीं अन्य भारतीय भाषाओं एवं साहित्यों के विकास में भी, योग दिया है, और अब तक इस प्रभाव के कुछ अध्ययन भी प्रस्तुत किये जा चुके हैं। इस क्षेत्र में, प्रमथनाथ बसु का 'हिन्दू सिविलाइज़ेशन अण्डर दि ब्रिटिश रूल' (१८८७) सर्व प्रथम प्रयास था; और उसमें आधुनिक काल के प्रारम्भिक दिनो में पाश्चात्य प्रभाव से ओतप्रोत भारतीय सभ्यता का बड़ा गहरा विश्लेषण उपस्थित किया गया था। इसके अनन्तर डा० सय्यद अब्दुल लतीफ़ ने सन् १९२० में लंदन विश्वविद्यालय में, एक प्रबन्ध प्रस्तुत किया, 'दि इन्फ्लुयेन्स ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर ओन उर्दू लिट्रेचर' और उस पर उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि मिली। इस प्रबन्ध की योजना, बड़ी वैज्ञानिक है, और उसके तृतीय एवं अंतिम अध्याय, जिनमें प्रारम्भिक प्रभावों एवं उर्दू साहित्य की अंतर्धारा तथा विषय-वस्तु पर प्रभाव का विश्लेषण है, बड़ी विद्वत्ता के साथ लिखे गये हैं। सन् १९३३ में डॉ० प्रिय रंजन सेन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'वैस्टर्न इन्फ्लुयेन्स इन बंगाली लिट्रेचर' शीर्षक प्रबन्ध प्रस्तुत किया। इस प्रबन्ध में, पाश्चात्य प्रभाव की विभिन्न भावधाराओं का अच्छा विवेचन है। बंगला उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव की विवेचना करते हुए, डॉ० सेन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'जर्नल ऑफ डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स' में एक विस्तृत निबन्ध प्रकाशित किया था, जिसमें इस प्रभाव का बहुत गहरा विवेचन है। सन् १९३५ में हरेन्द्र मोहन दास गुप्त ने 'स्टडीज़ इन वैस्टर्न इन्फ्लुयेन्स ऑन नाइन्टीन्थ सेन्चुरीज़ बंगाली पोएट्री' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया। इसमें, पिछली शताब्दी के चार बड़े बंगला कवियों—माइकल मधुसूदन दत्त, हेमचन्द्र, नवीन चन्द्र तथा बिहारी लाल की रचनाओं के, पाश्चात्य प्रभाव को दृष्टि में रखते हुए, विस्तृत अध्ययन, उपस्थित किये गये। हिन्दी साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन अब तक नहीं हो सका है और प्रस्तुत प्रबन्ध में इसी आवश्यकता की पूर्ति है। पूर्णता की दृष्टि से यहाँ हिन्दी भाषा तथा साहित्य दोनों पर ही अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन उपस्थित किया जा रहा है।

यह अध्ययन सन् १८७० से प्रारम्भ हो रहा है। सन् १८५७ के अनन्तर ही

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : 'विचारधारा' (१९५३) पृ० २०६

अंग्रेजी शासन हिन्दी प्रदेश में अपने को दृढ़ कर सका था; तेरह वर्षों का समय उसकी पूर्णतः स्थापना तथा हिन्दी भाषा एवं साहित्य पर उसके प्रभाव के प्रारम्भ के लिए पर्याप्त सिद्ध हुआ। सन् १८७० से ही, इलाहाबाद में, एक कॉलेज की स्थापना के लिए प्रयत्न प्रारम्भ हुए, जो आगे चलकर विश्वविद्यालय में परिणत हो गया; और इस प्रकार उसने हिन्दी भाषा तथा साहित्य को अंग्रेजी प्रभाव प्रदान करने में विशेष योग दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जन्म सन् १८५० में हुआ था। सन् १८७० के लगभग ही उनकी साहित्यिक प्रतिभा का अभ्युदय हुआ; और आधुनिक युग, विशेष रूप से उनकी रचनाओं से ही प्रारम्भ होता है। यह अध्ययन सन् १९२० तक ही जाता है, क्योंकि इसी समय से प्रथम विश्व युद्ध के बाद के प्रभावों का क्रम प्रारम्भ होता है। सन् १९२० से ही, अंग्रेजी प्रभाव, उस व्यापक प्रभाव का रूप ग्रहण कर लेता है, जिसे हम पाश्चात्य प्रभाव की संज्ञा देते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध में कोई ५० वर्ष के हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

इस अध्ययन को प्रारम्भ करते हुए अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रधान प्रवृत्तियों का विवेचन आवश्यक है; उसके बिना यह सम्भावना है कि उनकी कुछ अपनी वृत्तियों को अंग्रेजी प्रभाव से प्रसूत समझ लिया जाय। इस लिए, दूसरे अध्याय में हम, अंग्रेजी प्रभाव के आगमन के पूर्व, हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कर रहे है। साथ ही, उन प्रभावों का भी अनुशीलन उपस्थित किया जा रहा है, जिन्होंने उनके निर्माण में योग दिया है। इसके अनन्तर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप में हिन्दी प्रदेश में अंग्रेजी प्रभाव के आगमन का प्रकरण है। अंग्रेजी प्रभाव ने विभिन्न धाराओं में होकर कार्य किया है। उसने हिन्दी के साहित्यिक आदर्शों को ही नहीं, साहित्य निर्माण के केन्द्रों को भी परिवर्तित कर दिया है। अंग्रेजी शासन के द्वारा उत्पन्न परिवर्तित वातावरण में अंग्रेजों द्वारा स्थापित नवीन शिक्षा संस्थाओं ने, साहित्यिक-केन्द्रों के लिये भूमि का निर्माण किया। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा उत्पन्न नवीन आलोक में ही, हमारी राजनीतिक, धार्मिक—सभी प्रकार की मान्यताएं, अधिक बुद्धि-ग्राह्य हो गईं, जिसके फलस्वरूप हिन्दी भाषा तथा साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों के विकास को प्रेरणा मिली। अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार में ईसाई प्रचारकों ने भी बड़ा योग दिया। अंग्रेजों द्वारा मुद्रण-कला के प्रचार और प्रसार ने हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक मान्यताओं में पूर्णतः नवीन प्रवृत्तियों का समावेश कर दिया। अंग्रेजी प्रभाव की इन विभिन्न धाराओं ने, हिन्दी भाषा तथा साहित्य में, आधुनिक प्रवृत्तियों के

सूत्रपात में कहां तक योग दिया है, इसका भी पर्याप्त विवेचन होगा।

अंग्रेजी प्रभाव की इन धाराओं में, परिवर्तित वातावरण तथा नवीन शिक्षा-संस्थाओं का, सबसे महत्वपूर्ण योग रहा है; और जहां तक प्रस्तुत अध्ययन का प्रश्न है, शिक्षा-संस्थाओं का योग सर्वाधिक रहा है। अंग्रेजी प्रभाव द्वारा परिवर्तित वातावरण ने, हिन्दी लेखकों को एक नयी जीवन-दृष्टि प्रदान की थी। शिक्षा-संस्थाओं ने हमें यह बताया, कि साहित्य जगत में आज पवन की गति किस दिशा की ओर है। अंग्रेजी प्रभाव से ओतप्रोत नवीन वातावरण में ही, राजाओं और नवाबों कि सभाओं तथा दरबारों का, जो अब तक साहित्यनिर्माण का केन्द्र रहे थे, लोप हो गया। साहित्यनिर्माण की दृष्टि से इस रिक्तता में अंगरेजी शिक्षा ने नवीन साहित्यिक केन्द्रों के निर्माण में योग दिया। अंगरेजी भाषा तथा साहित्य के सम्पर्क ने नवीन भाषागत और साहित्यिक आदर्शों के निर्माण में बड़ी सहायता दी। हिन्दी के साहित्यकार इन परिवर्तित परिस्थितियों में ही, अंगरेजी ग्रंथों को आदर्श मानकर लिखने लगे, उनकीर चनाओं पर अंगरेजी भाषा का भी प्रभाव दिखाई देने लगा। प्रस्तुत अध्ययन में इस प्रकार, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर, अंगरेजी भाषा तथा साहित्य के प्रभावों की विवेचना होगी; यदा कदा अंगरेजी-संस्कृति के प्रभाव का उल्लेख भी कर दिया जायेगा।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंगरेजी प्रभाव के अनुशीलन के लिये, अंगरेजी भाषा तथा साहित्य का सम्यक् अध्ययन भी अपेक्षित है। इस सम्यक् अध्ययन के लिये अनेक वर्ष चाहिएं और तब भी शायद वह पूर्ण न हो। प्रस्तुत अध्ययन के लिए वह संगत भी नहीं है। इसीलिए यहां अंगरेजी भाषा और साहित्य की उन्हीं कृतियों का अनुशीलन किया जायगा, जो विभिन्न पाठ्यक्रमों में स्वीकृति रही हैं। हिन्दी प्रदेश में, अधिकांश में वही रचनायें पढ़ी गई हैं, जो किसी न किसी पाठ्यक्रम में स्वीकृति रही हैं। इस अध्ययन में, अंगरेजी के उन साहित्यकारों तथा कृतियों पर भी विचार किया जायगा, जिनका उल्लेख हिन्दी रचनाओं में यदा कदा मिलता है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा कि अंगरेजी के कौन से लेखक तथा कौन-कौन रचनायें हिन्दी-प्रदेश में लोक प्रिय हो गयी थीं।

सामान्यत: अमरीका के लेखकों तथा कवियों की कृतियां अंगरेजी साहित्य के अंतर्गत आती हैं, इसलिए उनके प्रभाव का भी विश्लेषण अंगरेजी प्रभाव के अंतर्गत ही किया जायेगा। कुछ यूरोपीय साहित्यकारों ने भी, विशेष रूप से, फ्रांस के हास्य-नाट्यकार मोलियर ने भी हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है। यह प्रभाव अंगरेजी अनुवादों के माध्यम से ही आया है, इसलिये, प्रस्तुत अध्ययन में, इस प्रभाव को भी

स्थान मिलेगा।

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना करते हुए, विषय प्रवेश के अनन्तर अंग्रेजी भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया जायगा, उसके अनन्तर यह विवेचना की जायगी कि वे प्रवृत्तियां अंग्रेजी प्रभाव के माध्यम से कहाँ तक हिन्दी भाषा में आ गयीं। हिन्दी साहित्य के विभिन्न रूपों पर इस प्रभाव की विवेचना करते हुए प्रारम्भ में उन अंग्रेजी लेखकों तथा कृतियों की चर्चा होगी जो हिन्दी प्रदेश में पढ़े गये थे; इसके अनन्तर, उन प्रभावों का विश्लेषण किया जायगा, जो अंग्रेजी प्रभाव के साथ-साथ कार्य करते रहे। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा, कि अंग्रेजों के सम्पर्क के बिना भी, हिन्दी भाषा और साहित्य ने, किन प्रवृत्तियों को, आधुनिक काल में विकसित कर लिया होता। इस अध्ययन से अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न प्रवृत्तियाँ और भी स्पष्ट हो जायेंगी। हिन्दी के विभिन्न साहित्यकारों और उनकी कृतियों पर अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण उसके बाद किया जायगा।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर जितना कुछ अंग्रेजी प्रभाव है, वह सभी अंग्रेजों, उनकी भाषा तथा साहित्य के सीधे सम्पर्क से ही नहीं आया है। अंग्रेजी प्रभाव ने जैसा हम पहले कह आए हैं, हिन्दी प्रदेश में आने के पूर्व ही, भारत वर्ष के कुछ अन्य प्रदेशों में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। अंग्रेजों ने सर्वप्रथम, भारत वर्ष के समुद्रतट के बड़े-बड़े नगरों—बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि में अपने व्यापारिक-केन्द्र स्थापित किये थे। उनका सांस्कृतिक एवं साहित्यिक प्रभाव भी सर्व प्रथम इन्हीं नगरों में प्रकट हुआ। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का प्रवेश भी, सर्वप्रथम कलकत्ता नगर से ही आरम्भ हुआ। उत्तर भारत में अंग्रेजी प्रभाव ने, इसी नगर से कार्य करना प्रारम्भ किया था; इसीलिए भारत के इस क्षेत्र की विभिन्न भाषाओं और साहित्यों में अंग्रेजी प्रभाव सर्वप्रथम बंगला भाषा तथा साहित्य पर देखने को मिला। बंगाल का प्रमुख नगर कलकत्ता, उन दिनों भी भारत का एक बहुत बड़ा व्यापारिक-केन्द्र था, और हिन्दी प्रदेश के भी बहुत से लोग वहाँ विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में संलग्न थे। उन लोगों ने यह भली प्रकार देखा, कि अंग्रेजी प्रभाव को लेकर बंगला भाषा तथा साहित्य में कैसी प्रगति हो रही है। उनके मन में तभी यह इच्छा उत्पन्न हुई कि वे हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास-क्रम को नयी दिशा प्रदान करें। इसी उद्देश्य को लेकर अंग्रेजी प्रभाव को आत्मसात् करते हुए उन्होंने हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ किया। कुछ दिनों बाद, जब हिन्दी प्रदेश स्वयं अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत आगया, तो इस प्रभाव को लेकर बंगला भाषा और साहित्य की जो उन्नति हो रही थी, उसकी ओर लोगों का और भी ध्यान गया।

हिन्दी के साहित्यकारों ने जब अंग्रेजी प्रभाव को ग्रहण करना प्रारम्भ किया, तो उन्हें इस प्रभाव से ओतप्रोत बंगला साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों को अपनाना अधिक युक्ति संगत लगा, क्योंकि बंगला साहित्य उन्हें अंग्रेजी की अपेक्षा अधिक अपना प्रतीत हुआ। इसीलिये अंग्रेजी प्रभाव बंगला भाषा और साहित्य के माध्यम से भी, हिन्दी में पर्याप्त रूप में आया है। मराठी और उर्दू साहित्य के माध्यम से भी, हिन्दी के साहित्यकारों ने थोड़ा बहुत अंग्रेजी प्रभाव ग्रहण किया है; किन्तु प्रकारान्तर से आने वाले प्रभाव में, बंगला भाषा और साहित्य का सबसे अधिक योग रहा है। यह प्रकारान्तर से आने वाला प्रभाव भी, उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के सम्पर्क से सीधे आया हुआ प्रभाव।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के इस अध्ययन में, हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का विवेचन, पहले किया जायगा। अंग्रेजी प्रभाव ने, सर्व प्रथम, हिन्दी भाषा पर कार्य करना प्रारम्भ किया था। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन, एक स्वतंत्र प्रबन्ध का विषय हो सकता है; प्रस्तुत अध्ययन में हम उसकी विस्तृत रूपरेखा मात्र उपस्थित कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य के विभिन्न रूपों पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन के लिए, अधिक विस्तार के साथ विचार किया जायगा। इस अध्ययन को समाप्त करते हुए हम कोष्ठबद्ध रूप में भी, अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट कर रहे हैं।

———•———

: २ :

अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा और साहित्य

इस प्रकरण में, अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी भाषा तथा साहित्य की विशेषताओं का अध्ययन होगा। इस सम्बन्ध में हम सर्व प्रथम हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। उसके अनन्तर, उन प्रमुख प्रभावों का विश्लेषण होगा, जिन्होंने इस विकास मे योग दिया है; और तब हिन्दी भाषा तथा साहित्य की प्रमुख विशेषताएं प्रस्तुत की जायेगी। अन्त में हिन्दी भाषा तथा साहित्य की सीमाओं का विश्लेषण होगा। यह समस्त अध्ययन अंग्रेजी प्रभाव को और अधिक स्पष्टता प्रदान करने में सहायक होगा।

१—अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा तथा साहित्य

अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास की हमें कई अवस्थाएं देखने को मिलती हैं। उनका प्रारम्भिक रूप हम बौद्ध-सिद्धों तथा जैनाचार्यों की रचनाओं में देखते हैं। इन रचनाओं में हमें, हिन्दी भाषा, अपभ्रंश के कुछ रूपों से विकसित होती हुई, अपनी प्रारम्भिक अवस्था में मिलती है। बौद्ध-सिद्धों की रचनाएं उस भाषा में हैं, जो मागधी अपभ्रंश से उत्पन्न हो रही थी। सिद्ध कवियों की रचनाएं हमें दोहा चौपाई तथा पदों के रूपों में प्राप्त होती हैं। इन रचनाओं में हमें, पुरातन सामाजिक व्यवस्था तथा समाज के अन्ध-विश्वासों के प्रति, तीव्र आक्रोश

देखने को मिलता है। सिद्ध कवियों में से अधिकांश, समाज के निम्न वर्ग मे उत्पन्न हुए थे। इस कारण उन्होंने समाज के उच्चवर्गों द्वारा व्यवहार में लायी जाने वाली दमन-नीति का स्वयं अनुभव किया था। इसीलिये उन्होंने वर्ण व्यवस्था का बड़ा तीव्र विरोध किया था। अपनी इस विचारधारा के प्रचार के लिये उन्होंने जिस भाषा का उपयोग किया, वह उस समय की जन-भाषा थी। यह क्रान्तिकारी भावना हमें जैनाचार्यों की कृतियों में नहीं मिलती। जैन मतावलम्बियों ने, उस समय तक अपनी क्रान्तिवादी मनोवृत्ति को छोड़ दिया था और समाज के उच्चवर्गों के साथ एक समझौता-सा कर लिया था। जैनाचार्यों को राजाश्रय भी प्राप्त होने लगा था, और वे अपनी साहित्यिक प्रतिभा का उपयोग अपने आश्रय-दाताओं की प्रशंसा के लिए करने लगे थे। जैनाचार्यों की कृतियों में, जैन विचारधारा से सम्बन्धित रचनाओं की संख्या भी पर्याप्त है, किन्तु उनका महत्व विशेष नहीं है, वे युग की भावधारा को ध्यान में रखते हुए, लिखी ही नहीं गई थी। इन रचनाओं में, हिन्दी भाषा का वह रूप देखने को मिलता है, जो नागर अपभ्रंश से विकसित हो रहा था। बौद्ध तथा जैन आन्दोलनों ने, संस्कृत के महत्व को, राजसभाओं की भाषा के रूप में भी, इस समय तक, बहुत कम कर दिया था।

जब हिन्दी की ये दोनों प्रारम्भिक धाराएं, अपने को अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त करती हुई, नाथ-पंथी योगियों तथा राजस्थान के भाटों एवं चारणों की कृतियों में हिन्दी भाषा के वास्तविक रूप के निर्माण का प्रयत्न कर रही थी, उस समय एक घटना घटी, जिसका हिन्दी भाषा तथा साहित्य के लिए विशेष महत्व है। वह थी, भारतवर्ष में इस्लाम का प्रवेश। उसने हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास की धारा ही बदल दी। राजस्थान के भाटों एवं चारणों की कृतियों में, उसने देश-भक्ति की भावना का संचार किया; और नाथ-पंथी योगियों की कृतियों को, जो आगे चल कर सन्त-काव्य के रूप मे विकसित हुई, उसने कुछ और व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण प्रदान किया। हिन्दी भाषा ने इस्लाम के सम्पर्क से कुछ नयी ध्वनियां प्राप्त की, बहुत से शब्द तथा कुछ शब्दावलियां और प्रयोग ग्रहण किये। मुसलमानी शासन की स्थापना के अनन्तर, यह प्रभाव, एक विस्तृत समय तक, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर कार्य करता रहा।

राजस्थान के भाटों एवं चारणों की कृतियां, विस्तृत कथा-काव्य तथा वीर-गीत, दो रूपों में प्राप्त होती है। इन दोनों के विषय एक ही है—आश्रयदाता की प्रशंसा। इस प्रशंसा के माध्यम से ही वे, अपने संरक्षकों से, अपनी जीविका अर्जित करते थे। अपने कथन को और अधिक आकर्षक बनाने के लिये, इस प्रशंसा को वे बड़ी सजीवता

के साथ साहसिकता तथा प्रेम की भावनाओं के आवरण पहना कर प्रस्तुत करते थे। भाटों एवं चारणों की रचनाएं, अधिकांश में राजसभाओं के लिए लिखी जाती थीं। कभी-कभी, किसी योद्धा विशेष की वीरता, उसकी प्रेम-क्रीडाएं, सामान्य जनता के हृदय में अपना स्थान बना लेती थी; और फिर कवि उन्हें लेकर ही कथा-काव्य की सृष्टि कर डालते थे। साहसिकता तथा प्रेम, इस युग के समाज के, उच्च तथा निम्न दोनों ही वर्गों की, प्रमुख प्रवृत्तियां थीं। इस युग की भाषा पर भी अपभ्रंश का काफी प्रभाव था। मुसलमानों के आक्रमण से भारतीय शासकों के मस्तिष्क में एक दुश्चिन्ता-सी उत्पन्न हो गई थी। इस दुश्चिन्ता ने, राजसभाओं के कवियों के हृदयो में, देश भक्ति की भावना उत्पन्न कर दी थी। इसी प्रेरणा से, उनकी रचनाओ मे भी, देशभक्ति की भावना का संचार हो गया था। किन्तु यह नवीन साहित्य भी मुसलमानी आक्रमण की तीव्रता को रोकने में असफल हुआ। भारतीय शासक, भारतीय जीवन की एकता को, अपने पारस्परिक झगड़ों से पूर्णतः नष्ट कर चुके थे। देश के शासकों की पराजय से उनकी राजसभाओं में निर्मित होने वाले साहित्य की प्रगति भी अवरुद्ध हो गयी।

मुसलमानी शासन की स्थापना तथा इस्लामी सभ्यता के प्रवेश ने, हिन्दी भाषा तथा साहित्य में, सन्त-साहित्य के रूप में एक नई भावधारा उत्पन्न की। बौद्ध-सिद्धो तथा नाथ-पन्थी योगियों ने, पुरातन सामाजिक व्यवस्था के प्रति अपना विरोध अभिव्यक्त किया था, किन्तु अब एक नया प्रश्न खड़ा था : विदेश से आई हुई धार्मिक भावना का, भारतीय धर्म भावना के साथ तीव्र संघर्ष चल रहा था। इस नवीन परिस्थिति में, समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित करने का पुराना स्वर, विशेष सफल नहीं हो सकता था। इसीलिये मनुष्य की मूलभूत एकता पर बल देने वाले सन्तों का प्राधान्य हुआ। इस भावना की प्रथम अभिव्यक्ति कबीर ने की। दादू, रैदास तथा अन्य सन्त कवियों ने उन्हीं का अनुसरण किया। ये सभी कवि प्रचारक थे, और जनता में अपनी भावधारा के प्रचार के लिये, उन्होंने देश के एक भाग से दूसरे भाग तक की यात्राएँ कीं। यही कारण है कि हमें सन्त कवियों की रचनाओं में, उत्तर भारत की उन सभी भाषाओं के शब्द मिलते है, जो उनके समय में प्रचलित थीं। इन कवियों से हिन्दी भाषा की, अन्य प्रभावों के ग्रहण करने की शक्ति को, विशेष बल मिला।

जनसाधारण में मनुष्य की मूलभूत एकता की भावना के प्रचार के लिये हिन्दू तथा इस्लाम धर्म की समान मान्यताओं पर बल देना आवश्यक था। सन्त कवियों की रचनाओं में, इसी प्रेरणा से हम अद्वैतवाद का ग्रहण देखते हैं। इस्लाम के अनुयायियों में, इसी सिद्धान्त से मिलती-जुलती, सूफी भावधारा का प्रचार बढ़ा।

सूफी कवियों ने अपनी विचारधारा के प्रचार के लिए छोटे तथा बड़े कथा-काव्य लिखे, और उनमें उन्होंने अपने सिद्धान्तों को जीवन में चरितार्थ करने का प्रयत्न किया। पार्थिव सौन्दर्य में उन्होंने दिव्य आभा प्रकट की, और मानवीय प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का आभास दिया। ये कवि भी, जनता के बीच, अपनी विचारधारा को प्रचलित करना चाहते थे, इसीलिये इन्होंने भी, अपनी रचनाओं में, जनभाषा का प्रयोग किया। सूफी कवियों की सभी रचनाएं, उनके युग की अवधी भाषा में मिलती हैं।

मुसलमानी शासन की स्थापना के अनन्तर, भारतवर्ष में एक सामाजिक तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ। इस प्रवृत्ति ने, नवीन आदर्शों की स्थापना का न हीं, वरन् पुराने आदर्शों को पुनः लाने का प्रयास किया। मुसलमान भारतवर्ष में, एक पिछड़ी हुई सामाजिक व्यवस्था को लेकर आये थे, इसीलिये उनके आगमन से भारतीय समाज के विकास को कोई विशेष योग नहीं मिला। उनकी विजय ने, एक प्रत्यावर्तन की प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी। यही कारण था कि नये सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदर्शों की खोज के स्थान पर, शास्त्रों में बताये गये पथ को ही ग्रहण करना, श्रेयस्कर समझा गया। साहित्य के क्षेत्र में भी, इस प्रवृत्ति ने, पुराने आदर्शों को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया। हिन्दी के प्रमुख कवि सूरदास, नन्ददास आदि सभी की कृतियां, संस्कृत के ग्रंथों को आदर्श मानकर लिखी गयीं। तुलसीदास जी ने भी, इसीलिये अपनी भक्ति भावना के माध्यम से विश्वजनीनता की भावना का प्रचार करते हुये भी, अनेक स्थलों पर, वर्ण और जाति-भेद की पुष्टि की। वे भी विनष्ट सामाजिक व्यवस्था को, पुनर्जीवित करना चाहते थे।

इन कवियों की रचनाओं में हम, भक्ति या उपासना की भावना को, अन्तर्निहित देखते हैं। भक्ति से तात्पर्य, इष्टदेव के प्रति आत्मनिवेदन या आत्मसमर्पण से है। इस व्याख्या के अनुसार हम भक्ति-भावना को एक व्यक्ति के जीवन में ही, अभिव्यक्त देख सकते हैं; किन्तु हिन्दी भाषा तथा साहित्य में उसने, सामूहिक चेतना उत्पन्न की थी। इस युग की किसी भी कृति में हमें, सचेष्ट साहित्य निर्माण की प्रवृत्ति नहीं मिलती। ये रचनाएँ, इष्टदेव के प्रति, उनके रचयिताओं के प्रगाढ़ अनुराग को, अभिव्यक्त करने के लिए लिखी गयी थीं। किन्तु अपने निर्माण के समय ही वे जन-कल्याण की भावना से ओतप्रोत होने के कारण, जनसाधारण में मान्य हो गयीं। यह इन मध्ययुगीन धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव ही था, कि हिन्दी साहित्य में साहित्यिक गुणों का आविर्भाव हुआ। भक्तकवियों ने हिन्दी भाषा को साहित्यिक माधुर्य भी प्रदान किया।

मध्ययुगीन भक्ति-काव्य की दो प्रमुख धाराएँ, राम-काव्य तथा कृष्ण-काव्य थीं। राम-काव्य के प्रमुख निर्माता तुलसीदास थे। अपने 'रामचरित मानस' तथा राम के जीवन से सम्बन्धित अन्य कृतियों में उन्होंने, अपने युग के आदर्श को स्पष्ट किया। उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया, कि आदर्श शासक किस प्रकार का होना चाहिए, तथा समाज के सबसे छोटे अंग—परिवार की एकता किन आदर्शों पर निर्मित होनी चाहिए। 'विनय-पत्रिका' में उन्होंने अपने इष्टदेव मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति, अपने हृदय के आन्तरिक भावों को अभिव्यक्त किया। उन्होंने इष्टदेव तथा अपने बीच जिस सम्बन्ध की स्थापना की थी, वह स्वामी और सेवक का था। उनके अनुसार, सेवक, अपने स्वामी के आदर्श जीवन का चिन्तन तथा अनुसरण करता हुआ ही, अपनी मनोकामना को पूर्ण कर सकता है। तुलसीदास जी ने भी अपनी रचनाएँ, अपने समय की प्रचलित जनभाषाओं, अवधी तथा ब्रजभाषा में प्रस्तुत की थी।

भक्ति काव्य की दूसरी धारा, कृष्ण-काव्य का निर्माण अधिकांश में वल्लभ संम्प्रदाय के पुष्टिमार्गीय भक्तों ने किया। इस सम्प्रदाय के मुख्य कवि सूरदास और नन्ददास थे। सूरदास जी ने, श्री नाथ जी के चरणों में बैठकर, उनकी दिनचर्या का वर्णन करते हुए अपने पदों की रचना की। उन्होंने कृष्ण की बाल-लीलाओं तथा प्रेम-क्रीड़ाओं को, अपनी रचनाओं में प्रमुख स्थान दिया था। नन्ददास जी की रचनाओं के भी यही विषय थे; किन्तु वे संस्कृत काव्य-शास्त्र के पंडित थे, इसलिये उनकी रचनाओं में कविता की शास्त्रीय विशेषताएँ भी मिलती हैं। इनकी रचनाओं को हम सचेष्ट साहित्यिक कृतियां कह सकते हैं। सूरदास, नन्ददास तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियों की रचनाएँ हमें ब्रज भाषा में मिलती हैं। वल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त राधावल्लभी, टट्टी, गौड़ीय आदि संप्रदायों के भक्तों ने भी कृष्ण-काव्य का निर्माण किया था, उनकी रचनाओं की भाव-धारा, अभिव्यञ्जना-प्रणाली तथा कला-पक्ष भी सूरदास, नन्ददास आदि की भाँति ही हैं।

हिन्दी के कृष्ण-काव्य का अध्ययन करते हुये विद्यापति और मीरा का उल्लेख भी आवश्यक है। विद्यापति ने, वल्लभ एवं अन्य कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों की स्थापना के पूर्व ही, राधाकृष्ण की प्रेम-लीला को लेकर बहुत से पदों की रचना की थी। उनकी रचनाओं में लौकिक प्रेम की भावना भी अभिव्यक्त हुई है। मीरा ने, वल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना के अनन्तर अपने पदों की रचना की थी; किन्तु उन्होंने, अपनी रचनाएँ इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित होकर नहीं, वरन स्वतन्त्र रूप से लिखीं। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी साहित्य में अपनी व्यक्तिगत भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाली मीरा अकेली कवयित्री हैं। उन्होंने अपनी समस्त रचनाएँ राजस्थानी

में लिखी थीं।

हिन्दी प्रदेश में, मुस्लिम-शासन ने अपने को दृढ़ करने के लिए, शेष हिन्दू शासकों के साथ सन्धि करने तथा उन्हें अपनी राज-सभाओं में सम्मानित पद प्रदान करने की नीति अपनायी। हिन्दू कलाकारों तथा साहित्यिकों को भी, मुसलमान शासकों के यहाँ आदर और सम्मान मिलने लगा। मुसलमानी राजसभा में, सबसे पहले सम्मानित होने वाले हिन्दू कलाकार, तानसेन थे; और साहित्यिकों में, सर्व प्रथम गंग कवि। मुसलमान शासकों ने सभी हिन्दू राज्यों को नष्ट नहीं किया, इसलिये, शेष रही हिन्दू राजसभाओं में भी हिन्दी कवियों को आश्रय प्राप्त होता रहा। हिन्दू राजसभाओं में पोषण प्राप्त करने वाले कवियों में, केशव, बिहारी, मतिराम, पद्माकर आदि विशेष महत्व के कहे जा सकते हैं।

इन हिन्दू तथा मुसलमान राजसभाओं में लिखे जाने वाले साहित्य में काव्य के वास्तविक सौन्दर्य के स्थान पर बाह्य-कलात्मकता को अधिक महत्व दिया गया है। इस युग के कवियों का मुख्य उद्देश्य, अपने आश्रयदाता अथवा संरक्षकों को प्रसन्न करके, उनसे बड़े-बड़े पुरस्कार प्राप्त करना था। इन पुरस्कारों की प्राप्ति के लिए कवियों को दो बातों की ओर, विशेष ध्यान देना पड़ता था: एक तो उन्हें अपने संरक्षकों की मनोवृत्ति के अनुकूल काव्य रचना करनी होती थी, दूसरे, राज-सभाओं में सम्मानित पण्डितों तथा शास्त्रज्ञों से भी प्रशंसा प्राप्त करनी होती थी। पण्डितों तथा शास्त्रज्ञों से प्रशंसा प्राप्त करके, वे अपने पुरस्कारों को और अधिक बढ़वा लेते थे। इन्हीं कारणों से, इस युग के साहित्य में शृंगारिक भावना तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन की वृत्ति का प्राधान्य है। शृंगारिक भावना को, उस युग के कवियों ने, अपने आश्रयदाताओं में विशेष रूप से पाकर युग की मूल मनोभावना के रूप में, ग्रहण किया था; और पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये उन्होंने, संस्कृतकाव्य-शास्त्र को आधार बनाया था।

संस्कृत साहित्य में काव्य के मर्म का अनुसंधान करते हुए, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, रस, ध्वनि, आदि सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इस युग के साहित्य में, काव्य के सम्बन्ध में, यही विभिन्न मत उद्धृत किये गये हैं। अलंकार सिद्धान्त को, जो कि केवल काव्य-शरीर का अध्ययन करता है, विशेष रूप से, आचार्य केशव ने ग्रहण किया था। विभिन्न अलंकारों की परिभाषा तथा उदाहरण देने के साथ-साथ उन्होंने छन्दो के अनेक प्रकारों के भी उदाहरण प्रस्तुत किये थे। रीति-सिद्धान्त, जिसकी व्याख्या विशिष्ट पद-रचना के रूप में की गई है, इस युग के समस्त साहित्य में अन्तर्धारा के रूप में परिव्याप्त है। रस-सिद्धान्त, जिसमें काव्य रचना की भावात्मकता को विशेष महत्व दिया गया है, मतिराम आदि

कवियों ने ग्रहण किया था। ध्वनि-सिद्धांत का विवेचन हमें भिखारीदास के 'काव्य निर्णय' में मिलता है। इस प्रकार यद्यपि हमें आचार्य शुक्ल के शब्दों में रीति युग में संस्कृत साहित्य-शास्त्र की संक्षिप्त उद्धरणी मिल जाती है; किन्तु इस युग के कवि सब से अधिक अलंकार-सिद्धान्त की ओर आकर्षित थे। इस प्रसंग में यदि यह नहीं कहा जा सकता कि यही उस युग का मूल सिद्धान्त था, तो यह तो कहा ही जा सकता है कि इस काल की अधिकांश रचनाओं का संबन्ध अलंकार-सिद्धान्त से है। इस युग की रचनाओं के अध्ययन से, यह स्पष्ट हो जाता है, कि प्रारम्भ में एक अलकार की एक दोहे में परिभाषा देकर, उसके अनन्तर कवित्त तथा सवैया में, उसका उदाहरण प्रस्तुत करने की, एक निश्चित परम्परा सी प्रारम्भ हो गई थी; और वह इतनी सुदृढ़ थी, कि भूषण जैसा हिन्दू पुनरुत्थान की भावना से ओत-प्रोत कवि भी अपने को उससे अलग नहीं रख सका।

युग की शृंगार भावना ने, नायक-नायिका-भेद, नखशिख-वर्णन, षट्-ऋतु-वर्णन, बारहमासा आदि विषयों में, अपने को अभिव्यक्त किया था। इस युग में कुछ अष्टयाम भी लिखे गये थे, जिनमें शृंगार भावना से ओत-प्रोत नायक की एक दिन के विभिन्न यामों की विलास-क्रीड़ा के विवरण हैं। इस शृंगारिक साहित्य के पीछे, संस्कृत के शृंगारिक ग्रन्थों, विशेष रूप से भर्तृहरि के 'शृंगार शतक' तथा वात्सायन के 'कामसूत्र' की प्रेरणा, देखी जा सकती है। हिन्दी के इस शृंगारिक साहित्य में एक नवीनता भी है : कवियों ने सामान्यतः विभिन्न प्रकार की शृंगारिक चेष्टाओं के वर्णन के लिये, राधा तथा कृष्ण के स्नेह सम्बन्ध को माध्यम बनाया है।

इस युग की कुछ रचनाए, जैसे केशवदास का 'वीर सिंह देव चरित्', सूदन का 'सुजान चरित्,' पद्माकर की 'हिम्मत बहादुर विरुदावली', गोरेलाल का 'छत्र प्रकाश आदि चारण काव्यों की परम्परा में लिखित प्रतीत होती हैं। इस प्रकार की रचनाओं की संख्या बहुत थोड़ी है, और यद्यपि उनमें से कुछ, जैसे 'छत्र प्रकाश' सामयिक इतिहास को बड़ी वास्तविकता के साथ प्रस्तुत करती हैं, तथापि अधिकांश रचनाएँ अतिरञ्जना तथा अतिशयोक्ति की भावना से अनुप्राणित हैं। इस युग में कुछ नीति सम्बन्धी रचनाएँ भी लिखी गई थीं, जिनमें रहीम के नीति परक दोहे, गिरिधर राय की कुण्डलियां और वृन्द के दोहे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस काल की भाषा में भी कलात्मकता के प्रदर्शन की वृत्ति है। यद्यपि कवियों ने ग्रामीण शब्दों के साथ, संस्कृत और फारसी शब्दों का, बड़ी स्वतंत्रता के साथ उपयोग किया है, तथापि इस युग की काव्य-भाषा की कुछ निश्चित सीमाएँ हैं। कवियों ने नायक अथवा नायिका की आंखों का वर्णन करते हुए, उन्हें मृग, कमल

मीन, खञ्जन या चकोर के समान बताया है। मुख की उपमा उन्होंने चन्द्रमा या कमल अथवा दर्पण से दी है। इसी प्रकार विभिन्न वर्णनीयों के लिए, उस युग में, कवियों द्वारा निश्चित उपमानों का प्रयोग किया गया है। अभिव्यञ्जना की यह प्रणाली, पूर्णतः, उस काव्य-परिपाटी के अनुरूप थी, जो संस्कृत कवियों की परम्परा से चली आ रही थी। उस युग के काव्य-रूपों, छन्दों की संख्या भी सीमित थी; अधिकांश कवियों ने दोहा, कवित्त, तथा सवैय्या ही लिखे थे।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य का यह ऐतिहासिक अनुशीलन, अपूर्ण ही रह जायगा, यदि समय समय पर किये गये गद्य के प्रयोगों को छोड़ दिया जाय। अंग्रेजी प्रभाव के बाद हिन्दी में, विशेष रूप से गद्य साहित्य का विकास हुआ है, इसलिए यदि हम उसके पूर्व होने वाले गद्य के प्रयोगों को छोड़ दें, तो हो सकता है, हमारे निर्णय सही न हों। हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास में, गद्य का प्रयोग, हमें सर्व प्रथम, नाथपन्थी योगियों द्वारा मिलता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने, सामान्यतः अपनी रचनाओं में, नाथपन्थी लेखकों की कृतियों से गद्य का जो उद्धरण प्रस्तुत किया है, वह वार्त्तालाप के रूप में है, और आध्यात्मिक ज्ञान का विश्लेषण करता है। उसके अनन्तर मिथिला के ज्योतिरीश्वर ठाकुर की गद्य रचनाएँ आती हैं, जिनमें काव्य का भावात्मक सौन्दर्य है। यह गद्य मैथिली भाषा में है। राजस्थानी में, गद्य का प्रयोग हमें ख्यातों में मिलता है, जिनमें विभिन्न राजवंशों के इतिहास का वर्णन है। ब्रज भाषा में गद्य रचनाएँ सर्व प्रथम वल्लभ सम्प्रदाय द्वारा प्रस्तुत की गई। इस सम्प्रदाय का सर्व प्रथम गद्य ग्रंथ, विट्ठलनाथ का 'शृंगार रस मन्डन' है, जिसमें शृंगार भावना का भक्ति की दृष्टि से विवेचन है। इस सम्प्रदाय की अन्य गद्य रचनाएँ, यद्यपि उनकी प्रामाणिकता के विषय में सन्देह है, 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' तथा 'दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता' हैं। इन दोनों ग्रन्थों में पुष्टिमार्ग के भक्तों की छोटी-छोटी जीवन-कथायें दी हुई हैं। ब्रज भाषा गद्य की अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ नाभादास कृत 'अष्टयाम', बैकुण्ठमणि शुक्ल कृत 'अगहन माहात्म्य' तथा 'वैशाख माहात्म्य'; सुरति मिश्र कृत 'आइने अकबरी की भाषा वचनिका' आदि हैं। खड़ी बोली का प्रथम गद्य-ग्रन्थ गंग कवि का 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' माना जाता है :

इन विभिन्न रचनाओं में, गद्य का रूप मिथिला के ज्योतिरीश्वर ठाकुर की रचनाओं को छोड़ कर, अत्यन्त शिथिल तथा अव्यवस्थित है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर की गद्य रचना का एक उद्धरण आगे प्रस्तुत किया जाता है।

अंधकारक ललित वर्णन

वर्णन पाताल अइसन दुः प्रवेश, स्त्रीक चरित्र अइसन दुर्लक्ष्य,

कालिन्दिक कल्लोल अइसन मांसल, काजरक पर्वत अइसन निविड,..... आतंकक नगर अइसन भयानक, कुम्भव अइसन निफल, अज्ञान अइसन सम्मोहक, मन अइसन सर्वतोगामी, अहंकार अइसन उन्मत्त, परद्रोह अइसन अभव्य, पाप अइसन मलिन एवं विधि अति व्यापक दुःसंचर, दृष्टि बन्धक, भयानक गम्भीर, शुचि भेद अंधकार देषु।''[१]

इन पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य बड़ा सम्मोहक है। सन् १७९१ में लिखित रामप्रसाद निरञ्जनी के 'भाषा योगवाशिष्ठ' की निम्नलिखित पंक्तियों में भी, हिन्दी गद्य का रूप हमें बहुत व्यवस्थित और परिमार्जित मिलता है :

"हे राम जी ! जो पुरुष अभिमानी नहीं है वह शरीर के इष्ट अनिष्ट में रागद्वेष नहीं करता क्योंकि उसकी शुद्ध वासना है।.....मलीन वासना जन्मों का कारण है। ऐसी वासना को छोड़ कर जब तुम स्थित होगे, तब तुम कर्त्ता हुए भी निर्लेप होगे। और हर्ष शोक आदि विकारों से जब तुम अलग रहोगे, तब वीतराग, भयक्रोध से रहित, रहोगे। जिसने आत्मतत्व पाया है वह जैसे स्थित है वैसे ही तुम भी स्थित हो। इसी दृष्टि को पाकर आत्म तत्व को देखो तब विगत ज्वर होगे और आत्म पद को पाकर फिर जन्म मरण के बन्धन में न आओगे।''[२]

इस अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी प्रभाव के आगमन के पूर्व ही हिन्दी में गद्य के विभिन्न रूपों का जन्म हो चुका था। यद्यपि उनके विकास की गति बहुत मन्द रही थी और कभी कभी तो उसमें व्याघात भी पड़ गया था, फिर भी कई साहित्यिक रूपों, आध्यात्मिक विश्लेषण, इतिहास, जीवन-वृत, काव्य-शास्त्रीय निरूपण आदि में उसका प्रयोग हो चुका था।

२— इस विकास में योग देने वाले विभिन्न प्रभाव

अंग्रेजी प्रभाव के आगमन के पूर्व, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास का जो अध्ययन हमने अभी समाप्त किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विकास में, अपभ्रंश, संस्कृत तथा फारसी भाषाओं तथा साहित्यों के प्रभाव ने विशेष योग दिया था। इन विभिन्न प्रभावों का अनुशीलन, अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी भाषा तथा साहित्य की विशेषताओं तथा सीमाओं के विश्लेषण में, सहायक होगा। साथ ही इस अध्ययन की समाप्ति पर, अंग्रेजी प्रभाव के वास्तविक मूल्य का निर्धारण करते हुए, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर कार्य करने वाले विभिन्न प्रभावों

१—डॉक्टर जयकांत मिश्र के 'हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिट्रेचर', प्रथम भाग, पृष्ठ १२५ से उद्धृत।

२—रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', (१९४२), पृष्ठ ४११।

के तुलनात्मक अध्ययन में भी सुविधा रहेगी। इन विभिन्न प्रभावों में, अपभ्रंश भाषा तथा साहित्य के प्रभाव ने, सर्व प्रथम कार्य किया था, इसलिए प्रारम्भ में उसी का अध्ययन उपस्थित किया जा रहा है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य के सम्बन्ध में, जो नवीनतम खोजें हुई हैं, उनसे प्रमाणित हो चुका है, कि हिन्दी का विकास अपभ्रंश से हुआ है। हिन्दी भाषा के विकास के पूर्व, विभिन्न अपभ्रंश भाषाएं सामाजिक व्यवहार मे प्रयोग में आती थीं; और कुछ समय बाद, साहित्य में भी उनका उपयोग होने लगा था। अपभ्रंश साहित्य, जहाँ तक हिन्दी से उसका सम्बन्ध है, दो भाषाओं में, प्राप्त होता है, अर्धमागधी और शौरसेनी। अर्धमागधी का प्रयोग बौद्ध-सिद्धों ने अपनी रचनाओं में किया था, और शौरसैनी का जैन श्रावकों, आचार्यों तथा कवियों ने। बौद्ध-सिद्धों सरहपा सबरपा, लुइपा आदि की रचनाएं, दोहा तथा गीतियों के रूपों में है, और उनके विषय, जीवन की रहस्यात्मकता के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना, तथा सहज जीवन यापन की वृत्ति जागरूक करना है। उनमें एक वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का संदेश भी है। जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य की अपेक्षा अधिक विस्तृत है; और उसमें हमे दोहा, चौपाई, कवित्त आदि बहुत से छन्दों का प्रयोग मिलता है। जैन कवियों की रचनाओं में शृंगार, वीर, तथा शान्त रसों की अभिव्यक्ति विशेष रूप से हुई है। उनमें वीर आख्यानों, प्रेम कथाओं तथा नैतिक प्रसंगों का उपयोग किया गया है। प्रमुख कवि चतुर्मुख, स्वयंभू, हेमचन्द्र, पुष्पदत्त, सोमप्रभु सूरि आदि हैं। इन कवियों की प्रतिनिधि रचनाएँ, जहां तक हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध है रामायण', 'महापुराण', 'नागकुमार चरित', 'यशोधर चरित', 'कुमारपाल प्रतिबोध' आदि हैं। पुष्पदत्त ने अपने 'महापुराण' में, ६३ जैन श्रावकों के जीवन-चरित्रों का वर्णन किया है, और उसके 'हरिवंश' खण्ड में कृष्ण के प्रारम्भिक जीवन तथा उनकी यौवन क्रीड़ाओं के वर्णन हैं। शेष रचनाओं के विषय स्वयं ही स्पष्ट हैं।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अपभ्रंश प्रभाव तीन रूपों में मिलता है (१) भाषा, (२) छन्द-विधान तथा (३) वस्तु-विन्यास।

(१) हिन्दी भाषा का विकास, अर्धमागधी तथा शौरसैनी अपभ्रंशों से माना जाता है। अपभ्रंश भाषा अपने इन दोनों ही रूपों में, अधिकांश में, संयोगावस्था में थी, यद्यपि वियोगावस्था की प्रवृत्ति भी प्रारम्भ हो गयी थी, जो आगे चल कर हिन्दी में विशेष रूप से विकसित हुई। अपभ्रंश के अर्धमागधी रूप का प्रभाव नाथ-पन्थी योगियों की रचनाओं में है, क्योंकि ये कवि बौद्ध-सिद्धों की परम्परा में आते हैं। शौरसैनी अपभ्रंश का प्रभाव चारण कवियों की रचनाओं मे है। हिन्दी भाषा

का अधिकांश शब्द-समूह, विशेष रूप से वे शब्द जिन्हें हम तद्भव कहते हैं, अपभ्रंश से ही आये हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हिन्दी भाषा ने, अपनी प्रारम्भिक अवस्था में, अपभ्रंश प्रभाव को व्यापक रूप में ग्रहण किया था। इस प्रभाव के चिह्न अभी तक विद्यमान हैं।

(२) हिन्दी के छन्द-विन्यास पर भी, पर्याप्त अपभ्रंश प्रभाव है। हिन्दी के अधिकांश छन्द, अपभ्रंश साहित्य से ही ग्रहण किये गये हैं। बौद्ध-सिद्धों की रचनाएं, जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, दोहा तथा गीतियों के रूपों में हैं। कबीर आदि संत कवियों ने उन्हें, इन्हीं की परम्परा से ग्रहण किया था। सूफी कवियों तथा तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त, दोहा, चौपाई छन्द अपभ्रंश के कवियों स्वयंभू तथा पुष्पदन्त की रचनाओं में प्राप्त होते हैं। हिन्दी के कवियों ने इन्हें जैन कवियों की परम्परा से ही प्राप्त किया होगा। रीतियुग के कवियों द्वारा, विशेष रूप से व्यवहार में लाये जाने वाले, कवित्त और सवैय्या छन्द भी शौरसैनी अपभ्रंश की रचनाओं में मिलते हैं। इस प्रकार केशवदास की 'राम चन्द्रिका' में प्रयुक्त विभिन्न छन्दों को छोड़ कर, जिनमें प्रयोग की भावना परिव्याप्त है, हिन्दी के अधिकांश छन्द अपभ्रंश से ही ग्रहण किये गये हैं।

(३) अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी कवियों की रचनाओं में हमें जिन विषयों का उपयोग देखने को मिलता है, अपभ्रंश साहित्य में वे पहले ही उपयोग में लाये जा चुके थे। कबीर, दादू तथा अन्य सन्त कवियों की रचनाओं में, सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन का जो सन्देश है, वह वास्तव में, बौद्ध-सिद्धों ने इस सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, उसी की प्रतिध्वनि है। राजस्थान की डिंगल भाषा में लिखे जाने वाले चारण काव्य, जिनमें आश्रयदाताओं तथा संरक्षकों के साहसिक कार्यों तथा प्रेमाख्यानों के वर्णन हैं, हेमचन्द्र के 'विजयपाल रासो' की परम्परा में लिखित कहे जा सकते हैं। सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक काव्य भी कुछ अपभ्रंश रचनाओं—'जसहर' चरिउ, 'सुग्दर-चरिउ' आदि की परम्परा में ही आते हैं। नवीनतम खोजों ने यह भी प्रमाणित कर दिया है, कि कृष्ण और राम-काव्य, जो अब तक, सीधे सँस्कृत साहित्य से आये हुए समझे जाते थे, अपभ्रंश साहित्य से ही होकर आये हैं। उत्तर-भक्तिकाल तथा रीतियुग में लिखी जाने वाली नीति सम्बन्धी रचनाएं भी अपभ्रंश साहित्य की ही परम्परा में हैं।

समय के अनुक्रम में, अपभ्रंश प्रभाव के अनन्तर, संस्कृत प्रभाव आता है। संस्कृत ने केवल हिन्दी ही नहीं, वरन् अधिकाँश आधुनिक भारतीय भाषाओं को प्रभावित किया है। यही कारण है कि संस्कृत के बहुत से शब्द, इन सभी भाषाओं में

प्राप्त होते हैं। संस्कृत का प्रभाव इन भाषाओं के साहित्यों पर भी है। संस्कृत साहित्य का प्रारम्भ वेदों से है। उनके अनन्तर उपनिषद्, ब्राह्मण, महाकाव्य, पुराण, प्रबन्ध काव्य, नाटक, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र और गद्य की कथात्मक रचनाएं आती है। इनमें हिन्दी साहित्य की दृष्टि से सब से अधिक महत्वपूर्ण, दो महाकाव्य 'रामायण' और 'महाभारत', दो पुराण 'हरिवंश' और 'भागवत', और भामह, दण्डिन वामन, विश्वनाथ, मम्मट आदि के काव्यशास्त्र के ग्रन्थ हैं। अन्य साहित्यकार, जिन्होंने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है, कालिदास, भवभूति तथा बाणभट्ट हैं। संस्कृत की दो नाटकीय रचनाएँ 'प्रसन्न राघव' तथा 'हनुमन् नाटक' भी हिन्दी साहित्य पर अपना प्रभाव छोड़ गयी हैं। जयदेव के 'गीत गोविन्द' का भी, हिन्दी के कृष्ण साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव है। संस्कृत कवियों ने वर्णिक छन्दों का ही प्रयोग किया है, केवल जयदेव ने ही पद लिखे थे। बाणभट्ट की गद्य रचनाओं में हमें काव्य का कलात्मक सौन्दर्य मुग्ध करता है, उनके वाक्यों का विस्तार बहुत अधिक है।

हिन्दी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव, बड़ा स्पष्ट और व्यापक है। उन शब्दों को छोड़कर, जो अरबी, फारसी, आदि बाहरी भाषाओं से ग्रहण किये गये हैं अथवा ग्रामीण भाषाओं से आये हैं, हिन्दी का शेष शब्द-समूह, सीधे अथवा घूम फिर कर संस्कृत से ही आया है। संस्कृत से सीधे लिये गये शब्द वे हैं, जिन्हें हम तत्सम कहते हैं। तद्भव रूप भी संस्कृत से ही आये हैं, किन्तु प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में होकर आने के कारण, उनमें ध्वनि-विकार हो गये हैं। हिन्दी साहित्य के विकास में कृष्ण-काव्य के युग से, संस्कृत शब्दों को सीधे ग्रहण करने की वृत्ति प्रारम्भ हुई थी, राम-काव्य के साथ वह और अधिक विकसित हुई, और रीतियुग के कवियों—केशव, मतिराम, पद्माकर आदि ने तो उसे अंतिम शिखर तक पहुंचा दिया। हिन्दी काव्य-शास्त्र तथा नायक-नायिका-भेद के ग्रन्थों के पारिभाषिक शब्द तो, सीधे संस्कृत से ही ग्रहण किये गये हैं।

(२) सस्कृत के छन्द-विन्यास ने, आधुनिक काल के पूर्व, हिन्दी कवियों को विशेष आकर्षित नहीं किया था, फिर भी केशव तथा उनकी विचारधारा के अन्य कवियों ने, संस्कृत छन्दों का उपयोग किया है। तुलसीदास ने भी, संस्कृत के वर्णिक छन्दों में से अनुष्टुप, मालिनी, तोटक, भुजंग-प्रयात्, वसन्त-तिलका आदि का उपयोग किया है।

(३) हिन्दी साहित्य पर भी संस्कृत प्रभाव कृष्ण-काव्य से ही प्रारम्भ होता है। मध्य युग में, मुसलमानी आक्रमणों तथा उनके साम्राज्य की स्थापना के कारण, भारतीय जन समुदाय में, एक आत्मरक्षा की भावना उत्पन्न हो गयी थी। इसी

भावना ने, संस्कृत प्रभाव को भी जन्म दिया तथा व्यापक बनाया था। हिन्दी का कृष्ण-काव्य वस्तुतः 'श्रीमद्भागवत' पर आधारित है। यही वल्लभ सम्प्रदाय का मान्य ग्रंथ था और इसी सम्प्रदाय के कवियों द्वारा लिखित ग्रन्थों पर इसका प्रभाव विशेष रूप से है। वल्लभ सम्प्रदाय के सबसे महत्वपूर्ण कवि, सूरदास जी ने अपने 'सूरसागर' की रूप रेखा, 'श्रीमद्भागवत' जैसी ही रक्खी है। उसका वस्तु-विन्यास भी, इस ग्रन्थ से प्रभावित है, किन्तु उन्होंने उसे युग की भावना से अनुप्राणित कर दिया है। जिस प्रकार 'श्रीमद्भागवत' में भगवान के दशावतारों की कथा है, उसी प्रकार, वह 'सूरसागर' में भी है; किन्तु सूर के ग्रंथ में कृष्ण लीला को विशेष महत्व तथा विस्तार दिया गया है। कृष्ण चरित्र के वर्णन में भी सूरदास जी ने, उनके बाल्य-काल तथा युवावस्था में राधा तथा गोपियों के साथ उनके प्रणय सम्बन्ध पर विशेष बल दिया है। 'श्रीमद्भागवत' के कृष्ण चरित्र में, लोकोत्तरता की भावना परि-व्याप्त है। सूरदास जी ने उसी कथा-सूत्र को बड़े स्वाभाविक वातावरण में उपस्थित किया है। उन्होंने कृष्ण चरित्र को, लीला गान की भावना से, गेय पदों में प्रस्तुत किया है। 'श्रीमद्भागवत' एक पौराणिक आख्यान है, इसलिये वह वर्णनात्मक छंदों में है। सूरदास के बाद, वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में. नन्ददास, का नाम आता है। उनकी रचना 'रास पञ्चाध्यायी' पर 'श्रीमद्भागवत' का प्रभाव स्पष्ट है। अनेक स्थलों पर तो उन्होंने 'भागवत' का अनुवाद ही कर दिया है; किन्तु अपनी दूसरी रचना, 'भंवर गीत' में उन्होंने, युग की भावना को अभिव्यक्त किया है। 'भागवत' में गोपियों ने उद्धव के साथ तर्क-वितर्क करने के अनन्तर, निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना को स्वीकार कर लिया है; किन्तु हिन्दी कृष्ण-काव्य में गोपियों ने उद्धव के तर्कों को छिन्न-भिन्न करके, कृष्ण के मानवीय चरित्र के प्रति, अपनी आस्था बनाये रक्खी है। अन्य संस्कृत ग्रंथ, जिन्होंने हिन्दी कृष्ण-काव्य को प्रभावित किया है, 'देवी भागवत' और 'हरिवंश' हैं। राधा का चरित्र हिन्दी कवियों ने 'देवी भागवत', से लिया है।

राम-काव्य में, तुलसीदास जी के 'राम चरित मानस' पर, 'वाल्मीकीय रामायण', 'अध्यात्म रामायण', 'प्रसन्न राघव', 'हनुमन-नाटक' आदि संस्कृत ग्रंथों का प्रभाव है। 'विनय पत्रिका' के कुछ पदों में, संस्कृत स्तोत्रों की प्रणाली का अनुसरण किया गया है।

रीतियुग के साहित्य पर संस्कृत प्रभाव का अध्ययन, पहले ही किया जा चुका है; इस स्थल पर इतना कह देना ही पर्याप्त होगा, कि उस युग के कवियों ने काव्य-भाषा तथा विषय-वस्तु दोनों ही दृष्टियों से, संस्कृत साहित्य की परम्परा का ही अनुसरण

किया था।

फारसी प्रभाव ने जिसे इस्लामी प्रभाव कहना अधिक उपयुक्त होगा, विद्वानों का ध्यान, अपनी ओर अधिक आकर्षित किया है। मध्ययुग में उत्तर भारत में मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया था; इसलिये फारसी भाषा तथा साहित्य का प्रभाव उस युग की, उत्तर भारत की, सभी भाषाओं पर है। हिन्दी प्रदेश, सब से अधिक, मुसलमान शासकों का कार्य-क्षेत्र रहा था, इसीलिए, इस प्रदेश के साहित्य पर इस्लाम का प्रभाव विशेष स्पष्ट और व्यापक है। फारसी साहित्य के मसनवी लेखकों में सानाई, निजामी, फरीदुद्दीन अत्तार, जलालुद्दीन रूमी, शेखसादी, जामी, फिरदौसी आदि ने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है। इन कवियों की रचनाएँ, जिन्होंने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है—'लैला मजनू', 'यूसुफ जुलेखा' आदि प्रेमाख्यानक काव्य हैं। ये सभी सूफी धर्म के प्रमुख तत्वों को स्पष्ट करने के लिए लिखे गये, रूपक की भावना से अनुप्राणित काव्य हैं। ये रचनाएं मसनवी छन्द में हैं, इसी आधार पर इन को भी मसनवी कहा गया है।

(१) हिन्दी भाषा पर फारसी का प्रभाव बहुत व्यापक है। मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना के साथ ही, फारसी को राजभाषा का महत्व प्राप्त हो गया था। इसी कारण जनसाधारण में भी उसके बहुत से शब्द प्रचलित हो गये थे। हिन्दी के मध्य युग के कवियों ने, वे चाहे किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे हों, अथवा किसी राजदरबार से, अरबी, फारसी के प्रचलित शब्दों का उन्होंने बड़ी स्वतन्त्रता के साथ प्रयोग किया है। कबीर, दादू आदि संत कवियों की रचनाओं में, सूफी धर्म के कुछ विशिष्ट शब्द भी देखने को मिलते हैं। सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक काव्यों में तो उनका प्रयोग और भी अधिक है। हिन्दी भाषा ने फारसी प्रभाव से कुछ नई ध्वनियाँ भी ग्रहण की हैं। फारसी से ग्रहण किये गये मुहावरों अथवा प्रयोगों की संख्या भी बहुत अधिक है।

संस्कृत की भांति, फारसी छन्द-विन्यास ने भी, हिन्दी को विशेष प्रभावित नहीं किया है। प्रारम्भिक युग में, अमीर खुसरो तथा कबीर ने, कुछ गजलें अवश्य लिखी थीं; किन्तु उनके बाद, अन्य किसी कवि ने इस काव्य-रूप का प्रयोग नहीं किया। केवल आधुनिक काल में आकर ही, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 'प्रेमघन' आदि ने फिर इस काव्य-शैली को ग्रहण किया। हिन्दी के सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक काव्यों में, जिस मसनवी शैली के उपयोग की बात कही जाती है, उनमें भी, छन्द-विन्यास हिन्दी का ही है, केवल कथा का विकास-क्रम फारसी मसनवियों की भांति है। हिन्दी के सूफी कवियों के कथा-काव्य, दोहा, चौपाई छन्दों में हैं, जो शौरसैनी

अपभ्रंश में लिखित जैनाचार्यों की रचनाओं से लिए गये थे।

(३) हिन्दी साहित्य पर फारसी प्रभाव, सूफी विचारधारा के रूप में आया है। उन विद्वानों का, जिन्होंने इस विषय पर विशेष रूप से कार्य किया है, मत है, कि यह दो धाराओं में होकर आया था। प्रथम धारा उन मुसलमानों के साथ आयी थी जो कि व्यापार और वाणिज्य के लिए अपना देश छोड़ कर दक्षिण भारत में आकर बस गये थे। इस प्रकार की बस्तियां सातवीं शताब्दी के लगभग प्रारम्भ हुई थीं, और उसके बहुत समय बाद तक चलती रहीं। इस युग में सूफी विचारधारा का प्रभाव, सूफी साहित्य के अध्ययन से नहीं, वरन् सूफी संतों के सम्पर्क और उपदेश, तथा उनके साधारण और पवित्र जीवन के अवलोकन से आया था। उनके उपदेश के प्रमुख तत्व एकेश्वरवाद, आध्यात्मिक साधना, भगवान के प्रति आत्म-समर्पण, तथा गुरू के प्रति आदर और श्रद्धा थे। साथ ही उन्होंने अपने उपदेशों से, वर्ण-भेद अथवा जातिभेद से प्रेरित असमानता की उपेक्षा, तथा धार्मिक कर्म-काण्ड के प्रति अविश्वास की भावना का प्रचार किया था। दक्षिण के आडवर संतों की रचनाओं में ये सभी तत्व मिलते हैं। दक्षिण से भक्ति भावना का प्रसार जब उत्तर की ओर हुआ तो ये सभी तत्व उत्तर भारत के साहित्य में कबीर आदि सन्त कवियों की रचनाओं में, दिखाई देने लगे। इस स्थल पर यह उल्लेख भी आवश्यक है, कि जहाँ तक सामाजिक व्यवस्था को बदलने, तथा जाति-भेद, वर्ण-भेद आदि से उत्पन्न असमानताओं को दूर करने की प्रवृत्ति है, संत कवियों ने इसे दक्षिण के इस्लामी प्रभाव से अधिक उत्तर के ही बौद्ध-सिद्धों तथा नाथपन्थी कवियों से ग्रहण किया था।

सूफी प्रभाव की द्वितीय धारा उत्तर भारत में मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना के साथ आयी थी; जब हम कबीर, दादू, रैदास आदि को सूफी धर्म के विशिष्ट शब्दों का प्रयोग प्रचुर संख्या में करते हुए पाते हैं। 'लैला मजनू', 'यूसुफ जुलेखा' आदि फारसी मसनवियाँ, जो लौकिक प्रेम के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की भावना को स्पष्ट करने के लिए लिखी गयी थी, काल्पनिक कथासूत्रों को लेकर चलती हैं, और उनका मूल उद्देश्य सूफी विचारधारा का प्रचार है। हिन्दी के सूफी कवियों ने भी, फारसी पद्धति का निकट से अनुसरण किया है; किन्तु उनकी सभी कथाएं काल्पनिक नहीं है। कुछ प्रेमाख्यानों, जैसे जायसी की 'पदुमावति' में रतन सिंह, अलाउद्दीन खिलजी आदि ऐतिहासिक व्यक्ति भी आये हैं। अभिव्यञ्जना की प्रणाली में भी कुछ नवीनता है। हिन्दी के कवियों ने, लौकिक प्रेम का, इतनी सूक्ष्मता तथा रंगीनी के साथ वर्णन किया है, कि आध्यात्मिक प्रेम के वर्णन का मूल उद्देश्य, कहीं-कहीं खो-सा गया है।

इस्लामी प्रभाव का कुछ प्रतिगामी रूप भी रहा है। ललित कलाओं के सम्बन्ध में इस्लाम का धार्मिक दृष्टिकोण बहुत संकुचित है; और यद्यपि अबुल फजल ने लिखा है, कि अकबर के राज्यकाल में, उसमें कुछ उदारता आ गई थी, तथापि संस्कृत की नाटकीय परम्परा हिन्दी में जागरूक नहीं हो सकी। इस्लामी प्रभाव का एक और प्रतिक्रियावादी पक्ष था। मुसलमान भारत में एक पिछड़ी हुई सामाजिक व्यवस्था को लेकर आये थे; उनकी विजय से भारतीय समाज का विकास अवरूद्ध हो गया था; तथा जनसाधारण में एक आत्म-रक्षा की भावना उत्पन्न हो गयी थी। इसीलिए हम मध्य युग में, हिन्दी के कवियों को, नवीन क्षेत्रों की ओर बढ़ते तथा नवीन प्रवृत्तियों को ग्रहण करते हुए न पाकर, पुरातन की पुनः स्थापना करते हुए देखते हैं; क्योंकि वह अपनी समस्त महानताओं तथा विभूतियों के साथ समाप्त होता जा रहा था।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य की प्रमुख विशेषतायें

इन विभिन्न प्रभावों के अध्ययन से, सामान्य धारणा यह होती है, कि हिन्दी भाषा का अधिकांश शब्द-समूह अन्य भाषाओं से लिया गया है; तथा हिन्दी साहित्य का भी बहुत कुछ, अपभ्रंश, संस्कृत, तथा फारसी साहित्यों से ग्रहीत है। किन्तु यह वास्तविकता नहीं है। इस अध्ययन से केवल इतना स्पष्ट होता है कि हिन्दी भाषा और साहित्य में बड़ी ग्रहणशीलता रही है। हिन्दी भाषा तथा साहित्य ने, जो कुछ भी इन प्रभावों से ग्रहण किया है, उसे बिल्कुल नया रूप देकर तथा अपना बना कर प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हिन्दी ने जो कुछ भी अन्य भाषाओं तथा उनके साहित्यों से लिया है, उसने अपना पुराना विन्यास छोड़ दिया है तथा हिन्दी का अपना स्वाभाविक रूप तथा उसकी प्रकृति ग्रहण कर ली है।

अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी भाषा तथा साहित्य की सब से प्रमुख विशेषता, उनका धर्म भावना से अनुप्राणित होना है। हिन्दी भाषा में यह विशेषता, विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों से सम्बन्धित, शब्दों के बाहुल्य में देखी जा सकती है। साहित्य में धार्मिक भावना का प्राधान्य स्वयं ही स्पष्ट है। उसका सम्पूर्ण विकास बहुत काल तक किसी न किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहा; इसीलिए तो कबीर ने नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का संदेश धार्मिकों की शैली में दिया था। जायसी, सूरदास तथा तुलसीदास की रचनाओं में धार्मिकता की भावना स्पष्ट देखी जा सकती है। रीतियुग के कवियों—बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर आदि की रचनाओं में भी धार्मिकता की भावना है। यद्यपि इनकी रचनाओं में, शृँगारिक भावनाओं का प्राधान्य है, तथापि इस भावना को उन्होंने राधाकृष्ण के स्नेह सम्बन्ध के माध्यम से

प्रकट किया है। रीतियुग के एक कवि भिखारीदास ने तो स्पष्ट लिखा है—आज के सुकवि बूझिहैं तो कविताई, न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।'

हिन्दी भाषा तथा साहित्य की दूसरी प्रमुख विशेषता उनमें शास्त्रीय प्रवृत्तियों का निरन्तर परिव्याप्त रहना है। हिन्दी भाषा के शब्द-समूह में, शास्त्रीय भाषा, संस्कृत के शब्द, बहुत अधिक संख्या में हैं; धर्म तथा काव्य-शास्त्र से सम्बन्धित उसके बहुत से पारिभाषिक शब्द संस्कृत से ही ग्रहण किये गये हैं। साहित्य में भी हम शास्त्रीय मानदण्डों, वस्तु-विन्यास तथा रूप-विधान का अनुसरण देखते हैं। सूरदास, नन्ददास तथा तुलसीदास आदि भक्त कवियों की रचनाओं में, शास्त्रीय प्रवृत्तियां स्पष्ट हैं। सूफी कवियों की रचनाओं पर भी संस्कृत के शास्त्रीय साहित्य का प्रभाव है। शास्त्रीय तत्व, उनकी अभिव्यञ्जना प्रणाली तथा वस्तु-कल्पना में भी दिखाई देते हैं। जायसी की 'पदुमावति' में, हीरामन सुआ की अवतारणा, संस्कृत साहित्य के मेघदूत अथवा हंसदूत के अनुरूप है; किन्तु कथा-सूत्र में उसे जिस प्रकार का स्थान दिया गया है, उसमें फारस के सूफी कवियों की रूपकात्मक शैली का अनुसरण है। रीतियुग के कवियों पर शास्त्रीय प्रभाव सब से अधिक है। यह पहले ही कहा जा चुका है, कि इस युग के काव्यशास्त्र की रूपरेखा के ग्रंथ, संस्कृत के इसी प्रकार के ग्रंथों के अनुकरण में लिखे गये हैं। यही कारण है कि इस युग के राज्याश्रय में पोषित होने वाले कवियों की भाषा, वस्तु-विन्यास और अभिव्यञ्जना प्रणाली, सभी संस्कृत साहित्य की परम्परा से ग्रहित है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य की तीसरी प्रमुख विशेषता, उनका विशेष ग्रहणशील होना है। भारतीय संस्कृति, समन्वयवादी है, इसीलिये उसने नवीनताओं को, जहां कहीं से भी वे आयी हों, बड़ी सरलता से ग्रहण कर लिया है। हिन्दी भाषा तथा साहित्य ने अपनी ग्रहणशीलता में, भारतीय संस्कृति की इस ग्रहणशीलता को ही प्रकट किया है। हिन्दी भाषा तथा साहित्य, अपनी इसी ग्रहणशीलता के कारण, अपने क्षेत्र मे अन्य भाषाओं के राजभाषा होते हुए भी, अपने को रक्षित रख सके, तथा विकास की ओर अग्रसर हो सके। सामाजिक प्रगति, जो साहित्यिक विकास की मूल-भूत प्रेरणा है, उन दिनों बिल्कुल हो नहीं थी, जब हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास हो रहा था, यह प्रगति ग्रहणशीलता के कारण ही सम्भव हुई।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य की कुछ अन्य विशेषताओं का उल्लेख भी यहाँ किया जा सकता है। उन्होंने अधिकांश में काव्य-रूपों में ही अभिव्यक्ति पाई है; तथा उनमें भी वस्तुगत वर्णन की ही प्रधानता रही है। किन्तु इन्हें, तथा इसी प्रकार की कुछ अन्य प्रवृत्तियों को, विशेषताएं न मान कर, सीमाएँ कहना अधिक उपयुक्त होगा।

सीमाएं

अब तक के अध्ययन से हिन्दी भाषा तथा साहित्य की सीमाएँ स्वयं ही स्पष्ट हो जाती हैं। हिन्दी भाषा ने अपने को धार्मिक साहित्य, काव्य-शास्त्र के ग्रंथों, साहसिकता तथा प्रेम के कथानकों तक ही सीमित रक्खा था; इसी कारण तो उसके शब्द-समूह का विशेष विकास नहीं हो सका। उसने अभी तक जीवन के विभिन्न पक्षों को अभिव्यक्त करने की शक्ति नहीं प्राप्त कर पायी थी। गद्य रचनाओं की भाषा तो बहुत शिथिल थी। और यह सब इसलिए था, क्योंकि व्याकरण के नियम अभी तक नहीं खोजे गए थे; विराम-चिह्न नहीं निश्चित हुए थे, तथा अनुच्छेदों के निर्माण की व्यवस्था नहीं समझी गई थी। हिन्दी भाषा की इन सीमाओं का प्रमुख कारण यह था, कि हिन्दी साहित्य निरन्तर विकासशील नहीं रहा था और न उसने नये साहित्यिक रूप खोजे थे। इसीलिए हिन्दी साहित्य की भी हमें बहुत सी सीमाएं मिलती हैं। उसमें विभिन्न गद्य-रूपों, विशेष रूप से, नाटकीय रचनाओं का तो अभाव ही था। काव्य रचनाओं में भी, आत्मगत वर्णन अथवा आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति यदा कदा ही मिलती थी। प्रकृति के अनेक रूपात्मक सौन्दर्य के प्रति भी हिन्दी कवियों ने विशेष आकर्षण नहीं अनुभव किया था।

ये सभी सीमाएं इसलिए उत्पन्न हुई थीं, क्योंकि हिन्दी भाषा और साहित्य, अब तक एक 'प्रतिबद्ध समाज' की भावनाओं को अभिव्यक्त करते रहे थे। हिन्दी के कवि, अब तक भविष्य की ओर देखने तथा नये विचारों और भावों को खोजने के स्थान पर, पुरातन की ओर ही देखते, तथा उन्हीं भावों और विचारों को अभिव्यक्त करते रहे थे, जो पहले ही अभिव्यक्त हो चुके थे। यही कारण है कि पतन की प्रवृत्तियां, हिन्दी भाषा तथा साहित्य दोनों में ही शीघ्र ही प्रारम्भ हो गई, जब उन्होंने शृंगारिक भावना तथा मिथ्या प्रशंसा की अभिव्यक्ति तक ही अपने को सीमित कर लिया। जब परिस्थिति बहुत अधिक अंधकाराच्छन हो रही थी, एक प्रबल झन्झावात के समान, अंग्रेजी प्रभाव का आगमन हुआ, और उसका जो कुछ परिणाम हुआ उसका अध्ययन हम आगे के प्रकरणों में उपस्थित कर रहे है।

: ३ :

अंग्रेजी प्रभाव का आगमन

अभी हमने यह अध्ययन किया था कि अंग्रेजों, उनकी भाषा और साहित्य के सम्पर्क के पूर्व, हिन्दी भाषा और साहित्य की क्या विशेषताएं और कौन-कौन सी सीमाएं थीं। इस प्रकरण में हम हिन्दी-प्रदेश में, अंग्रेजी प्रभाव के आगमन का इतिवृत्त प्रस्तुत कर रहे हैं। यह अध्ययन प्रस्तुत कार्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप में है। व्यवस्था के लिये सम्पूर्ण प्रकरण, तीन उपशीर्षकों में विभक्त किया जा रहा है। प्रथम में प्रारम्भिक सम्पर्कों का विवरण होगा, द्वितीय में अंग्रेजी प्रभाव के विकास का अध्ययन, तृतीय में हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना का विवेचन। अन्त में उन प्रमुख स्थानों का उल्लेख होगा, जिन्होंने हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के विकास में मुख्य केन्द्रों का काम किया।

१ सम्पर्क का आरम्भ

हिन्दी प्रदेश में, सर्व प्रथम आने वाले अंग्रेज, जॉन न्यूबरी, रैल्फ फिच, तथा विलियम लीड्स थे। ये तीनों, अपनी तत्कालीन महारानी एलिजाबेथ से, मुगल सम्राट जलालुद्दीन अकबर के नाम, एक परिचय-पत्र लेकर, भारतवर्ष के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए, सन् १५८५ ई० की जुलाई में आगरा पहुंचे थे। कुछ दिनों आगरा ठहर कर ये तीनों फतेहपुर सीकरी चले गये थे, क्योंकि

अकबर अपनी राजसभा की बैठक उन दिनों वहीं किया करता था। २८ सितम्बर तक वे लोग वहां ठहरे, फिर न्यूबरी तो स्थल-मार्ग से यूरोप चला गया; तथा रैल्फ फिच ने अक्तूबर में आगरा छोड़ा और बंगाल की ओर चला गया। विलियम लीड्स को, जो कि एक जौहरी था, मुगल सम्राट ने अपने यहां नौकरी दे दी थी। इसलिये वह फतेहपुर सीकरी में कुछ समय और रुका रहा। इतिहास इन तीनों के सम्बन्ध में और कुछ नहीं बताता, इसलिये यह नहीं कहा जा सकता, कि जिस उद्देश्य को लेकर वे आये थे, उसमें उन्हें सफलता मिली थी अथवा असफलता।

भारतवर्ष के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के वास्तविक प्रयत्न, सन् १६०० ई० में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के बाद प्रारम्भ हुए थे। सन् १६०८ में, कप्तान हॉकिन्स ने, सम्राट जहांगीर के दरबार में उपस्थित होकर, सूरत में अपना एक व्यापारिक-केन्द्र स्थापित करने की अनुमति मांगी। वह जेम्स प्रथम तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि के रूप में आया था। वह लगभग तीन वर्ष आगरे में ठहरा, और इस काल में उसने सम्राट जहांगीर से फरमान प्राप्त कर लिया, किन्तु पुर्तगालियों के कहने पर, कुछ समय बाद जहांगीर ने वह आज्ञापत्र वापस ले लिया।

सन् १६१३ में जहांगीर ने पुनः अंग्रेजों को सूरत में एक स्थायी व्यापारिक-केन्द्र की स्थापना की अनुमति प्रदान की। पुर्तगालियों को यह प्रतीत हुआ कि इससे उनके व्यापार को हानि पहुचेगी, और इसीलिये उन्होंने एक शक्तिशाली जहाजी-बेड़ा लेकर अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया; किन्तु थोड़े समय में ही उनको पराजित होकर लौटना पड़ा। इस सफलता ने, सूरत में अंग्रेजों की स्थिति को और अधिक दृढ़ कर दिया। उन्होंने अपनी स्थिति को, और भी अधिक सुदृढ़ करने के लिए सर टॉमस रो को, जिसने कस्तुनतुनिया में रह कर पूर्व के राजदरबारों का अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया था, अपना प्रतिनिधि बनाकर आगरे भेजा। वह सन् १६१५ के अन्त में आगरा पहुंचा, और सन् १६१८ के अन्त तक, वहां के प्रमुख व्यक्तियों के साथ मित्रता के सम्बन्ध स्थापित करता रहा। यद्यपि उसे आगरा के राजदरबार में, व्यापारिक सन्धि के प्रयास में सफलता नहीं मिली, तथापि उसने शाहजादा खुर्रम से, जो आगे चलकर शाहजहां के नाम से विख्यात हुआ, और उस समय गुजरात में, मुगल बादशाह का प्रतिनिधि था, सूरत में अंग्रेजों के लिए कुछ और अधिकार प्राप्त कर लिए। इस प्रकार सन् १६१८ में अंग्रेजों के व्यापारिक-केन्द्रों का संगठन प्रारम्भ हुआ और अहमदाबाद तथा भड़ौच में व्यापारिक-केन्द्रों की स्थापना के साथ-साथ, आगरा में भी उनका एक व्यापारिक-केन्द्र स्थापित हुआ। सन् १६२० में, पटना में भी, एक

व्यापारिक-केन्द्र की स्थापना का उल्लेख मिलता है। सन् १६३४ में अंग्रेजों ने, मुगल बादशाह के साथ सम्पर्क स्थापित करके, दूसरी फरवरी को एक और फरमान प्राप्त किया, जिसके अनुसार उन्हें बंगाल मे भी व्यापार करने के अधिकार मिल गये। उसी वर्ष पुर्तगालियों को, उनके किसी अशिष्ट व्यवहार के कारण बंगाल प्रदेश से निष्कासित कर दिया गया। सन् १६४० में अंग्रेजों ने हुगली में अपने एक व्यापारिक केन्द्र की स्थापना की, और सन् १६४२ में बारासोल में।

सन् १६४५ में शाहजहां ने एक अंग्रेज चिकित्सक गिब्राइल बाटन से प्राप्त डाक्टरी सहायता के पुरस्कार स्वरूप, अंग्रेजों को कुछ और व्यापारिक अधिकार प्रदान कर दिये। सन् १६४६ में डॉक्टर बाटन ने बंगाल के नवाब की चिकित्सा करके उसे रोग-मुक्त किया। उसके इस उपकार के प्रतिदान स्वरूप नवाब ने हुगली तथा बारासोल के व्यापारिक-केन्द्रों को और अधिक सुदृढ़ करने के लिये, अंग्रेजों को कुछ और अधिक अधिकार दिये। इतिहासकारों ने सन् १६५३ में लखनऊ में अंग्रेजों के एक व्यापारिक-केन्द्र की समाप्ति का उल्लेख किया है; किन्तु कब इस केन्द्र की स्थापना हुई थी, यह अज्ञात है।

सन् १६६१ में इंगलैण्ड के चार्ल्स द्वितीय ने जब पुर्तगाल की राजकुमारी ब्रेगान्ज़ा की कैथरीन के साथ विवाह किया, तो बम्बई का बन्दरगाह अंग्रेजों को दहेज के रूप में मिला। सन् १६६४ में शिवाजी द्वारा सूरत के लूटे जाने के अनन्तर, अंग्रेजों का भाग्य और चमक उठा। उस समय सर जॉर्ज ऑक्सनडेन ने अपने व्यापारिक-केन्द्र की बड़ी वीरता के साथ रक्षा की थी, और मुगल बादशाह औरंगजेब ने उसके इस पराक्रम से प्रसन्न होकर अंग्रेजों को एक वर्ष के लिये व्यापारिक कर से मुक्ति प्रदान कर दी थी। फिर भी सूरत में अंग्रेजों की अवस्था बहुत समय तक सुदृढ़ नहीं रही।

भारत में अंग्रेजों की नीति में इस समय से एक मूलभूत परिवर्तन का क्रम प्रारम्भ होता है। इस सम्बन्ध में, उत्तर स्टुअर्टों के काल में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति सर जोशिया चाइल्ड के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उसका कथन था कि आगे से अंग्रेजों का उद्देश्य 'नागरिक तथा सैनिक शक्ति के लिए एक ऐसी राजनीतिक सत्ता की स्थापना और इन दोनों के लिए विशेष आय का प्रबन्ध···होगा···जो कि सदा के लिए भारतवर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य की सुदृढ़ नींव डाल सके।'[1] इस दिशा में प्रयत्न का प्रारम्भ सन् १६८६ से

१—'दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', पाँचवा भाग, (१९२९), पृ० १०२

हुआ । अंग्रेजों ने कुछ जहाजी बेड़ों से बंगाल तथा पश्चिमी भारत के कुछ बन्दरगाहों पर घेरा डाला । बंगाल में मुगल बादशाह के प्रतिनिधि, शाइस्ता खाँ को तब अंग्रेजों की इस दुर्नीति का समाचार मिला तो उसने अपनी फौज को हुगली की ओर अंग्रेजों को पूर्णतः निकाल देने के लिए भेजा। यद्यपि अंग्रेजों ने बड़ी सफलता के साथ अपने हुगली के व्यापारिक केन्द्र की रक्षा की और नवाब की फौज को वापस कर दिया, फिर भी उन्हें हुगली छोड़ना पड़ा और नदी के सहारे दक्षिण की ओर जाकर उन्होंने उस गांव में जाकर आश्रय लिया, जहां कि आगे चलकर कलकत्ता जैसा विशाल नगर खड़ा हुआ।

अंग्रेजों के इस दुष्टतापूर्ण व्यवहार से औरंगजेब इतना रुष्ट हुआ कि उसने उन्हें अपने साम्राज्य की सीमा से निष्कासित करने की आज्ञा दी। शाइस्ता खां ने इस आज्ञा को पाकर पटना, कासिम बाजार, मछलीपट्टम तथा विजगापट्टम के अंग्रेज व्यापारिक-केन्द्रों पर अधिकार कर लिया। सूरत के व्यापारिक-केन्द्र पर भी मुगल सम्राट का अधिकार हो गया। अंग्रेजों ने इस प्रकार अपने ऊपर दुर्भाग्य को आते हुए देख कर मुगल सम्राट से सन्धि की प्रार्थना की। सन् १६९० में एक संधि हुई, जिसके अनुसार उन्हें १७,००० रुपये मुआवजे में देने पड़े, और उन्हें चेतावनी दे दी गई कि आगे से वे इस प्रकार का दुष्टतापूर्ण आचरण न करें। उन्हें पुनः हुगली लौट आने का भी एक अनुमति पत्र दिया गया, और तभी जॉब चारनाक नामक अंग्रेज ने कलकत्ता नगर की स्थापना की, जो आगे चलकर भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की राजधानी बना।

इस समय तक मुगल राज्य की अवनति का क्रम प्रारम्भ हो चुका था। दक्षिण में शिवाजी के नेतृत्व में मरहठों ने अपने प्रदेश को औरंगजेब के शासन से मुक्त कर लिया था। उत्तर के पंजाब प्रदेश में सिक्खों ने अपने गुरू गोविन्दसिंह के नेतृत्व में संगठित होकर मुगल बादशाह के प्रभुत्व को चुनौती दे दी थी। राजस्थान के राजपूत राजाओं ने भी अपने को स्वतन्त्र करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये थे, और सन् १७०७ में जब औरंगजेब अन्तिम बार अपनी आंखें बन्द कर रहा था उसके अपने मुसलमान भाइयों, उसके विस्तृत साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों के सूबेदारों, ने भी अपने को स्वतन्त्र घोषित करना प्रारम्भ कर दिया।

२—अंग्रेजी साम्राज्य का प्रसार

मुगल साम्राज्य का पतन औरंगजेब के जीवन काल में ही प्रारम्भ हो गया था। उसकी मृत्यु के अनन्तर तो सम्पूर्ण देश में, अव्यवस्था तथा अराजकता का साम्राज्य फैल गया। हिन्दी प्रदेश में गंगा के पूर्व के क्षेत्र पर नवाब-वजीर का अधिकार था

उसने अवध के राज्य का सूत्रपात किया। रुहेलखन्ड पर, अफगानिस्तान से आये हुए साहसिक तथा निर्भीक रुहेलों का अधिकार था। यमुना के उस पार भरतपुर में, हिन्दू जाटों का एक साहसिक नेता, अपने लिए एक राज्य बनाने का प्रयत्न कर रहा था। आगरे पर मुगल साम्राज्य के एक बड़े पदाधिकारी का अधिकार था। कुछ समय बाद मरहठों ने, दिल्ली तथा मुगल बादशाह दोनों ही पर अपना अधिकार कर लिया। हिन्दी-प्रदेश पर अपना साम्राज्य फैलाने के लिये अंग्रेजों को इन सभी शक्तियों के साथ मोर्चा लेना पड़ा।

अंग्रेजों द्वारा उत्तर भारत को विजित करने के प्रयत्न सन् १७५७ के प्लासी के युद्ध से ही प्रारम्भ हो गये थे, किन्तु हिन्दी प्रदेश में अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार का आरम्भ सन् १७६४ से हुआ। जब अवध के नवाब वजीर से अँग्रेजों को मोर्चा लेना पड़ा। उसने मेजर ऐडम्स से उदानाला के स्थान पर युद्ध में पराजित होकर भागे हुए बंगाल के नवाब मीर कासिम को अपने यहां आश्रय दिया था, और अंग्रेजों के कहने पर उन्हें समर्पित करने से इन्कार किया था। इस प्रसंग को लेकर अंग्रेजों का अवध के नवाब वजीर के साथ जो युद्ध हुआ उसमें मुगल सम्राट शाह आलम ने भी भाग लिया था, किन्तु सन् १७६४ में मेजर मुनरो ने, बक्सर के युद्ध में, अवध के नवाब बजीर तथा शाह आलम दोनों को पराजित कर दिया।

इस विजय का समाचार पाते ही, क्लाइव, जो उसी समय दूसरी बार बंगाल का गवर्नर होकर इंगलैण्ड से लौटा था, तत्काल इलाहाबाद की ओर चल दिया और वहां पहुंच कर उसने नवाब वजीर के साथ एक सन्धि की। इसी सन्धि में अंग्रेजों को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा के दीवानी अधिकार प्राप्त हुए। नवाब वजीर को अपना राज्य तो वापस मिल गया, किन्तु उसे युद्ध में हुए व्यय के लिए अंग्रेजों को ५०००० स्टर्लिंग देने पड़े। कड़ा और इलाहाबाद के जिले, अवध राज्य से अलग कर के शाह आलम को दे दिए गये थे। क्लाइव ने मुगल बादशाह को, तीस हजार रुपये वार्षिक पेन्शन देने का भी वायदा किया था, जो कभी दी ही नहीं गई। अंग्रेजों ने इसी प्रकार हिन्दी प्रदेश के साथ अपना सम्पर्क स्थापित किया।

क्लाइव सन् १७६७ तक भारतवर्ष में रहा, और इसी अवधि में उसने इसी संधि के आधार पर, बंगाल की सर्वोच्च राज-सत्ता, अंग्रेजों के हाथों में पहुंचा दी। अवध के नवाब वजीर के साथ उसने मित्रता के सम्बन्ध बनाए रक्खे। उसके अनुसार उस समय साम्राज्य के और अधिक प्रसार की योजना अत्यधिक मूर्खतापूर्ण थी, जो कि कोई भी गवर्नर और उसकी परिषद्, अपनी चेतना को सजग रखते हुए नहीं ग्रहण कर सकते थे जब तक की ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समस्त हित पुनः व्यवस्थित न

किये जाएँ।[1] उसने यह भलीप्रकार समझ लिया कि "अब आगे की ओर दूसरा कदम एक ऐसा उद्योग होगा जिस से पीछे लौटना बिल्कुल असंभव होगा।"[2] इसी कारण उसने अपने को ईस्ट इण्डिया कम्पनी को व्यवस्थित करने में संलग्न कर दिया, और अपने इस निर्णय से उस ने अपने बहुत से देशवासियों को निराश किया जो कि सीधे दिल्ली की ओर बढ़ने का विचार कर रहे थे।

हिन्दी प्रदेश के साथ अंग्रेजों का सम्बन्ध और अधिक बढ़ाने का कार्य आगे चल कर वारेन हेस्टिंग्ज ने किया। वह सन् १७७८ में बँगाल का गवर्नर होकर आया था, और सन् १७७४ में वह भारतवर्ष में कम्पनी के समस्त हितों तथा व्यापारिक केन्द्रों का गवर्नर-जनरल बना दिया गया। उस समय तक मुगल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो चुका था और मरहठे, भारतवर्ष पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए अंग्रेजों के सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी के रूप में खड़े हो रहे थे। उन्होंने सन् १७७१ में, देहली के पुनः प्राप्त करने में शाह आलम को सहायता दी थी, और उसे वहां के सिंहासन पर भी प्रतिष्ठित कर दिया था। इस प्रकार उन्होंने मुगल साम्राज्य में अपनी अच्छी धाक जमा ली थी, और शाह आलम की बादशाहत की आड़ में अपने अधिकार के क्षेत्र की सीमाएँ और अधिक बढ़ाते जा रहे थे। बादशाह के नाम पर वे अँग्रेजों से कड़ा और इलाहाबाद के जिलों को भी वापस कर देने के लिए कहते थे।

मरहठों के इस प्रकार बढ़ते हुए प्रभाव को देख कर रुहेलों के सरदार हाफिज रहमतखां ने अपने ऊपर आक्रमण के भय से नवाब वजीर से सहायता मांगी। नवाब वजीर को स्वयं अपने ऊपर आक्रमण का भय था, इसलिए उसने अँग्रेजों से सहायता की याचना की। कलकत्ते में स्थित अँग्रेजी सरकार ने राबर्ट बार्कर के सेनापतित्व में अपनी फौज भेजी। नवाब वजीर तथा रुहेला सरदार के बीच एक सन्धि हुई, जिस पर अँग्रेज सेनापति के भी हस्ताक्षर थे। और उसके अनुसार मरहठों को पराजित करने पर, रुहेला सरदार को नवाब वजीर को एक बड़ी रकम देने का निश्चय हुआ। सन् १७७३ के प्रारम्भ में मरहठों ने रुहेलखंड पर आक्रमण किया, किन्तु रुहेला सरदार, नवाब वजीर तथा अँग्रेजों की सम्मिलित सेनाओं ने उन्हें पीछे हटा दिया।

मरहठों से इस प्रकार उद्धार करने के अनन्तर, अवध के नवाब वजीर ने रुहेलों

---

१ सर एलफ्रेड लायस: 'दि राइज एण्ड एक्सपैन्शन ऑफ दि ब्रिटिश डोमीनियन इन इण्डिया' (१९१०), पृ० १५८

२ वही वही वही पृ० १५९

से पूर्व-निश्चित रकम देने के लिए कहा, किन्तु रुहेला सरदार हाफिज रहमतखां ने उसे देने से इन्कार कर दिया। इस पर नवाब वजीर ने, अँग्रेजों से, उस रकम को दिलाने मे सहायता करने के लिए कहा, और इसी प्रसंग को लेकर वह झंझट खड़ा हुआ, जो रुहेला-युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। नवाब वजीर बनारस जाकर अँग्रेज गवर्नर जनरल से मिला, और उसने उसे रुहेलों को पराजित करके रुहेलखंड को अपने राज्य अवध के साथ संलग्न कर देने की आवश्यकता के संबन्ध में समझाया बुझाया। नवाब वजीर ने गवर्नर जनरल के सामने इस आशंका को भी स्पष्ट किया कि रुहेले और मरहठे मिल कर अवध पर आक्रमण कर सकते है। वारेन हेस्टिंग्स ने कुछ विचार-विमर्श के अनन्तर अपनी परिषद् को लिखा :

"इस सीमा विस्तार से हमारे साथी को एक पूर्णतः सुगठित और गंगा के द्वारा विदेशी आक्रमणों से पूर्णतः मुक्त प्रदेश प्राप्त हो जायेगा; जब कि उसे अपनी सुरक्षा अथवा संघर्ष के लिए हमारी ही सेनाओं का आश्रय लेना होगा। इसके द्वारा उसे धन की प्राप्ति होगी जिसमें हमारा भी लाभ होगा। उसकी सुरक्षा की भी व्यवस्था होगी; किन्तु उसकी शक्ति इतनी नहीं बढ़ सकेगी कि हमारे लिये भय का कारण हो। उसके प्रदेश की सीमाएँ मरहठों के और निकट पहुँच जायेंगी जिनके साथ वह अकेला मोर्चा नहीं ले सकता। वह हमारा और भी अधिक आश्रित हो जायेगा तथा उसके साथ हमारा सम्बन्ध पहले से अधिक दृढ़ हो जायेगा।"[१]

वारेन हेस्टिंग्स के इस परामर्श को उसकी परिषद ने स्वीकार कर लिया; और तब अंग्रेजों तथा नवाब वजीर की सम्मिलित सेनाओं ने, सन् १७७४ के वसंत के दिनों में, रुहेलखंड पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में रुहेला सरदार हाफिज रहमतखां की मृत्यु हो गयी; और रुहेलों की शक्ति सदा के लिए विनष्ट हो गयी। रुहेलखंड नवाब वजीर के राज्य के साथ मिला दिया गया; और अंग्रेजों को पश्चिमोत्तर प्रदेश में देख-रेख का अधिकार प्राप्त हुआ तथा उनके प्रभाव का क्षेत्र बढ़ा; और इस सब के लिए रुहेलों को भुगतना पड़ा, जिनका कि अंग्रेजों के साथ कोई भी झगड़ा नहीं था।

सन् १७३५ में अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला की, जो सब से पहले अंग्रेजो के सम्पर्क में आया था, मृत्यु हो गई; और उसका बेटा आसफुद्दौला गद्दी पर बैठा। अधिकार ग्रहण करने के समय उसे बनारस, जौनपुर, गाजीपुर के जिले

---

१. सर एल्फ्रेड लायल के ग्रंथ 'दि राइज एण्ड एक्सपैन्शन ऑफ दि ब्रिटिश डोमीनियन इन इण्डिया' (१९१०) के पृ० १८८ में उद्धृत

तथा बनारस के राजा चेतसिंह का प्रदेश अंग्रेजों को समर्पित करने के लिए बाध्य होना पड़ा। अंग्रेजों ने, अपनी ओर से, मुगल बादशाह से कड़ा और इलाहाबाद के जिलों को लेकर, उन्हें अवध के नवाब वजीर को समर्पित कर दिया। इसी सन्धि से, जो सन् १७७५ की इक्कीस मई को हुई थी, अवध का पतन प्रारम्भ हुआ। सन् १७८१ में आसफुद्दौला को अंग्रेजों के साथ चुनार में एक और सन्धि करनी पड़ी। वह एक दुर्बल शासक था; और अंग्रेज उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठा कर, उसकी शक्ति को और अधिक कम करते, तथा अपने प्रभाव के क्षेत्र को बढ़ाते गये।

सन् १७८६ में कार्नवालिस गवर्नर जनरल होकर भारतवर्ष आया। उसने अवध के प्रति अंग्रेजों की स्वार्थ की भावना से पूर्ण नीति को और भी अधिक प्रश्रय दिया। नवाब वजीर के मन्त्री हैदरबेग ने उससे भेंट की और अपने राज्य की सीमाओं से अंग्रेजी फौजों को वापस मंगा लेने के लिए बहुत जोर दिया; किन्तु कार्नवालिस ने उसकी बातों को ध्यान से सुना ही नहीं, केवल नवाब वजीर से अंग्रेजों को मिलने वाली रकम को उसने ७४ लाख से घटा कर ५० लाख कर दिया।

सर जान शोर ने, जो कार्नवालिस के बाद गवर्नर जनरल हुआ सन् १७९८ में, आसफुद्दौला के सौतेले भाई सआदत अली खां को नवाब वजीर बना दिया। सआदत को परिस्थिति के दबाव से अंग्रेजों के साथ एक नयी सन्धि करनी पड़ी; उसमें यह अंतिम रूप से निश्चित हो गया कि नवाब वजीर को प्रतिवर्ष अंग्रेजों को ७४ लाख रुपये देने होंगे; और इलाहाबाद के किले पर अंग्रेजों का अधिकार रहेगा। उस सन्धि में यह भी निश्चय हुआ था कि अवध में अंग्रेजों की १०,००० सेना रहेगी। सर जॉन शोर के इस कार्य के लिए इंगलैंड में स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों ने उसे बधाइयाँ दी।

हिन्दी-प्रदेश में अब अंग्रेजों से टक्कर लेने के लिए केवल मरहठे ही रह गये। मरहठों में भी महादा जी सिन्धिया ही सब से अधिक शक्तिशाली था, जिसने शाहआलम को इलाहाबाद से ले जाकर दिल्ली के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया था। वह हिन्दी-प्रदेश के पश्चिमी भाग में; अंग्रेजों के विरुद्ध, जो बाहर से आकर सम्पूर्ण भारतवर्ष पर, अपना अधिकार करना चाहते थे, अपनी सेनाओं को संगठित कर रहा था; किन्तु सन् १७९४ में अचानक उसका देहांत हो गया और उसी के साथ उसकी समस्त योजनाएं भी समाप्त हो गयीं। मरहठों की शक्ति अब भी पर्याप्त सुदृढ़ थी।

जब वेलजली सन् १७९८ में भारतवर्ष आया, तो मरहठे अपनी शक्ति और अधिक

संगठित कर रहे थे; किन्तु अवध की स्थिति बहुत ही खराब हो गयी थी ।उसने उसी वर्ष अवध के रेजिडेन्ट को लिखा :

"अवध के सम्बन्ध में दो तीन ऐसी बातें है जिनकी ओर तुम्हारा ध्यान मैं विशेष रूप से आकर्षित करना चाहता हूँ ।·····जब कभी उलेमाओं का देहांत हो, एक अवसर मिलेगा, जिससे लार्ड टेनेमाउथ की सन्धि का लाभ प्राप्त किया जा सके, **जिसकी आवश्यकता प्रत्येक परिस्थिति में** निश्चित रकम दिलाने के लिए प्रतीत होती है । आज जो शक्ति उलेमाओ के पास है उसे कम्पनी के हाथ में अवश्य आ जाना चाहिए । दोआब के उस क्षेत्र की, जिसमें आज वह लगान वसूल करता है, अगर राजसत्ता नहीं, तो व्यवस्था का कार्य अवश्य ही हमारे हाथों में आ जाना चाहिये । ·····वज़ीर की सेना की अवस्था और भी अधिक कमज़ोर है ।····· उस सशस्त्र समूह के स्थान पर जो आज वज़ीर को आतंकित किये रहता है, और उसके शत्रुओं को निमन्त्रित-सा करता है, मेरा प्रस्ताव है कि कम्पनी की पैदल तथा घुड़सवार सेना के और अधिक रेजिमेंट रख दिये जायँ ।"[1]

जब ये शर्तें नवाब वज़ीर के सामने प्रस्तुत की गयीं, तो उसने कुछ तर्क पूर्ण आपत्तियाँ रक्खी; और पहले की सन्धियों की ओर ध्यान दिलाया; किन्तु उसे इन सभी को स्वीकार करना पड़ा । १८०१ की १० नवम्बर को, उसे एक और सन्धि करने के लिए मजबूर किया गया, जिसके अनुसार उसे अपने राज्य का आधा भाग, गंगा यमुना के बीच की भूमि, अंग्रेजों को सौंप देनी पड़ी । इस सन्धि से अंग्रेजों को जो लाभ हुआ था, उसके सम्बन्ध में, वेलेजली ने स्वयं लिखा है: 'उसकी (अर्थात नवाब की) सैनिक शक्ति की पूर्ण समाप्ति ।"[2] इस प्रकार अवध व्यावहारिक दृष्टि से पूर्णतः अंग्रेजों के अधिकार में आ गया ।

अब केवल मरहठे ही, हिन्दी प्रदेश में, अंग्रेजों की शक्ति को चुनौती देने हुए शेष रह गये । इस समय दौलत राव सिन्धिया, मुगल बादशाह के प्रधान प्रतिनिधि के अधिकार ग्रहण किये हुए था । लार्ड लेक को इसीलिए उसकी ओर बढ़ने की आज्ञा दी गई । "उसे भेजने का प्रमुख उद्देश्य, या तो सिन्धिया की समस्त शक्ति को समाप्त कर देना था; अथवा उसके साथ एक ऐसी सन्धि करना, जिसके अनुसार उसके राज्य में से, अंग्रेजी सरकार को इतना क्षेत्र प्राप्त हो जाय, जिससे वह मध्य भारत में

---

१. सरकार तथा दत्ता की 'टैक्स्ट बुक ऑफ इन्डियन हिस्ट्री', वाल्यूमर, पृ० ९७-९८ में उद्धृत

२. वही, पृ० १००

अलग करके रक्खा जा सके,.....उसे देहली से निकाला जा सके।"[१] लार्ड लेक ने अलीगढ़ को तो सहसा विजित कर लिया और फिर देहली की ओर बढ़ा। वहाँ पहुँच कर उसने सिन्धिया की सेनाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया, नगर पर अधिकार कर लिया और बादशाह को भी अपने अधिकार में ले लिया। उसके अनन्तर उसने आगरे पर घेरा डाल कर उसे विजित कर लिया; और फिर लासवाड़ी के स्थान पर, सिन्धिया की फौजें, बड़ी कठिन लड़ाई के बाद, अन्तिम रूप से पराजित कर दी गयीं।

३—अंग्रेजी शासन की स्थापना

हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजी शासन की स्थापना, उस समय से हुई थी, जब अंग्रेजों को नवाब वज़ीर आसफुद्दौला से सन् १७७५ में, बनारस, गाज़ीपुर तथा जौनपुर के जिले तथा मिर्जापुर का कुछ भाग, प्राप्त हुए थे। उसके उत्तराधिकारी को अंग्रेजों को, फतेहपुर, बस्ती तथा इलाहाबाद से लेकर फरुखाबाद तक दुआबा का भाग सौंपना पड़ा था। १८०१ की सन्धि के बाद उसे, रुहेलखण्ड का भी अधिकांश भाग, अंग्रेजों को दे देना पड़ा। फरुखाबाद के नवाब को भी, जो कि अब अंग्रेजों के अधिकार-क्षेत्र में आ गया था, अपने राज्य को अंग्रेजों को सौंपकर उसके स्थान पर पेन्शन स्वीकार करनी पड़ी। दूसरे ही वर्ष, मराठों को पराजित करने के लिये दिल्ली की ओर बढ़ती हुई जनरल लेक की सेना ने, आगरा, मथुरा, मेरठ तथा यमुना के पश्चिम के बहुत से क्षेत्र को अंग्रेजों के अधिकार में पहुँचा दिया। सन् १८०३ में, पेशवा के साथ हुई नयी सन्धि के अनुसार, उन्हें बुन्देलखण्ड का प्रदेश भी प्राप्त हो गया। सन् १८१५ में गोरखों के साथ युद्ध समाप्त होने के अनन्तर उन्हें गढ़वाल, कुमायूं तथा देहरादून के पहाड़ी प्रदेश मिले। सन् १८४० में, विलीनीकरण के सिद्धांत के आधार पर जालौन के राजा के देहांत के अनन्तर, उसके कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण, उन्होंने उसके राज्य को भी अपने अधिकार में कर लिया। इसी आधार को लेकर सन् १८५३ में उन्होंने झांसी को भी मिला लिया, और अन्त में सन् १८५६ मे अवध के नवाब वज़ीर को अन्तिम रूप से हटाकर, अवध को अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। अंग्रेजों की इस स्वार्थपूर्ण नीति को देखकर जनता के सभी वर्ग विक्षुब्ध हो उठे, और उन्होंने सन् १८५७ में उनके विरुद्ध एक शक्तिशाली विद्रोह किया, किन्तु वह असफल हुआ, और हिन्दी-प्रदेश पर तथा साथ ही साथ उत्तर भारत के अन्य भागों पर भी, अंग्रेजी शासन की स्थापना हो गयी।

---

१. सर एलेंड लायल : 'दि राइज़ एण्ड एक्सपैन्शन आंफ ब्रिटिश डोमिनियन इन इण्डिया' (१९१०), पृ० २५६

४ उपसंहार

राजनीतिक घटनाओं के इस संक्षिप्त विवरण से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है, कि किस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने, धीरे धीरे अपने दृढ़ निश्चय को कार्यान्वित करते हुए, हिन्दी-प्रदेश के बनारस, इलाहाबाद, आगरा, मथुरा, लखनऊ आदि प्रमुख स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया, यही स्थान आगे चलकर नवीन ज्ञान-विज्ञान के प्रमुख केन्द्र बने, और पश्चिम तथा पूर्व की मिली जुली संस्कृति के युग को प्रारम्भ करने में सहायक हुए। इन केन्द्रों में, अंग्रेजी प्रभाव ने, जिन धाराओं के माध्यम से अपने को फैलाया, उनका अध्ययन आगे के प्रकरण में किया जायगा।

———

: ४ :

अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराएं

हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजी शासन की स्थापना का तात्पर्य, शासन-सूत्र का, एक शासक के हाथों से दूसरे के हाथों में चला जाना मात्र ही न था। जब अँग्रेज हिन्दी प्रदेश में प्रविष्ट हुए, तो वे अपने साथ केवल शस्त्रास्त्र ही नहीं वरन् अपना ज्ञान-विज्ञान तथा साहित्य भी लाये थे। इस प्रकार हिन्दी-प्रदेश में उनके प्रविष्ट होने का अर्थ, एक नयी सभ्यता, एक नवीन संस्कृति-पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति-का आगमन था। भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास बहुत पुरातन काल से चला आ रहा था, किन्तु मध्ययुग तक आते-आते, उनमें एक प्रकार की स्थिरता सी आ गयी थी। सम्पूर्ण मध्य युग में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति में स्थिरता की यह भावना अक्षुण बनी रही। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है, कि भारतवर्ष में अंग्रेजी सभ्यता के आगमन से दो जीवित शक्तियां एक दूसरे के सम्पर्क में आयीं, जिनमें से एक पुरातन और स्थिरता की भावना से युक्त थी, और दूसरी नवीन तथा नयी चेतना से अनुप्राणित थी। इस सम्पर्क ने एक महान परिवर्तन को जन्म दिया। हिन्दी प्रदेश में, नव युग की भावना का प्रसार, उसके जीवन के प्रत्येक पक्ष में, बहुत बड़े परिवर्तन की भावना का समावेश, इसी प्रभाव के कारण सम्भव हुआ।

अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी-प्रदेश में आने के पूर्व, भारतवर्ष के अन्य क्षेत्रों—बंगाल

गुजरात, महाराष्ट्र आदि में, अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इसीलिये, हिन्दी-प्रदेश तथा उसके भाषा और साहित्य पर, अंग्रेजी का जो प्रभाव पड़ा, वह पूर्णतः अंग्रेजों के साथ सम्पर्क से ही नहीं आया; उसका कुछ अंश, हिन्दी-प्रदेश के इन अन्य क्षेत्रों के साथ सम्पर्क से भी आया। सीधे अंग्रेजों के साथ सम्पर्क से आये हुए प्रभाव को एक विदेशी वस्तु समझकर लोगों ने सरलता से स्वीकार नहीं किया; किन्तु जो प्रभाव, भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों में स्वीकृत होने के अनन्तर आया, उसे पूर्णतः भारतीय समझ कर भली प्रकार ग्रहण किया गया। हिन्दी-प्रदेश ने भी अपने भाषा और साहित्य में, इस प्रकार के प्रभाव को अपनाया। उन विभिन्न क्षेत्रों में, जो सब से पहले अंग्रेजों के सम्पर्क में आये, बंगाल ने, हिन्दी प्रदेश को यह नवीन प्रभाव सबसे अधिक दिया है। बंगाल ने ही इस प्रभाव को अपने जीवन में सबसे अधिक आत्मसात किया था, इसीलिये उस प्रदेश में ही सर्वप्रथम पुनरुत्थान तथा नवयुग की भावनाओं का उद्भव एवं प्रसार हुआ।

अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप भारत में जो नयी चेतना उत्पन्न हुई थी, उसका साम्य यूरोपीय पुनरुत्थान के साथ बहुत अधिक है। यूरोप में नवीन बौद्धिक चेतना का जागरण, अथवा पुनरुत्थान सर्वप्रथम नये संसार की खोज के रूप में देखने को मिला; और उसके अनन्तर पुरातन तथा शास्त्रीय ज्ञान के प्रति अनुराग के रूप में सामने आया। उसने एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी प्रश्रय दिया, जिसकी प्रेरणा से मनुष्य ने अपने मन तथा मस्तिष्क को मध्ययुगीन बन्धनों से मुक्त किया। मुद्रण-यंत्र के आविष्कार तथा उसके फलस्वरूप होने वाले ज्ञान के प्रसार ने, पुनरुत्थान के द्वारा उत्पन्न अन्य शक्तियों के सहयोग से, यूरोप के विभिन्न देशों के राष्ट्रीय साहित्य के विकसित होने में योग दिया। भारत में अंग्रेजों के आगमन का प्रभाव भी कुछ ऐसा ही हुआ।

अंग्रेजी प्रभाव ने जिन विभिन्न धाराओं में होकर कार्य किया वे अग्रलिखित हैं : (१) परिवर्तित वातावरण; (२) नवीन शिक्षा संस्थाएँ; (३) ईसाई प्रचारकों के कार्य; (४) धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलन; (५) मुद्रण-कला का प्रचार एवं पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन तथा (६) नयी सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संस्थाएँ।

१—परिवर्तित वातावरण

अंग्रेजी प्रभाव का यह पक्ष, हिन्दी-प्रदेश में कार्य करने वाले अन्य प्रभावों से, अपनी भिन्नता, सबसे अधिक स्पष्ट करता है। मुगल वंश के शासक, जिन्होंने एक विशेष काल तक हमें प्रभावित किया, यद्यपि मूल रूप से विदेशी विजेता थे; किन्तु

उन्होंने शीघ्र ही अपने को जनता में घुला-मिला दिया था और उसी की भाषा तथा हितों को ग्रहण कर लिया था।[1] हिन्दी-प्रदेश में आने वाले अन्य विदेशियों के साथ भी ऐसा ही हुआ था; किन्तु अंग्रेज ने अपने को जनता से अलग रक्खा। वे अपने को एक उच्चतर राष्ट्र का समझते थे, और जहाँ तक भौतिक उन्नति का प्रश्न है, वे वास्तव में, भारतीयों से श्रेष्ठ थे। इस देश में रहते हुए भी, वे अपने देश के हित की ही बात हमेशा सोचते रहते थे। वे यहाँ शासकों के रूप में रहे; इस देश को उन्होंने कभी अपना घर नहीं समझा; यही कारण था कि जनता तथा शासक के हितों में निरन्तर संघर्ष चलता रहा।

किन्तु इस संघर्ष के होते हुए भी अंग्रेजों का सम्पर्क, उनके भौतिक रूप से एक उन्नत राष्ट्र होने के कारण, हिन्दी-प्रदेश के लोगों के लिए कुछ लाभप्रद सिद्ध हुआ। उसने उनके जीवन के प्रति दृष्टिकोण को और अधिक व्यापक तथा नवयुग की भावना से पूर्ण बना दिया। मुगल साम्राज्य के विच्छिन होने से, जिसके लक्षण औरंगजेब के जीवन काल में ही प्रारम्भ हो गये थे, एक ऐसा वातावरण उत्पन्न हो गया था, जिसमें अव्यवस्था तथा अराजकता ही देखने को मिलती थी। देश में केन्द्रीय शक्ति का पूर्णतः अभाव हो गया था। जिन लोगों ने उत्तराधिकार अथवा शक्ति के बल पर, थोड़े से भी अधिकार प्राप्त कर लिये थे, वे आनन्द का जीवन व्यतीत कर रहे थे; और उनके लिए जनता को मूल्य चुकाना होता था। वे अपने प्रभाव का क्षेत्र बढ़ाने के लिए, उन अन्य लोगों से संघर्ष करते रहते थे, जिन्हें उन्हीं की भांति कुछ शक्ति प्राप्त हो गयी थी। ठग तथा इसी प्रकार के अन्य अपराधी-तत्व, अपने लिए उपयुक्त वातावरण पाकर, अपना धंधा अच्छी तरह चला रहे थे। इस प्रकार का वातावरण, किसी प्रकार भी, जनता की प्रगति के लिए उपयोगी नहीं कहा जा सकता था। इसीलिए, अंग्रेजी शासन की स्थापना से इस आश्वासन को पाकर, कि अब देश में शान्ति और सुव्यवस्था रहेगी, जनसाधारण ने सुख की सांस ली।

अंग्रेजी शासन द्वारा, भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में जो एकता का सूत्र स्थापित हुआ, तथा आवागमन के जिन नवीन साधनों की व्यवस्था हुई, उन्होने जनता के मन में समस्त भारत के एक होने की भावना को जन्म दिया। सामन्त युग के वे प्रतिबन्ध, जो अब तक समाज के विकास को अवरुद्ध किये हुए थे, तथा जीवन में सम्प्रदायगत धार्मिकता की भावना को बल देते रहे थे, टूटने लगे; और मनुष्य का महत्व मनुष्य के रूप में आंका जाने लगा। देश के एक भाग में रहने वाले लोग

१—'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (अंग्रेजी), नवम्बर १५, १८७३, न० ५, पृ० १२०

अब बड़ी सरलता से दूसरे भाग के लोगों के साथ सम्पर्क में आने लगे और पारस्परिक प्रभाव को ग्रहण करने लगे। अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से उत्पन्न पारस्परिक आदान-प्रदान की प्रवृत्ति ने जनता के बौद्धिक विकास में बहुत योग दिया। हिन्दी-प्रदेश के लोग इसी प्रकार तो बगाल में रहने वाले लोगों के सम्पर्क में आये, और इस नये प्रभाव के सम्बन्ध में उन्होंने उनसे बहुत कुछ सीखा।

सन् १८६९ में होने वाले स्वेज नहर के उद्घाटन का वास्तव में वही महत्व था, जो यूरोपीय पुनरुत्थान के काल में नयी दुनिया की खोज का रहा था। उसने इगलैंड तथा अन्य यूरोपीय देशों के साथ भारतवर्ष के सम्पर्क को और अधिक बढ़ा दिया, और साथ ही सार्वभौमिकता की भावना को भी उत्पन्न किया। पश्चिम का सब कुछ अब भारतीय जनता के लिए और निकट की वस्तु हो गया। भारतवर्ष के लोग अब यूरोपीय देशों को, विशेष रूप से अपने शासकों के देश इंगलैंड को, जाने आने लगे। हिन्दू समाज मे अब तक समुद्र-यात्रा के सम्बन्ध में जो प्रतिबन्ध रहे थे, वे टूटने लगे। जो लोग यूरोपीय देशों को जाते थे, वे बड़े मतोयोग के साथ यह समझने का प्रयास करते थे, कि आधुनिक सभ्यता अपने ज्ञान-विज्ञान के साथ किस प्रकार प्रगति कर रही है, वे अपने देश के लोगों के लिए भी उससे शिक्षा ग्रहण करते थे। इस जीवित सम्पर्क ने, भारतवर्ष मे नवयुग की भावना के प्रसार में, बहुत अधिक सहायता पहुचाई। हिन्दी-प्रदेश भी उससे लाभान्वित हुआ।

किन्तु अंग्रेज, भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में अपना शासन स्थापित करके, भारतीय जनता को इन्ही सद्प्रभावों से अनुगृहीत करने नहीं आये थे, वास्तव में वे अपने व्यापारिक हितों को लेकर भौतिक लाभ की दृष्टि से आये थे, और इसी के लिए उन्होंने अपने राज्य की स्थापना की थी। औद्योगिक क्रांति अर्थात् विभिन्न प्रकार की मशीनों के आविष्कार से, उनके यहां तय्यार माल का अनुपात बहुत हो गया था। भारतवर्ष ने उनका ध्यान अपनी ओर उस तय्यार माल के मुक्त व्यवसाय के लिए आकर्षित किया था। अपने शासन की स्थापना के अनन्तर, उन्होंने भारतवर्ष की उत्पादन संस्थाओं को विनष्ट कर दिया, और इस देश के बाजारों को अपने यहा बने हुए माल से पूरी तरह भर दिया।

इंगलैंड से मशीनों द्वारा बन कर आये इस माल की तुलना में भारतवर्ष में मनुष्य के हाथों से बना सामान अधिक महंगा था, और उतना मजबूत भी नही था। भारत वर्ष की सामान्य जनता में, इंगलैंड से आने वाले उस सस्ते तथा खटाऊ माल के प्रति एक स्वाभाविक रुचि उत्पन्न हो गयी; और फलस्वरूप भारतीय वाणिज्य तथा व्यवसाय विनष्ट हो गया। इसी प्रकार तो भारतवर्ष से इंगलैंड की ओर धन का

निरन्तर चलने वाला प्रवाह प्रारम्भ हुआ था, जिसने हमारे देश को निर्धन बना दिया तथा हमारी आर्थिक व्यवस्था को भी अस्त-व्यस्त कर दिया। भारतीय जनता, जो अब तक आत्म-निर्भर रही थी, अब अपनी आवश्यकता की छोटी से छोटी वस्तु के लिए भी, विदेशियों की मोहताज हो गयी। इस परिस्थिति ने बहुत सी नयी समस्याएं खड़ी कर दीं, जिन्होंने भारतीय जनता के दृष्टिकोण में एक मूलभूत परिवर्तन की भावना उत्पन्न कर दी। भारतवर्ष के लोग, जो अब तक भलीप्रकार धन-धान्य सम्पन्न होने के कारण ईश्वर-चिन्तन तथा धर्म के विभिन्न पक्षों को लेकर विचार-विमर्श में तत्पर रहते थे, अँग्रेजों के आर्थिक शोषण के फलस्वरूप अपनी भौतिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में सोचने लगे। भारतीय जीवन धारा में इस भौतिकता के समावेश ने बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन-क्रम का सूत्रपात किया।

अँग्रेजों द्वारा स्थापित शासन व्यवस्था, पहले की शासन व्यवस्थाओं से, पूर्णतः भिन्न थी। उसमें उन बड़े बड़े राजाओं तथा सामन्तों के लिए, विशेष स्थान न था, जो अब तक साहित्य के संरक्षकों के रूप में कार्य करते रहे थे। सामन्तवादी शासन व्यवस्था के स्थान पर उन्होंने जिस नौकरशाही शासन-प्रणाली का सूत्रपात किया, उसने साहित्य के निर्माण की ओर कोई भी ध्यान नहीं दिया। वह केवल वातावरण को शान्तिमय बनाये रखने का प्रयास करती थी, जो अंग्रेजों के व्यापारिक हितों के लिए बहुत अधिक आवश्यक था। अंग्रेजी प्रभाव से, हिन्दी भाषा तथा साहित्य को राज्य की ओर से मिलने वाले संरक्षण की जो हानि हुई, **शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना द्वारा अंग्रेजों ने उसकी पूर्ति की।**

२—शिक्षा-संस्थाये

हिन्दी भाषा तथा साहित्य में जो अंग्रेजी प्रभाव, शिक्षा-संस्थाओं के माध्यम से आया है, उसका प्रारम्भ कलकत्ते के फोर्ट विलियम कॉलेज से माना जा सकता है। कॉलेज की स्थापना तथा उसका हिन्दी के विषय में कार्य, हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजी शासन की स्थापना के बहुत पूर्व आरम्भ हो गया था। इसीलिये, अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार में शिक्षा-संस्थाओं के योगदान का अध्ययन, फोर्ट विलियम कॉलेज के कार्य से ही प्रारम्भ किया जा रहा है, उसके बाद हिन्दी-प्रदेश में स्थापित शिक्षा संस्थाओं के कार्य का अनुशीलन होगा।

क—फोर्ट विलियम कॉलेज

इस कॉलेज की स्थापना, निश्चित रूप से, जैसा कि इसके संस्थापक मार्क्विस ऑफ वेलेज़ली ने अपने पन्द्रह अगस्त, १८०० के लन्दन में स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों को सम्बन्धित पत्र में भी लिखा था: इंगलैंड से आने वाले नवयुवकों को

विभिन्न भारतीय भाषाओं की तथा अन्य आवश्यक विषयों की शिक्षा देने के उद्देश्य से हुई थी, जिससे कि वे कम्पनी के नागरिक कार्यों का भली प्रकार निर्वाह कर सकें।[1] इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए, कुछ यूरोपीय विद्वानों की इस धारणा को तो स्वीकार नहीं किया जा सकता, कि अंग्रेजी प्रभाव का प्रारम्भ इस कॉलेज की स्थापना से ही हुआ था, किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा, कि इस संस्था ने अंग्रेजी प्रभाव के लिए, आवश्यक पृष्ठभूमि उपस्थित कर दी थी। फोर्ट विलियम कॉलेज के कार्य का अध्ययन यहां हम इसी रूप में उपस्थित कर रहे है।।

इस कॉलेज के संस्थापक, मार्क्विस ऑफ वेलेजली ने प्रारम्भ से ही इसमें साहित्य, विज्ञान तथा ज्ञान की अन्य शाखाओं के निम्नलिखित पाठ्यक्रम का निर्धारण किया था:

अरबी
फारसी
संस्कृत
हिन्दुस्तानी
तैलंग
मरहठा
तामिल
कन्नड
मुसलमानी न्याय-विधान
हिन्दू न्याय-विधान
नीतिशास्त्र
नागरिक विधान-शास्त्र, तथा
अन्तर्राष्ट्रीय न्याय-विधान
अंग्रेजी न्याय-विधान

सपरिषद गवर्नर जनरल, फोर्ट सेन्ट जॉर्ज तथा बम्बई से, अनुक्रम से, भारतवर्ष में अंग्रेजों के अधिकार क्षेत्र में नागरिक शासन के लिए प्रचलित किये गये नियम तथा विधान।

राजनीति शास्त्र, विशेष रूप से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की व्यापारिक संस्थाएं तथा तत्सम्बन्धित अन्य विषय।

---

१ टामस रोएबक: 'दि ऐनल्स ऑफ दि कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम' (१८१९), भूमिका, पृष्ठ १५

भूगोल तथा गणित
यूरोप की आधुनिक भाषाएँ
ग्रीक, लैटिन, तथा अंग्रेजी का शास्त्रीय साहित्य
सामान्य इतिहास, पुरातन तथा नवीन, हिन्दुस्तान तथा
दक्कन के पुरातत्व का इतिहास, प्रकृति का इतिहास
वनस्पतिशास्त्र, रसायन तथा ज्योतिष।[1]

इस पाठ्यक्रम के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजी प्रभाव, भारतवर्ष में, शिक्षा के क्षेत्र में, कितनी सीमा तक प्रसार कर सकता था, और अगर यह कॉलेज केवल अंग्रेजों के लिये ही नहीं, वरन् भारतीयों के लिए भी स्थापित किया गया होता, तो हिन्दी तथा उत्तर भारत की अन्य भाषाओं और साहित्य का इतिहास कुछ और ही होता। फिर भी, क्योंकि इस कॉलेज के पाठ्य-क्रम में अन्य भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दुस्तानी को भी स्थान दिया गया था, और हिन्दी भी हिन्दुस्तानी का एक रूप समझकर पढ़ाई जाती थी, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास में इस संस्था का पर्याप्त योग सम्भव हो सका।

इस विद्यालय के प्रारम्भिक वर्षों में फारसी तथा हिन्दुस्तानी की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया था, और सन् १८०१ के अप्रैल मास में डा० जॉन बार्थविक गिलक्राइस्ट की नियुक्ति, हिन्दुस्तानी के प्रोफेसर के रूप में हुई। कॉलेज के अधिकारियों ने उन्हें, हिन्दी भाषा के व्याकरण तथा शब्द-कोष के निर्माण का कार्य सौंपा था, जिसे वे वर्षों तक करते रहे। इन ग्रंथों के निर्माण का उद्देश्य अंग्रेज युवकों को हिन्दी भाषा की विशेषताओं से परिचित कराना था। हिन्दी भाषा के व्याकरण के अभाव में, बोलते तथा लिखते समय, उन्हें वाक्य-रचना में बड़ी कठिनाई होती थी। विद्यार्थियों को नागरी लिपि का भी अभ्यास कराया जाता था। वर्ष के अन्त में परीक्षाएं होती थीं, और सब से अधिक सफलता पाने वाले विद्यार्थियों को पुस्तकों, पदकों, तथा नगद धन के रूप में पुरस्कार दिये जाते थे। विद्यार्थियों ने भाषा पर कितना अधिकार प्राप्त कर लिया है, इसकी परीक्षा के लिए, प्रत्येक वर्ष, वाद-विवाद का भी आयोजन होता था।

इन समस्त योजनाओं को देखने से, यह आशा होती है, कि विद्यालय का भविष्य बहुत सुन्दर रहा होगा। उसके संस्थापक मार्क्विस ऑफ वेलेजली की इच्छा थी, कि

---

१ टामस रोएबक: 'दि ऐनल्स आफ दि कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम' (१८१९), भूमिका, पृ० १७

उसे समस्त अंग्रेजी साम्राज्य की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा-संस्था बना दें; किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों ने, १५ जून, १८०२ को, सपरिषद गवर्नर जनरल को लिखा कि वह इस संस्था को तत्काल समाप्त कर दे। फिर भी उसके संस्थापक ने अपने वैयक्तिक प्रयत्न से इस संस्था को इतने विशाल रूप में तो नहीं, किन्तु छोटे रूप में जीवित रक्खा। उसका पाठ्यक्रम काफी कम कर दिया गया; और इस सीमित रूप में वह बहुत वर्षों तक कार्य करती रही। कॉलेज का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम, प्रतिवर्ष होने वाला वाद-विवाद था, जिसमें विद्यार्थियों को किसी निश्चित विषय के पक्ष अथवा विपक्ष में अपने निबन्ध प्रस्तुत करने होते थे। इन वाद-विवादों का उद्देश्य, विद्यार्थियों को भारतीय भाषाओं का बोलना तथा लिखना सिखाना था। दोनों पक्षों के निबन्धों की समाप्ति पर अध्यक्ष महोदय, जोकि या तो कॉलेज के कोई प्रोफेसर होते थे, अथवा कोई विशेष रूप से निमन्त्रित व्यक्ति, विषय के दोनों पक्षों को स्पष्ट करके अपना मत प्रकट करते थे। इस प्रकार के कुछ वाद-विवादों के विषय जो हिन्दुस्तानी भाषा में हुए थे, निम्नलिखित हैं।

(१) "हिन्दुस्तानी भाषा भारतवर्ष में सामान्यतः सब से अधिक उपयोगी है।"[१]

(२) "हिन्दू विधवाओं का अपने मृत पतियों के शरीर के साथ अपने को जला कर आत्महत्या करना स्वाभाविक भावनाओं के विरुद्ध तथा धार्मिक कर्त्तव्य की भावना के प्रतिकूल है।"[२]

(३) "मुद्रणकला ही राष्ट्रों के इतिहास को सत्यता तथा यथार्थता के साथ परम्परित रूप से चलाने का साधन है। वही आगे आने वाले लोगों तक विज्ञान तथा साहित्य के क्षेत्र की महान उपलब्धियों को पहुचा सकती है।"[३]

(४) "भारत वर्ष के निवासियों में पाश्चात्य राष्ट्रों के साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार यूरोपीय भाषाओं के स्थान पर उनकी अपनी मातृभाषाओं में यूरोपीय ग्रंथों का अनुवाद करके अधिक सरलता के साथ किया जा सकता है।"[४]

इन सभी विषयों को लेकर तथा अन्य विषयों पर भी नागरी लिपि में निबन्ध प्रस्तुत किये गये थे। विद्यार्थियों ने उनमें किस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया था उसका रूप हम हिन्दुस्तानी भाषा के सम्बन्ध में बेली द्वारा प्रस्तुत निबन्ध के

१—टामस रोएबक : 'दि ऐनल्स ऑफ दि कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम', पृ० १५
२—वही, पृ० ३१
३—वही, पृ० २७२
४—वही, पृ० ५२८

निम्नलिखित उद्धरण में देख सकते हैं।

"हिन्दुस्तान में कार्रवाई के लिए हिन्दी जबान और जबानों से जियादा दरकार है।

हिन्दुस्तानी ज़बान कि जिसका जिक्र मेरे दावे में है उसको हिन्दी उर्दू और रेख्ता भी कहते हैं और यह मुरक्कब अरबी और फारसी ओ संस्कृत या भाषा से है और यह पिछली अगले जमाने में तमाम हिन्द में राएज थी।"[1]

इस उद्धरण में, अरबी तथा फारसी उद्गम के शब्दों का बाहुल्य है; किन्तु फोर्ट विलियम कॉलेज में प्रश्रय दिये जाने वाले हिन्दी भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय देने के पूर्व, सन् १८०२ में डब्ल्यू० चैपलिन द्वारा प्रस्तुत निबन्ध में से भी एक उद्धरण देख लेना चाहिए :

"हे महाराजो··· ···जो मेरे वचन को ध्यान देकर सुनो तो आपके मन की दुविधा जाय। सच है जो इस भयानक चाल का सार जिसे अब मैं दोषता हूं जब धीरज की दृष्टि से देखियेगा तब इसकी अनीति और कठोरी और कुरीति को जानियेगा तो आपकी भी मति मेरी ही मति के समान हो जायगी।"[2]

इस अंश की भाषा शुद्ध हिन्दी है, और यह प्रतीत होता है कि अरबी तथा फारसी उद्गम के शब्दों को, जान बूझ कर छोड़ दिया गया है। अन्य निबन्धों की प्रतियाँ प्राप्त नहीं हैं; इसलिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि फोर्ट विलियम कॉलेज के अधिकारी हिन्दी भाषा के किस रूप को विशेष प्रश्रय देते थे; किन्तु इस विषय पर विशेष रूप से कार्य करने वाले विद्वानों का कहना है, कि हिन्दुस्तानी विभाग के संचालक जान गिलक्राइस्ट, भाषा के उस रूप पर विशेष बल देते थे, जिसमें अरबी तथा फारसी उद्गम के शब्दों का बाहुल्य होता था। यदि इस कॉलेज में प्रस्तुत किये गये हिन्दी के सभी निबन्ध प्राप्त हो जाएँ, तो भाषा के सम्बन्ध में यह उलझन दूर हो सकती है; और साथ ही यह भी जाना जा सकता है कि अंग्रेजों ने स्वयं हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव कहाँ तक डाला था।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य को इस कॉलेज की सब से बड़ी देन, उसके द्वारा अपनी ही आवश्यकता के लिए लिखित अथवा सम्पादित ग्रंथों का प्रकाशन है। जब

१—डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : दि डेवलपमेंट ऑफ हिन्दी लिट्रेचर फ्रॉम १८५० टू १९००', एपेन्डिक्स।

२—इस निबन्ध की प्रतिलिपि, राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० माता प्रसाद गुप्त के पास है।

डॉ० गिलक्राइस्ट की नियुक्ति हिन्दी विभाग के प्रोफेसर के रूप में हुई थी, तो उनके साथ कुछ मुन्शी रख दिये गये थे, जिन्हें उनके निरीक्षण में भारतीय भाषाओं में ग्रंथों को लिखना तथा संपादित करना था। लल्लू जी लाल की नियुक्ति 'भाखा मुन्शी' के रूप में हुई थी। लल्लू जी लाल तथा अन्य मुन्शियों के द्वारा किये जाने वाले कार्य का विवरण, 'दि ऐनल्स ऑफ दि कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम' में इस प्रकार है :

१. प्रेमसागर Prama Sagar, or the history of the Hindoo Diety, Shri Krisna, Contained in the 10 th,chapter of Sree Bhagwat of Vyasudeva Translated at the desire of John Gilchrist into Hindduvia from the Braj Bhasha of Chutoorbhuj Misr, by Sree Lalloo Lal Kub, Bhasha Moonshee in the College of Fort William, Calcutta, printed at the Sanskrit Press, in one vol. 4to, 1810.

2. A vocabulary, Khuree Bolee and English of the principal words occuring in the Prem Sagar, by Lieut. William Price, Assistant Professor of the Bungalee and Sanskrit languages in the College of Fort William. Printed at the Hindoostanee Press in One Vol. thin 4 to, 1814 .

३ राजनीति Rajneeti, or tales, exbibiting the Moral Doctrines, and the Civil and Military polity of the Hindoos, Transated from the original Sanskrit of Narain-Pandit into Braj. Bhasha at the desire of John Gilchrist by Sree Lalloo lal Kub, Bhasha Moonsbee in the College of Fort William, printed at the Hindoostanee Press, in one Vol. 8 vo., 1809.

4. General Principles of Inflextion and Conjugation in the Braj Bhasha, of the language Spoken by the Hindoos int he country of Braj in the district of Gowaliyur, in the dominions of the Raja of Bhurutpoor, Utur Bed and Bundelkhand, Composed for the use of Hindoostanee Students. by Sree Lalloo lal Kub, Bhasha Moonshee at the College of Fort William. Printed at the Indian Gazettee Press, in one Vol. thin 4 to, 1811.[१]

---

१ टामस रोएबद्ध : 'दि एक्ल्स ऑफ दि कॉलेज आफ फोर्ट विलियम 'एथेन्डिक्स पृ० २८

कॉलेज ने हिन्दी के तीन और ग्रंथ, बाबू राम पंडित सम्पादित' बिहारी सतसई,' लल्लू जी लाल कृत 'सभा विलास' तथा तुलसीकृत 'रामायण' भी प्रकाशित किये थे। कॉलेज द्वारा प्रकाशित एक अन्य ग्रंथ, 'दि हिन्दी मैनुअल' अथवा 'दि कैस्केट ऑफ इण्डिया' में भी जिसका सम्पादन हिन्दुस्तानी के विद्यार्थियों के लिए हुआ था, लल्लु लाल जी की कुछ रचनाएँ 'सिंहासन बत्तीसी', 'शकुंतला नाटक', 'माधोनल' तथा 'बैताल पचीसी', संगृहित थी। ये सभी ग्रंथ, मिर्ज़ा काज़िम अलीजान के साथ मिल-कर लिखे गये कहे जाते हैं और उनमें अरबी, फारसी उद्गम के शब्दों का बाहुल्य है। दो अन्य ग्रंथ 'नक्लियाते हिन्दी' तथा 'लतीफ़ाये हिन्दी' जिनमें छोटी-छोटी कहानियां संग्रहीत थीं, नागरी वर्णमाला में प्रकाशित हुये थे, किन्तु कॉलेज के प्राप्त विवरण के आधार पर, प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से, सब से अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ, अंग्रेजी रचनाओं के अनुवाद थे। रोएबक ने अपने ग्रंथ में, इस प्रकार की तीन रचनाओं का उल्लेख किया है; जिनमें प्रथम, बाइबिल के 'न्यू टेस्टामेंट' का हिन्दी रूपान्तर थी; दूसरी का अंग्रेजी नाम 'ओरियेंटल फेबुलिस्ट' था; उसमें रोमन वर्णमाला में हिन्दु-स्तानी, फारसी, अरबी, ब्रजभाषा तथा संस्कृत में ईसप की कथाओं के अनुवाद प्रस्तुत किये गये थे; तीसरे ग्रंथ का नाम 'डायेलॉग्स-इंगलिश एण्ड हिन्दुस्तानी' था, जिसमें यूरोपियनों को भारत के निवासियों के साथ, सामान्य विषयों को लेकर, बातचीत का ढंग बताया गया था। ये रचनाएँ भी प्राप्त नहीं हैं; यदि कभी प्राप्त हो सकीं, तो यह तथ्य अधिक स्पष्ट हो जायेगा, कि अंग्रेजी व्याकरण की रचना-प्रणाली, हिन्दी गद्य में सर्व प्रथम किस रूप में प्रयोग में आयी थी, तथा उसने हिन्दी गद्य के विकास में कहां तक योग दिया था।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में, फोर्ट विलियम कॉलेज द्वारा प्रकाशित दो ग्रंथों, लल्लू लाल जी के' प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' के, विशेष रूप से उल्लेख मिलते है। कुछ अंग्रेज विद्वानों ने लिखा है कि यही दोनों हिन्दी गद्य की सर्व प्रथम रचनाएँ है; किन्तु यह सही नहीं है। इन रचनाओं के प्रकाशन के पूर्व, हिन्दी गद्य का हमें एक निश्चित विकास क्रम मिलता है, और इनके पूर्व लिखित हिन्दी के कुछ गद्य ग्रथों में, भाषा का स्वरूप, इनसे अधिक परिमार्जित तथा व्यवस्थित है। रामप्रसाद निरञ्जनी के 'भाषा योग वाशिष्ठ' का गद्य इन दोनों रचनाओं के गद्य से कहीं अधिक सुव्यवस्थित है। इसके अतिरिक्त जिस समय फोर्ट विलियम कॉलेज में इन रचनाओं का निर्माण हो रहा था, उन्ही दिनों बिना किसी

विदेशी अधिकारी की प्रेरणा के, इशाअल्ला खां तथा सदासुख लाल, अपने गद्य ग्रन्थों का प्रणयन कर रहे थे।

इस कॉलेज का वास्तविक योग, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास के लिए नये साधनों का उपयोग करने की शिक्षा देना था। हिन्दी साहित्य के दो पुराने तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थों बिहारी की 'सतसई' तथा तुलसीकृत 'रामचरितमानस' का इस संस्था के द्वारा ही सर्व प्रथम मुद्रण तथा प्रकाशन हुआ। इस संस्था ने, तथा इसी के साथ बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने, हमें पुराने हस्तलिखित ग्रन्थों को सुरक्षित रखने की रीति सिखाई। कॉलेज के पुस्तकालय में विभिन्न भारतीय भाषाओं के बहुत से हस्तलिखित ग्रंथ संग्रहित थे। इसी संस्था द्वारा, सर्व प्रथम, हिन्दी भाषा के आधुनिक प्रणाली के कोष का निर्माण हुआ। इस सम्बन्ध में जॉन गिलक्राइस्ट तथा विलियम प्राइस के नाम स्मरणीय रहेंगे। इसी विद्यालय के एक प्राध्यापक द्वारा व्रजभाषा के व्याकरण के सिद्धान्तों का पहली बार विवेचन हुआ था। हिन्दी गद्य में छोटी-छोटी कहानियाँ भी सबसे पहले इस विद्यालय द्वारा ही प्रस्तुत की गई थीं। इसी संस्था ने अपने प्रकाशित ग्रंथों में सर्व प्रथम अंग्रेजी के विराम-चिह्नों तथा अनुच्छेदों की व्यवस्था का प्रयोग किया था। यदि इस विद्यालय ने अपने संस्थापक वेलेज़ली की इच्छा के अनुरूप आकार धारण किया होता तो हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास में इसका योग कहीं अधिक रहा होता।

ख-हिन्दी-प्रदेश में नवीन शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना तथा विकास

हिन्दी-प्रदेश में पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के प्रचार के लिये शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना केवल राजकीय प्रयास से ही नहीं, वरन् ईसाई प्रचारकों तथा जन-संस्थाओं के उद्योग से भी हुई थी। अपने अध्ययन को व्यवस्थित रूप देने के लिये, शिक्षा के क्षेत्र में इन तीनों शक्तियों के उद्योगों का हम अलग-अलग अध्ययन उपस्थित कर रहे हैं।

(१) राजकीय प्रयास

अंग्रेजों द्वारा, हिन्दी-प्रदेश में शिक्षा सम्बन्धी कार्य का आरम्भ, सन् १७९१ में बनारस में 'संस्कृत कॉलेज' की स्थापना से हुआ था। इस कॉलेज की स्थापना बनारस के रेज़िडेन्ट जोनेथन डन्कन के परामर्श पर, हिन्दू न्याय- विधान, साहित्य तथा धार्मिक भावनाओं को समझने के लिए और विशेष रूप से यूरोपीय न्यायाधीशों को हिन्दू सहायक प्रदान करने के लिए हुई थी।[1] इस प्रकार, इस विद्यालय का रूप, प्राच्य साहित्य तथा ज्ञान की शिक्षा देने वाली एक संस्था का था,

१—विलियम हन्टर : 'रिपोर्ट ऑफ दि एजुकेशन कमीशन', (१८८२-८३), पृ० १७

और अपनी इस भूमिका में वह हिन्दी भाषा तथा साहित्य में अंगरेजी प्रभाव के प्रसार में, विशेष सहायक नहीं सिद्ध हो सकता था। अंग्रेजी प्रभाव तो केवल अंग्रेजी के ग्रन्थों के अध्ययन से ही आ सकता था, और उसके लिए अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य की क्षिशा देने वाली संस्थाओं की स्थापना की आवश्यकता थी। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार का प्रारम्भ सन् १८१३ की राजकीय घोषणा से माना जा सकता है।

इस घोषणा में अंग्रेजी सरकार ने पहली बार, भारतीय जनता को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया था। ब्रिटेन की पार्लियामेंट ने घोषणा की थी कि "इस प्रकार के प्रयत्न किये जाने चाहिएँ, जिससे भारतवर्ष में उपयोगी ज्ञान तथा धार्मिक भावना का प्रसार हो और नैतिक सुधार भी हो सके, किन्तु धार्मिक विश्वासों के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता बनी रहने दी जाय।"[1] इस घोषणा में यह भी स्वीकार किया गया था कि प्रत्येक वर्ष कम से कम एक लाख रुपया, भारतवर्ष के शिक्षित व्यक्तियों को प्रोत्साहन देने तथा उनमें साहित्यिक रुचि के पुनः जागरण एवं जनता मे वैज्ञानिक ज्ञान के प्रचार तथा अभिवृद्धि के लिये व्यय किया जाना चाहिये।[2] किन्तु लार्ड हेस्टिंग्स ने, जो उस समय गवर्नर जनरल थे, कलकत्ते की एक पाठ्य-ग्रंथों को प्रकाशित करने वाली संस्था का संरक्षण करने, तथा प्रादेशिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक विवरण लिखने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया। सन् १८२३ में उन्होंने अपने जाने के पूर्व, एक 'जन-शिक्षा समिति' का निर्माण अवश्य कर दिया था। एच० एच० विलसन इस समिति के मन्त्री नियुक्त हुए थे; और उन्हें एक लाख रुपये की स्वीकृत रकम को वितरित करने का अधिकार भी दे दिया गया था। इस समिति के सदस्य प्रारम्भ से ही, दो सर्वथा भिन्न विचारधाराओं को लेकर, दो वर्गों में बँटे हुए थे। एक वर्ग तो, भारतीय साहित्य तथा शास्त्र की शिक्षा को प्रश्रय देने के पक्ष में था, और दूसरा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का प्रसार करना चाहता था। समिति में प्रथम वर्ग के लोगों, अर्थात् भारतीय विद्याओं के प्रचार की रुचि रखने वाले व्यक्तियों का प्राधान्य था। इसलिए यह निर्णय हुआ कि बनारस के 'संस्कृत कॉलेज' की भांति के कुछ और विद्यालय, कलकत्ता तथा अन्य स्थानों में भी खोले जायें।

अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीयों ने इस निर्णय का प्रबल विरोध किया। राजा

---

१ नूरुल्लह तथा नायक : 'हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया', पृ० ६६

२ वही, पृ० ६६

राम मोहन राय ने लार्ड एमहर्स्ट को एक स्मृति-पत्र लिखा, जिसमें यह कहा गया था :

"जब इस नये शिक्षा-केन्द्र (नये संस्कृत कॉलेज) की स्थापना का प्रस्ताव हुआ था, हम लोगों ने समझा था कि इंगलैंड में स्थित सरकार ने अपनी भारतीय प्रजा को शिक्षित करने के लिये प्रति वर्ष एक विशेष रकम व्यय करने का निश्चय किया है। हम लोगों को बड़ी आशाएं थीं कि इस धन का उपयोग शिक्षित तथा प्रतिभाशाली यूरोपीय सज्जनों की नियुक्ति में होगा जो भारतवर्ष के निवासियों को उस ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्रदान करेंगे, जिन्हें यूरोप के राष्ट्रों में इतनी सीमा तक सम्पन्न बना दिया है, जिससे कि वे संसार के अन्य क्षेत्रों की जनता से अधिक उन्नत हो गये हैं.....अब हम देखते हैं कि सरकार हिन्दू पण्डितों को नियुक्त करके एक ऐसे विद्यालय की स्थापना कर रही है, जो कि ऐसे ज्ञान का प्रसार करेगा जैसा भारतवर्ष में स्वयं ही प्रचलित है।.....किन्तु सरकार का उद्देश्य तो स्थानीय निवासियों को सुधारना है, इसलिए उसे एक उदार तथा नवयुग की भावना से अनुप्राणित शिक्षा-प्रणाली को प्रश्रय देना चाहिए। ... और इसके लिए उसे यूरोप में शिक्षित, प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिए, तथा कॉलेज में आवश्यक पुस्तकों, उपकरणों तथा अन्य सम्बद्ध सामग्री की व्यवस्था करनी चाहिए।"[1]

किन्तु यह सब लिखने का तत्काल कुछ भी प्रतिफल न हुआ।

सन् १८३५ में, टॉमस बैबिंगटन मैकाले की नियुक्ति, जो इंगलैंड से गवर्नर जनरल की परिषद में वैधानिक सदस्य के रूप म कार्य करने के लिये आया था, 'जन शिक्षा-समिति' के अध्यक्ष के रूप में हुई। 'समिति' के अन्य सदस्यों के सामने शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार, उसने १८३५ की दूसरी फरवरी को, लिखित रूप में प्रस्तुत किये। किस भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया जाय, इस सम्बन्ध में उसके सामने तीन विकल्प थे : या तो भारतवर्ष की प्रादेशिक भाषाओं को स्वीकार किया जाये, अथवा प्राच्य देशों की पुरातन भाषाओं को, या अंग्रेजी को। उसने इनमें से पहले को तो यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि "इस सम्बन्ध में तो सभी वर्ग एकमत है, कि भारतवर्ष की प्रादेशिक भाषाओं में न तो विशेष साहित्यिक ग्रन्थ ही हैं और न वैज्ञानिक; और फिर वे इतनी निर्धन तथा अविकसित हैं, कि जब तक वे किसी दिशा से सम्पन्न न कर दी जाएँ, उनमें किसी महत्वपूर्ण ग्रन्थ का सरलता से अनुवाद नहीं किया जा सकता।"[2] प्राच्य देशों की पुरातन भाषाओं—अरबी, फारसी

---

१ 'कैम्ब्रेज हिस्ट्री 'ऑफ इण्डिया', वाल्यूम ६, पृ० १०५

२ डॉ० देवेन्द्रनाथ शुक्ल: 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजुकेशनल पालिसी' (१८५४-१९०४) टंकित प्रबन्ध पृ० ५

संस्कृत के सम्बन्ध में उसका मत था कि "भारतवर्ष तथा अरब के समस्त साहित्य का वास्तविक मूल्य यूरोप के किसी अच्छे पुस्तकालय की एक अलमारी के एक खाने के ही समान था।" [१] इसलिए उन्हें शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रश्न ही नहीं उठाना चाहिए। अन्त में उसने अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के संबंध में विचार प्रस्तुत किये थे; किन्तु उसने यह स्पष्ट लिख दिया था कि अंग्रेजी भाषा का उपयोग शिक्षा के माध्यम के रूप में केवल अस्थायी रूप में ही हो सकता है, क्योंकि आगे चल कर भारतवर्ष की प्रादेशिक भाषायें ही स्थायी रूप से शिक्षा का माध्यम हो सकेंगी। उसने स्पष्ट लिखा था कि "हमें इस समय एक ऐसे वर्ग के निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए जो हमारे तथा उन लाखों व्यक्तियों के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, दुभाषिए का कार्य कर सके—एक ऐसे लोगों का वर्ग, जो कि रक्त और वर्ण में तो भारतीय हों; किन्तु रुचि, विचार, आचार तथा बुद्धि की दृष्टि से अंग्रेज। इसी वर्ग के लोगों के हाथों में हमें देश की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य के पुनः संस्कार के कार्य को छोड़ देना चाहिए। यही वर्ग उन प्रादेशिक भाषाओं के शब्द-समूह को पाश्चात्य देशों के शब्द-भंडार से ली जाने वाली वैज्ञानिक शब्दावली से सम्पन्न बनायेगा, और धीरे-धीरे उन्हें विशाल जन-समुदाय तक ज्ञान की विभिन्न धाराओं को ले जाने का उपयुक्त साधन बनायेगा।"[२]

मैकाले ने अपना यह प्रतिवेदन सन् १८३५ की ७ मार्च को, सरकार के सामने प्रस्तुत किया; और वह एक प्रस्ताव के रूप मे स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव के द्वारा निर्धारित नीति का अध्ययन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है :

(१) अंग्रेजी सरकार का सबसे बड़ा उद्देश्य भारतवर्ष के निवासियों में यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार होना चाहिए और शिक्षा के लिए निश्चित समस्त धन का सदुपयोग केवल अंग्रेजी शिक्षा के लिए ही हो सकता है।

(२) स्थानीय ज्ञान की शिक्षा देने वाले विद्यालय समाप्त नहीं किये जाएँगे, किन्तु उनके विद्यार्थियों को कोई छात्र-वृत्ति नही दी जायेगी; और प्राच्य विद्याओं से सम्बन्धित इन विद्यालयों का कोई प्राध्यापक जब अपने स्थान को छोड़ेगा, तो सरकार यह निर्णय करेगी कि उसके स्थान पर अन्य व्यक्ति नियुक्त करने की कहां तक आवश्यकता है।

(३) प्राच्य ग्रंथों के प्रकाशन में कोई भी धन नहीं व्यय किया जायेगा।

(४) समस्त धन का उपयोग अंग्रेजी भाषा के माध्यम से अंग्रेजी साहित्य

१—डॉ० देवेन्द्रनाथ शुक्ल : "हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन एजुकेशनल पॉलिसी", पृ० ७

२—वही पृ० ८

तथा विज्ञान की शिक्षा देने के लिए किया जायेगा।[1]

जब अंग्रेजी सरकार द्वारा, अंग्रेजी शिक्षा के सम्बन्ध में, ये निर्णय लिये जा रहे थे, हिन्दी-प्रदेश में केवल तीन ही कॉलेज थे, जिनमें अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। बनारस का 'संस्कृत कॉलेज', जैसा पहले लिखा जा चुका है, प्राच्य साहित्य तथा शास्त्रों की शिक्षा देने के लिये स्थापित किया गया था। किन्तु इस दिशा में उसे विशेष सफल न देखकर, सन १८३० मे उसमें अंग्रेजी विभाग भी खोल दिया गया था।[2] इसके अनन्तर इस विद्यालय ने जॉन म्यूर तथा उनके योग्य उत्तराधिकारी डॉ० बैलेनटाइन के निरीक्षण में, निश्चित रूप मे विशेष उन्नति की। उसमें अब पाश्चात्य प्रणाली के अनुसार शिक्षा दी जाने लगी थी तथा अंग्रेजी की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाने लगा था।[3] अन्य दो कॉलेज, आगरा तथा दिल्ली में थे, जिनकी स्थापना क्रमशः सन् १८२३ तथा १८२५ में हुई थी। बनारस के प्रयोग से यह स्पष्ट हो चुका था कि जनता के हृदय में प्राच्य साहित्य तथा शास्त्रों की शिक्षा के प्रति कोई विशेष रुचि नही थी; इसीलिए इन कॉलेजों में अंग्रेजी विभाग प्रारम्भ से ही खोल दिये गये थे।[4] इन्ही कॉलिजों की रूपरेखा पर इलाहाबाद, मेरठ, बरेली तथा हिन्दी-प्रदेश के कुछ अन्य प्रमुख नगरों में हाई स्कूल खोले गये। सन् १८४३ में इस प्रकार के स्कूलों की संख्या ८ थी। सन् १८५० में बरेली के हाई स्कूल को कॉलेज का रूप दे दिया गया।[5]

सन् १८४३ में शिक्षा के प्रबन्ध का कार्य केन्द्रीय सरकार से प्रान्तीय सरकारों के हाथों में पहुंच गया।[6] उस समय हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजी के विद्यार्थियों की संख्या १४२३ थी, उर्दू के विद्यार्थियों की १०१५, हिन्दी ७३६, अरबी ८८, फारसी २७० तथा संस्कृत १७१।[7] किन्तु विद्यार्थियों की इतनी संख्या होने हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजी शिक्षा ने कोई विशेष स्थान बना पाया था। इसका कारण, इस प्रदेश की शिक्षा की स्थिति पर, उसी समय लिखे जाने वाले एक

१—डॉ० देवेन्द्र नाथ शुक्ल : 'हिस्ट्री ऑफ दि इंडियन एजुकेशनल पॉलिसी', पृ० ८ तथा ९
२—विलियम हन्टर : 'रिपोर्ट ऑफ दि एजुकेशन कमीशन' (१८८१-८२) पृ० १७
३ वही, पृ० १७
४—वही, पृ० १७
५—वही, पृ० १८
६ - वही, पृ० १७
७—वही, पृ० १७

विवरण में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है :

"यहाँ सरकार का संचालन करने वालों को छोड़ कर अन्य यूरोपीय लोगों की संख्या बहुत ही कम है। यूरोप के ऐसे सम्पन्न व्यापारी भी यहाँ नहीं रहते, जो अंग्रेजी का ही व्यवहार करते हों, और अंग्रेजी ढग से ही काम चलाते हों। ऐसा कोई उच्च न्यायालय भी यहाँ नहीं है, जिसमें अंग्रेजी के माध्यम से ही न्याय होता हो; न अंग्रेज वक्ता तथा वकील ही यहां हैं; न यहाँ समुद्री मार्ग से व्यापार ही होता है, जिससे कि जहाजों के ऊपर अंग्रेज नाविक आते हों; और निरन्तर विदेशी सामग्री तथा वस्तुओं से प्रभावित करते हों। सरकारी संस्थाओं में भी ऐसे पद बहुत थोड़े से है जिनके कार्य संचालन के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान बहुत आवश्यक है।"[१]

इन्हीं सब कारणों से सरकार ने यह निश्चय किया कि कॉलेजों को छोड़ कर अन्य शिक्षा-केन्द्रों में, प्रादेशिक भाषाओं को भी शिक्षा का माध्यम बनाना उपयुक्त होगा। इसके अनन्तर अंग्रेजी सरकार ने प्राथमिक शिक्षा की एक योजना चलाई।

सन् १८५४ की १९ जुलाई को अंग्रेजी सरकार ने सर चार्ल्स उड द्वारा तय्यार की गई शिक्षा सम्बन्धी योजना प्रकाशित की, जो भारतवर्ष में अंग्रेजी शिक्षा के 'मैगना चार्टा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना के प्रारम्भ में ही यह घोषणा थी, कि बहुत से महत्वपूर्ण विषयों में, शिक्षा का महत्व सबसे अधिक है।[२] शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यूरोप के साहित्य, दर्शन, विज्ञान तथा कलाओं का प्रचार होना चाहिए।[३] पूर्वी देशों के शास्त्रीय साहित्य के अध्ययन को भी पूर्णतः नहीं छोड़ा गया था; वरन् अंग्रेजी शिक्षा के साथ उन्हें भी स्थान दिया गया था। उच्च कक्षाओं में अंग्रेजी को ही शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकृत किया गया था। किन्तु माध्यमिक कक्षाओं में उसके साथ-साथ भारतीय भाषाओं को भी स्थान मिला था। यह स्पष्ट लिख दिया गया था कि "हम अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं, दोनों को ही एक साथ ज्ञान के प्रसार के साधन के रूप में कार्य करते हुए देखना चाहते हैं, तथा हमारी यह भी इच्छा है कि इन दोनों का अध्ययन एक साथ हो।"[४] इस प्रकार अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम का स्थान, केवल भारतीय भाषाओं की

१—नूरुल्लह एण्ड नायक : 'हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया', पृ० १४८

२—डा० देवेन्द्रनाथ शुक्लः 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजुकेशनल पॉलिसी' (१८५४-१९०४), पृष्ठ ३०

३—वही, पृ० ३०

४—वही, पृ० ४१

अभिवृद्धि के लिए ही दिया गया था। यह योजना इसी दृष्टि से हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन के लिए महत्व की है। सर चार्ल्स उड ने यह भी लिखा था कि प्रत्येक प्रान्त में अपने अलग-अलग शिक्षा विभागों का निर्माण हो। इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा के लक्ष्य तथा उद्देश्य के स्पष्ट हो जाने के अनन्तर, भारतवर्ष के विभिन्न विभागों में उसका विकास, द्रुत गति से होने लगा।

सर चार्ल्स उड की इसी योजना की प्रेरणा से सन् १८५७ में कलकत्ता विश्व-विद्यालय की स्थापना हुई। हिन्दी-प्रदेश में स्थित बनारस, आगरा तथा बरेली के कॉलेजों को तब इसी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिया गया। १८५७ के विद्रोह के समय दिल्ली का कॉलेज समाप्त कर दिया गया। विद्रोह की समाप्ति के बाद वह पुनः स्थापित हुआ। हिन्दी-प्रदेश में भी आगे चल कर कुछ नये कॉलेजों की स्थापना हुई। सन् १८६४ में लखनऊ में कैनिंग कॉलेज स्थापित हुआ; सन् १८७२ में इलाहाबाद में म्योर सेन्ट्रल कॉलेज, तथा सन् १८७५ में अलीगढ़ में मोहम्मेडन ऐंग्लो ओरियेन्टल कॉलेज। ये तीनों ही कॉलेज आगे चल कर विश्वविद्यालयों के रूप में परिवर्तित हो गये। सन् १८८१-८२ में हिन्दी-प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा-केन्द्रों की संख्या १२१ थी।[1] सन् १९०२ में हिन्दी-प्रदेश में २६ कॉलेज थे, जिनमें से चार प्रयाग, चार लखनऊ और तीन आगरे में थे।[2] हाई स्कूलों की संख्या भी इस बीच में इसी अनुपात से बढ गई थी।

सन् १८८७ में इलाहाबाद में हिन्दी-प्रदेश के प्रथम विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। उसकी स्थापना का विवरण इस प्रकार है :

"उत्तर भारत में एक विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रश्न बहुत पहले सन् १८६९ तथा १८७० में उठा था। पश्चिमोत्तर प्रान्त की सरकार ने इलाहाबाद में विश्वविद्यालय के मूल-सूत्र के रूप में एक कॉलेज खोलने का प्रस्ताव किया था। .....भारतीय सरकार ने कॉलेज की स्थापना की स्वीकृति प्रदान कर दी थी; किन्तु उसने विश्वविद्यालय की स्थापना की वांच्छनीयता के सम्बन्ध में अपने को किसी प्रकार प्रतिश्रुत नहीं किया था। राज्य के शिक्षा विभाग के मंत्री ने यह आशा अवश्य प्रकट की थी कि यह कॉलेज आगे चलकर विश्वविद्यालय में परिणत हो सकेगा।

पश्चिमोत्तर प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने, राजाओं तथा ताल्लुकदारों का सहयोग प्राप्त करके, सन् १८७२ की पहली जुलाई को एक किराये की इमारत

१—नूरुल्लह एण्ड नायकः 'हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया' पृ० २९४
२—वही, पृ० २३५

लेकर एक केन्द्रीय कॉलेज का प्रारम्भ कर दिया। म्योर कॉलेज के नये भवन का शिलान्यास लार्ड नार्थब्रुक ने सन् १८७३ में किया था; और उसका उद्घाटन लार्ड डफरिन ने सन् १८८६ में किया। इस बीच सन् १८८४ में पंजाब ने भी अपने लिए एक विश्वविद्यालय प्राप्त कर लिया था। एजुकेशन कमीशन ने संयुक्त प्रांत में भी एक विश्वविद्यालय की स्थापना का परामर्श दिया था। यह सुझाव अच्छा समझा गया था। यह अनुभव किया गया कि कलकत्ता बहुत दूर है और उसके विश्वविद्यालय की नियमावली भी उत्तर भारत में उच्च शिक्षा के विकास के लिए पूर्णतः अनुकूल नहीं है। विशेष रूप से कलकत्ता विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम बहुत दोष पूर्ण समझा गया; इस दृष्टि से कि उसमें उन प्राच्य साहित्य तथा शास्त्रों के अध्ययन को उचित स्थान नहीं दिया गया था, जो कि संयुक्त प्रांत में पहले से प्रचलित थे। यह भी आशा की जाती थी कि एक स्थानीय विश्वविद्यालय की स्थापना से शिक्षा के विकास को और प्रेरणा मिलेगी। इसी सब के अनुसार सन् १८८७ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की व्यवस्था करते हुए गवर्नर जनरल की कौसिल में एक धारा स्वीकृत हुई थी।"[1]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना इसी धारा के आधार पर सन् १८८७ में हुई। उस समय इस प्रदेश के हाई स्कूलों से लेकर एम० ए० तक के शिक्षा-केन्द्र इसी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिये गये। अपने प्रारम्भिक वर्षों में इलाहाबाद विश्वविद्यालय केवल कला तथा न्याय विभागों की उपाधियाँ प्रदान कर सकता था; सन् १८९४ में सपरिषद गवर्नर जनरल ने विज्ञान विभाग की व्यवस्था को स्वीकृति प्रदान की और सिनेट को यह अधिकार दिया कि वह विज्ञान में ग्रेजुएट तथा डॉक्टरेट की उपाधियाँ प्रदान कर सके।[2] सन् १९०७ में अर्थशास्त्र में भी एम. ए. कक्षाएं खोलने का अधिकार मिला, तथा सिनेट को डॉक्टर ऑफ लेटर्स की उपाधि देने की अनुमति मिली। सन् १९०८ में जीव-विज्ञान तथा १९११ में वाणिज्य भी अध्ययन के विषयों के रूप में स्वीकार किये गये।[3]

सन् १९१५ में हिन्दी-प्रदेश में एक अन्य विश्वविद्यालय—बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय की स्थापना हुई। सन् १९२० में लखनऊ विश्वविद्यालय तथा अलीगढ़ में मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना स्वयं जनता द्वारा हुई थी, इसलिये उनके निर्माण का इतिहास आगे चल कर अलग दिया जायेगा।

१—नूरूल्लह तथा नायक : 'हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया,' पृ० २३७-३८

२—डॉ० अमरनाथ झा : 'इलाहाबाद युनिवर्सिटी के पचास वर्ष', 'हिन्दुस्तानी', जनवरी १९३८, पृष्ठ ८७-८८

३—वही, पृ० ८९

२—**ईसाई प्रचारकों के प्रयास**—

ईसाई प्रचारकों ने जिस मूल उद्देश्य को लेकर अपने केन्द्रों तथा शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की थी, उसकी विवेचना, रेवरेन्ड एस० डॉयसन ने अपने 'हाई मिशन एजुकेशन' शीर्षक लेख में, जिसे उन्होंने सन् १८७२ तथा ७३ में इलाहाबाद में होने वाली 'आल इन्डिया क्रिश्चियन कॉन्फ्रेंस' में पढ़ा था, इस प्रकार की थी :

"ईसाई धर्म का प्रचार तथा स्थापना ही के उद्देश्य से विभिन्न मिशनरी सोसाइटियाँ तथा संस्थाएँ कायम हैं; और यही वास्तविक कारण है जिसको लेकर मिशनरी सोसाइटियों द्वारा भारतवर्ष के विभिन्न भागों में स्कूलों तथा कॉलेजों की स्थापना की गई है, विधर्मियों को ईसाई बनाने के लिए।"[1]

हिन्दी-प्रदेश में भी ईसाई प्रचारकों ने इसी उद्देश्य को लेकर शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की थी।

ईसाई प्रचारकों द्वारा स्थापित किये गये शिक्षा-केन्द्रों में सर्व प्रथम महत्व का, आगरा का सैन्ट जॉन्स कॉलेज था। उसके प्रारम्भ के सम्बन्ध में सन् १८१२ में स्थापित 'आगरा मिशन' तथा सन् १८४० में स्थापित 'आगरा चर्च मिशनरी एसोसियेशन' के नाम आते हैं।[2] इनमें से अन्तिम संस्था ने अपनी स्थापना के दस वर्ष बाद यह सोचना प्रारम्भ किया था कि आगरा जैसे विशेष आबादी के नगर में. जो उस समय प्रांत की राजधानी भी थी उच्च शिक्षा के लिए एक मिशन कॉलेज होना चाहिए, जो सरकार के विभिन्न पदों पर कार्य करने वाले भारतीय अधिकारियों को तथा भारतीय समाज के प्रभावशाली वर्गों के नव युवकों को शिक्षा प्रदान कर सके।[3] उस समय हिन्दी-प्रदेश में उच्च शिक्षा के केन्द्र बहुत थोड़े थे। इसी प्रकार की परिस्थिति में 'आगरा चर्च मिशनरी सोसाइटीज़ एसोसियेशन' की समिति ने, जिसके सभी सदस्य अंग्रेज नागरिक तथा सैनिक अधिकारी थे, यह निश्चय किया कि एक उच्च श्रेणी के क्रिश्चियन कॉलेज की स्थापना की जाय।

इस कॉलेज की स्थापना से यह आशा की जाती थी, कि ईसाई संस्कृति तथा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली उच्च शिक्षा, जिसका पाठ्यक्रम पाश्चात्य विश्वविद्यालयों से बहुत कुछ मिलता जुलता हो, पूर्णतः ईसाई वातावरण में दिये जाने पर एक नये प्रकार के उच्च कोटि के आचार पूर्ण व्यक्तियों की सृष्टि करेगी।

१—'रिपोर्ट ऑफ दि जनरल मिशनरी कॉन्फ्रेंस इलाहाबाद (१८६९-७३),' पृ ८०

२—'सैन्ट जॉन्स कॉलेज आगरा (१८५०-१९३०)' पृ० १-२

३—वही, पृ० ७

उसके संस्थापकों को यह भी आशा थी कि आगे चल कर यह कॉलेज शिक्षा सम्बन्धी शक्तिशाली प्रभाव डालने वाला एक केन्द्र हो जायेगा, जो कि सम्पूर्ण प्रांत की जनता के आचार विचारों को शुद्ध करेगा तथा शिक्षित वर्गों के सामान्य स्तर को ऊपर उठायेगा। यह योजना इन्हीं सब कारणों से बड़े उत्साह के साथ स्वीकार की गई थी, और उसके लिए धन संग्रह किया जाने लगा था। इस शिक्षा-केन्द्र की स्थापना के लिए अर्थ-दाताओं में सर्व प्रमुख नाम, तत्कालीन लैफ्टिनेन्ट गवर्नर थॉमसन का था, जिसने कॉलेज में 'इंगलिश लिट्रेचर स्कॉलरशिप' नाम की एक छात्रवृत्ति का प्रारम्भ किया था, और यह छात्रवृत्ति अभी तक उसी के नाम से चली जा रही है।[1] कॉलेज के लिए भवन के निर्माण का कार्य सन् १८५० में प्रारम्भ हो गया था। सन् १८५२ की १६ दिसम्बर को नये भवन का उद्घाटन हुआ। उसके अनन्तर कॉलेज का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा।

सैन्ट जॉन्स कॉलेज के संस्थापकों का विचार था, कि वे उसे उच्च शिक्षा का एक ऐसा केन्द्र बना दे, जिससे कि ईसाई प्रचारकों द्वारा स्थापित सभी हाई स्कूल सम्बन्धित कर दिये जायँ। इस कॉलेज से सम्बन्धित इसी प्रकार के एक शिक्षा-केन्द्र की स्थापना सन् १८५५ में मथुरा में हुई थी। उसके अनन्तर कुछ ही वर्षों में ईसाई प्रचारकों द्वारा स्थापित गोरखपुर, बनारस, बस्ती, आजमगढ़, जौनपुर, मेरठ तथा लखनऊ के हाई स्कूल, इसी कॉलेज से सम्बन्धित कर दिये गये। सैन्ट जॉन्स कॉलेज बहुत वर्षों तक उत्तर भारत के प्रमुख शिक्षा-केन्द्रों में गिना जाता रहा। इसी संस्था की रूपरेखा पर आगे चल कर अमरीकी ईसाई प्रचारकों ने इलाहाबाद में क्रिश्चियन कॉलेज और कानपुर में क्राइस्ट चर्च कॉलेज की स्थापना की। इन्हीं शिक्षा-केन्द्रों तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं के माध्यम से ईसाई प्रचारकों ने अपने धार्मिक उपदेशों के साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य तथा विज्ञान की भी शिक्षा प्रदान की। इस सब का श्रेय यद्यपि उन्होंने कभी अपने लिए मांगा नहीं है, तथापि उन्हें अवश्य दिया जाना चाहिए।

(३) जनता के प्रयास

हिन्दी-प्रदेश में जनता के द्वारा स्थापित किये गये शिक्षा-केन्द्रों में बनारस का जय नारायण घोषाल स्कूल अग्रगण्य है, जिसकी स्थापना सन् १८१३ में बाबू जयनारायण घोषाल के प्रयत्न से हुई थी। इस सम्बन्ध में सर्व प्रथम उन्होंने मार्क्विस ऑफ हेस्टिंग्स के पास एक स्मृति-पत्र भेजा था, जिसमें उन्होंने इस संस्था के

१—'सैन्ट जॉन्स कॉलेज आगारा (१८५० १९३०)', पृ० ८

लिए २०,००० रुपये तथा कुछ भूमि भी देने की इच्छा प्रकट [illegible] सरकार ने भी कुछ आर्थिक सहायता प्रदान की और स्कूल की स्थापना की अनुमति दे दी। इस विद्यालय का प्रारम्भ इस सब के पश्चात सन् १८१३ में हुआ।[1]

सन् १८८१-८२ के शिक्षा सम्बन्धी विवरण मे इस प्रकार की कुछ अन्य संस्थाओं के भी उल्लेख हैं, जिनकी स्थापना जनता के अपने प्रयत्नों से हुई थी। आगरा कॉलेज की स्थापना के लिए पण्डित गंगाधर शास्त्री ने १,५०,००० रुपए एकत्र किये थे।[2] सन् १८२९ में अवध के मुख्य मन्त्री नवाब ऐतमादउद्दौला ने दिल्ली कॉलेज की उन्नति के लिए १७०००० रुपये प्रदान किये थे।[3] १८६४ में लखनऊ में कैनिंग कॉलेज की स्थापना निश्चित रूप से अवध के ताल्लुकेदारों के प्रयत्न से हुई थी। उन्होने सरकार से यह भी प्रार्थना की थी कि कॉलेज को चलाने के लिए वह उनकी भूमि का लगान आधा प्रतिशत और बढ़ा दे।[4] इलाहाबाद का म्योर कॉलेज भी आंशिक रूप से जनता के प्रयत्न से ही स्थापित हुआ था। उसकी स्थापना के सम्बन्ध में 'इलाहाबाद इंस्टीट्यूट' के सदस्यों के नाम सदा स्मरणीय रहेंगे।[5] अलीगढ़ का एग्लो ओरियेण्टल कॉलेज तो निश्चित रूप से सर सय्यद अहमद खाँ तथा कुछ अन्य जागरूक मुसलमानों के प्रयत्न से आरम्भ हुआ था।

सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना के अनन्तर जब आर्य-समाजियों ने अपना प्रचार-कार्य आरम्भ किया तो उन्होने भी ईसाई प्रचारकों की भांति शिक्षा को उस के माध्यम के रूप मे स्वीकार किया। उनका मूल उद्देश्य प्राचीन साहित्य तथा शास्त्रों का पुनरुत्थान करना था, किन्तु अपनी शिक्षा को उपयोगी बनाने के लिए उन्हें अपने शिक्षा-केन्द्रों में अंग्रेजी की भी व्यवस्था करनी पड़ी थी। उन्हें मुख्यतः अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली को ही स्वीकार करना पड़ा था, इसलिये उनका भी अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार मे योग माना जा सकता है।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से जिस नव जागरण की भावना का विकास हुआ था, उसने भारतीय समाज के कुछ वर्गों को अपने-अपने विद्यालय स्थापित करने

१—डा० देवेन्द्र नाथ शुक्ल : 'हिस्ट्री ऑफ इन्डियन एजुकेशनल पालिसी (१८५४-१९०४)' पृ० २

२—विलियम हन्टर : 'रिपोर्ट ऑफ दि एजुकेशन कमीशन (१८८१-८२)' पृ० २५९-६०

१—वही, पृ० २६०-६१

४—वही, पृ० २६५

५—डा० अमरनाथ झा : 'दि हिस्ट्री ऑफ दि म्योर सैन्ट्रल कालेज', पृ० २

की प्रेरणा दी थी। इसी भावना से प्रेरित होकर मुन्शी काली प्रसाद कुलभास्कर ने अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों से इलाहाबाद में कायस्थ पाठशाला की स्थापना की थी। जनता के अपने प्रयत्नों द्वारा स्थापित किये गये शिक्षा-केन्द्रों में बनारस का हिन्दू विश्वविद्यालय है। उसके विकास का प्रारम्भ एनीबीसेंट द्वारा स्थापित सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज से हुआ था और आगे चल कर पं० मदनमोहन मालवीय के प्रयत्न से उसने एक विश्वविद्यालय का रूप प्राप्त कर लिया। सन् १९२० में लखनऊ के कैनिंग कॉलेज तथा अलीगढ के एंग्लो ओरियेंटेल कॉलेज भी, जिनकी स्थापना जनता के अपने प्रयत्नों से हुई थी, विश्वविद्यालयों के रूप में परिवर्तित कर दिये गये।

इस प्रकार हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार, सरकार, ईसाई प्रचारकों तथा जनता के जागरूक व्यक्तियों के सम्मिलित प्रयत्न से हुआ था, जिसने कि आगे चल कर हिन्दी भाषा तथा साहित्य को अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य से प्रभावित करने मे सहायता दी। इन्हीं शिक्षा-संस्थाओं के माध्यम से हिन्दी-प्रदेश के लोगों को अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का परिचय प्राप्त हुआ था और उन्होंने अपने भाषा तथा साहित्य की प्रगति के लिए उसके विकास से शिक्षा लेना प्रारम्भ किया था।

३–ईसाई प्रचारक

ईसाई प्रचारक, हिन्दी-प्रदेश में सर्व प्रथम सन् १८१० में आये थे,[1] किन्तु उन्होंने हिन्दी भाषा तथा साहित्य से सम्बन्धित कार्य का प्रारम्भ, इसके बहुत पहले, श्रीरामपुर मे अपने केन्द्र की स्थापना के समय से ही प्रारम्भ कर दिया था। सौभाग्य से श्रीरामपुर में ईसाई प्रचारकों द्वारा किये गये समस्त कार्य का विवरण, जॉन क्लार्क मार्श मैन के ग्रन्थ 'दि लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ कैरे, मार्शमैन एण्ड वार्ड' में, जिसका प्रकाशन दो खण्डों मे सन् १८५९ में हुआ था, प्राप्त है; नहीं तो सन् १८१२ के मार्च महीने की १८ तारीख को वहां जो आग लगी थी, तथा १८५७ के विद्रोह के समय उस केन्द्र का जो ध्वंस किया गया था, इन दोनों के फलस्वरूप आज हमें वहां रह कर काम करने वाले ईसाई प्रचारकों के सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात न होता। मिशन की स्थापना के थोड़े समय बाद ही, सन् १८०० मे श्रीरामपुर मे एक प्रेस भी स्थापित हो गया था।[2] उसी प्रेस से सन् १८०१ में कैरे द्वारा बंगला मे अनुवादित, बाइबिल का एक संस्करण प्रकाशित हुआ था। बांला भाषा मे मुद्रित होने वाली यही सर्व

१—जॉन क्लार्क मार्शमैन : 'दि लाइफ एण्ड टाइम्स आफ कैरे, मार्शमैन एण्ड वार्ड' पृ० ४२९

२—वही, पृ० १२९

प्रथम रचना थी। सन् १८०४ में श्रीरामपुर के ईसाई प्रचारकों ने अपने धर्म-ग्रथ को प्राच्य देशों की कई भाषाओं में अनुवादित करने की योजना बनाई थी।[1] इस प्रस्ताव में यह स्वीकार किया गया था कि भारतवर्ष की कम से कम सात प्रमुख भाषाएं हैं—बँगाली, हिन्दुस्तानी, उड़िया, तेलगू, कन्नड, तथा तामिल; और इस योजना को बनाने वालों को यह आशा थी कि इनसे से कुछ भाषाओं में बाइबिल के अनुवाद किये जा सकते है। उनके मन में यह सम्भावना अनुकूल परिस्थिति को देखकर तथा कुछ अन्य विशेष कारणों से उत्पन्न हुई थी। "उन्होंने जो अनुवाद किये थे, उससे उन्हें अनुवाद-क्रिया की भली प्रकार शिक्षा मिल गई थी; फोर्ट विलियम कॉलेज के सम्बन्ध से वे इन सभी प्रदेशों के शिक्षित व्यक्तियो का सहयोग प्राप्त करने की स्थिति मे थे; बाइबिल से सम्बन्धित उन्होंने एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना कर ली थी; उनके पास मुद्रण की विशेष व्यवस्था थी तथा नए अक्षर बनाने के भी साधन थे, और इन सब के अतिरिक्त उनकी स्थिति कुछ ऐसी थी कि वे बड़ी सुविधा के साथ अपने धार्मिक प्रकाशनों को वितरित कर सकते थे।"[2] बाइबिल के हिन्दी अनुवाद का प्रारम्भ सन् १८०३ में ही हो गया था; और सन् १८१० में उसके कुछ अश मुद्रित भी हुए थे।

अनुवाद की इन योजनाओं के साथ ही देश के भीतरी भागों में भी प्रचार-केन्द्र स्थापित करने का एक प्रस्ताव रखा गया था। उन केन्द्रों में जिन प्रचारकों की नियुक्ति होनी थी, उन्हें अपने भरण-पोषण के लिए कुछ व्यापार का आश्रय लेना था। इस उद्योग से होने वाले लाभ को उन्हें मिशन को देना था, और व्यक्तिगत खर्च के लिए उतना ही धन स्वीकार करना था, जितना कि श्रीरामपुर में रहने वाले उनके सह-योगियों को मिलता था।[3] इस योजना में यह भी स्वीकार किया गया था कि विभिन्न केन्द्रों में कार्य करने वाले प्रचारक, वर्ष मे एक बार किसी स्थान पर एकत्र होकर विचार-विमर्श अवश्य कर लें। यह योजना मार्शमैन की बनाई हुई थी।

सन् १८०९ में बाईबल का अनुवाद हिन्दुस्तानी में हुआ था; और उसी समय उसका एक पंजाबी सस्करण भी प्रकाशित हुआ था। इन दोनों संस्करणों की प्रतियों को देखकर श्रीरामपुर के ईसाई प्रचारकों की यह बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि किसी प्रकार इन्हें उन क्षेत्रों में बांटा जाये जहां ये भाषाएँ बोली जाती है। वैम्बरलेन नामक एक प्रचारक, जो साहसिक मनोवृत्ति का था, तथा जिसमें इन भाषाओं के सीखने की विशेष रुचि थी, इस कार्य को करने के लिए तैयार हुआ। सहारनपुर, जो

१—जॉन क्लार्क मार्शमैन : 'दि स्टोरी ऑफ कैरे, मार्शमैन एण्ड वार्ड', १९३

२—वही, पृ० ८९

३—वही, पृ० ९०

उस समय सिक्ख और अंग्रेजी राज्य की सीमाओं पर स्थित था, इन ग्रंथों के प्रचार के सम्बन्ध मे प्रथम केन्द्र के रूप में उपयुक्त समझा गया। इस सम्बन्ध में सपरिषद् गवर्नर जरनल के पास, सितम्बर के महीने में, इस नगर मे जाने के लिए दो ईसाई प्रचारकों को अनुमति देने के लिए आवेदन-पत्र भेजा गया। इस आवेदन-पत्र में वहां जाने का उद्देश्य बाईबल के हिन्दुस्तानी तथा पंजाबी अनुवादों को सुधारना बताया गया था। किन्तु यह कहकर, कि वस्तु-स्थिति को देखते हुए, उन यूरोपियनों को छोड़ कर जो कि नागरिक अधिकारी थे, अन्य किसी यूरोपीय व्यक्ति को इस सीमा-प्रदेश पर भेजना अनुपयुक्त होगा, यह प्रार्थना-पत्र अस्वीकार कर दिया गया था। इस उत्तर के मिलने पर मार्शमैन ने स्वय जाकर तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो से भेंट की ; और उनसे आगरा अथवा दिल्ली में एक प्रचार-केन्द्र स्थापित करने की अनुमति ले ली। सन् १८१० की १६ नवम्बर को चैम्बरलेन को आगरे की ओर जाने का आज्ञापत्र मिला, और उसने वहां पहुचकर मिशन की स्थापना कर दी। किन्तु वहां उसे रहे बहुत समय नहीं हुआ था, जब कि उसे तथा उसके साथ के अन्य ईसाई प्रचारकों को तत्काल आगरा छोड़ देने का आदेश मिला ; क्योंकि इन प्रचारकों ने सैनिकों को भी धार्मिक शिक्षा देने का अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। हिन्दी-प्रदेश में ईसाई प्रचारकों ने अपना केन्द्र स्थापित करने का जो प्रयत्न प्रारम्भ किया था, उसकी समाप्ति इस प्रकार हुई।

किन्तु श्रीरामपुर के ईसाई-प्रचारकों का हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे सम्बन्धित कार्य, हिन्दी-प्रदेश मे अपना केन्द्र स्थापित करने के प्रयत्न से ही नही समाप्त हो जाता। वे अपने धर्म-ग्रंथ का अनुवाद, हिन्दी तथा उसकी ग्रामीण बोलियों में करते रहे। सन् १८०६ से लेकर १८२६ तक उन्होंने उसका अनुवाद हिन्दी (पश्चिमी प्रदेश की हिन्दी का एक रूप), ब्रजभाषा, अवधी, मागधी, उज्जैनी तथा बघेली में कर लिया था।[1] सन् १८२१ में बाइबिल के कुछ अंश हिन्दुस्तानी मे भी प्रकाशित हुए, साथ ही बाइबिल का एक हिन्दी रूपान्तर भी, जिसमें अरबी, फारसी के शब्दों को जान बूझ कर छोड़ दिया गया था, बनारस तथा गाजीपुर के निवासियों में प्रचार के लिए प्रकाशित हुआ था।[2] किन्तु ये सभी अनुवाद आज प्राप्त नही है, या तो वे सन् १८१२ में श्रीरामपुर में लगने वाली आग में समाप्त हो गये, अथवा सन् १८५७ के विद्रोह में विनष्ट हुए।

---

१ 'मेमोरीज ऑफ टेन मिश्नरीज ऑफ श्रीरामपुर, पृ० ७८

२ वही, पृ० ८१

सन् १८१३ की घोषणा के अनन्तर, जब ईसाई प्रचारकों को, विलियम बेलवर फोर्स द्वारा, ब्रिटेन की पार्लियामेंट में, उनकी रक्षा के लिए प्रस्तुत किये गये तर्कों के कारण, अपने अनुकूल परिस्थिति प्राप्त हुई, तो उन्होंने फिर से हिन्दी-प्रदेश में अपने केन्द्रों के स्थापन का कार्य प्रारम्भ किया। इस बार उनके प्रचार-केन्द्र की स्थापना आगरा के निकट सिकन्दरा में, सन् १८१३ में सर्व प्रथम, हुई। सन् १८१६ तथा १७ में मेरठ तथा बनारस में भी ईसाई प्रचारकों के केन्द्र स्थापित हुए, और सन् १८७२-७३ तक हिन्दी-प्रदेश में इन केन्द्रों की संख्या ७० के लगभग पहुँच गई। उनमें से यदि सिकन्दरा को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो आगरे में पांच, बनारस में चार तथा प्रयाग में चार केन्द्र थे। इस समय तक, ईसाई धर्म का प्रचार करने वाली जिन संस्थाओं ने हिन्दी-प्रदेश में अपने केन्द्र स्थापित किये थे, उनके नाम, उनके कार्यारम्भ का वर्ष तथा उनके द्वारा स्थापित केन्द्रों की संख्या इस प्रकार है:—

चर्च मिशनरी सोसाइटी,	प्रारम्भ १८१३,	केन्द्र संख्या	१७
बैप्टिस्ट ,, ,, ,	,, १८१७,	,,	५
लन्दन ,, ,, ,	,, १८२२,	,,	५
सोसाइटी फॉर दि प्रोपेगेशन ऑफ़ गॉस्पल,	,, १८३३,	,,	३
अमरीकन प्रेसिपिटेरियन बोर्ड,	,, १८३६,	,,	११
गॉसनर्स इवेन्जिकल लूथरन मिशन,	,, १८४३,	,,	१
अमरीकन मेथोडिस्ट एपिस्कोपल मिशन,	,, १८५८,	,,	१३
दि इण्डियन नार्मल स्कूल एण्ड फीमेल इन्सट्रक्शन सोसाइटी.	,, १८६७,	,,	२
सोसाइटी फॉर प्रोमोटिंग ऑफ फीमेल एजूकेशन इन दि ईस्ट,	,, १८६८,	,,	१
चर्च ऑफ स्कॉटलैण्ड ,	,, १८६९,	,,	१[1]

इन विभिन्न ईसाई प्रचार-संस्थाओं ने, अपने केन्द्रों की स्थापना, अपने धर्म तथा उसके मान्य ग्रंथ बाइबिल के प्रचार के लिए की थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए,

१—'दि रिपोर्ट ऑफ दि जनरल मिशनरी कान्फ्रेंस—इलाहाबाद (७१८२-७३)', एपेन्डिक्स

प्रचारकों ने, शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा ईसाई साहित्य के वितरण के साधनों को ग्रहण किया था। ईसाई प्रचारकों के द्वारा स्थापित शिक्षा-संस्थाओं का अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार में जो कुछ योग रहा है, उसके सम्बन्ध में हम पहले ही अध्ययन कर चुके हैं, इसलिए आगे हम ईसाई साहित्य के प्रकाशन तथा प्रचार का अध्ययन करेंगे। यह अध्ययन विशेष रूप से हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से ही किया जायेगा।

हिन्दी के ईसाई साहित्य के इतिहास का प्रारम्भ "ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटीज" की स्थापना से आरम्भ होता है, जिन्होंने विशेष रूप से बाइबिल तथा अन्य ईसाई धर्म-ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये थे। इस प्रकार की प्रकाशन संस्थाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'बनारस ट्रैक्ट सोसाइटी' 'नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटी', 'क्रिश्चियन वरनाकुलर लिट्रेचर सोसाइटी', 'क्रिश्चियन लिट्रेरी सोसाइटी', 'नार्थ इण्डिया आग्जोलियरी बाइबिल सोसाइटी' तथा 'बाइबिल ट्रांसलेशन सोसाइटी' थीं। इन प्रकाशन संस्थाओं से निकलने वाले ग्रंथों के मुद्रण के लिए सिकन्दरा, आगरा, इलाहाबाद, बनारस तथा फरुखाबाद में प्रेसों की स्थापना की गई थी। इनमें मुद्रित ग्रन्थों की सूची मात्र के अवलोकन से, इन प्रकाशनों का प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं।

'नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटी' ने जिसकी स्थापना सन् १८४८ की ३० जुलाई को हुई थी, सन् १८५४ तक निम्नलिखित ग्रंथ प्रकाशित किये थे :

(१) 'ग्रहीत पद'—बाइबिल से संकलित कुछ गद्यांश जिनमें मुक्ति प्राप्ति के मार्ग को स्पष्ट किया गया था तथा अन्त में हिन्दी में कुछ छोटी छोटी प्रार्थनाएं थीं।

(२) 'वेद तत्व'—प्रोफेसर विल्सन के ग्रन्थ 'इंट्रोडक्शन टू दि रिग्वेद सहिता' का हिन्दी रूपान्तर जिसमें वेदों का सार, उस युग का एक सामान्य विवरण तथा विशेषताओं की विवेचना थी।

(३) 'हिस्ट्री ऑफ मोजेज'—जिसमें सिकन्दरा ऑर्फनेज प्रेस के एक कलाकार द्वारा तीन चित्र भी जोड़ दिये गये थे।

(४) 'मुक्तिमाला'—इसमें संक्षेप में ईसाई धर्म के सिद्धान्तों का, अधिकांश में, बाइबिल के शब्दों में ही सार था।

(५) 'सोलेमन की कहावतें हिन्दी छन्दों में'।

(६) 'बार्थ का बाइबिल का इतिहास'।

(७) धर्म तुला।[1]

इस नामावली से ही यह स्पष्ट हो जाता है, कि ईसाई प्रचारकों ने केवल अपनी धार्मिक भावना के ग्रन्थों का ही नहीं, वरन् 'वेदतत्व' जैसी अन्य विषय की रचना का भी प्रकाशन किया था। सन् १८५८ में, इस प्रदेश की सरकार का स्थानान्तर, आगरा से इलाहाबाद को हो गया था। उस समय आगरे की यह ईसाई प्रचारकों की प्रकाशन संस्था भी समाप्त कर दी गई, और नई राजधानी में वह फिर से स्थापित हुई। आगरा में संगृहीत पुस्तकें तथा प्रेसों में तय्यार सभी ग्रन्थ, १८५७ के विद्रोह में विनष्ट कर डाले गये। इस स्थिति में, आरम्भिक दिनों के ईसाई साहित्य के सम्बन्ध में हम, केवल इन शीर्षकों के सहारे ही अध्ययन कर सकते हैं।

ईसाई प्रचारकों द्वारा स्थापित शिक्षा-संस्थाओं की संख्या भी प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, इसलिए उनकी प्रकाशन संस्थाओं पर ही, इन विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों के प्रकाशन का भार पड़ा, और इसीलिए उन्हें बहुत से अन्य विषयों के ग्रन्थों को प्रकाशित करना पड़ा। इस प्रकार के कुछ ग्रंथ 'कथासार', 'भूगोलसार', 'रसायन प्रकाश', 'स्त्रियों के वर्णन', 'मूर्ति-पूजा का वर्णन' आदि हैं। ईसाई प्रचारकों द्वारा प्रकाशित विशाल धार्मिक साहित्य में सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'बाइबिल' तथा जौन बनियन के ग्रन्थ 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' के रूपान्तर हैं।

हिन्दी के ईसाई साहित्य में भाषा का स्वरूप बहुत व्यवस्थित तथा परिमार्जित नहीं है। यद्यपि ईसाई लेखकों ने प्रयत्न करके अपनी रचनाओं से अरबी, फारसी शब्दों का बहिष्कार किया है, और उन्हें स्थानगत रूप प्रदान करने के लिए, ग्रामीण शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है, फिर भी उनके द्वारा व्याकरण की जो भूलें हुई हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके लेखक विदेशी हैं। कुछ स्थानों पर तो उन्होंने अंग्रेजी के वाक्य-विन्यास को शब्दशः अनूदित कर लिया है। ईसाई लेखकों ने भाषा की दृष्टि से, सदासुखलाल तथा लल्लू जी लाल को अपना आदर्श माना था, इसीलिए वे हिन्दी भाषा को इन लेखकों की रचनाओं के आगे नहीं ले जा सके। उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा के रूप को स्पष्ट करने के लिए, आगे हम बनियन के 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' के हिन्दी रूपान्तर 'यात्रा स्वप्नोदय' से कुछ पंक्तियां उद्धृत करते हैं :

"उसी दशा में वह घर फिर आया और कहीं घर के लोग स्त्री पुत्रादि इस बात को न जान लेवें, इस कारण अपने चित्त में यथाशक्ति धीरज धर चुपका हो रहा, परन्तु

---

१ यह नामावली 'नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटी' के एक सूचीपत्र से ली गयी है।

चित्त के दुःख के बढ़ने से जब उस दुःख को न सह सका तब स्त्री पुत्रादि के निकट अपने मन का सम्पूर्ण शोक खोल कर कहने लगा कि हे प्रिय भार्या, हे मेरे प्यारे पुत्रों मेरे ऊपर तुम्हारा बड़ा स्नेह है। देखो तुम जो मेरी पीठ पर बोझ। देखते हो उसी के द्वारा मैंने दृढ़ समाचार सुना है कि स्वर्ग से अग्नि बरस कर हमारे इस नगर को भस्म करेगी और इस महा आपदा से बचने के निमित्त मैं कोई उपाय नहीं देखता हूँ।"[1]

ईसाई प्रचारकों के इन उद्योगों का मूल उद्देश्य, भारतीयों को अपने धर्म में परिवर्तित करना था। जब से हिन्दी-प्रदेश में उनका प्रवेश हुआ था, सरकार की ओर से उन पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं था; फिर भी उन्हें विशेष सफलता नहीं मिल रही थी, और न उनका प्रभाव ही बढ़ रहा था। हिन्दू समाज के निम्नवर्ग में उन्होंने, काफी संख्या में लोगों को अपने धर्म में परिवर्तित कर लिया था, किन्तु उच्चवर्ग के लोग उनके प्रभाव से दूर ही रहे थे। ईसाइयों द्वारा स्थापित शिक्षा-संस्थाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी भी उनके प्रभाव में विशेष नहीं आये थे। एच० एस० कॉटन ने अपने ग्रन्थ 'न्यू इण्डिया' में इस असफलता का मूल कारण इस प्रकार स्पष्ट किया है :

"समस्त शिक्षित-समुदाय ने यह भली प्रकार समझ लिया है कि यूरोप के बुद्धिवादी परम्परागत धर्म से अलग हो रहे हैं।"[2]

आगे उसने लिखा है : "और चाहे कुछ भी हो जाय, हिन्दू धर्म से ईसाई धर्म में परिवर्तन पूर्णतः असम्भव है।"[3] ये शब्द अक्षरशः सही हुए हैं, और इसका सबसे बड़ा कारण हिन्दू-धर्म की व्यापक भावना रही है। वस्तुतः ईसाई धर्म के पास, उसे देने के लिए, कुछ नया था ही नहीं।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार में ईसाई प्रचारकों का योग, अंग्रेजी शिक्षा प्रदान करने तथा शिक्षा-संस्थाओं के लिए पाठ्य-ग्रन्थों का निर्माण करने तक ही सीमित रहा। इन सीमाओं के भीतर भी उनके कार्य का बहुत महत्व है, क्योंकि इनकी शिक्षा-संस्थाओं ने अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य को लोकप्रिय बनाने में विशेष सहायता दी; तथा उनके द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों ने हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति को बढ़ाया और उसे नये-नये विषयों के भावों तथा विचारों को प्रकट करने की योग्यता प्रदान की। ईसाई प्रचारकों के कार्य का एक और दृष्टि से भी महत्व है ; उन्होंने, लोगों को अपने धर्म में परिवर्तित करने के प्रयत्न में, जिन तर्कों का आश्रय लिया था, उनके द्वारा उन्होंने भारतीय समाज की दुर्बलताओं पर विशेष रूप से प्रकाश डाला था। इस प्रकार उन्होंने भारतवर्ष में एक समाज सुधार की भावना

१—'यात्रा-स्वप्नोदय', पृ० १—२
२—एच० एस० काटन : 'न्यू इण्डिया', पृ० ११४
३—वही, पृ० ११४

को उत्पन्न कर दिया था, जिसकी प्रेरणा से आगे चलकर धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का विकास हुआ।

धार्मिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक आन्दोलन

अंग्रेजी शिक्षा तथा ईसाई प्रचारकों के कार्य के सब से महत्वपूर्ण परिणाम राजनीतिक, धार्मिक, तथा सामाजिक आन्दोलन थे, जो अपने साथ यूरोपीय पुनरुत्थान, सुधार तथा प्रतिसुधार की भावनाओं को, तथा कुछ आगे की विकास अवस्थाओं को भी लाये थे। इन सभी आन्दोलनों का उद्गम, किसी न किसी रूप में, अंग्रेजी प्रभाव से बताया जा सकता है, यद्यपि आगे चल कर उनमें अपनी स्वतन्त्र विशेषताओं का विकास हो गया था। प्रस्तुत अध्ययन में, इन आन्दोलनों पर केवल इस दृष्टि से विचार किया जायगा, कि कहां तक वे पाश्चात्य देशों से आये हुए नये भावों तथा विचारों से प्रभावित थे, और कहां तक उन्होंने उन्हें, हिन्दी-प्रदेश में प्रचलित करने का प्रयास किया था। इस प्रसंग में, इस तथ्य की ओर भी संकेत किया जायेगा कि कहां तक इन आंदोलनों में, नये विचारों तथा भावों के प्रचार के लिए, पाश्चात्य देशों में प्रचलित प्रचार के साधन उपयोग में लाये गये थे; क्योंकि इन साधनों के उपयोग से ही हिन्दी भाषा तथा साहित्य को अपने विकास के लिए विशेष गति प्राप्त हुई थी।

क—धार्मिक आन्दोलन

अंग्रेजी प्रभाव की सबल प्रेरणा से, भारतवर्ष में उत्पन्न होने वाला सबसे पहला धार्मिक आन्दोलन, 'ब्रह्म समाज' का था। इस आन्दोलन के जन्मदाता राजा राम मोहन राय को, उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दू समाज ने, धार्मिक, सामाजिक तथा शिक्षा के क्षेत्रों में जो कुछ भी वास्तविक प्रगति की है, उस सब का प्रमुख नेता कहा गया है।[1] किन्तु राजा राम मोहन राय ने सब से अधिक कार्य, धर्म के क्षेत्र में किया था। उन दिनों ईसाई प्रचारक, हिन्दू धर्म के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों से अनभिज्ञ होने के कारण उसके विभिन्न मतों तथा विश्वासों के सम्बन्ध में उलटी-सीधी बातें कह रहे थे। राजा राममोहन राय को, यह कटु परिस्थिति बड़ी असह्य हुई, और उन्होंने हिन्दू तथा ईसाई, दोनों ही धर्मों के साहित्यों का गहरा अध्ययन करके उनके बीच समन्वय स्थापित करने का विचार किया। इस सम्बन्ध में, यह सोचकर कि उनके ईसाई मित्र बहुत दूर तक उनका साथ न दे सकेंगे, उन्हें एक स्वतन्त्र आन्दोलन का प्रारम्भ करना पड़ा, जिसमें उनके अनेक जागरूक मित्रों ने साथ दिया। इस प्रकार संस्थापित

१—डॉ जे० एन० फरक्यूहर : 'माडर्न रिलिजस मूवमेण्ट्स इन इण्डिया' (१९२४) पृ० २९

होकर 'ब्रह्म समाज ने', हिन्दू धर्म को नवयुग की भावनाओं के अनुकूल परिवर्तित करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया । राजा राममोहन राय ने, जब अपनी नवयुग की चेतना से अनुप्राणित दृष्टि से, एक ओर तो प्रचलित हिन्दू धर्म की अनैतिकताओं तथा अन्ध-विश्वासों को देखा, तथा दूसरी ओर, ईसाई तथा इस्लाम धर्मों के विश्वासों में तथा अपने यहां के उपनिषदों में भी स्पष्ट रूप से सत्यता की भावना का अनुभव किया, तो उन्होंने उलझनों से भरी हुई प्रस्तुत समस्या का एक सामान्य हल खोजा । उन्होंने इन तीनों धर्मों के सामान्य आस्तिक तत्वों को लेकर, उन्हें हिन्दू धर्म के मूल सत्यों के रूप में घोषित किया । राजा राममोहन राय का विचार था कि वे तत्व एक विश्व-धर्म के भी मूलाधार हो सकते हैं, और उन्हें लेकर सभी मनुष्यों के बीच एकता का सूत्र स्थापित किया जा सकता है ।[1] 'ब्रह्म-समाज' ने अपने विस्तृत जीवन-काल में सदा आस्तिक विश्वासों का प्रचार किया, तथा मूर्ति-पूजा का विरोध करते हुए धर्म तथा सामाजिक जीवन के क्षेत्रों में सुधार की भावनाओं पर विशेष जोर दिया ।[2]

यह आन्दोलन बंगाल में उत्पन्न हुआ था, और इसका प्रभाव, उस प्रदेश के बाहर और कहीं विशेष देखने को नहीं मिलता । हिन्दी-प्रदेश के लोग इस आन्दोलन के सम्पर्क में सर्व प्रथम उस समय आये थे, जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् १८६४-६५ में बंगाल की यात्रा की थी । उस समय 'ब्रह्म समाज' के सर्व प्रमुख नेता देवेन्द्रनाथ ठाकुर थे, तथा केशवचन्द्र सेन और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी प्रकाश में आने लगे थे । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस आन्दोलन से विशेष प्रभावित हुए थे, और हिन्दी-प्रदेश में लौटने के अनन्तर उन्होंने उस प्रकार की कई संस्थाएं स्थापित कीं, जिस प्रकार की संस्थाएं उन्होंने बंगाल में देखी थीं । 'ब्रह्म समाज' के अनुकरण स्वरूप उन्होने 'तदीय समाज' का प्रारम्भ किया था; किन्तु जैसा हम उनके जीवन से परिचित होने के कारण भली प्रकार जानते हैं, आगे चलकर उन्होंने, साहित्य के क्षेत्र में ही अपनी प्रतिभा का विशेष उपयोग किया, इसीलिए उन्हें धर्म के क्षेत्र में नये युग के प्रारम्भ में सफलता नहीं मिली ।

हिन्दी-प्रदेश में, धर्म के क्षेत्र में, नव-युग की भावना का प्रारम्भ 'आर्य समाज' के आन्दोलन ने किया था । डॉ० जे० एन० फरक्यूहर ने अपने ग्रंथ 'माडर्न रिलिजस मूवमेंट्स इन इण्डिया' में, 'आर्य समाज' को एक ऐसा आन्दोलन कहा है,

---

१—डॉ० जे० एन० फरक्यूहर : माडर्न रिलिजस मूवमेंट्स इन इण्डिया (१९२४)' पृ० ३६—३७

२—वही, पृ० २९

जिसमें सुधारों को रोकने तथा पुराने विश्वासों की रक्षा करने का प्रयास किया; किन्तु वास्तव में उन्होंने इस आन्दोलन के महत्व को नहीं समझा। इस आन्दोलन के नेताओं ने वेदों की ओर चलने के लिए अवश्य कहा था; किन्तु यह उसी प्रकार था, जिस प्रकार कि यूरोपीय पुनरुत्थान के नेताओं ने, पुरातन साहित्य के अध्ययन पर बल दिया था। इस आन्दोलन में नवयुग की भावना स्पष्ट रूप से अनुप्राणित देखी जा सकती है। यूरोप में पुनरुत्थान के अनन्तर, धार्मिक क्षेत्र में सुधार की भावना का विकास हुआ था; किन्तु 'आर्य समाज' का आन्दोलन सामाजिक विकास की इन दोनों अवस्थाओं को एक साथ लेकर आया था। 'आर्य समाज' के नेताओं ने हिन्दू धर्म में उत्पन्न हो गये अन्ध-विश्वासों को दूर करने तथा उसे अपनी शक्तिभर वैज्ञानिक रूप देने का प्रयास किया था।

'आर्य समाज' आन्दोलन का प्रारम्भ सन् १८७५ से माना जाता है, जब बम्बई में इसकी स्थापना हुई थी; किन्तु इसके संस्थापक दयानन्द सरस्वती ने, इसके बहुत पहले, अपनी विचारधारा का प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। इसके अतिरिक्त, 'आर्य समाज' आन्दोलन का विकास, उसके जन्म-स्थान में नहीं, वरन् विशेष रूप से हिन्दी-प्रदेश तथा पंजाब में हुआ था। यद्यपि इस आन्दोलन के जन्मदाता स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन में अंग्रेजी प्रभाव मिलना दुष्कर है; तथापि उन्होंने जिस आन्दोलन का प्रारम्भ किया था, उसकी रूपरेखा, उस वातावरण में बनी थी, जो अंग्रेजी प्रभाव से परिपूर्ण था। उन्होंने अपने देश के पुरातन धार्मिक साहित्य का बड़ा गहरा अध्ययन किया था; और प्रारम्भ में अपने विचारों का प्रचार वे पण्डितों की भाषा, संस्कृत में ही किया करते थे। किन्तु इस प्रकार की भाषा का उपयोग करके वे केवल थोड़े से श्रोताओं को ही एकत्र कर पाते थे। सन् १८७२ में जब वे कलकत्ते गये, और उन्होंने वहां की जनता के बीच 'ब्रह्म समाज' के बढ़ते हुए प्रभाव को देखा, तो उनका कुछ झुकाव उसकी ओर होने लगा था। उन्होंने 'ब्रह्म समाज' के तत्कालीन नेता केशवचन्द्र सेन से भेंट की, और उन्हीं के प्रभाव से उन्होंने जनता की भाषा में प्रचार करने के महत्व को समझा। उनके कार्य का क्षेत्र विशेष रूप से हिन्दी प्रदेश था, इसलिए उन्होंने अपने महत्व पूर्ण ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' को हिन्दी में ही लिखकर, सन् १८७४ में प्रकाशित किया।

अपने इस ग्रंथ में दयानन्द जी ने हिन्दू समाज के अन्ध विश्वासों, मूर्ति-पूजा

१—डॉ० जे० एन० फरक्यूहर 'माडर्न रिलिजस मूवमेंट्स इन इण्डिया' (१९२४), पृ० ८९

आदि के विरुद्ध, अपने विचार प्रकट किये; तथा एक ही ईश्वर की आध्यात्मिक साधना पर बल दिया। उन्होंने कर्म के सिद्धांत के पक्ष में भी तर्क प्रस्तुत किये तथा यह दिखाया कि दुष्ट कर्मों के करने पर क्षमा असम्भव है। वेदों को उन्होंने समस्त ज्ञान के भण्डार के रूप में स्वीकार किया था; और निम्न जातियों के लोगों, यहां तक कि अछूतों को भी, उन्होंने वेदों के पढ़ने का अधिकार प्रदान कर दिया।

हिन्दी-प्रदेश के शिक्षित नवयुवकों ने, जिनकी विचार-शृंखला अंग्रेजी प्रभाव को लेकर इसी दिशा की ओर चल रही थी, दयानन्द जी में अपने महान नेता के दर्शन किये और इस नये आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। 'आर्य समाज' का आन्दोलन इस प्रकार, पूर्णतः भारतीय पृष्ठभूमि में प्रारम्भ होकर, अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार के साथ शीघ्रता से विकसित हुआ था; क्योंकि उसने भी उन्हीं भावनाओं, पुरातन साहित्य के पुनरुत्थान, धर्म के क्षेत्र में सुधार तथा कर्तव्य के प्रति एक सम्मान की भावना का प्रचार किया था।

हिन्दी-प्रदेश में प्रति-सुधार ('काउण्टर-रिफार्मेशन') की भावना की अभिव्यक्ति, 'भारत-धर्म-महामण्डल' की स्थापना के रूप में हुई। 'आर्य समाज' आन्दोलन के द्वारा शिक्षित नवयुवकों में एक जागरण की भावना उत्पन्न हो गई थी, जिसे लेकर उन्होंने पुराने विश्वासों की तर्क सम्मत व्याख्या करना प्रारम्भ कर दिया था। इस नये आन्दोलन का यदि निकट से अध्ययन किया जाय, तो यह स्पष्ट हो जाएगा, कि 'आर्य समाज' आन्दोलन में जो कमियां थीं तथा उसने जो अतिचार किये थे, उन्हें ही दूर करने तथा सुधारने का प्रयास इसके द्वारा सम्पन्न हुआ।

यह नवीन आन्दोलन सर्व प्रथम पंजाब में दीनदयाल शर्मा द्वारा प्रारम्भ किया गया था। शर्मा जी ने न तो अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया था और न संस्कृत साहित्य से ही उनका विशेष परिचय था; किन्तु एक कुशल वक्ता होने के कारण उन्होंने 'आर्य समाज' द्वारा किये गये आरोपों का प्रत्युत्तर देना प्रारम्भ किया था। उनके भाषण-कौशल से आकर्षित होकर बहुत से पढ़े-लिखे नवयुवक उनके चारों ओर एकत्र हो गये थे। इन्हीं नवयुवकों के प्रयत्न के फलस्वरूप हरिद्वार तथा दिल्ली में, सनातन धर्म सभाओं की स्थापना हुई थी। इसी प्रकार की कुछ अन्य संस्थायें उत्तर भारत के अन्य नगरों में भी स्थापित हुई थीं; और सन् १९०२ में इन सभी संस्थाओं को सम्बन्धित करके मथुरा में एक बड़ी संस्था 'भारत-धर्म-महामण्डल' की स्थापना हुई थी। आगे चल कर पंडित मदनमोहन मालवीय इस आन्दोलन के बहुत बड़े समर्थक हो गये थे।

इस आन्दोलन के मुख्य लक्ष्य, धर्म का ऐतिहासिक अध्ययन तथा नवयुग के अनुरूप उस में आवश्यक सुधार करना था। 'आर्य समाज' ने केवल वेदों को ही

महत्वपूर्ण माना था ; इस आंदोलन ने स्मृतियों तथा पुराणों के प्रति भी आदर तथा श्रद्धा की भावना उत्पन्न की। इसने हिन्दू धर्म को नवयुग की भावनाओं के अनुकूल बनाने का प्रयास किया। इस आन्दोलन की प्रेरणा से समाज के प्रत्येक वर्ग को धर्म-ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकार प्राप्त हो गया।

इस स्थान पर, बंगाल में, रामकृष्ण परमहंस तथा उनके शिष्य विवेकानन्द द्वारा परिचालित आन्दोलन की चर्चा भी आवश्यक है। इस आन्दोलन में, भारतवर्ष की उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों के साथ, ईसाई प्रचारकों की जनसेवा की भावना का समन्वय सबसे अधिक आकर्षक प्रतीत होता है। विवेकानन्द ने अपने गुरू श्रीरामकृष्ण परमहंस के उपदेशों का प्रचार करते हुए, हिन्दू धर्म के विश्वासों का जो विश्लेषण किया था, उसमें हमें एक विश्वधर्म की भावना देखने को मिलती है। विवेकानन्द ने अपना प्रचार कार्य, केवल भारतवर्ष में ही नहीं, वरन् विदेशों में भी जाकर किया था। उनके व्याख्यानों में श्रोताओं को काव्य का सा आनन्द प्राप्त होता था और इसी कारण वे उनकी विचारधारा से प्रभावित भी होते थे। हिन्दी के कवियों तथा लेखकों पर भी इस आन्दोलन का कुछ प्रभाव है।

ख—सामाजिक आन्दोलन

हिन्दी-प्रदेश में धार्मिक आन्दोलन का विकास, ऐकांतिक रूप से नहीं हुआ था, वरन् उसके साथ निरन्तर एक समाज-सुधार का आन्दोलन भी चलता रहा था। सामाजिक आन्दोलन का महत्व, उस समाज के लिए बहुत अधिक था, जिसका विकासक्रम शताब्दियों तक अवरुद्ध रहा हो, और जो बहुत समय तक निरन्तर पुराने शास्त्रों को लेकर ही चलता रहा हो। मध्ययुग में भारतीय समाज का विकासक्रम अवरुद्ध हो गया था, और उसी समय उसमें बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती-प्रथा तथा इसी प्रकार की अन्य कुप्रवृत्तियां उत्पन्न हो गईं थीं। अंग्रेजी प्रभाव से उत्पन्न नवीन सामाजिक दृष्टिकोण ने, इन दुर्बलताओं को दूर करने का प्रयास किया।

धार्मिक आन्दोलन की भांति, सामाजिक आन्दोलन का प्रारम्भ भी, बंगाल से ही हुआ था। पिछले पृष्ठों में, फोर्ट विलियम कॉलेज के कार्य का विवरण प्रस्तुत करते हुए यह उल्लेख किया गया था कि किस प्रकार उसके वार्षिक वाद-विवाद में, एक बार सती-प्रथा के ऊपर मानवतावादी दृष्टिकोण से विचार-विमर्श हुआ था। ईसाई प्रचारकों ने भी, इस प्रथा की तथा इसी प्रकार की अन्य मान्यताओं की, बड़ी कटु आलोचना की थी। मध्ययुग में मुगल सम्राट अकबर ने इस अमानुषिक प्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया था, किन्तु वह हिन्दुओं को अपनी विचारधारा के अनु-

कूल नहीं बना सका था, इसलिए उसे सफलता नहीं मिली थी। परन्तु अंग्रेजी शिक्षा ने जिस नव चेतना को उत्पन्न किया था, तथा ईसाई प्रचारकों के प्रचार के फलस्वरूप यदि सभी नहीं, तो बहुत से पढ़े-लिखे व्यक्तिओं को इस प्रथा की बर्बरता तथा नृशंसता विदित हो गयी थी। अंग्रेज अधिकारियों तथा नवशिक्षित-वर्ग के सम्मिलित प्रयत्नों के द्वारा ही, सन् १८२९ में, इस प्रथा को वैधानिक रूप से समाप्त किया गया।

सती-प्रथा की समाप्ति के अनन्तर शिक्षित-वर्ग का ध्यान विधवाओं के पुनर्विवाह के प्रश्न की ओर गया, और इसे सुलझाने में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महामना व्यक्तियों ने भी भाग लिया। उन्होंने इस समस्या को लेकर एक पुस्तक भी लिखी थी। कहा जाता है, उसकी २००० प्रतियों का प्रथम संस्करण, एक सप्ताह के भीतर ही बिक गया था। उस पुस्तक ने, जिसमें स्थान-स्थान पर शास्त्रों से उद्धरण दिये गये थे, इस समस्या के प्रति जन-साधारण का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। समाज के विभिन्न वर्गों के बहुत से लोगों ने प्रार्थना-पत्रों पर हस्ताक्षर करके, उन्हें सरकार के पास भेजा, और उसी के फल-स्वरूप, १८५६ में, विधवाओं के पुनर्विवाह की धारा स्वीकृत हुई। इसी प्रकार बंगाल के जागरूक शिक्षित-वर्ग ने बहु-विवाह की प्रथा को भी समाप्त करने का प्रयत्न किया था। उन्हें इस समस्या के सम्बन्ध में वैधानिक सहायता नहीं प्राप्त हुई थी, किन्तु विषम आर्थिक परिस्थिति के कारण, यह समस्या आगे चल कर अपने आप ही सुलझ गई।

अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार तथा हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ यहां भी सती-प्रथा को समाप्त करने वाली धारा लागू हो गई। किन्तु अन्य क्षेत्रों में सुधार के लिए हिन्दी-प्रदेश के लोगों को स्वयं प्रयत्नशील होना पड़ा, फिर भी उनके लिए उन्होंने बंगाल के समाज सुधार आन्दोलन से प्रेरणा अवश्य ग्रहण की। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की, विधवाओं के पुनर्विवाह के प्रश्न से सम्बन्धित पुस्तिका, 'विधवा विवाह प्रचलित होवा उचित कि ना' को अनुवादित करके पं० ब्रह्मशंकर मिश्र ने १८८१ में प्रकाशित कराया। उन लोगों को, जो अंग्रेजी प्रभाव अथवा अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के फलस्वरूप, तथा 'आर्यसमाज' आन्दोलन की प्रेरणा से, इसी दिशा में सोच रहे थे, इस पुस्तिका के हिन्दी में प्रकाशन से विशेष प्रोत्साहन मिला।

हिन्दी-प्रदेश की सीमा के अन्तर्गत, भारतीय समाज में जो कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई थीं, उन्हें दूर करने का प्रयास विशेष रूप से 'आर्य समाज' आन्दोलन ने किया था। इस प्रदेश में हमें, सामाजिक प्रश्नों के सम्बन्ध में, जनता के हृदय में उतना उत्साह देखने को नहीं मिलता, जितना बंगाल के जन-समुदाय में मिला था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अवश्य, 'तदीय समाज' नामक एक संस्था की स्थापना करके, इसी

दिशा के प्रयत्न का प्रारम्भ किया था, किन्तु आगे चल कर वे साहित्य क्षेत्र में संलग्न हो गये, और यह संस्था मृत-प्राय ही बनी रही। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में शास्त्रों से उद्धरण देते हुए यह दिखाने का प्रयास किया, कि उनमें विधवा विवाह की अनुमति है।[1] इसी प्रकार उन्होंने शास्त्रों का आधार लेकर यह भी दिखाया, कि बाल-विवाह की प्रथा भारतीय समाज में पुरातन युग में प्रचलित नहीं थी, और मध्ययुग में उसका प्रचार हुआ था। उन्होंने बड़ी तर्क पूर्ण शैली में यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था, कि यह प्रथा स्त्री तथा पुरुष दोनों के विकास में, और इसीलिए समाज की प्रगति में भी, बाधक है।[2] उन्होंने बहुविवाह की प्रथा के विरुद्ध भी बड़े प्रभावपूर्ण तर्क प्रस्तुत किये थे।[3]

स्वामी दयानन्द ने, इन समस्याओं के सम्बन्ध में, अपने कर्तव्य की इति श्री केवल अपनी पुस्तक में ही उनके सम्बन्ध में, लिखकर नहीं समझी थी। उन्होंने देश के एक भाग से दूसरे भाग तक यात्रा करके, विद्वत्तापूर्ण वार्त्ताओं तथा लोकप्रिय व्याख्यानों द्वारा लोगों को विधवाओं के पुनर्विवाह के अनुकूल और बाल-विवाह तथा बहुविवाह के परित्याग के लिए तैयार करने का प्रयत्न किया था। 'आर्य समाज' ने अपना संदेश विशेष रूप से हिन्दी-प्रदेश के साधारण जन-समुदाय तक पहुंचाया था। उसके प्रचारकों ने बहुत कुछ उन्हीं रीतियों का अनुसरण किया था, जो ईसाई प्रचारकों द्वारा प्रयोग में लाई जा चुकी थीं। उन्होंने भी, हिन्दी-प्रदेश के प्रमुख नगरों में अपने केन्द्रों तथा शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की थी, और इनके माध्यम से हिन्दू समाज को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया था।

हिन्दू समाज में एक और बहुत बड़ा दोष था। उसमें कुछ वर्गों के लोग विशेष रूप से क्षत्रीय, अपनी नवजात बालिकाओं का वध कर डाला करते थे, क्योंकि वे अपने परिवार में बालिका का जन्म बड़ी लज्जा की बात समझते थे। सर्व प्रथम ईसाई प्रचारकों ने इस बर्बर प्रथा को दूर करने का प्रयास किया; किन्तु जागरूक भारतीयों तथा सरकारी अधिकारियों के सम्मिलित प्रयत्न से ही इसे समाप्त किया जा सका था।

ग--राजनीतिक आन्दोलन

अंग्रेजी शासन के प्रथम अनुभव से हिन्दी-प्रदेश के लोगों को प्रसन्नता हुई थी, क्योंकि उसने, मुगलवंश के शासन के अंतिम दिनों की अराजकता तथा अव्यवस्था

१—स्वामी दयानन्द सरस्वती: 'सत्यार्थ प्रकाश' (१९४४), पृ० ६९ तथा ७४

२—वही, पृ० ४८-४९

३—वही, पृ० ६८

को समाप्त करके, शान्ति के एक युग का सूत्रपात किया था। किन्तु शीघ्र ही प्रखर बुद्धि के लोगों ने यह भली प्रकार समझ लिया, कि इस शांति के युग का सूत्रपात, जनता के लाभ के लिए नहीं, वरन् उसके कला कौशल तथा उद्योगों को समाप्त करके, अंग्रेजों के व्यापारिक हितों को सुरक्षित करने के लिए हुआ है। अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक वर्षों में, हिन्दी के एक लेखक ने, भारतीय कला-कौशल तथा उद्योगों की अवनति के कारणों का विश्लेषण करते हुए लिखा था :

"इसका आंशिक कारण यूरोप की बनी हुई वस्तुओं के लिए हमारी असामान्य लालसा रही है, तथा अंशतः भारतवर्ष में, मनुष्य के श्रम से तैयार होने वाले कपड़ों से, मशीन की बनी हुई वस्तुओं का विशेष सस्ता होना रहा है।" [१]

आगे चलकर उसी लेखक ने इस कटु परिस्थिति से मुक्ति के उपाय की ओर भी संकेत किया था :

"यदि भारतवर्ष में मनुष्य के श्रम से बने हुए कपड़े बाजारों में मशीन के बने हुए कपड़ों से प्रतियोगिता नहीं कर सकते .....तो स्थानीय व्यापारियों को ग्रेट ब्रिटेन के व्यापारियों से कितनी अधिक सुविधा रहेगी, यदि वे अपने यहां भी उसी मशीन का उपयोग करने लगें।" [२]

इसी निबन्ध में और आगे चलकर इस समस्या को सुलझाने के लिए भारतीयों को अंग्रेजों के इतिहास से कुछ शिक्षा ग्रहण करने के लिए कहा गया था :

"बहुत पहले जब इंगलैंड में वाष्प-यन्त्र का आविष्कार नहीं हुआ था, उसके व्यापारी भारतवर्ष से बहुत सा कपड़ा मंगवाया करते थे।.....किन्तु उस सौभाग्य-शाली भूमि के निवासियों में मिल-जुल कर इस प्रकार होने वाली अपनी हानि को रोकने के, उपयुक्त साधनों को खोजने के लिए साहस, शक्ति तथा जन-भावना की कभी भी कमी नहीं थी। ...सन् १७७३ में कुछ देश-भक्त व्यक्तियों ने ग्लासगो तथा एडिन्बरा में जन-सभाएं की थीं। ...सर्व सम्मिति से यह निश्चय किया गया था कि कोई भी व्यक्ति ऐसे वस्त्रों का प्रयोग नहीं करेगा जो कि इस देश में न बनाये गये होंगे, नहीं तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जायेगा। इस दृढ़ निश्चय का बड़ा आश्चर्य जनक परिणाम हुआ। केवल इतना ही नहीं कि उनके उद्योग पुनः बड़ी अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गये, वरन् साथ ही साथ, भारतवर्ष को अपनी वस्तुओं के भेजने से उनकी धन-सम्पत्ति हजारों गुना बढ़ गई है।.....हम लोगों की अब अंग्रेजों

१—'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में काशीनाथ का निबन्ध, पृ० १९४

२—वही, पृ० १९४

वस्तुओं का उपयोग करने की आदत हो गई है ।···प्रत्येक वस्तु जिसकी हमें आवश्यकता है ।····· हमें प्रसन्नता है कि बम्बई के कुछ निवासियों ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे अपने देश के बने हुए कपड़ों को छोड़कर और कहीं के वस्त्रों का उपयोग नहीं करेंगे । यह प्रयत्न सही दिशा की ओर है।"[१]

इस निबन्ध की प्रेरणा से यद्यपि हिन्दी-प्रदेश में जन-सभाओं का आयोजन नहीं किया गया, और न अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक दिनों में विदेशी कपड़ों का उपयोग न करने की प्रतिज्ञाएं ही की गईं, तथापि हिन्दी लेखक अपनी रचनाओं के माध्यम से स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग के सम्बन्ध में प्रचार करते रहे । उनकी यह भी इच्छा थी कि हाथ के उद्योग-धन्धों के स्थान पर, भारतवर्ष में मशीनों के उद्योग-धन्धों की स्थापना की जाय ।[२]

भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों की भांति हिन्दी-प्रदेश में भी राजनीतिक चेतना का प्रचार, सन् १८८५ में 'इन्डियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना के अनन्तर, उसी के प्रयत्न से हुआ था । इसका चौथा वार्षिक अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ था, और इसके अतिरिक्त १९२० तक, इसके सात और वार्षिक अधिवेशन हिन्दी-प्रदेश में हुए थे । इसका आठवां वार्षिक अधिवेशन फिर इलाहाबाद में ही हुआ था, और इसके अनन्तर शेष अधिवेशन लखनऊ (१८९९), बनारस (१९०५), इलाहाबाद (१९१०) बांकीपुर (१९१२), लखनऊ (१९१६), तथा दिल्ली (१९१८) में हुए थे ।

कांग्रेस के प्रारम्भिक काल में, इसके नेताओं ने, अंग्रेजी सरकार से भारतीयों के लिए विशेष सुविधाएं प्राप्त करने का प्रयत्न किया था । उसके विभिन्न अधिवेशनों में स्वीकार किये गये बहुत से प्रस्तावों में उन्होंने, यह मांग की थी, कि भारतीयों को सरकारी विभागों में उच्च-पदों पर नियुक्त किया जाय । इस मांग को और व्यावहारिक रूप देने के लिए, सिविल सर्विस की परीक्षा भारतवर्ष में भी हो, इस आशय का एक प्रस्ताव भी स्वीकार किया था । सन् १९०५ में बंगाल के विभाजन की योजना ने, यह स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेज वास्तव में जनता के हितों के लिए नहीं, वरन् अपने स्वार्थ के लिए, विभाजन तथा शासन की नीति का अनुसरण कर रहे थे । इस बोध को लेकर कांग्रेस के अधिवेशनों में और अधिक राजनीतिक समस्याओं को स्थान दिया जाने लगा । सन् १९१६ में, लखनऊ के अधिवेशन में, इसी राजनीतिक दृष्टि को लेकर, स्वशासन का प्रस्ताव स्वीकार किया गया था ।

राष्ट्रीय चेतना के इस विकास से परिचित न होने के कारण ही कुछ विद्वानों ने

१—'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में काशीनाथ का निबन्ध, पृ० १९४

२—वही, पृ० १९४

रतेन्दु-युग के लेखकों पर अंग्रेजों के प्रति विशेष श्रद्धालु होने का दोष लगाया है। किन्तु वे यह नहीं समझ पाये हैं कि उस युग में नवचेतना से अनुप्राणित प्रत्येक भारतीय, अंग्रेजों के प्रति इसी प्रकार की भावना से ओतप्रोत था। फिर भी इन लेखकों ने प्रारम्भ से ही अंग्रेजी शासन की शोषण की नीति को समझ लिया था, और अपनी रचनाओं में इसके लिए अंग्रेजों का विरोध भी करते रहते थे। अंग्रेजी प्रभाव के इस पक्ष से छुटकारा पाने के लिए, उन्होंने, मशीनों की उत्पादन-व्यवस्था को ग्रहण करने के लिए भी कहा था, तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रति भी जनता के हृदय में स्नेह उत्पन्न किया था।[1] इस सम्बन्ध में इंगलैंड के औद्योगिक तथा सामाजिक विकास से उन्हें पर्याप्त प्रेरणा मिली थी।

हिन्दी-प्रदेश के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन पर, अंग्रेजी प्रभाव, का जो विश्लेषण किया गया है, उसने यहां की जीवनधारा में बौद्धिकता की भावना का समावेश किया, जिसकी प्रेरणा से ये विभिन्न आन्दोलन उत्पन्न हुए। इन आंदोलनों ने अपने विकास में, हिन्दी के लेखकों तथा कवियों के दृष्टिकोण को और अधिक तर्क-सम्मत तथा मानवतावादी बनाने का प्रयास किया, जिससे उनकी रचनाओं में एक मूलभूत परिवर्तन की भावना परिव्याप्त हो गई।

५—मुद्रणकला का प्रचार तथा उसका नवीन भावनाओं के विकास में योग

हिन्दी प्रदेश में मुद्रण कला का प्रचार भी, अंग्रेजी प्रभाव की एक धारा के रूप में, हिन्दी भाषा तथा साहित्य में एक व्यापक परिवर्तन की भावना को जन्म देने वाला रहा है। अपने विकास में उसने बड़ी सफलता के साथ, साहित्य सृजन की सम्पूर्ण व्यवस्था में एक क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। उसने लेखकों को नवीन विषयों की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा प्रदान की; तथा साहित्यिक प्रतिभा को ऐसे विषयों पर व्यर्थ व्यय होने से बचाया, जिनके सम्बन्ध में पहले ही उत्कृष्ट रचनाएं प्रस्तुत की जा चुकी थी। इसके साथ ही साथ उसने साहित्य में नवीन रूपों के प्रयोग तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में विशेष योग दिया। इन पत्र-पत्रिकाओं ने नये विचारों तथा भावों का प्रचार बड़ी द्रुत गति से किया और जीवन के नये मूल्यों के निर्माण में बड़ी सहायता दी।

भारतवर्ष में मुद्रणकला का प्रचार अंग्रेजों द्वारा अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में हुआ था। जॉन क्लार्क मार्शमैन ने अपने एक ग्रन्थ में भारत वर्ष में प्रथम प्रेस की स्थापना का विवरण इस प्रकार दिया है : "जब प्रेस···उसके विभिन्न यंत्रों का जोड़-जोड़कर प्रस्तुत किया गया तो स्थानीय निवासी उसको देखने के लिए एकत्र

१—'हरिश्चन्द्र मैगजीन', पृ० १९४

हुए और उन्होंने इसकी अद्भुत शक्ति के सम्बन्ध में सुनकर इसे एक यूरोपीय देवता घोषित कर दिया।"[1] सन् १८७८ मे, संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान सर चार्ल्स विलकिन्स द्वारा बंगाली अक्षरों का निर्माण हो जाने के अनन्तर, एण्ड्रयूस नाम के एक सज्जन ने हुगली में सबसे पहले बंगला भाषा के प्रेस की स्थापना की थी। प्रेस के लिए अक्षरो के बनाने की रीति, सर विलकिन्स ने. पञ्चानन कर्मकार नामक एक बंगाली व्यक्ति को भी बता दी थी। मुद्रण के लिए बनाये गये ये अक्षर काली कुमार राय द्वारा लिखित सुन्दर वर्णमाला के आधार पर निर्मित हुए थे।

हिन्दी प्रेस की स्थापना का सर्व प्रथम उल्लेख फोर्ट विलियम कॉलेज के सातवें वार्षिक वाद-विवाद के विवरण में, जो कि २७ फरवरी, १८०८ को हुआ था, इस प्रकार मिलता है : "शिक्षित हिन्दुओं ने विभिन्न भागों के हिन्दी के टाईप अक्षरों सहित संस्कृत भाषा के ग्रंथों के मुद्रण के लिये एक प्रेस की स्थापना की है।"[2] कॉलेज के अधिकारियों को यह आशा थी कि "हिन्दुओं के बीच मुद्रण कला का जो प्रचार संस्कृत प्रेस की स्थापना से प्रारम्भ हुआ है, वह इन बहुत पुराने तथा बहु-संख्यक लोगों में ज्ञान की अभिवृद्धि में सहायक होगा ; और साथ ही वह उनके उच्चतम साहित्य तथा विज्ञान के अवशेषों को सुरक्षित करने का भी साधन होगा।"[3]

इस संस्कृत प्रेस की स्थापना फोर्ट विलियम कॉलेज के अधिकारियों के प्रोत्साहन से वहां के 'भाखा मुन्शी' लल्लू जी लाल ने की थी। कॉलेज के संस्कृत तथा हिन्दी के सभी, प्रकाशन इसी प्रेस से, जो कि कलकत्ते के निकट सिजिरपुर में प्रतिष्ठित था, मुद्रित हुए थे। श्रीरामपुर के ईसाई प्रचारकों ने अपने प्रचार साहित्य के मुद्रण के लिए सन् १८०७ में नागरी के टाइप अक्षर बनाये थे। उन्होंने ७०० अक्षर बनाये थे और इसमें उन्हें ७०० पौंड के स्थान पर जितने कि लदन के एक निर्माता ने उन से मांगे थे, केवल १०० पौंड ही व्यय करने पड़े थे।

सन् १८२४ में हिन्दी-प्रदेश में सबसे पहले हिन्दी प्रेस की स्थापना हुई थी; जब कि लल्लू जी लाल. फोर्ट विलियम कॉलेज की नौकरी छोड़ कर, अपने प्रेस को लेकर आगरे में आकर बस गये थे। ईसाई प्रचारकों ने भी सन् १८४० में आगरे के निकट सिकन्दरा में अपने सबसे पहले प्रेस की स्थापना की थी। सरकार ने इस प्रेस

१—जॉन क्लार्क मार्शमैन : 'स्टोरी ऑफ कैरे, मार्शमैन' एण्ड वार्ड, पृ० १००

२ - टामस ए०: रोएबक : 'ऐनल्श ऑफ दि कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम' पृ १५७

३—वही, पृ १५७

को विशेष संरक्षण प्रदान किया था, इसलिये वह जल्दी ही एक बड़ा लाभप्रद उद्योग हो गया था। इस प्रयोग की सफलता को देखकर शीघ्र ही ईसाई प्रचारकों ने इलाहाबाद तथा कानपुर में भी अपने प्रेस प्रारम्भ किये थे। ईसाई प्रचारकों के ये सभी प्रेस अपने प्रचार साहित्य के प्रकाशन के साथ-साथ पाठ्य-ग्रंथों को भी मुद्रित करते थे। सिकन्दरा प्रेस ने अपनी स्थापना के थोड़े समय बाद से ही 'दि आगरा जरनल' नाम के एक समाचार-पत्र का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया था; किन्तु वह थोड़े समय में ही बन्द हो गया। यही हिन्दी-प्रदेश का पहला समाचार-पत्र था।

मुद्रण कला के प्रचार का स्वाभाविक परिणाम पत्र-पत्रिकाओं का प्रारम्भ था। अंग्रेजी शासन की स्थापना के पूर्व, निश्चित रूप से इस प्रकार के साहित्यिक रूपों की सृष्टि नहीं हुई थी। मुसलमानी शासन के अंतिम वर्षों के विवरण में हमें निजी अखबारों तथा उनके लेखक अखबार-नवीसों के उल्लेख मिलते हैं; किन्तु सामान्य भाव से भी उन्हें आधुनिक समाचार-पत्रों का प्रारम्भिक रूप नहीं कहा जा सकता। भारतवर्ष में सर्व प्रथम मुद्रित तथा प्रकाशित होने वाला समाचार-पत्र 'दि बंगाल गजट' था; जिसका प्रकाशन जैम्स ऑगस्टस हिक् नामक मुद्रक ने किया था। इस पत्र का प्रथम अंक, शनिवार, २९ जनवरी, १७८० को प्रकाशित हुआ था; और उस पर घोषणा थी "सभी दलों के लिए मुक्त किन्तु किसी से भी अप्रभावित एक राजनीतिक तथा व्यापारिक साप्ताहिक पत्र"।[1]

इस समाचार-पत्र की रूपरेखा तथा वस्तु-विन्यास के सम्बन्ध में यह लिखा गया है कि 'उसमें आठ तथा बारह इन्चों की नाप के दो पन्ने होते थे, जिनके प्रत्येक पृष्ठ के तीन स्तम्भों में मुद्रित सामग्री होती थी; अधिकांश विज्ञापन, शेष भाग में अधिकतर स्थानीय तथा दूरके सम्वाददाताओं से प्राप्त सूचनाये, जिनमे यहां वहां यूरोप से प्राप्त खबरें भी होती थीं!"[2] अपने प्रारम्भ के महीनों में यह समाचार-पत्र, बड़ी शान्ति तथा समृद्धि के साथ चलता रहा। कलकत्ते के अंग्रेज तथा अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय, उसके लेखों को बड़े मनोयोग से पढ़ते थे। किन्तु आगे चलकर उसने अपने को वॉरेन हेस्टिंग्स तथा सर फिलिप फ्रेंसिस के झगड़े में उलझा लिया, और इन में से प्रथम के सम्बन्ध में, जो उस समय गवर्नर जनरल था, कटु टिप्पणियां भी लिखने लगा। इसका यह परिणाम हुआ कि उसका प्रकाशन १७८२ के मार्च महीने से बन्द कर दिया गया।

१—'ईकोज फ्रॉम ओल्ड कैलकटा', पृ० १६२

२—वही, पृ० १६२

सन् १७८० के नवम्बर मास से कलकत्ता से, अंग्रेजी के एक और समाचार-पत्र, 'इण्डियन गज़ट' का प्रकाशन, सरकार के संरक्षण में प्रारम्भ हुआ। उसके अनन्तर दो और समाचार-पत्र, 'बेंगाल जरनल', फरवरी, १७८२, तथा 'कैलकटा क्रॉनिकल', जनवरी, १७८५ में प्रकाशित हुए। इनके अनन्तर प्रकाशित होने वाली 'दि ओरियेंटल मैगज़ीन अथवा 'कैलकटा मैगज़ीन' एक मासिक पत्रिका थी। इन्हीं समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं के अनुकरण में, विभिन्न भारतीय भाषाओ में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

सन् १८१८ में बँगला का प्रथम समाचार-पत्र, 'समाचार दर्पण' श्रीरामपुर के ईसाई प्रचारकों के प्रयत्न से प्रकाशित हुआ। सन् १८१९ मे ईसाई प्रचारकों तथा जागरूक भारतीयों के बीच मत भेद हो जाने के कारण, राजा राममोहन राय ने एक और बंगला पत्र 'सम्वाद कौमुदी' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र भी सन् १८२६ में कलकत्ते से ही प्रकाशित हुआ था। इसी वर्ष के प्रारम्भ में पण्डित युगल किशोर शुक्ल ने, जो कानपुर से आकर ३७ अहमद तल्ला लेन, कुल्लू टोला, कलकत्ते में बस गये थे, और स्थानीय कचहरी में वकालत करते थे, 'उदन्त मार्तण्ड' नाम के एक समाचार-पत्र के प्रकाशितार्थ अनुमति प्राप्त करने के लिए एक आवेदन-पत्र दिया था। उनका आवेदन-पत्र स्वीकृत हो गया था, और १६ फरवरी, सन् १८२६ को अनुमति-पत्र भी प्राप्त हो गया। उन्होंने सर्व प्रथम एक विज्ञापन निकाला, जिसे अनुष्ठान-पत्र का शीर्षक दिया गया था। बंगला के समाचार-पत्रों ने इस नवीन उद्योग के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचना प्रकाशित की थी :

"नागरी का नवीन संवाद-पत्र अभी हाल में पश्चिमीय लोगों में गुण का प्रचार और ज्ञान का संचार करने के लिए जिसकी अब तक उक्त देश के लोगों में चर्चा मात्र भी नहीं थी, अन्तर्वेद देशान्तर गत कान्हपुर ग्राम निवासी स्वदेश जन मुक्ताभिलाषी काण्यकुब्जजातीय श्रीयुत जुगुल किशोर शुक्ल ने, जाड्यता रूपी तिमिर से आच्छादित हिन्दूस्थानी लोगों के विद्या रूपी मणि पर प्रकाश डालने और उदन्त मार्तण्ड के उदय से गुण और ज्ञान का उदय करने के अभिप्राय से श्री श्रीयुत गवर्नर जनरल की कौन्सिल सभा से इस विषय की विवरण पत्रिका उपस्थित करके अनुमति प्राप्त की है। श्री श्रीयुत की अनुमति प्राप्त करके पूर्वोक्त शुक्ल के द्वारा देवनागरी अक्षरों और हिन्दी भाषा में एक अनुष्ठान-पत्र इस नगर में हिन्दुस्थान और नैपाल देशों के सज्जन महाजनों एवं इंग्लेंडीय महाशयों के बीच प्रचारित हुआ और हो रहा है। इस 'उदन्त मार्तण्ड' का मूल्य दो रुपया मासिक स्थिर हुआ है। जिन महाशयों को यह समाचार पत्र लेना वांछित हो वे मुकाम आंगडा तल्ला गली के ३७ नं० के

मकान में आदमी भेजने से जान जायेगे।"[1]

हिन्दी के इस प्रथम समाचार-पत्र, 'उदन्त मार्तण्ड' का पहला अंक, ३० मई सन् १८२६ को प्रकाशित हुआ था। वह एक साप्ताहिक-पत्र था, और सामान्यतः प्रति मंगलवार को प्रकाशित होता था। इस पत्र में प्रकाशित होने वाली सूचनाओं तथा लेखों के अग्रलिखित शीर्षकों से यह स्पष्ट हो जायेगा कि उसमें किस प्रकार के विषयों की चर्चा रहती थी। 'श्री श्रीमन गवर्नर जेनेरल बहादुर का सभावर्णन,' 'फरासीस देश की खबर,' 'ठट्ठे की बात', 'बहुत मोटा और बड़ा आदमी,' 'गवर्नर बहादुर की खबर,' 'विलायती कपड़ा,' 'लूट की छूट,' 'श्री बुद्धि प्रकाश रामायण अश्वमेध,' 'सर्पदन्शन विष उतारने की औषधि,' आदि आदि। इस समाचार-पत्र में प्रयोग में आने वाली भाषा के रूप को स्पष्ट करने के लिए उसके प्रथम अंक के एक लेख से कुछ पंक्तियां उद्धृत है :

"श्री श्रीमान गवर्नर जेनेरल बहादुर का सभावर्णन"

अंग्रेजी १८२६ साल १६ मे को सरकार कम्पनी अंग्रेज बहादुर और ब्रह्मा के बीच संधि हो चुकने के प्रसंग से यह दरबार शोभनागार हो के श्री श्रीमान लार्ड एमहर्स्ट गवरनर जेनरेलबहादुर के साक्षात से मौलवि मोहम्मद सलिलुद्दीन खां अवध बिहारी ओर से वकालत के काम पावने के प्रसंग से सात पारचे की खिलअत औ ज़िगा सरपेच बादशाह जडाऊ मुक्ताहार औ पालकि मालरदार औ मृत महाराज सुखमयि बहादुर के संतति राजा शिवचन्द्र राय बहादुर औ राजा नृसिंह चन्द्र राय बहादुर औ राज्य औ बहादुरी पदवी मिलने के प्रसंग से सात सात पारचे की खिलअत जिगा सरपेच जड़ाऊ मुक्ताहार ढाल तलवार और मिर्जा मुहम्मद कामिलखां नवाब ताजिम बहादुर के विवाह के प्रसंग से ६६ पारचे की खिलअत जिगा सरपेच जड़ाऊ औ कृपाराम पंडित नवाब फैज मुहम्मदखां बहादुर की ओर से वकालत का पद होने के प्रसंग से दोशाला गोशवारा नीमे आस्तीन सरपेच जड़ाऊ पगड़ी औ विश्वम्भर पंडित की स्त्री के एर्कटिंग वकील देवीप्रसाद तिवाड़ी दोशाला औ मुहम्मद सअीद खां साहिब औ राजा भूपसिंह बहादुर कोटे के एक एक हार भूषित हो कृतकृत्य हुये औ जालवन के रईस के वकील शिवराव ने श्री श्री ·····गवरनर जेनरेल बहादुर के साक्षातकार इस सधि के बधाई के कविता भेंट धरी औ नरः श्रेष्ठ उस कविता का भाव बूझे पर बहुत रीझे।"[2]

एक और हास्य पूर्ण उद्धरण, जो इस समाचार-पत्र में अषाढ़ वदी ८ संवत १८८३

१—'विशाल भारत' (१६३१) : पृ० १६१—६२

२—वही, (१६३१) पृ० ४२२

प्रकाशित हुआ था, प्रस्तुत है :

ठट्ठे की बात

एक वकील वकालत का काम करते-करते बुढ़ा होकर अपने दामाद को वह काम सौंप के आप सुचित हुआ। दामाद कई दिन यह काम करके एक दिन आया औ प्रसन्न होकर बोला हे महाराज आपने जो फलाने का पुराना औ संगीन मोकद्दमा हमें सौंपा था सो आज फैसला हुआ यह सुन कर वकील पछता करके बोला कि तुमने सत्यानाश किया उस मोकद्दमे से हमारे बाप बढे थे तिस पीछे हमारे बाप मरनी समय हमें हाथ उठा के दे गऐ औ हमने भी उसको बना रखा औ अब तक भली भांति अपना दिन काटा औ वही मुकद्दमा तुमको सौंप करके समझा था कि तुम भी अपने बेटे पोतों परोतों तक पालोगे पर तुम थोड़े दिन से दिनों में उसको खो बैठे।"[१]

इन दोनों अवतरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समाचार-पत्र की भाषा बहुत अव्यवस्थित थी, और उसके सम्पादक को विराम-चिह्नों के प्रयोग का थोड़ा सा भी ज्ञान नहीं था। एक ही लेख में उसने, एक शब्द के कई कई रूपों का प्रयोग किया है। किन्तु इस समाचार-पत्र में जितने प्रकार के विषयों का विवेचन हुआ है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है, कि हिन्दी का यह पत्र, अपने समकालीन अंग्रेजी के समाचार-पत्रों का अनुकरण करता हुआ भली प्रकार प्रगति कर रहा था।

इस समाचार-पत्र का अंतिम अंक ४ दिसम्बर सन् १८२७ को प्रकाशित हुआ था, और इसके अनन्तर इसका प्रकाशन ग्राहकों की कमी के कारण बन्द हो गया। इस दुःखात्मक प्रसंग के दो वर्ष बाद, राजा राम मोहन राय का पत्र 'बंगदूत' प्रकाशित हुआ। यह पत्र अंग्रेजी, बँगला, हिन्दी तथा फारसी चार भाषाओं में प्रकाशित हुआ था। सन् १८३४ से एक अन्य पत्र 'प्रजामित्र' का प्रकाशन हुआ। ये सभी पत्र कलकत्ते में ही प्रकाशित हुए थे; और इनके ग्राहक भी मुख्यतः वहीं के लोग थे।

सन् १८४५ में हिन्दी-प्रदेश में, हिन्दी के प्रथम समाचार-पत्र, 'बनारस अखबार' का प्रकाशन हुआ। यह पत्र राजा शिवप्रसाद के संरक्षण में आरम्भ हुआ था, और गोविन्द रघुनाथ ठाटे इसका सम्पादन करते थे। इस समाचार-पत्र में प्रयुक्त भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए, उसके एक सम्पादकीय लेख से निम्नलिखित पंक्तियां उद्धृत हैं :

"यहां जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं की मदद से बनता है उसका हाल कई दफा जाहिर हो

१—विशाल भारत (१९३१) पृ० ४२४

चुका है। अब वह मकान एक आलीशान बनने को निशान तैयार हर चेहरा तरफ से हो गया बल्कि इसके नक्शे का बयान पहिले मुंदर्ज है सो परमेश्वर की दया से साहब बहादुर ने बड़ी तन्देही और मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है। देखकर लोग उस पाठशाले के किते के मकानों की खूबियां अक्सर बयान करते है और उनके बनने के खर्च का तजवीज करते हैं कि जमा से जियादा लगा होगा और हर तरफ से लायक तारीफ के है सो यह सब दानाई साहेब ममदूद की है खर्च से दूना लगावट में मालूम होता है।"[१]

इस उद्धरण की भाषा, अरबी, फारसी शब्दों के बाहुल्य के कारण, किसी प्रकार भी, हिन्दी नहीं कही जा सकती। इस पत्र की भाषा-नीति के विराध में सन् १८५० में, बनारस में ही, तारा मोहन मैत्र ने 'सुधाकर' नाम का एक समाचार-पत्र निकालना प्रारम्भ किया। इसी पत्र के आधार पर, बनारस के सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान, पं० सुधाकर द्विवेदी का नामकरण हुआ था। यह पत्र भी, कलकत्ते से पूर्व प्रकाशित समाचार-पत्रों की भाँति, अंग्रेजी के तत्कालीन पत्रों के अनुकरण पर था। इस प्रकार, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है, कि हिन्दी के समाचार-पत्रों का जन्म तथा प्रारम्भिक विकास, अंग्रेजी प्रभाव की छाया में हुआ था।

इस प्रसंग को समाप्त करते हुए, अंग्रेजी सरकार की पत्र-पत्रिकाओं से सम्बन्धित नीति को भी देख लेना चाहिए। यह तो प्रारम्भ में ही दिया जा चुका है, कि कलकत्ते के 'दि बंगाल गजेट' का प्रकाशन केवल इसलिए रोक दिया गया था, क्योंकि उस समय के सरकारी अधिकारी, अपनी आलोचना में एक शब्द भी नहीं सुनना चाहते थे। इस अप्रिय घटना के कुछ वर्षों बाद ही, उन्होंने कई अंग्रेज सम्पादकों को, उनकी नीति से असंतुष्ट होकर इंगलैंड वापस भेज दिया था। समाचार पत्रों के सबध मे, सर्व प्रथम प्रतिबन्धक नियमों का निर्धारण, मार्क्विस ऑफ वेलेजली ने किया था जिनके अनुसार प्रत्येक सम्पादक को, अपना नाम अन्त में प्रकाशित करना होता था, तथा उसे अपना पता तथा अन्य आवश्यक बाते भी देनी होती थी, जिससे आवश्यकता पडने पर अधिकारी उनका उपयोग कर सकें। भारत सरकार की नीति उस समय, पुरातन पन्थी राजनीतिज्ञों के हाथों में थी, जो भारतवर्ष में पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार को संदेह की दृष्टि से देखते थे, और उनकी प्रगति को बहुत समय तक रोकने का प्रयास करते रहे। भारतीय समाचार-पत्रों को पूर्ण स्वतन्त्रता, सन् १८३५ में प्राप्त हुई थी। लार्ड मैकाले के मन में, जो सपरिषद गवर्नर जनरल के साथ वैधानिक परामर्शदाता के रूप

१—रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (१९४८), पृ० ४३१

में कार्य करने के लिए आया था, भारतीय समाचार-पत्रों को इस प्रकार की स्वतन्त्रता देने का विचार उत्पन्न हुआ था, किन्तु उसे व्यावहारिक रूप प्रदान करने का श्रेय सर चार्ल्स मेटकॉफ को है। उसने प्रेस सम्बन्धी सभी प्रतिबन्धों को रद्द करते हुए अपने पक्ष के समर्थन के लिए लिखा था :

"यदि भारतवर्ष और उसके निवासियों को, अज्ञान में रख कर ही, अंग्रेजी साम्राज्य के एक भाग के रूप में रक्खा जा सकता है, तो हमारा शासन इस देश के लिए अभिशाप के रूप में होगा और उसे समाप्त हो जाना चाहिये·····हम निश्चित से रूप से यहां महान उद्देश्यों के लिए हैं, जिनमें से एक नई चेतना से परिपूर्ण ज्ञान तथा सभ्यता, यूरोप के कला-कौशल तथा विज्ञान का इस देश में प्रचार करना और इसके द्वारा जनता की स्थिति को सुधारना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रेस को स्वतन्त्रता के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का भी प्रयत्न सहायक नहीं सिद्ध हो सकता।"[१]

सर चार्ल्स मेटकॉफ द्वारा उत्पन्न यह अनुकूल परिस्थिति, बहुत समय तक न चल सकी। इंगलैंड का अधिकारी-वर्ग इसे सहन न कर सका, और एक-एक कर, प्रेस के सभी पुराने प्रतिबन्धक नियम फिर से लौटने लगे। फिर भी अंग्रेजी प्रभाव हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कार्य करता रहा। मुद्रणकला के प्रचार ने पत्र-पत्रिकाओं को उत्पन्न किया, उनके विकास में योग दिया, साथ ही उसने प्रति वर्ष पुस्तकों के प्रकाशन की भी अभिवृद्धि की। इन पत्र-पत्रिकाओं तथा नवीन पुस्तकों के माध्यम से, भारतीय जनता में नयी भावनाओं तथा नये विचारों का प्रचार हुआ। मुद्रणकला के प्रचार तथा पत्र-पत्रिकाओं के विकास ने, अंग्रेजी प्रभाव की धारा के रूप में, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास में पर्याप्त योग दिया।

६—सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संस्थाएं

हिन्दी-प्रदेश में सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संस्थाओं का प्रारम्भ तथा विकास भी अंग्रेजी प्रभाव की एक धारा के रूप में हुआ है। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व इस प्रकार की संस्थाएं यहां विकसित नहीं हुई थीं। इन संस्थाओं ने, अपने जन्म के साथ ही साहित्यिक-केन्द्रों के रूप में, मध्ययुग की राजसभाओं का स्थान ग्रहण कर लिया था। कुछ शिक्षा-केन्द्रों की स्थापना भी इन्हीं संस्थाओं के उद्योग से हुई थी। इस प्रकार की कुछ संस्थाओं ने हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास-क्रम को भी प्रभावित किया। कुछ सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संस्थाएँ तो थोड़े समय में ही समाप्त हो गई थीं, किन्तु कुछ बहुत काल तक जीवित रहीं। आगे इन दोनों ही प्रकार की कुछ

१—'लाइफ ऑफ सर चार्ल्स मेंटकाफ', वॉल्यूम सेकेन्ड, पृ० २६३-६४

संस्थाओं का वर्णन है। यहां पर जो सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संस्थाओं की सूची दी जा रही है, वह पूर्ण नहीं है; फिर भी उसके द्वारा इन संस्थाओं की सामान्य विशेषताएँ अवश्य प्रकट हो जाती हैं। व्यवस्थित अध्ययन के लिए प्रारम्भ में, उन संस्थाओं का अध्ययन होगा, जो अंग्रेजी पढे लिखे लोगों ने स्थापित की थीं।

'दि बनारस इन्स्टीट्यूट'

इस संस्था की स्थापना, बनारस में 'संस्कृत कॉलेज' की स्थापना के थोड़े समय बाद ही हो गयी थी। इसके प्रमुख सदस्यों में डा० थीबो, सर सैय्यद अहमद खाँ, राजा शिवप्रसाद आदि थे। 'संस्कृत कॉलेज' के गणित के प्राध्यापक तथा हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों के प्रथम लेखक पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र भी इसके सदस्य थे। इसकी बैठकों में जनरुचि के विषयों को लेकर भाषण, निबन्ध-पाठ, वाद-विवाद आदि का आयोजन किया जाता था।

'दि इलाहाबाद इन्स्टीट्यूट'

इस संस्था की स्थापना, इस प्रदेश की सरकार के इलाहाबाद स्थानान्तरण के बाद हुई थी; और इसका उद्देश्य स्थानीय लोगों की सामाजिक, नैतिक तथा बौद्धिक अभिवृद्धि करना था। इलाहाबाद के 'म्योर सेन्ट्रल कॉलेज' की स्थापना इसी संस्था के द्वारा लिखित स्मृति पत्र के फलस्वरूप हुई थी। साहित्यिक तथा सामाजिक विषयों पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता को लेकर, इस संस्था की एक साहित्यिक शाखा भी बनाई गई थी, जिसका नाम, 'दि लिटरेरी ब्राँच ऑफ इलाहाबाद इस्टीट्यूट' रक्खा गया था। आगे चलकर इस संस्था ने अपनी मूल सस्था का ही स्थान ग्रहण कर लिया था। 'म्योर सेन्ट्रल कॉलेज' के अतिरिक्त इस संस्था ने इलाहाबाद मे एक 'सिटी ऐंग्लो वरनाक्यूलर स्कूल' की भी स्थापना की थी।

इस संस्था की साहित्यिक शाखा के उद्देश्य थे—(क) सदस्यों को जनता के बीच व्याख्यान देने का अवसर देना तथा पारस्परिक विचार-विमर्श के माध्यम से भाषण-कला को और उन्नत बनाना; (ख) समय समय पर जनता की भाषा में पुस्तिकाएँ प्रकाशित करना। इस संस्था के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें: (१) 'बुद्धि शिक्षा' बौद्धिक संस्कृति पर एक निबन्ध; (२) 'धर्म शिक्षा,' नैतिक संस्कृति सम्बन्धी निबन्ध; (३) 'वर्ण शिक्षा', हिन्दी भाषा की प्राथमिक पुस्तक; (४) 'हिन्दी शिक्षावली', भाग १ से ५, हिन्दी शिक्षा की एक क्रमिक पुस्तक-माला।

इस संस्था के सदस्य तीन प्रकार के—अवैतनिक, साधारण तथा बाहर रहने वाले थे। सदस्यों में ६४ हिन्दी-प्रदेश के रहने वाले थे; ४ बंगाली, और २१७ बाहरी, जिन में कुछ इसी प्रदेश के, कुछ बंगाली, कुछ मुसलमान और थोड़े से ईसाई थे।

इसकी आय केवल सदस्यों से प्राप्त चन्दा ही थी।

'दि फ्रेंड्स डिबेटिंग सोसाइटी'

इस संस्था की भी स्थापना इलाहाबाद में ही ११ अप्रैल, सन् १८८४ को नैतिक, सामाजिक तथा बौद्धिक उन्नति को प्रोत्साहित करने के लिए हुई थी। यह भी सदस्यों से प्राप्त चन्दे को ले कर ही चलती थी। सदस्यों की संख्या १२२ के लगभग थी, जिसमें ईसाई, मुसलमान, हिन्दू तथा जैन सभी थे। 'म्योर सेन्ट्रल कॉलेज' के प्राध्यापक एस० ए० हिल, इसके प्रथम अध्यक्ष बनाये गये थे। उनके देहांत के अनन्तर इस संस्था के सदस्यों ने उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए उनके नाम पर एक चाँदी का पदक, जिसका नाम, हिल मैडिल, रखा गया था, चलाया था। अपने नियमित सदस्यों के लिए प्रतियोगिता द्वारा यह संस्था दो उपाधि-पत्र भी प्रदान करती थी। कुछ वर्षों बाद न्याय-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार-विमर्श के लिए इस संस्था की एक शाखा भी बनायी गयी थी।

'दि कारमाइकल लाइब्रेरी एसोसियेशन'

इस संस्था की स्थापना सन् १८९२ में बनारस में, प्रसिद्ध रईस राय संकठा प्रसाद की प्रेरणा से हुई थी। इस संस्था का उद्देश्य, अंग्रेजी तथा प्राच्य भाषाओं की नवीनतम साहित्यिक कृतियों को जनता के सामने प्रस्तुत करना था; प्रारम्भ में इस संस्था द्वारा स्थापित पुस्तकालय में, ८४५८ पुस्तकें थीं; जिनमें ३५३८ अंगरेजी, २८६५ अरबी, फारसी तथा उर्दू, १८१० संस्कृत तथा हिन्दी, १७१ बंगला तथा १४ गुजराती की थीं। इस प्रकार उसमें प्रारम्भ से, आठ भाषाओं के ग्रंथ विद्यमान थे। पुस्तकालय में कुछ समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ भी ली जाती थीं, जिनमें से आठ अंग्रेजी, दस उर्दू और सात हिन्दी की थीं।

यह पुस्तकालय जनता के लिये खुला रहता था; किन्तु पुस्तकें घर ले जाने की सुविधा केवल उन्हीं व्यक्तियों को थी, जो चन्दा देते थे। इस सस्था की प्रबन्ध-समिति की बैठक तो प्रतिमास होती थी; किन्तु सभी सदस्यों की बैठक वर्ष में एक बार होती थी, जब साहित्यिक विषयों पर व्याख्यान आदि का भी आयोजन किया जाता था। प्रारम्भ में इसके सदस्यों की संख्या ३५ थी, जिनमें से अधिकांश बनारस के ही रहने वाले थे। माननीय बाबू रामकली चौधरी इसके अध्यक्ष थे।

'दि यूनियन क्लब'

यह संस्था भी बनारस में ही सन् १८८२ में स्थापित हुई थी। प्रारम्भ में इसके संरक्षक 'मिशन कॉलेज' के प्रोफेसर बाबू गोपाल लाल मैत्र बी०ए०, बी०एल० थे। इस संस्था का उद्देश्य शिक्षित वर्ग को, विशेष रूप से अच्छी अंगरेजी बोलने तथा लिखने

में कुशल बनाना तथा उनके बीच स्वस्थ एकता का सूत्र स्थापित करना था। सदस्यों की संख्या ७० थी, जिनमें मुसलमान, उच्च जाति के हिन्दू, सरकारी कर्मचारी, वकील तथा अन्य पढ़े-लिखे लोग थे। इसकी बैठकों में साहित्यिक, नैतिक तथा सामाजिक विषयों को लेकर निबन्ध-पाठ होता था और उसके अनन्तर उसी विषय पर वाद-विवाद।

बनारस की 'थियोसॉफिकल सोसाइटी'

बनारस में 'थियोसॉफिकल सोसाइटी' की शाखा की स्थापना, सन् १८८३ में, आर्य तथा पूर्वी देशों के साहित्य को प्रोत्साहन देने, जाति-भेद तथा वर्ण-भेद की भावनाओं को समाप्त करके विश्वबन्धुत्व की भावना को बढ़ाने, प्रकृति के नियमों की खोज तथा मनुष्य में अन्तर्निहित मानसिक शक्तियों के उद्घाटन के लिये हुई थी। सभी सदस्य प्रतिमास एक बार मिलते थे। इस संस्था के कार्य-क्रम में संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद कार्य भी था। थोड़े समय में ही इस प्रकार की संस्थाये हिन्दी प्रदेश के अन्य नगरों में भी खुली। इस प्रसंग में डॉ० एनीबेसेन्ट का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा।

ये सभी संस्थाएं, अंग्रेजी शिक्षित लोगों द्वारा अपने ही लिए स्थापित की गई थीं। कुछ संस्थाओं की स्थापना हिन्दी संवर्धन के लिए भी की गई थी और यही बाद को साहित्य निर्माण के केन्द्रों में परिवर्तित हो गई। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध का हिन्दी साहित्य मुख्यतः इसी प्रकार की संस्थाओं में पठन-पाठन के लिए लिखा गया था।

'कविता वर्द्धिनी सभा'

यह साहित्यिक संस्था, जिसकी स्थापना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् १८७० के लगभग की थी, अपने प्रकार की पहली थी। उन कवियों तथा लेखकों में से जो कि इसकी बैठकों में भाग लेते थे—सेवक, सरदार, नारायण, हनुमान, दीन दयालगिरि, मन्नालाल, अम्बिकादत्त व्यास आदि प्रमुख थे। इसी संस्था ने पं० अम्बिकादत्त व्यास को 'सुकवि' की उपाधि प्रदान की थी। जिन कवियों की रचनाएं सदस्यों द्वारा विशेष पसन्द की जाती थी उन्हें सस्था की ओर से प्रमाण-पत्र प्रदान किये जाते थे।

'दि पेनी रीडिंग क्लब'

इस संस्था का भी सूत्रपात, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् १८७३ में किया था। 'हरिश्चन्द्र मंगजीन' में प्रकाशित होने वाली लगभग सभी रचनाएं पहले इसी संस्था के सदस्यों के समक्ष प्रस्तुत की जाती थीं। राधाकृष्ण दास ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवन-कथा में लिखा है कि कभी-कभी भारतेन्दु जी इसकी बैठकों में, विषय के अनुरूप रूपरेखा में बड़े नाटकीय ढंग के साथ प्रस्तुत होते थे। इस संस्था के तत्वावधान में अनेक निबन्धों का पाठ हुआ।

'हिन्दी प्रवर्द्धिनी सभा'

सन् १८७७ में कुछ शिक्षित युवकों के प्रयत्न से, इलाहाबाद में इस साहित्यिक संस्था की स्थापना हुई थी। प्रारम्भिक वर्षों में ही, इसके कार्यकर्त्ताओं ने यह निश्चय किया, कि प्रत्येक सदस्यों से ५ रु० वार्षिक चन्दा लेकर, हिन्दी में एक मासिक पत्रिका निकाली जाय। इसी निश्चय के फलस्वरूप "हिन्दी प्रदीप" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। पं० बालकृष्ण भट्ट को इस पत्रिका के सम्पादन का भार दिया गया। उनकी सभी साहित्यिक रचनाएं इसी पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने, इसी संस्था के एक अधिवेशन में, अपनी लम्बी काव्य रचना 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' पढ़ी थी।

'हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा'

इस संस्था की स्थापना भी इलाहाबाद में सन् १८८४ में हुई थी, और इसी के तत्वावधान में 'सम्पादक समाज' का भी सूत्रपात हुआ था। किन्तु ये दोनों संस्थाएँ दो वर्ष के भीतर ही समाप्त हो गई थीं।

'नागरी प्रचारिणी सभा'

इस संस्था की स्थापना बनारस में सन् १८९३ में हुई थी। श्यामसुन्दरदासजी ने अपनी 'आत्म कहानी' में इस संस्था के प्रारम्भ तथा विकास का विस्तृत इतिहास दिया है। जब श्यामसुन्दर दास जी इन्टर कक्षा के विद्यार्थी थे, उन्होंने अपने कुछ अन्य मित्रों के साथ एक वाद-विवाद की संस्था का प्रारम्भ किया था। इसी संस्था की एक बैठक में, १६ जुलाई १८९३ को, 'नागरी प्रचारिणी सभा' का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था। 'सभा' का कार्य उसी दिन से प्रारम्भ हो गया था; और श्यामसुन्दर दास जी उस के पहले मन्त्री चुने गये थे। अपने प्रथम वर्ष में ही, इस संस्था ने अपने कार्य-क्रम में शब्दकोष, व्याकरण, हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास, हिन्दी विद्वानों के जीवनवृत तथा वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकें लिखवाना तथा प्रकाशित कराना, स्वीकार कर लिया था। 'सभा' का प्रथम वार्षिक अधिवेशन, ३० सितम्बर १८९४ को, 'कारमाइकल पुस्तकालय' के भवन में, पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र की अध्यक्षता में हुआ था। उसी वर्ष 'सभा' ने, हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के कार्य को भी प्रारम्भ कर दिया था। 'सभा' के लिए एक पुस्तकालय के निर्माण का प्रयत्न भी इन प्रारम्भिक वर्षों में ही आरम्भ हो गया था। 'सभा' के तृतीय वार्षिक अधिवेशन के विवरण की निम्न-लिखित पंक्तियां उसके सदस्यों की कर्त्तव्य बुद्धि तथा जागरुकता का परिचय देती हैं :

"सभा की कोई सामयिक पत्रिका न होने के कारण उसकी निर्णीत बहुत सी बातें सर्व साधारण में प्रचारित होने से रह जाती थीं, और सभा के बहुतेरे उद्योग

सरोवर में खिल कर मुरझाने वाले कमलों के समान हो जाते थे। दूसरे बहुतेरे भाव-पूर्ण उपयोगी लेख सभा में आकर पुस्तकालय की अलमारियों को ही अलंकृत करते थे, जिनसे उनके सुयोग्य लेखक हतोत्साह हो जाते थे और सुरसिक उत्साही पाठक-जन प्यासे चातक की भांति बाट जोहते ही रह जाते थे। इन्हीं बातों का विचार कर और हिन्दी में भाषा-तत्व, भूतत्व, विज्ञान, इतिहास आदि विषयक लेखों और ग्रंथों का पूर्ण अभाव देख 'सभा' ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' निकालना प्रारम्भ किया है।"[1] इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने अपने तीसरे ही वर्ष में, एक ऐसी उच्च कोटि की पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया था, जो अंग्रेजी प्रभाव द्वारा हिन्दी भाषा तथा साहित्य में प्रारम्भ किये गये, वैज्ञानिक तथा अन्य नवीन विषयों की रचनाओं को प्रोत्साहन देती थी।

अपने प्रकाशन के पहले ही वर्ष से 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' ने वैज्ञानिक विषयो के निबन्धों को स्थान देना प्रारम्भ कर दिया था; किन्तु अंग्रेजी के विज्ञान सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के लिए, हिन्दी के उपयुक्त पर्याय न होने के कारण बड़ी कठिनाई होती थी। इसीलिए वैज्ञानिक कोष के निर्माण का प्रश्न उठा। १९०८ में ही यह कार्य प्रारम्भ हो गया, और १९०८ से सभा ने 'हिन्दी वैज्ञानिक कोष' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। उसमें १०३३० अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्द अनुवादित रूप में संकलित किये गये थे। रसायन के पारिभाषिक शब्दों का अनुवाद करने के लिए, कुछ नये उपसर्ग तथा प्रत्यय भी बनाये गये थे, और यह सब 'महाभाष्य' के रचयिता पातञ्जलि के इस कथन कि 'कोई भी वैय्याकरण के घर जाकर यह नहीं कहता कि शब्द बनाओ, मै उनका प्रयोग करूंगा' के विपरीत हुआ था, और वह भी एक विदेशी प्रभाव की प्रेरणा से।

'नागरी प्रचारिणी सभा' के अन्य दो महत्वपूर्ण कार्य 'हस्तलिखित ग्रंथों की खोज के विवरण' तथा 'हिंदी शब्द सागर' के प्रकाशन है। हस्त-लिखित ग्रंथों के विवरण के प्रकाशन का प्रारम्भ सन् १९०१ से ही हो गया था। इन्ही हस्तलिखित ग्रथों के विवरणों का आधार लेकर, अब तक हिन्दी भाषा तथा साहित्य का वैज्ञानिक, ऐतिहासिक तथा आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता रहा है। हिन्दी के एक शब्दकोष के प्रकाशन का निश्चय 'नागरी प्रचारिणी सभा' के प्रारम्भ के वर्ष ही हो गया था, उसके लिए फिर भी वास्तविक प्रयत्न का प्रारम्भ, २३ अगस्त, १९०७ के बाद से, रेवरेन्ड ई० ग्रीवज के, इस विषय के प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के अनन्तर हुआ। इस कार्य

१—श्याम सुन्दर दास: 'मेरी आत्मकहानी, पृ० २७-२८

की रूपरेखा बनाने के लिए एक उपसमिति बनाई गई, जिसने अपनी कई बैठकों के अनन्तर उसी वर्ष, ९ नवम्बर को अपना विवरण प्रस्तुत किया और फिर कार्य आरम्भ हो गया। 'हिन्दी शब्द सागर' के प्रकाशन का प्रारम्भ सन् १९१२ से हुआ, और वह कई वर्षों में पूरा हुआ। ये सभी कार्य 'सभा' ने अंग्रेजी प्रभाव से ग्रहीत वैज्ञानिक प्रणाली से ही सम्पन्न किये।

'हिन्दी साहित्य सम्मेलन'

इस संस्था की स्थापना सन् १९०५ में हुई थी। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत इसका १५ वर्ष का जीवनकाल ही आता है, जिसमें इसने विशेष रूप से हिन्दी भाषा तथा साहित्य को लोकप्रिय बनाने का ही कार्य किया था। इसके वार्षिक अधिवेशनों के भाषणों में, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास के लिए, पाश्चात्य प्रवृत्तियों के ग्रहण पर अनेक बार बल दिया गया।

हिन्दी-प्रदेश की अन्य साहित्यिक संस्थाएँ, जिनका हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में योग रहा है, निम्नलिखित हैं :

(१) 'भाषा सम्वर्द्धिनी सभा', इसकी स्थापना बाबू तोताराम ने अलीगढ़ में की थी। उनका उद्देश्य हिन्दी भाषा में सस्ते मूल्य की अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करना था। तोता राम जी ने अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक एडीसन के एक दुःखान्त नाटक 'केटो' का हिन्दी अनुवाद 'केटो कृतान्त' नाम से इसी संस्था से प्रकाशित कराया था।

(२) 'रसिक समाज', इसकी स्थापना पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने सन् १८७४ में मिर्जापुर में की थी।

(३) 'कवि-कला-कौमुदी', संस्थापक, पं० राधाचरण गोस्वामी, सन् १८७५, वृन्दाबन।

(४) 'संस्कृत सञ्जीवनी समाज', संस्थापक, पं० अम्बिकादत्त व्यास, सन् १८८३, मधुवनी।

(५) 'इतिहास कार्यालय', संस्थापक, कविराज श्यामलदान, उदयपुर। सन् १८८८ में महामहोपाध्याय पं० गौरी शंकर हीराचन्द ओझा इसके मन्त्री बनाये गये।

(६) 'विज्ञान प्रचारिणी सभा,' संस्थापक, पं० सुधाकर द्विवेदी। उद्देश्य : हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों के ग्रंथों का प्रकाशन।

(७) 'रसिक समाज', कानपुर में स्थापित, राय देवीप्रसाद पूर्ण सब से सम्मानित सदस्य।

(८) 'श्री भानुकवि समाज,' जबलपुर में स्थापित।

(९ तथा १०) लाला भगवानदीन ने मधुबनी में 'कवि समाज,' तथा 'काव्य-कला नाम की दो संस्थाएँ स्थापित की थी।

इस स्थान पर कुछ सामाजिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं के सम्बन्ध में भी विचार कर लेना चाहिये। यद्यपि इस प्रकार की संस्थाओं ने हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव को लाने में विशेष सहायता नहीं दी, फिर भी जीवन के नये मूल्यों के निर्माण में, उनका योग अवश्य रहा है। इस प्रकार की संस्थाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'तदीय समाज', 'साधारण समाज', 'भारतमित्र सभा,' धर्मोपयोगिनी सभा' आदि है। १९ वीं शताब्दी में हिन्दी के बहुत से लेखक इस प्रकार की किसी न किसी संस्था से सम्बन्धित रहे थे। इन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने जीवन के नये मूल्यों को ग्रहण किया था।

इन साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं के अध्ययन को समाप्त करते हुये, हिन्दी प्रदेश में स्थापित पुस्तकालयों का उल्लेख, आवश्यक प्रतीत होता है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व इस प्रकार की संस्थाएँ राजाओं, महाराजाओं तथा बहुत अधिक धनवान व्यक्तियों तक ही सीमित रही थीं। अब इनका निर्माण निर्धन तथा धनवान सभी के लिए होने लगा था। हिन्दी-प्रदेश के कुछ पुस्तकालयों के नाम, जिनकी स्थापना १९वीं शताब्दी में ही हो गई थी, अग्रलिखित हैं :

'लायल लाइब्रेरी' अलीगढ़, 'आर्य भाषा पुस्तकालय' जो मिर्जापुर में स्थापित हुआ पर आगे चलकर बनारस को स्थानान्तरित हो गया, 'भारती भवन' तथा 'मिशन लाइब्रेरी' इलाहाबाद। इन पुस्तकालयों ने पश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के जनता के बीच प्रचार में विशेष सहायता पहुँचाई थी; और इस प्रकार हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव लाने में भी सहायक हुए थे।

उपसंहार

इस प्रकरण को समाप्त करते हुए, अंग्रेजी प्रभाव की इन विभिन्न धाराओं ने, हिन्दी भाषा तथा साहित्य को सम्मिलित रूप से कितना प्रभावित किया, यह देख लेना चाहिये। परिवर्तित वातावरण की प्रथम धारा ने जनता के दृष्टिकोण को और अधिक व्यापक, सांसारिक तथा मानवतावादी बना दिया था। उसने राजाओं तथा नवाबों के उन दरबारों के महत्व को भी समाप्त कर दिया था, जो अब तक साहित्य-निर्माण के केन्द्रों का कार्य करते रहे थे। फोर्ट विलियम कॉलेज' ने भाषा तथा साहित्य के सम्बन्ध में नये प्रकार की कार्य-प्रणालियां सिखायी थीं। अंग्रेजी सरकार, ईसाई प्रचारकों तथा जन-संस्थाओं द्वारा स्थापित शिक्षा-संस्थाओं ने, अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के हिन्दी-प्रदेश की जनता के बीच प्रचार में, बड़ी सहायता पहुंचाई थी।

उनके द्वारा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान भी जनता के बहुत निकट पहुँच गये थे। ईसाई प्रचारकों ने हमारा ध्यान धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में उत्पन्न हो गये अन्ध-विश्वासों की ओर आकर्षित किया था; और इसी के फलस्वरूप हिन्दी-प्रदेश में धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का विकास हुआ था। साम्राज्य-वादी शोषण नीति ने, जनता की राजनीतिक चेतना को जागरूक किया था। मुद्रण-कला के प्रचार तथा पत्र-पत्रिकाओं के आरम्भ से, पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का प्रचार बड़ी तीव्रता के साथ हुआ था। इन सब के सहयोग से नवोत्पन्न सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संस्थाओं ने हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में, सब से अधिक योग दिया। साहित्यिक संस्थाओं ने तो नवीन साहित्यिक-केन्द्रों का रूप धारण कर लिया; और हमारे भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी प्रतिमानों को शीघ्रता के साथ परिवर्तित कर दिया। आगे के प्रकरण में इन प्रतिमानों के परिवर्तित होने के क्रम का ही अध्ययन किया जायेगा।

: ५ :

अंग्रेजी प्रभाव की छाया में हिन्दी के भाषागत एवं साहित्यिक आदर्शों का निर्माण

अँग्रेजी प्रभाव ने अपनी विभिन्न धाराओं में कार्य करते हुए, हिन्दी-प्रदेश में एक विशेष परिवर्तन के क्रम का सूत्रपात किया था। इस प्रभाव द्वारा प्रारम्भ की गई विशेष गतिशील परिवर्तन की प्रवृत्ति ने, हिन्दी भाषा और साहित्य को भी प्रभावित किया, उसने उनमें स्थिर विकास के स्थान पर द्रुतगति पूर्ण विकास के क्रम का सूत्र-पात किया। इस गतिशीलता ने हिन्दी भाषा और साहित्य के आदर्शों में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का प्रारम्भ किया। अंग्रेजों द्वारा स्थापित शिक्षा-संस्थाओं के माध्यम से अंग्रेजी भाषा और साहित्य के साथ जो सम्पर्क स्थापित हुआ, वह भी बदलते हुए भाषागत तथा साहित्यिक आदर्शों के निर्माण में सहायक हुआ। इन आदर्शों के निर्माण का अध्ययन, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर, अंग्रेजी प्रभाव की रूपरेखा को स्पष्ट कर देगा, और आगे के प्रकरणों में उसका विस्कृत रूप से अध्ययन किया जायगा। अंग्रेजी प्रभाव ने हिन्दी साहित्य को प्रभावित करने के पूर्व हिन्दी भाषा पर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था, इसलिए पहले भाषा सम्बन्धी आदर्शों के निर्माण के क्रम का ही अध्ययन होगा। इसके अनन्तर हिन्दी के साहित्यिक आदर्शों के निर्माण के क्रम को, अंग्रेजी प्रभाव ने जो कुछ उसमें योग दिया है, उसके साथ, प्रस्तुत किया जायेगा।

हिन्दी भाषा के नवीन आदर्श

हिन्दी भाषा अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क में आने के पूर्व मुख्यतः काव्य-रचनाओं तक ही सीमित रही थी, और यद्यपि यदा-कदा गद्य रूप के भी प्रयोग किये गये थे, किन्तु उनमें उसकी अवस्था प्रारम्भिक विकास की ही रही थी। इसी कारण उसका शब्द-समूह सीमित रहा था, उसके व्याकरण के नियमों की खोज नहीं हुई थी, लिखते समय प्रयोग में आने वाले विराम-चिह्न भी निश्चित नहीं हुए थे, और शैली के विभिन्न प्रकारों का भी विकास नहीं हुआ था। इसी कारण उसमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह जीवन के विभिन्न पक्षों तथा ज्ञान की विविध धाराओं को अभिव्यक्त कर सके। अँग्रेजी भाषा के सम्पर्क ने उसकी इन कमियों को दूर करने में बड़ी सहायता दी।

हिन्दी-प्रदेश में, अंग्रेजी शासन की स्थापना के बहुत पूर्व ही, अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी भाषा पर कार्य करना आरम्भ कर दिया था। जब अंग्रेजी शासन उत्तर भारत में केवल बंगाल में ही स्थापित हुआ था, तभी से अंग्रेजी शब्द, अपने शुद्ध तथा अनुवादित रूपों में, हिन्दी भाषा में प्रविष्ट होने लगे थे। 'फोर्ट विलियम कॉलेज' की स्थापना (१८००) से ही, हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का प्रारम्भ हुआ था। 'उदन्त मार्तण्ड' (१८२६), 'बंगदूत' (१८२९), 'प्रजामित्र' (१८३४), आदि समाचार-पत्रों के प्रकाशन से, उसने और अधिक व्यापक रूप में आना प्रारम्भ किया। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आने के साथ अंग्रेजी भाषा ने जो उन्नति की थी, वह हिन्दी भाषा के लिए आदर्श मानी जाने लगी। आगे के वर्षों में हम उस आदर्श को प्राप्त करने का प्रयास देखते हैं।

अंग्रेजी प्रभाव सर्व प्रथम हिन्दी भाषा के शब्द-समूह पर देखने को मिला। बहुत से अंग्रेजी शब्द हिन्दी भाषा में अपने मौलिक तथा अनुवादित रूपों में आने लगे थे। सबसे पहले शासन व्यवस्था से सम्बन्धित शब्दों तथा अंग्रेजों के साथ आई हुई नई वस्तुओं की संज्ञाओं के प्रयोग प्रारम्भ हुए थे। इसके अनन्तर नवीन शिक्षा-केन्द्रों के स्थापित होने से, अंग्रेजी की साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक शब्दावली भी हिन्दी में प्रयोग में आने लगी थी।

अंग्रेजी के कुछ शब्द हिन्दी में सर्व प्रथम अपने मौलिक रूप में प्रयोग में आये। विदेशी भाषा के शब्दों का इस प्रकार मौलिक रूप में प्रयोग, हिन्दी भाषा के क्षेत्र में जो शुद्धतावादी थे उन्हें भला नहीं प्रतीत हुआ। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में, साहित्यिक तथा सामाजिक सभी क्षेत्रों में खड़ी बोली के प्रयोग के लिए

आन्दोलन करने वाले, अयोध्या प्रसाद खत्री ने युग की भावधारा को भली प्रकार समझ लिया था, और हिन्दी भाषा में अंग्रेजी शब्दों के, उनके शुद्ध रूप में, प्रयोग को वे ऐतिहासिक आवश्यकता मानते थे :

"अंग्रेजी राज्य होने से, अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पाने से, अंग्रेजों की निर्मित वस्तुओं का इस देश में प्रचार होने से अंग्रेजी शब्द भी हिन्दी में अवश्य आयेंगे, यह इतिहास की बात है।"[१] आगे उन्होंने लिखा था :

"बाहरी भाषाओं के शब्दों को अपना सा कर डालना, जिससे भाषा दिन प्रति दिन अमीर होती जाय यह भी एक बड़ा काम है और सबसे बड़ा काम है अपनी भाषा के विषयों को दूना चौगुना करते जाना अर्थात् जो जो विषय भाषा में पहले कम थे उनको मिला देना और जो विषय कभी थे ही नहीं उनको बाहर से लाय भरती करना इन सब का असर यह होगा कि भाषा की नमनशक्ति बहुत बढ़ जायेगी अर्थात् जिस तरह के विषय पहले उसके बाहर समझे जाते थे वे, जल्दी उसकी पहुंच के भीतर आ जाएंगे। हमारे देखते ही देखते अंग्रेजी मेमों ने हिन्दुस्तानी गहनों का पहनना प्रारम्भ कर दिया, जैसे सोने की चूड़ियां, जड़ाऊ कंठा आदि। इसी तरह हम अपनी भाषा को अंग्रेजी भाषा के आभूषणों से आभूषित करें तो इसमें क्या क्षति है।"[२]

इस प्रकार अंग्रेजी शब्द अपने विशुद्ध रूप में हिन्दी भाषा में आते रहे। किन्तु शुद्धतावादियों की विचारधारा का भी प्रभाव पड़ा और जैसे जैसे समय बीतने लगा, अंग्रेजी के शब्द अपने शुद्ध रूप में अपनाये जाने के स्थान पर अनुवादित रूप में ग्रहण किये जाने लगे। हिन्दी भाषा में आने वाले अंग्रेजी शब्दों की बढ़ती हुई संख्या के साथ, अंग्रेजी की शब्दावलियां, प्रयोग तथा कहावतें भी हिन्दी रचनाओं में स्थान पाने लगीं।

हिन्दी भाषा के एक रूप की व्याकरण की रचना का प्रयत्न भी अंग्रेजी प्रभाव की छत्रछाया में ही, सर्व प्रथम हुआ था। 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के 'भाखा मुंशी' लल्लू जी लाल ने अपना 'ब्रज भाषा व्याकरण' इसी कॉलेज के एक प्रोफेसर लेफ्टिनेन्ट विलियम प्राइस के निरीक्षण में सन् १८१२ में लिखा था। इस रचना के प्रकाशन के २५ वर्ष बाद फ़ादर ऐड्म्स का 'हिन्दी व्याकरण' प्रकाशित हुआ, जो अंग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर लिखा गया था। कामता प्रसाद गुरु ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी व्याकरण' की भूमिका में लिखा है, कि फादर एडम्स की रचना के अनन्तर प्रकाशित होने वाले

१—अयोध्या प्रसाद खत्री: 'खड़ी बोली का पद्य' (१८८६), पृ० १६

२—वही, पृ० १६-१७

हिन्दी व्याकरण के सभी ग्रन्थ उसी को आधार मानकर लिखे गये हैं। स्वयं कामता प्रसाद गुरु का ग्रंथ, जो १९२० में प्रकाशित होने के अनन्तर, अभी तक हिन्दी का सबसे प्रामाणिक व्याकरण माना जाता है, अंग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर ही लिखा गया है। उसका वाक्य-विन्यास सम्बन्धी प्रकरण तो पूर्णतः किसी अंग्रेजी व्याकरण पर ही आधारित है।

हिन्दी रचनाओं में प्रयोग में आने वाले अल्पविराम, अर्ध-विराम, निर्देशक आदि विराम-चिह्न अंग्रेजी से ही ग्रहण किये गये थे। इन में से कुछ का प्रयोग सर्व प्रथम लल्लू जी लाल तथा सदलमिश्र ने 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के अंग्रेज प्रोफेसरों के प्रभाव से अपनी रचनाओं में किया था; किन्तु उनका नियमित प्रयोग हमें राजा शिवप्रसाद तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं से मिलता है। श्रीनिवास दास ने अपने उपन्यास 'परीक्षागुरु' की भूमिका में अंग्रेजी से लिए गये विराम-चिह्नों पर कुछ थोड़े से वाक्य लिखे थे। किन्तु इस सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रामाणिक सामग्री अपने ग्रन्थ 'लेखनकला' (१९१६) में स्वामी सत्यदेव ने प्रस्तुत की। कामता प्रसाद गुरु ने भी अपने ग्रन्थ 'हिन्दी-व्याकरण' में विराम-चिह्नों के सम्बन्ध में कुछ पृष्ठ लिखे हैं।

अंग्रेजी प्रभाव, आधुनिक युग के कई लेखकों की शैली में तथा उनके वाक्य-विन्यास मे भी देखा जा सकता है। यह पहले कहा जा चुका है कि अंग्रेजी प्रभाव के आगमन से हिन्दी-प्रदेश में एक नये युग का सूत्रपात हुआ था। नये युग के साथ, जो नये भाव और विचार विकसित हुये थे, जब वे अभिव्यक्त होने लगे, तो हिन्दी में नये प्रकार के वाक्य-विन्यास तथा नई प्रकार की शैलियो का जन्म हुआ। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के फल-स्वरूप हिन्दी के लेखकों का सम्पर्क अंग्रेजी के लेखकों से हो गया था और कभी-कभी वे जान बूझकर तथा कभी अनजाने ही, अंग्रेजी के लेखकों के वाक्य-विन्यास तथा शैली का अनुकरण कर जाते थे।

हिन्दी भाषा के आदर्शों में इन परिवर्तनों के साथ, उसकी अभिव्यञ्जना-शक्ति बहुत बढ़ गयी है। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का जो व्यापक रूप रहा है, वह इन परिवर्तनों के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुआ था। आगे के पृष्ठों में उसका विस्तृत अध्ययन किया जायगा। यहां केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी भाषा के आदर्शों में जो परिवर्तन किया है, उससे उसमें नए भावो तथा विचारो को अभिव्यक्त करने की शक्ति आयी है।

२—नवीन साहित्यिक-केन्द्रों की स्थापना

नवीन साहित्यिक आदर्शों के निर्माण का क्रम, सदा ही, नवीन साहित्यिक-केन्द्रों की स्थापना से सम्बन्धित रहा है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व साहित्य-निर्माण के दो केन्द्र

रहे थे : विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय तथा राज सभाएं। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में लिखे जाने वाले साहित्य में राम, सीता, कृष्ण तथा राधा और इसी प्रकार के अन्य दैवी भावनाओं से ओत-प्रोत पात्र ही प्रमुख स्थान पाते थे। राज सभाओं में लिखे जाने वाले साहित्य में पृथ्वीराज, बीसलदेव, वीरसिंह देव, हिम्मत बहादुर तथा इस प्रकार के अन्य राजाओं और नवाबों को, अथवा दैवी भावनाओं से ओत-प्रोत पात्रों को ही, मुख्य चरित्रों के रूप में प्रस्तुत किया जाता था।

जब अंग्रेजी प्रभाव ने हिन्दी साहित्य पर कार्य करना प्रारम्भ किया, तो विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का साहित्यिक-केन्द्रों के रूप में विशेष महत्व नहीं रह गया था। अंग्रेजी शासन के प्रसार के साथ राज सभाओं का महत्व भी घटता जा रहा था। इस प्रकार उत्पन्न हुए रिक्तता के वातावरण में, अंग्रेजी प्रभाव ने नये साहित्यिक केन्द्रों का निर्माण किया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार ने एक नवीन सामाजिक श्रेणी, मध्यम वर्ग, को उत्पन्न किया था और इसी नवीन वर्ग के लोगों ने 'कविता-वर्द्धिनी सभा', 'पैनी रीडिंग क्लब' तथा इसी प्रकार के अन्य साहित्यिक-केन्द्रों की स्थापना की। ये नवीन साहित्यिक-केन्द्र पूर्ववर्ती केन्द्रों की तुलना में जनता के अधिक बीच स्थापित हुए थे, इसीलिए नवीन साहित्य में सामान्य जीवन को महत्व मिलना प्रारम्भ हुआ।

अंग्रेजी प्रभाव द्वारा प्रारम्भ किये गये इस आधारभूत परिवर्तन के साथ-साथ, इस प्रभाव ने हिन्दी के साहित्यिक आदर्शों के निर्माण में भी योग दिया। नवीन साहित्यिक-केन्द्रों की स्थापना, उन व्यक्तियों ने की थी, जो अंग्रेजी पढ़े लिखे थे और इस प्रकार उन्हें अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान था। अंग्रेजी साहित्य के साथ इस सम्पर्क के फलस्वरूप ही, राजा शिव प्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीनिवास दास, बाल कृष्ण भट्ट तथा अन्य लेखकों ने हिन्दी में नवीन साहित्यिक रूपों का प्रारम्भ किया था।

नवीन साहित्यिक केन्द्रों से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाओं में ही नवीन साहित्यिक रूपों के प्रयोग, सर्वप्रथम प्रकाश में आये थे। इस तथ्य की पुष्टि के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के मुख पृष्ठ की निम्नलिखित अंग्रेजी की पंक्तियां प्रस्तुत की जाती हैं :

A Monthly Journal

Published in connection with the Kavi vacansudha containing Articles on Literary, Scientific, Political and Religious subjects, Antiquities, Reviews, Dramas, History, Novels, Poetical selections,

Gossips, Humour and wit[1]

आगे इन नवीन साहित्यिक रूपों के अपने-अपने आदर्शों के निर्माण तथा उसमें अंग्रेजी प्रभाव के योग का अध्ययन होगा। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी साहित्य के काव्य-रूप का ही विशेष विकास हुआ था; इसलिए ऐतिहासिक परम्परा के निर्वाह के लिए सबसे पहले काव्य के नवीन आदर्शों के निर्माण का विवरण ही प्रस्तुत किया जायगा।

३—काव्य

नव-स्थापित साहित्यिक-केन्द्रों में से एक, 'कविता वर्द्धिनी सभा' (१८७०) की स्थापना, प्रधानतया काव्य-रूपों के विकास के लिए ही हुई थी। यही हिन्दी-प्रदेश का सर्व प्रथम नवीन साहित्यिक-केन्द्र था। मध्ययुग में काव्य रचनाएँ राजाओं, महाराजाओं तथा नवाबों के दरबारों में उनके सभासदों के बीच सुनाने के लिये लिखी जाती थीं; और उनमें अभिव्यक्त भावना प्रधानतया शृंगार की होती थी। 'कविता वर्द्धिनी सभा' मध्यम वर्ग के लोगों की संस्था थी, और उसके कुछ सदस्य तो अंग्रेजी साहित्य से भी परिचित थे। इसीलिए जो कुछ इस साहित्यिक-केन्द्र के लिये लिखा जाता था, वह सभी पूर्णतः पुरातन पद्धति का नहीं होता था; यद्यपि पुरानी पद्धति भी थोड़ी-बहुत चलती जा रही थी, और आगे भी कुछ समय तक चलती रही। इस साहित्यिक-केन्द्र में सुनाई जाने वाली कुछ रचनाएँ आगे चलकर कवि वचन सुधा' नामक पत्रिका में प्रकाशित भी होती थीं। किस प्रकार यह संस्था, लोगों को काव्य-रचनाएँ लिखने के लिए प्रोत्साहित करती थी, इसके सम्बन्ध में भी कुछ लिखना यहां आवश्यक प्रतीत होता है। सर्व प्रथम 'कवि वचन सुधा' में निम्नलिखित प्रकार का विज्ञापन प्रकाशित होता था :

॥ प्रसिद्ध पत्र ॥

सभा कार्तिक कृष्ण १ को होगी जो लोग नीचे लिखे हुए काव्य बनावेंगे उनको १ रुपया तक पारितोषिक और जो रु० न लेंगे उनको प्रशंसा-पत्र दिया जायगा ॥

॥ समस्या ॥

चिरजीयें सदा विक्टोरिया रानी ॥

॥ वर्णन ॥

प्रातः काल की शोभा का वर्णन चाहे जिस छन्द में हो।

१—'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' के मुख-पृष्ठ पर परिचय रूप में ये पंक्तियाँ प्रकाशित होती थीं

॥ हरिश्चन्द्र ॥

काव्य वर्द्धिनी सभा का सेक्रेटरी।[1]

इस संस्था के मन्त्री को, इस विज्ञापन के अनन्तर, जो रचनाएँ प्राप्त होती थीं; वे उसकी एक बैठक में उन्हीं के लेखकों द्वारा पढ़ी जाती थीं; और सबसे सुन्दर रचनाओं पर धन के रूप में अथवा प्रशंसा-पत्रों के रूप में पुरस्कार दिये जाते थे। प्रशसा-पत्र की प्रतिलिपि नीचे प्रस्तुत की जाती है :

प्रशंसा पत्र

यह प्रशंसा-पत्र.....को कवि सभा की ओर से इस हेतु दिया जाता है कि आज की समस्या को जो पूर्ण करने के हेतु दी गई थी इन्होंने उत्तमता से पूर्ण किया और दत्त विषय की कविता इनने प्रशंसा के योग्य की है इस हेतु मती.....की काव्य वर्द्धिनी सभा के सभापति, सभाभूषण, सभासद और लेखाध्यक्षों ने अत्यंत प्रसन्नता पूर्वक आदर से इनको यह पत्र दिया है।

मि० संवत् १९२७

ह० ह०

सभापति लेखाध्यक्ष[2]

यह किसी अंग्रेजी प्रशंसा-पत्र के आधार पर लिखा गया प्रतीत होता है। कुछ शब्द सभापति, लेखाध्यक्ष आदि तो स्पष्ट ही, अंग्रेजी भाषा से अनुवादित रूप में लिये गये है।

इस साहित्यिक संस्था तथा इसी प्रकार के अन्य साहित्यिक-केन्द्रों में किये गये प्रयोगों से, हिन्दी कविता को दो नवीन तत्व प्राप्त हुए थे—वर्णनात्मकता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति अनुराग। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में प्राप्त वर्णनात्मकता में यथार्थ वर्णन की प्रवृत्ति है। उदाहरण के लिए उनकी 'गंगा की शोभा' तथा 'प्रातः समीरण' शीर्षक रचनाएं प्रस्तुत की जा सकती है। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति स्नेह की भावना का प्रारम्भ 'कविता वर्द्धिनी सभा' की ओर से 'कवि वचन सुधा' में निकलने वाले उन विज्ञापनों में जिनमे प्राकृतिक विषयों पर काव्य रचनाएं मांगी जाती थीं, माना जा सकता है। उन विज्ञापनों में अकसर प्रातः, संध्या, निशा तथा विभिन्न ऋतुओं पर काव्य-रचनाएं लिखने के लिए कहा जाता था।

१—'कविवचन सुधा', वाल्यूम २, नं० ९ (आश्वनि कृष्णपक्ष, संवत् १९२७), पृ० १६

२—श्यामसुन्दरदास सम्पादितः 'राधाकृष्ण ग्रंथावली', पृ० ३७८

हिन्दी कविता में इन दोनों नवीन तत्वों के विकास में, अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ तथा टॉमसन का विशेष योग रहा है। ये दोनों अंग्रेजी कवि, हिन्दी कविता में, अपने प्रभाव के निश्चित चिह्न छोड गये हैं। भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध लेखक तथा कवि बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने, अपनी लम्बी रचना 'जीर्ण जनपद' की रूपरेखा, गोल्डस्मिथ की रचना 'डेजर्टिड विलेज' के आधार पर बनाई थी। टॉमसन की प्रसिद्ध रचना 'सीजन्स' ('Seasons') का प्रभाव, श्रीधर पाठक तथा लोचन प्रसाद पाण्डेय की प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में देखा जा सकता है। अंग्रेजी के इन दोनों कवियों की व्यञ्जना-प्रणाली वर्णनात्मक थी, इसलिए हिन्दी में वर्णनात्मकता के सूत्रपात में भी इनका प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है। हिन्दी कविता इन दोनों नवीन तत्वों के विकास से जीवनधारा के अधिक निकट आ गई थी, जिस से मध्ययुग में अपना सम्बन्ध उसने पूर्णतः अलग-सा कर लिया था।

इस के अनन्तर पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के, हिन्दी कविता में नवीनता के सूत्रपात के सम्बन्ध में, उद्योग आते हैं। उन्होंने 'सरस्वती' के सन् १९०१ के दो अंकों में 'कवि कर्तव्य' शीर्षक दो लेख प्रकाशित किये थे, जिन्हें सम्भवतः उन्होंने ही विद्यानाथ के छद्म नाम से लिखा था। इन निबन्धों में प्रस्तुत की गई तर्क परम्परा का, वर्ड्सवर्थ द्वारा अपने काव्य-संग्रह 'लिरिकल बैलेड्स' (१७९८) की भूमिका में उल्लिखित काव्य-सम्बन्धी विचारधारा से पर्याप्त साम्य है। वर्ड्सवर्थ ने अपने काव्य-सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए, उसके चार प्रमुख तत्व बताये थे :

(१) घटनाओं तथा परिस्थितियों का सामान्य जीवन से चयन;

(२) उनका प्रारम्भ से अन्त तक, जहां तक सम्भव हो सके, सामान्य मनुष्यों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा में वर्णन;

(३) उनके ऊपर कुछ कल्पना के रंगों का उपयोग, जिनसे कि वे अपने साधारण रूप में नहीं, वरन् असामान्य रूप में प्रकट हों;

और (४) इन घटनाओं तथा परिस्थितियों को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए उनमें, प्रदर्शन के लिए नहीं, वरन् वास्तविकता के साथ, प्रकृति के प्राथमिक नियमों का समावेश करना।[1]

'कवि-कर्तव्य' शीर्षक दूसरे निबन्ध के अन्त में उसके मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार हैं :

"...यदि आजकल की कविता में शास्त्रोक्त गुणों को छोड़ कर नीचे लिखे हुए

१—'इंगलिश क्रिटिकल एसेज़' (उन्नीसवीं शताब्दी): 'वर्ड्सवर्थ: 'पोएट्री एण्ड पोएटिक डिक्शन' पृ० ४

गुण हों तो सम्भव है कि वह लोकप्रिय होगी :

१—कविता में साधारण लोगों की अवस्था, विचार और मनोविकारों का वर्णन हो ।

२—उसमें धीरज, साहस, प्रेम और दया आदि गुणों के उदाहरण रहें ।

३—कल्पना सूक्ष्म और उपमादिक अलंकारों से गूढ़ न हों ।

४—भाषा सहज, स्वाभाविक और मनोहर हो ।

५—छन्द सीधा, परिचित, सुहावना और वर्णन के अनुकूल हो ।" [१]

इन तत्वों का विवेचन करते हुए लेखक के मस्तिष्क में वर्ड्सवर्थ द्वारा प्रतिपादित काव्य-सिद्धान्त अवश्य रहे होंगे; इस प्रकार का साम्य अपने आप हो गया नहीं प्रतीत होता ।

इस निबन्ध में नवीन कवियों को, काव्य के जिन शास्त्रीय गुणों का परित्याग कर देने की शिक्षा दी गई है, उनकी विवेचना इस प्रकार है :

"···अलंकार और रस विवेचन के झगड़ों से जटिल ग्रंथों के बनाने की हम कोई आवश्यकता नहीं देखते । हेला भाव का लक्षण और उसका चित्र देखने से क्या लाभ, अथवा दीपक अलंकार के सूक्ष्म से भी सूक्ष्म भेदों के जानने का क्या उपयोग ! हिन्दी में ऐसे कितने काव्य हैं जिनमें यह सभी भेद पाये जाते हैं । हमारी अल्प बुद्धि के अनुसार 'रस कुसुमाकर' और 'जसवन्त जसो' ? भूषण' के समान ग्रन्थों की इस समय आवश्यकता नहीं ।"[२]

नायिका-भेद के सम्बन्ध में, जो अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी-काव्य का प्रमुख विषय हो गया था, लेखक का कथन था :

"यमुना के किनारे केलि-कौतूहल का वर्णन बहुत हो चुका । न परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने की अब आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के गतागत की पहेली बुझाने की ।" [३]

लेखक ने हिन्दी कवियों को काव्य-रचनाओं के जो नवीन विषय बताये थे, वे इस प्रकार हैं :

"चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्ताकाश, अनन्तपर्वत सभी पर कविता हो सकती है, सभी

---

१ महावीर प्रसाद द्विवेदी: 'रसज्ञ रञ्जन': 'कवि कर्तव्य', पृ० १९

२ वही, पृ० १२

३ वही, पृ० ११

से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है।"[1]

भारतीय भाषाओं में नीति सम्बन्धी साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। यह भावना या तो कथा-सूत्र के माध्यम से प्रकट की गई है अथवा जीवन की आदर्शवादी भावना के साथ अभिव्यक्त हुई है। किंतु ऊपर के अवतरण में उसकी जिस रूप में आवश्यकता बताई गई है, उस पर, पद्य रूप में लिखे गये अंग्रेजी कवि पोप के 'मॉरल एसेज' का प्रभाव प्रतीत होता है।

इन नवीन तत्वों के अतिरिक्त इस लेख के लेखक ने हिन्दी कविता में कुछ और नवीनताओं का समावेश करने का प्रयत्न किया था। उसने अपने निबन्ध को चार भागों में विभक्त किया था। प्रथम भाग में उसने छन्द के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किये थे, द्वितीय में भाषा के सम्बन्ध में, तृतीय में अर्थ के विषय में, और चतुर्थ में काव्य के विषय-वस्तु के सम्बन्ध में। छन्द सम्बन्धी विवेचना करते हुए उसने हिन्दी में अतुकांत छन्द के प्रारम्भ के विषय में बड़े सबल तर्क प्रस्तुत किये थे :

"अनुप्रास और यमक आदि शब्दाडम्बर कविता के आधार नहीं, जो उनके न होने से कविता निर्जीव हो जाय या उसे कोई अपरिमेय[1] हानि पहुंचे। कविता का अच्छा और बुरा होना विशेषतः अच्छे अर्थ और रस-बाहुल्य पर अवलम्बित है। परन्तु अनुप्रासों के ढूँढने का प्रयास उठाने में समुचित शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है, तथा जिससे कविता की चारुता नष्ट हो जाती है। अनुप्रासों का विचार न करने से कविता लिखने में सुगमता भी होती है और मनोभिलषित अर्थ व्यक्त करने में विशेष कठिनाई भी नहीं पड़ती। अतएव पादान्त में अनुप्रास हीन छन्द हिन्दी में लिखे जाने की बड़ी आवश्यकता है।"[2]

काव्य रचना में प्रयोग में आने वाली भाषा के सम्बन्ध में लेखक का विचार था :

"गद्य और पद्य की भाषा पृथक-पृथक न होनी चाहिये।"[3]

काव्य रचनाओं में अर्थ को लेखक ने प्राथमिक महत्व प्रदान किया था और इसके लिए वैयक्तिकता के तत्व पर विशेष बल दिया था :

"अर्थ सौरस्य ही कविता का जीव है।.....कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिये।.....प्राकृतिक वर्णन लिखने के समय उसके अन्तःकरण में यह दृढ़ संस्कार होना चाहिये कि वर्ण्यमान नदी, पर्वत अथवा वन के संमुख वह स्वयं उपस्थित होकर उनकी शोभा देख रहा है। जब कवि

---

१ महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'रसज्ञ रञ्जन : 'कवि कर्त्तव्य' पृ० ११

२—वही, पृ० ४-५

३—वही, पृ० ७

की आत्मा का वर्ण्य विषयों से इस प्रकार का निकट सम्बन्ध हो जाता है, तभी उसका किया हुआ वर्णन यथार्थ होता है और तभी उसकी कविता पढ़ कर पढ़ने वालों के हृदयों में तद्वत भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।"[१]

काव्य की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में लेखक का मत पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है, कि वे जन साधारण की जीवन धारा से लिए जाने चाहिएँ।

ये सभी विचार बड़ी सरलता के साथ वर्ड्सवर्थ के 'लिरिकल बैलड्स' की भूमिका से लिये गये दिखाये जा सकते हैं। 'कवि कर्त्तव्य' में काव्य का जो आदर्श प्रस्तुत किया गया है, वह भी, इसी भूमिका से लिया गया प्रतीत होता है। वर्ड्सवर्थ का विचार था :

".. .....All good poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings."[२]

हिन्दी में यही भाव इस प्रकार प्रकट किया गया है :

"कविता करने में अलंकारों को बलात लाने का प्रयत्न न करना चाहिये। विषय वर्णन के झोंक में जो कुछ मुख से निकले उसे ही रहने देना चाहिये।"[३]

यदि हिन्दी कविता ने इन सभी नवीन तत्वों को स्वीकार कर लिया होता, तो उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन हो जाता; किन्तु, क्योंकि वह शताब्दियों से रुढ़ियों के साथ आबद्ध रही थी, इसलिए उसने इन्हें अपनाने में असमर्थता अनुभव की। महावीर प्रसाद द्विवेदी की सहानुभूति यद्यपि इन नवीन तत्वों के साथ पूर्णतः थी, फिर भी इस असमर्थता को देख कर उन्हें एक बीच का मार्ग खोजना पड़ा; इस मध्यममार्ग में भी अंग्रेजी प्रभाव देखने को मिलता है। इस मार्ग का स्पष्टीकरण, द्विवेदी जी ने अपने 'कवि और कविता' शीर्षक निबन्ध में किया था, जिसमें एक स्थान पर उन्होंने मिल्टन की काव्य परिभाषा का उल्लेख किया है :

"अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि मिल्टन ने कविता में तीन गुण वर्णन किये हैं। उनकी राय है कि कविता सादी हो, जोश से भरी हुई हो और असलियत से गिरी हुई न हो।"[४]

---

१ महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'रसज्ञरञ्जन' : 'कवि कर्त्तव्य', पृ० ८-९

२—'इंगलिश क्रिटिकल एसेज़' (उन्नीसवीं शताब्दी) : 'वर्ड्सवर्थ : 'पोएट्री एण्ड पोएटिक डिक्शन', पृ० ५

३—महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'रसज्ञरञ्जन' : 'कवि कर्त्तव्य', पृ० ९

४—वही, 'कवि और कविता', पृ० ४७। मिल्टन की दी हुई काव्य-परिभाषा इस प्रकार है : 'Poetry should be simple, sensuous and full of spirits.'

आगे चलकर उन्होंने हिन्दी कविता के लिए इन्हीं तीनों तत्वों का ग्रहण आवश्यक बताया है।

कुछ समय तक मैथिलीशरण गुप्त, कामता प्रसाद गुरू तथा कुछ अन्य, कवि द्विवेदी जी द्वारा प्रतिपादित इन काव्य सिद्धांतों को लेकर ही काव्य रचनाएँ लिखते रहे; और फिर बनारस से सन् १९०९ में, 'इन्दु' नामक पत्रिका के प्रकाशन के साथ, हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी विद्रोह की धारा बड़े प्रबल वेग से बह चली। इस नवीन आन्दोलन का घोषणा-पत्र, इस पत्रिका के प्रथम अंक में ही, इस प्रकार देखा जा सकता है :

"साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नहीं होता है और उसके लिए विधि का कोई निबन्धन नहीं है, क्योंकि साहित्य स्वतन्त्र प्रकृति सर्वतोगामी प्रतिभा का परिणाम है, यह किसी की परतन्त्रता को सहन नहीं कर सकता, संसार में जो कुछ सत्य और सुन्दर है, वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौन्दर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकसित करता है। आनन्दमय हृदय के अनुशीलन में और स्वतन्त्र आलोचना में उसकी सत्ता देखी जाती है।"[1]

यह केवल हिन्दी कविता के ही क्षेत्र में नही वरन् हिन्दी साहित्य के विभिन्न रूपों में, स्वच्छन्दतावादी तत्वों के ग्रहण का आग्रह था।

स्वच्छन्दतावाद के इस आग्रह को सर्वप्रथम जयशंकर प्रसाद (१८८९-१९३७) ने स्वीकार किया था। सम्भव है, यह घोषणा-पत्र भी उन्होंने ही लिखा हो; क्योंकि 'इन्दु' पत्रिका के प्रकाशन से वे प्रारम्भ से ही सम्बन्धित रहे थे। इस पत्रिका के आगे के एक अंक में 'कवि और कविता' शीर्षक एक निबन्ध है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि नवीन काव्य रचनाएँ किस प्रकार की होनी चाहिएँ :

"अधिकांश महाशय कविता का मर्म समझाने की बात तो दूर है, उस पर ध्यान भी नहीं देते। यह क्यों, छन्द विषयक अरुचि है····· इसका कारण यह है कि सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं उनके अनुकूल कविता नहीं मिलती और पुरानी को पढ़ना तो महाद्वेष सा प्रतीत होता है, क्यों कि इस ढंग की कविता बहुतायत से हो गई है।·····

शृंगार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तियां शिथिल हो गई हैं इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु धीरे-धीरे जातीय संगीतमयी वृत्तिस्फुरणकारिणी, आलस्य

१—'इन्दु', कला १, किरण १

को भंग करने वाली, धीर गंभीर पद विक्षेप कारिणी, शांतिमयी कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना चाहिये। अब दूर नहीं है, सरस्वती अपनी मलीनता का त्याग कर रही है, और प्रबल रूप धारण करके प्रभातिक ऊषा को भी लजावेंगी, एक बार वीणाधारिणी अपनी वीणा को पंचम स्वर में ललकारेंगी, भारत की भारती फिर भी भारत की ही होगी।"[1]

इस अवतरण की भावधारा का निकट से अध्ययन करने से, यह स्पष्ट हो जाता है, कि इस परिवर्तन की आवश्यकता, अंग्रेजी प्रभाव, जिसे यहां पाश्चात्य प्रभाव कहा गया है, के प्रसार से हुई थी। अंत में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि इस प्रयत्न का परिणाम विदेशी तत्वों को ग्रहण कर लेने पर भी पूर्णतः भारतीय ही होगा। अंतिम अंश को पढ़ते हुए यह प्रतीत होता है, जैसे कि लेखक किसी आलोचक द्वारा हिन्दी कविता में नवीन तत्वों को देखकर लगाये गये इस आरोप का उत्तर दे रहा हो, कि यह सब तो विदेशों का अनुकरण मात्र है और इसलिये ग्राह्य भी नहीं है।

हिन्दी काव्य जगत में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के दर्शन, सर्वप्रथम जयशङ्कर प्रसाद की रचनाओं में होने प्रारम्भ हुए। इसके अनन्तर मुकुटधर पाण्डेय, इस नवीन आन्दोलन में सम्मिलित हुए। सन् १९२० के लगभग इस नवीन वाद को लेकर चलने वाले दो प्रमुख कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा सुमित्रानन्दन पंत की रचनाएँ भी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। वे नवीन तत्व, जो ये कवि हिन्दी काव्य जगत में अपने साथ लाये थे, काव्य की बाह्य रूप-रेखा में तो मुक्त-छन्द और गीतिकाव्य थे, और अन्तर्धारा में कल्पना का विशेष रूप से उपयोग, हृदय की वास्तविक भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति के प्रति स्नेह की भावना थे। इस प्रकार हिन्दी कविता ने, अंग्रेजी प्रभाव की छाया में, अपने को पूर्णतः बदल दिया था। उसने अपने मध्ययुगीन आवरण का परित्याग कर दिया था, और नये रूप तथा नव-युग की भावना से अनुप्राणित हो गई थी।

४—नाटक

शताब्दियों के व्यवधान के अनन्तर, भारतवर्ष की नाटकीय परम्परा का पुनर्जागरण, अंग्रेजी प्रभाव के सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदानों में से एक है। जिस प्रकार यूरोप में ईसाई धर्म के प्रचार ने इस साहित्यिक रूप के विकास की गति को अवरुद्ध कर दिया था, उसी प्रकार भारतवर्ष में मध्य युग में इस्लाम धर्म के प्रचार से हमारी नाटकीय परम्परा का विकास बाधित हो गया था। संस्कृत साहित्य में नाटकों तथा

१—'इन्दु', कला २, किरण १

नाट्य-शास्त्र के ग्रन्थों, दोनों की ही संख्या बहुत अधिक है; किन्तु हिन्दी में इस साहित्यिक रूप का विकास नहीं हो सका था, क्योंकि इस्लाम का धार्मिक दृष्टिकोण इस साहित्यिक रूप का विरोधी था। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व की, जितनी नाटकीय रचनाएँ कही जाती हैं, जैसे केशवदास कृत 'विज्ञान गीता', निवाजकवि कृत 'शकुन्तला नाटक' आदि, वे केवल नाम मात्र के लिए ही नाटक हैं। नाटकीय रचनाओं की अन्य विशेषताओं के सम्बन्ध में क्या कहा जाय, उनमें तो नाटक की बाहरी रूप-रेखा, अंक, दृश्य आदि भी नहीं हैं। केवल रीवां के महाराज विश्वनाथ सिंह के 'आनन्द रघुनन्दन नाटक' में, नाटकीय रूप की कुछ विशेषताएँ अवश्य मिलती हैं; किन्तु उसमें भारतवर्ष की महान नाटकीय परम्परा का निर्वाह नहीं है, वह अत्यन्त साधारण कोटि की रचना है।

हिन्दी में नाटकीय साहित्य का विकास वास्तव में अंग्रेजी प्रभाव के हिन्दी साहित्य पर कार्य करने के अनन्तर ही हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'नाटक' (१८८३) निबन्ध की निम्नलिखित पंक्तियों से इस तथ्य की पुष्टि होती है:

"विशुद्ध नाटक रीति से पात्र प्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य चरण श्री कविवर गिरधर दास, वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द जी का है।.....मेरे पिता ने बिना अंग्रेजी शिक्षा पाये इधर क्यों दृष्टि दी, यह बात आश्चर्य की नहीं, उनके सब विचार परिष्कृत थे।.....उनको वर्तमान समय का स्वरूप भली प्रकार विदित था।"[1]

इस उद्धरण में जिस नाटकीय रचना की ओर संकेत किया गया है, उसका नाम 'नहुष' है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गोपाल चन्द जी ने उसे लिखा था।

यह हिन्दी भाषा में अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप किन्तु बिना अंग्रेजी के नाटकीय साहित्य के परिचय के ही, नाटकीय रूप का प्रथम प्रयास था। अंग्रेजी के नाटकीय साहित्य के सम्पर्क ने हिन्दी नाटकों के विकास में और भी योग दिया। अंग्रेजी नाटकों का प्रभाव हमें सर्व प्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में देखने को मिलता है। उनके 'नाटक निबन्ध से यह स्पष्ट हो जाता है, किउन्होंने संस्कृत नाट्य-शास्त्र का भी भली प्रकार अध्ययन किया था; किन्तु उसके सम्बन्ध में उनका विचार था कि उसकी समस्त विशेषताएँ हिन्दी नाटकों के लिए ग्राह्य नहीं थीं। उनका अपना दृष्टिकोण था :

"जिस समय में जैसे सहृदय जन ग्रहण करें और देशी रीति नीति का प्रभाव जिस तरह से चलता रहे, उस समय में उक्त सहृदयगण के अन्तःकरण की वृत्ति और सामा-

---

१- श्यामसुन्दर दास सम्पादित: 'भारतेन्दु नाटकावली', परिशिष्ट, पृ० ८३७

जिक रीति पद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना करके नाटकादि दृश्य-काव्य, प्रणयन करना योग्य है।"[१]

इसीलिए उनका विचार था : "वर्तमान समय में इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगों की रुचि उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है, इससे सम्प्रति प्राचीन मत का अवलम्बन करके नाटक आदि दृश्य-काव्य लिखना युक्ति संगत नहीं बोध होता।"[२]

फिर भी उनका यह मत नहीं था कि सभी पुराने नियम छोड़ दिये जायँ। उनका विचार था कि जो नियम आधुनिक युग की भावधारा के अनुसार हों उन्हें ग्रहण कर लिया जाय। उनके विचार से संस्कृत नाटक की निम्नलिखित प्रवृत्तियां हिन्दी नाटकों के अनुकूल नहीं थीं :

'अब नाटकादि दृश्य-काव्य में अस्वाभाविक सामग्री परिपोषक काव्य सहृदय सभ्य मंडली को नितांत अरुचिकर है, इसलिए स्वाभाविक रचना ही इस काल के सभ्यगण की हृदय ग्राहिणी है, इससे अब अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकादि दृश्य-काव्य प्रणयन करना उचित नहीं है। अब नाटक में कहीं आशीः प्रभृति नान्द्यालंकार, कहीं प्रकरी, कही विलोभन्, कहीं सम्फेट, पंच सन्धि व ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आवश्यकता नहीं रही।"[३]

इन पंक्तियों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने संस्कृत नाटक की कुछ विशेषताओं तथा जटिलताओं, विशेष रूप से उसके लोकोत्तर तत्व के परित्याग के लिए कहा है। हिन्दी नाटक इसीलिए प्रारम्भ से ही जीवन का यथार्थवादी चित्रण करते हुए सामाजिक जीवनधारा के अधिक सन्निकट रहा है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने इस निबन्ध में अंग्रेजी प्रभाव के साथ हिन्दी नाटक में जो विदेशी तत्व आ रहे थे, उनका भी उल्लेख किया है। नाटकों के विभिन्न प्रकारों की विवेचना करते हुए, उसके नवीन प्रकारों के वर्णन में उन्होंने लिखा था :

"आजकल योरप के नाटकों की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं···वह सब नवीन भेद में परिगणित है। प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारम्बार दृश्यों के बदलने में है और इसी हेतु एक-एक अंक में अनेक अनेक गर्भांकों की कल्पना की जाती है, क्योंकि इस समय में नाटकों के खेलों के साथ विविध दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है। इन अंक और गर्भांकों की कल्पना यों होनी चाहिए,

---

१—श्यामसुन्दर दास संपादित: 'भारतेन्दु नाटकावली', पृ० ७९९

२—वही पृ० ७९८

३—वही, पृ० ७९९

यथा पांच वर्ष के आख्यान का एक नाटक है तो उसमें वर्ष-वर्ष के इतिहास के एक एक अंक और उस अंक के अंत: पाती विशेष-विशेष समयों के वर्णन का एक-एक गर्भांक। अथवा पांच मुख्य घटना विशिष्ट कोई नाटक है तो प्रत्येक घटना के सम्पूर्ण वर्णन का एक-एक अंक और भिन्न भिन्न स्थानों में विशेष घटनान्त: पाती छोटी २ घटनाओं के वर्णन में एक-एक गर्भांक। ये नवीन नाटक मुख्य दो भेदों में बंटे हैं—एक नाटक, दूसरा गीति-रूपक; जिनमें कथा भाग विशेष और गीति न्यून हों वह नाटक, और जिसमें गीति विशेष हों, वह गीति-रूपक। यह दोनों कथा के स्वभाव से अनेक प्रकार के हो जाते हैं, किन्तु उनके मुख्य भेद इतने किये जा सकते हैं ··१···संयोगांत ·· अर्थात् प्राचीन नाटकों की भांति जिसकी कथा संयोग पर समाप्त हो। २···वियोगांत···जिसकी कथा अन्त में नायिका या नायक के मरण वा और किसी आपद घटना पर समाप्त हो। ···३ मिश्र···अर्थात् जिसके अन्त में कुछ लोगों का तो प्राणवियोग हो और कुछ सुख पावें।"[१]

इस अवतरण में नवीन नाटकों के तीन मुख्य तत्वों की ओर संकेत किया गया है : (१) एक अंक में कई दृश्यों की कल्पना, जिन्हें यहां पर गर्भांक कहा गया है, (२) अभिव्यञ्जना की शैली के आधार पर नाटकों के दो भेद—नाटक तथा गीति-रूपक, (३) कथा-सूत्र के आधार पर नाटकों के तीन भेद—संयोगांत, वियोगांत तथा मिश्र, जो कि अंग्रेजी के तीन भेदों–कॉमेडी, ट्रेजेड़ी तथा ट्रैजीकॉमेडी के हिन्दी रूपांतर मात्र हैं। ऊपर के अवतरण में पाश्चात्य नाटकों के संकलन-त्रय के सिद्धान्त का भी अस्पष्ट सा उल्लेख है।

इन नाटकों की रचना जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती थी, वे निम्नलिखित थे : (१) शृंगारिक भावना को जागरूक करना, (२) हास्य के प्रसंगों की अवतारणा करके उनके माध्यम से मनोरञ्जन करना, (३) कुछ विचित्र परिस्थिति उत्पन्न करके उसके द्वारा कौतुक अथवा कौतूहल की वृत्ति को जगाना, (४) समाज-संस्कार की भावना को जगाना, तथा (५) देशवत्सलता की भावना उत्पन्न करना। इनमें से अंतिम दो तो निश्चित रूप से अंग्रेजी प्रभाव से लिये गये कहे जा सकते हैं।

संस्कृत के नाटक-साहित्य में यद्यपि नाटकीय रूप के भेदों की संख्या बहुत अधिक है, किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की दी हुई परिभाषा के आधार पर, वे सभी, एक ही प्रकार, संयोगांत (Comedy) के भीतर आ जाते हैं, क्योंकि उन सभी का अन्त सुख की भावना से ही होता है। संस्कृत साहित्य में विशुद्ध दुखान्तकी नाटक कोई नहीं

१—श्यामसुन्दर दास संपादित : 'भारतेन्दु नाटकावली', परिशिष्ट, पृ० ७९५-९६

है। संस्कृत नाटक में नायक सर्वोत्तम गुणों से युक्त होता है और अपने इसी रूप में वह कथा-सूत्र को लेकर सत्य, न्याय, ईमानदारी तथा औचित्य के प्रतिपादक के रूप में अपनी प्रतिष्ठा करता है। इस प्रकार के चरित्र के पतन का तात्पर्य होता है, उन सद्गुणों का पतन, जिनकी सामाजिक जीवन के स्वस्थ निर्माण के लिए परम आवश्यकता है। संस्कृत के नाटककारों ने, दुःखान्त को नायक की पराजय का संकेतक समझ कर कभी प्रस्तुत ही नहीं किया था। संस्कृत नाटकों में हम देखते हैं कि नायक महान से महान दुर्घटना होने पर भी शान्त तथा स्थिर बुद्धि का बना रहता है, और अपने महान उद्देश्य पर निरन्तर दृढ़ रहते हुए, मनुष्य में जो कुछ भी सर्वोत्तम है, उसका दिव्य-संदेश समाज को देता रहता है। इसी आदर्श का अनुसरण करने के कारण संस्कृत के नाटककारों ने दुःखान्त रचना लिखने का प्रयास ही नहीं किया।

इसी कारण से तो हिन्दी में दुःखान्त नाटकों की रचना में, पर्याप्त समय लगा। अंग्रेजी प्रभाव के प्रारम्भ से ही यद्यपि श्रीनिवास दास की 'रणधीर प्रेम मोहिनी' (१८७८) तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'भारत दुर्दशा' (१८८०) नाम की दुखान्त रचनाएं प्रकाशित होने लगी थीं, तथापि इस साहित्यिक रूप के लोक-प्रिय होने में विशेष समय लगा था। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को भी, अपने बहुत बाद को लिखे गये 'नाट्यशास्त्र' (१९१२) नामक ग्रन्थ में, हिन्दी लेखकों से दुःखान्त नाट्य-पद्धति अपनाने के लिए कहना पड़ा था :

"वियोगांत अथवा दुःखांत नाटकों का क्यों अभाव होना चाहिए इसका कोई स्पष्ट कारण नहीं देख पड़ता। दृश्य-काव्य का अभिप्राय मनुष्य-चरित्र को अभिनय द्वारा दिखलाना ही है। मनुष्य को सुख भी होता है और दुःख भी होता है। दुराचारियों के कर्मों का फल प्रायः दुःखमय ही हुआ करता है। अतएव यदि ऐसों का चरित्र दृश्य-काव्य रूप में दिखलाया जाय तो उसका अन्त दुखद होना ही चाहिए। अतएव दुःखान्त या वियोगान्त नाटक लिखना हमारी समझ में अनुचित नहीं है।"[1] इन पंक्तियों का तर्क बड़ा सही है : नाटकीय रचनाओं का उद्देश्य जब जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना है, और जीवन में सुख और दुःख दोनों ही प्रकार की परिस्थितियां आती हैं, तो दुःखान्त कथा-सूत्र का उपयोग करके भी नाटकीय रचनाएं लिखी जा सकती हैं।

इस प्रकार के प्रयत्नों के अतिरिक्त पाश्चात्य नाटककारों, विशेष रूप से शेक्सपियर की रचनाओं के अध्ययन से हिन्दी लेखकों की रुचि दुःखान्त नाटक लिखने की ओर

१—महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'नाट्य शास्त्र' (१९१२), पृ० ४१

उन्मुख हुई। अंग्रेजी के नाटककार धीरे-धीरे लोकप्रिय होते जा रहे थे। श्रीनिवास दास ने, अपने 'परीक्षा गुरु' उपन्यास में, शेक्सपियर तथा बेन जॉन्सन के नाटकों का कई स्थानों पर उल्लेख किया है। इसी प्रकार के उल्लेख अन्य रचनाओं में भी प्राप्त होते हैं। अंग्रेजी के नाटक, धीरे-धीरे अनुवादित रूप में भी, हिन्दी लेखकों के सामने आने लगे थे। हिन्दी में अनुवादित होने वाला सर्व प्रथम अंग्रेजी नाटक एडीसन का 'केटो' था। अलीगढ़ के बाबू तोता राम ने, उसका अनुवाद सन् १८७७ में, 'केटो कृतांत' नाम देकर प्रकाशित कराया था। यह भी एक दुःखान्त रचना थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी, शेक्सपियर के नाटक 'दि मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' के अपने मित्र द्वारा किये हुए हिन्दी रूपांतर, 'दुर्लभ बन्धु' का संशोधन करके सन् १८८० में प्रकाशित कराया था। इसके अनन्तर अवधवासी लाला सीता राम ने शेक्सपियर के पन्द्रह नाटकों के हिन्दी रूपांतर प्रकाशित किये। हास्य रस के प्रसिद्ध लेखक जी० पी० श्रीवास्तव ने भी अपने प्रारम्भिक लेखन-काल में फ्रांस के प्रसिद्ध नाटककार मोलियर के कुछ नाटकों के रूपांतर किये थे। कुछ अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद फारसी नाटक कम्पनियों द्वारा भी प्रस्तुत किये गये थे। शिक्षा संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में भी अंग्रेजी के नाटककारों-शेक्सपियर, मिल्टन, शेरिडन, गोल्डस्मिथ आदि को स्थान दिया गया था। हिन्दी के लेखकों का सम्पर्क इन सभी माध्यमों से अंग्रेजी नाटककारों के साथ बड़ा घनिष्ठ हो गया था। इसी सम्पर्क के फलस्वरूप उन्होंने, नाटकों के स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त से परिचय प्राप्त किया, तथा आचार-प्रधान सुखान्तकी (Comedy of Manners) और इसी प्रकार के कुछ अन्य नाटकीय रूपों को अपनाया। अंग्रेजी नाटकों के प्रभाव से ही हिन्दी नाटकों में संघर्ष को प्रधान तत्व के रूप में माना जाने लगा, और संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार आत्महत्या, वध, युद्ध आदि के वर्जित दृश्य भी, हिन्दी नाटकों में प्रस्तुत किये जाने लगे।

५—उपन्यास

हिन्दी साहित्य के लिए उपन्यास एक नवीन साहित्यिक रूप था। इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' (१८००-१८०३), जो हिन्दी में इस साहित्यिक रूप की सर्व प्रथम रचना मानी जाती है, वास्तव में उपन्यास नहीं है; क्योंकि उसमें जीवन के विभिन्न पक्षों का उस प्रकार का व्यापक चित्रण नहीं है, जैसा इस साहित्यिक रूप के लिए परमावश्यक है। हिन्दी में इस साहित्यिक रूप का अभाव सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को प्रतीत हुआ था, और इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने अमृतसर के एक मित्र पं० संतोषसिंह को लिखा था:

"जैसे भाषा में अब तक कुछ नाटक बन गये हैं, अब तक उपन्यास नहीं बने हैं।

नहीं, सिर्फ शक्ल बदलना रह गया, वह भी किसी काम का नहीं। इन ऐयारों का बयान हिन्दी किताबों में अभी तक मेरी नजरों से नहीं गुजरा। अगर हिन्दी पढ़ने वाले भी इस मजे को देखलें तो कई बातों का फायदा हो। सबसे ज्यादा तो यह है कि ऐसी किताबों का पढ़ने वाला जल्दी किसी के धोखे में न पड़ेगा। इन सब बातों का ख्याल करके मैंने यह चन्द्रकांता नामक उपन्यास लिखा है।"[१]

यह तिलस्मी तत्व हिन्दी उपन्यासों में सामान्यतः फारसी साहित्य से आया हुआ कहा जाता है; किन्तु उसका कुछ अंश संस्कृत के कथा साहित्य से भी ग्रहण किया गया था। फारसी साहित्य का जो प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर आया है, वह सभी फारसी के माध्यम से नहीं है, उसका काफी अंश फारसी साहित्य के अंग्रेजी अनुकरणों से भी होकर आया है : विशेष रूप से जॉर्ज डब्ल्यू० एम० रेनॉल्ड्स की रचनाओं के माध्यम से ग्रहीत है।

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में, किशोरी लाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) के आगमन से, एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के लिए सभी क्षेत्रों से सामग्री एकत्र करते हुए एक वास्तविक उपन्यासकार के रूप में कार्य किया था। अपने एक उपन्यास 'अंगूठी का नगीना' की भूमिका में उन्होंने लिखा था :

"·····एक सज्जन हमारे यहां काशी में पधारे और हमारे अतिथि हुए।····· उन्होंने अपने घराने की एक सच्ची और अस्सी वर्ष की पुरानी कहानी सुनाई और उस कहानी के आधार पर एक छोटा सा उपन्यास लिख देने का आग्रह किया। अपने उक्त सज्जन मित्र के ऐसे आग्रह को देख कर हमने उस कहानी का कन्टेन्ट्स तीन सीट फूल्सकेप में लिख लिया और उसी नोट के आधार पर इस उपन्यास की रचना करनी प्रारम्भ की।"[२]

किशोरीलाल गोस्वामी के प्रयत्न के फलस्वरूप ही ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि उपन्यास के विभिन्न प्रकारों का विकास हुआ। रेनाल्डस के उपन्यासों का प्रभाव इनकी रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है। उन्होंने सन् १८९८ से 'उपन्यास' नाम की एक पत्रिका का भी प्रकाशन आरम्भ किया था। उनकी कई रचनाएँ सर्व प्रथम इसी पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं।

किशोरी लाल गोस्वामी के अनन्तर, हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में, गोपाल राम गहमरी का नाम आता है। प्रारम्भ में उन्होंने देवकी नन्दन खत्री तथा किशोरी लाल गोस्वामी

१—देवकी नन्दन खत्री: 'चन्द्रकांता', भूमिका

२—किशोरी लाल गोस्वामी: 'अंगूठी का नगीना', भूमिका, पृ० १ तथा २

के मार्गों का ही अनुसरण किया; किन्तु आगे चल कर उन्होंने अपने लिए एक नया मार्ग खोजा और हिन्दी में जासूसी उपन्यास प्रस्तुत किये। इस प्रकार के उपन्यासों की अभिवृद्धि के लिए उन्होंने 'जासूस' नाम की एक पत्रिका भी प्रकाशित की थी।

हिन्दी में इस साहित्यिक रूप के निर्माण में इन प्रतिभाशाली व्यक्तियों का योगदान होते हुए भी, प्रस्तुत अध्ययन की अवधि (१८७०-१९२०) तक प्रकाशित होने वाले अधिकांश उपन्यास, बंगला और कुछ अंग्रेजी रचनाओं के रूपान्तर मात्र हैं। बंगला से विशेष रूप से बंकिमचन्द्र, रमेश चन्द्र दत्त तथा पंचकौड़ी दे की रचनाएं प्रकाशित हुई थीं। अंग्रेजी उपन्यासकारों में रेनॉल्डस की रचनाओं के अनुवाद सबसे अधिक हुए थे। प्रेमचन्द जी का प्रथम उपन्यास 'प्रेमा' सन् १९०५ में प्रकाशित हुआ था; किन्तु उपन्यासकार के रूप में उनका जीवन वास्तव में 'सेवासदन' (१९१७) के प्रकाशन से आरम्भ हुआ। उनकी रचनाओं में अंग्रेजी प्रभाव प्रारम्भ से ही मिलता है।

६-कहानी

हिन्दी में इस साहित्यिक रूप का विकास वास्तव में अंग्रेजी प्रभाव के फल-स्वरूप ही हुआ है। इस क्षेत्र में राजा शिवप्रसाद के प्रथम प्रयोग, 'राजा भोज का सपना' तथा 'स्टैन फोर्ड और मर्टन की कहानी' अंग्रेजी के एक लेखक टुंकरकी रचनाओं पर आधारित कहे जाते हैं। इनके पश्चात् अन्य प्रयोग हमें 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' में देखने को मिलते हैं। उसमें प्रकाशित होने वाली एक भूतों की कहानी 'मार्टिन वाल्डेक का भाग्य' निश्चित रूप से किसी अंग्रेजी अथवा यूरोपीय जन-कथा का हिन्दी रूपान्तर है। इन प्रयोगों के कुछ ही वर्ष पश्चात् काशी नाथ खत्री ने, चार्ल्स तथा मैरी लैम्ब के 'टेल्स फ्रॉम शेक्सपियर' का अनुवाद, दो भागों में 'शेक्सपियर के मनोहर नाटक' नाम से प्रकाशित किया। इस प्रकाशन ने हिन्दी कहानी के विकास को वास्तविक प्रोत्साहन दिया।

ये सभी इस क्षेत्र में प्रयोगमात्र थे; हिन्दी कहानी का विकास वास्तव में सन् १९०१ से किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' के प्रकाशन से प्रारम्भ हुआ। इस कहानी का कथानक शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' की कथा से बहुत मिलता हुआ है। इस रचना के अनन्तर 'सरस्वती' में जो अन्य कहानियां प्रकाशित हुई थीं, उनमें से कई कथानक अंग्रेजी की कथात्मक रचनाओं, गोल्डस्मिथ के 'हरमिट', टेनिसन के 'एनॉक आर्डेन' लाँगफेलो की 'इवेंजेलाइन' आदि से बहुत मिलते जुलते हैं। 'सरस्वती' में शेक्सपियर के कई नाटकों की कहानियां भी, कहानी के रूप में प्रकाशित हुई थीं।

हिन्दी कहानी के साहित्यिक आदर्श का निर्माण इस प्रकार, अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप हो जाने के अनन्तर, आगे हम उसे बंगला के कथा साहित्य, पौराणिक गाथाओं, संस्कृत नाटकों की कहानियों, जन-गाथाओं तथा लेखक के अपने जीवन की अनुभूतियों से, अपने लिए एक नवीन मार्ग खोजते हुए पाते हैं। हिन्दी-प्रदेश के सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों का भी हिन्दी कहानी के विकास में पर्याप्त योग रहा है।

७--निबन्ध तथा आलोचना

नवीन हिन्दी कविता की भांति, हिन्दी निबन्ध का विकास भी, अपने प्रारम्भिक काल में 'पेनी रीडिंग क्लब' नाम के एक नव-स्थापित साहित्यिक-केन्द्र से सम्बन्धित रहा था। इस साहित्यिक रूप का सर्व प्रथम प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही प्रस्तुत किया था। 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' में प्रकाशित लगभग सभी निबन्ध, सर्व प्रथम इस साहित्यिक-केन्द्र में प्रस्तुत किये गये थे। अपने आगे के जीवन में हिन्दी निबन्ध का विकास कुछ पत्र-पत्रिकाओं से सम्बन्धित रहा। बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) ने अपने निबन्ध स्व-सम्पादित 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित किये थे; प्रताप नारायण मिश्र (१८५६-९४) ने 'ब्राह्मण' में; तथा बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' के 'आनन्द कादम्बिनी' तथा 'नागरी नीरद' में। अपने प्रारम्भिक काल में हिन्दी निबन्ध ने कल्पना-शक्ति को विशेष प्रश्रय दिया था। इस प्रकार के निबन्धों के उदाहरण 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' में सन् १८७३ में प्रकाशित 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' तथा 'कलिराज की सभा' है। आगे चल कर हिन्दी निबन्धकारो ने गम्भीर तथा जन-महत्व के विषयों पर विचार-विमर्श करना आरम्भ किया।

हिन्दी निबन्ध के प्रारम्भिक विकास में अंग्रेजी निबन्ध का भी योग रहा था। श्यामसुन्दरदास जी ने अपनी आत्म-कहानी में लिखा है, कि उन्होंने सन् १८९४ में, अंग्रेजी के एक निबन्ध, 'एड्स ऑफ कन्टेन्टमेंट' के आधार पर, 'संतोष' शीर्षक एक निबन्ध लिखा था, और उसे बांकीपुर की किसी हिन्दी पत्रिका में प्रकाशित कराया था। यह निबन्ध उन्होंने अपने पाठ्य-क्रम की एक पुस्तक 'हेल्प्स एसेज रिटेन इन इन्टरवल्स ऑफ बिजनेस' में पढ़ा था।[1] बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित 'शिवशम्भु के चिट्ठे' (१९०६) तथा अन्य निबन्ध, 'कोवरले पेपर्स' में संग्रहीत एडिसन तथा स्टील के निबन्धों से काफी मिलते-जुलते थे। यह ग्रंथ भी उन दिनों पाठ्य-क्रम में था। महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा मिश्रबन्धु के कुछ निबन्धों पर बेकन के निबन्धों का प्रभाव

१—श्यामसुन्दर दास : 'मेरी आत्म कहानी' (१९४१), पृ० ३६

स्पष्ट दिखाई देता है ।

साहित्यिक आलोचना का प्रारम्भ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले पुस्तक-परिचयों से हुआ। पुस्तक-परिचयों का प्रकाशन सर्व प्रथम 'हिन्दी प्रदीप'[१] तथा 'आनन्द कादम्बिनी'[२] में हुआ । 'हिन्दी प्रदीप' में बालकृष्ण भट्ट ने श्रीनिवास दास के 'संयोगिता स्वयंबर' की छोटी सी आलोचना प्रस्तुत की थी। इसी रचना पर बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने अपनी पत्रिका 'आनन्द कादम्बिनी' में विस्तृत आलोलना लिखी। इन प्रारम्भिक प्रयोगों में सबसे अधिक स्वस्थ आलोचनात्मक अध्ययन श्रीधर पाठक द्वारा अनुवादित गोल्डस्मिथ की रचनाओं के परिचय हैं । हिन्दी का पहला आलोचनात्मक निबन्ध बालकृष्ण भट्ट का 'साहित्य जन-समूह के हृदय का विकास है'[3] शीर्षक रचना है । साहित्यकारों का स्वतंत्र रूप से आलोचनात्मक अध्ययन, सन् १९११ में, मिश्र-बन्धुओं के 'हिन्दी नवरत्न' के प्रकाशन से आरम्भ हुआ था । मिश्र-बन्धुओ ने ही 'मिश्र बन्धु विनोद' नामक तीन खण्डों का ग्रथ प्रकाशित करके, हिन्दी में ऐतिहासिक आलोचना का प्रारम्भ किया था ।[४] महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी कुछ आलोचनात्मक निबन्ध लिखे थे, और उनमें उन्होंने डॉ० जॉनसन के प्रसिद्ध ग्रंथ, 'लाइव्स ऑफ पोएट्स' को अपना आदर्श बनाया था ।[५]

८—अन्य साहित्यिक रूप

अन्य साहित्यिक रूप, जो अंग्रेजी प्रभाव से उत्पन्न हुये थे, और जिनके साहित्यिक आदर्शों के निर्माण में इस प्रभाव का विशेष योग रहा था, इतिहास, जीवन चरित्र तथा पत्र-पत्रिकायें आदि हैं । कुछ अन्य साहित्यिक रूपों का विकास भी इस प्रभाव के कारण हुआ था, जैसे यात्रा-विवरण, आध्यात्मिक विश्लेषण आदि; किन्तु इस प्रकार की रचनाओं को पत्र-पत्रिकाओं में ही स्थान मिला था, इसीलिए उन्हीं के साथ इनका भी अध्ययन हो जायेगा ।

हिन्दी में इतिहास का सर्व प्रथम ग्रन्थ राजा शिव प्रसाद का 'इतिहास तिमिर

१—रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सं० १९५२), पृ० ४६७

२—वही, पृ० ५२७

३—'हिन्दी प्रदीप', अंक फरवरी-मार्च १८९२, पृ० ६—७

४—प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की अवधि तक इस ग्रंथ के तीन ही खण्ड प्रकाशित हुये थे; चौथा खण्ड, जिसमें आधुनिक साहित्य का विवेचन है, सन् १९३४ में प्रकाशित हुआ ।

५—'सरस्वती' (१९१४), पृ० २३६

नाशक' (१८७३) था। यह ग्रंथ कुछ अंग्रेजी रचनाओं की रूपरेखा पर लिखा गया था। इसके अनन्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की इतिहास सम्बन्धी रचनाएँ आती हैं; जिनमें हमें तथ्यों का संग्रह मात्र ही नहीं, वरन् इतिहास लेखन की वैज्ञानिक रीति का उपयोग मिलता है। आगे चलकर मुन्शी देवी प्रसाद ने भी अपनी रचनाओं में इसी रीति का अनुसरण किया था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने एक निबन्ध में अंग्रेजी के प्रसिद्ध इतिहासकारों—गिबन तथा ब्लैकी को हिन्दी के लिए आदर्श इतिहासकार माना था।[1]

यद्यपि इस काल में लिखे गये जीवन-चरित्रों की संख्या बहुत अधिक है; तथापि साहित्यिक दृष्टि से वे उच्च कोटि के नहीं है। मध्ययुग में भी इस क्षेत्र में कुछ प्रयोग हुये थे; किन्तु या तो वे 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' की भांति साम्प्रदायिकता लिये हुए हैं, या वेणी माधव दास कृत 'मूल गोसाईं चरित्' की भांति पूर्णतः अविश्वसनीय हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा राधा कृष्ण दास ने अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से जो जीवन-चरित्र लिखे थे, उनमें इस प्रकार के दोष नहीं हैं। उनकी रचनाएं कुछ खोज के पश्चात लिखी गई प्रतीत होती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जब जीवन-चरित्र लिखना प्रारम्भ किया तो उन्होंने बेकन के ग्रंथ, 'एडवान्समेंट ऑफ लर्निंग' की निम्न-लिखित पंक्तियों को अपना मूल-सूत्र बनाया था:

"But lives if they be well written, propounding themselves a person to represent, in whom actions both greater and smaller, public and private have a co-mixture, must of necessity contain a more true and lively representation."[2]

और उन्होंने हिन्दी के जीवन-चरित सम्बन्धी साहित्य की विशेष अभिवृद्धि भी की थी।

हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं का प्रारम्भ अंग्रेजी प्रभाव का सबसे अधिक महत्व पूर्ण योग रहा है। उन्होंने हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक रूपों के आदर्शों के निर्माण तथा विकास के साथ-साथ जन-साधारण में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक विषयों पर विचार-विमर्श को भी प्रोत्साहित किया था; और पश्चिम के नवीन तथा वैज्ञानिक विचारों का प्रचार करके जनता के अन्धविश्वासों को दूर करने का प्रयास किया था। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं के अनुकरण में हुआ था, और महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' सम्पादन काल तक, जैसा उन्होंने

१—'सरस्वती' (१९१२), पृ० ३७।

२—वही (१९०३), पृ० १३५।

स्वयं ही लिखा है,[1] हिन्दी की पत्र-पत्रिकायें अंग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओं को ही आदर्श मानकर चलती थीं।

६—उपसंहार

इस प्रकरण को समाप्त करते हुए, यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है, कि महावीर प्रसाद द्विवेदी की कोटि का लेखक तथा सम्पादक, हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक रूपों के विकास के लिये अंग्रेजी साहित्य के ज्ञान को आवश्यक समझता था। अंग्रेजी पढ़े लिखे नवयुवकों को, हिन्दी साहित्य के विकास के प्रति विशेष उन्मुख न देखकर, द्विवेदी जी ने बड़े प्रभावशाली शब्दों में, उनसे, अपनी मातृ-भाषा की सेवा के लिये तत्पर होने का अनुरोध किया था; और इस सम्बन्ध में मिल्टन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, उन्होंने उसकी एक रचना 'रीज़न्स एगेंस्ट चर्च गवर्नमेंट' की निम्नलिखित पंक्तियां उद्धृत की थीं :

"I applied myself to that resolution which Aristo followed against the persecution of Bambo, to fix all the industry and art which I could write to the adorning of my native tongue, not to make verbal curiosities the end (that were a toilsome vanity) but to be an interpreter of the best and suggest things among mine own citizens throughout the island in the mother dialect, that what the greatest and choicest wits of Athens, Rome and Modern Italy and those Hebrews of old did for their country, I in my portion, with this, over and above those of being a Christian, might do for mine, not caring to be once named abroad, by writing in Latin (like Bacon) though perhaps I could attain to that but content with these British Islands as my world."[2]

महावीर प्रसाद द्विवेदी के इस अनुरोध तथा मिल्टन के उदाहरण का प्रभाव पड़ा, और अधिक से अधिक संख्या में अंग्रेजी पढ़े लिखे नवयुवक हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास के लिए कार्य करने लगे। उनकी रचनाओं से हिन्दी के भाषा सम्बन्धी तथा साहित्यिक आदर्शों में एक निश्चित परिवर्तन के क्रम का सूत्रपात हुआ।

१—'सरस्वती' (१९११), पृ० ४६८।

२—वही (१९०३), पृ० २३३

: ६ :

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव

हिन्दी भाषा तथा साहित्य के नवीन आदर्शों के निर्माण के इस अध्ययन के अनन्तर, हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना प्रारम्भ की जा सकती है। हिन्दी भाषा ने अपने विस्तृत इतिहास में, उन अनेक भाषाओं के प्रभाव को, जिनके सम्पर्क में वह आई है, बड़ी सरलता से स्वीकार किया है, और ये बाह्य तत्व उसके अपने हो जाने के अनन्तर, उसके लिए विशेष मूल्यवान रहे हैं। अब तक हिन्दी भाषा ने जिन प्रभावों को स्वीकार किया था, उन्होंने उसके शब्द-समूह की विशेष अभिवृद्धि की थी, उसमें कुछ नई ध्वनियां जोड़ी थीं, और उसे कुछ शब्दावलियां तथा मुहावरे भी प्रदान किये थे। अंग्रेजी भाषा के संपर्क ने, जैसा कि आगे के अध्ययन से स्पष्ट हो जायेगा, हिन्दी भाषा को इससे कहीं अधिक लाभान्वित किया है।

हिन्दी भाषा, ने जो बड़ी सरलता के साथ समय २ पर विभिन्न प्रभावों को ग्रहण किया है, यह उसकी कोई दुर्बलता अथवा दोष नही है। संसार की लगभग सभी भाषाएं, जो विशेष काल तक प्रचलित रही हैं, भाषा-वैज्ञानिकों के मतानुसार, विदेशी प्रभावों को अवश्य स्वीकार करती रही हैं। अंग्रेज़ी भाषा ने भी अपने विकास में बहुत से विदेशी तत्वों को स्वीकार किया है; हिन्दी भाषा के शब्दों को ग्रहण

करना उसने सोलहवीं शताब्दी से ही प्रारम्भ कर दिया था।[1] संस्कृत भाषा भी, जो अब तक विशुद्ध समझी जाती थी, और देव-भाषा के नाम से सम्बोधित की जाती थी, भाषा-वैज्ञानिकों के अनुसार, विदेशी तत्वों से युक्त है।[2] जब संस्कृत भाषा ने विदेशी प्रभावों को ग्रहण करना बन्द कर दिया, तभी से उसके प्रभाव का क्षेत्र कम होने लगा था, और अब तो वह बहुत ही थोड़ा रह गया है। संस्कृत के अनन्तर विभिन्न प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएं आयीं और उन्होंने भी विदेशी तत्वों को ग्रहण करके अपनी अभिवृद्धि की। हिन्दी भाषा, जो कि अपभ्रंश के शौरसेनी तथा अर्ध-मागधी रूपों से विकसित हुई है, परम्परा से प्राप्त विदेशी तत्वों के ग्रहण करने का गुण स्वीकार करके, अपनी अभिवृद्धि करती रही है।

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन के लिए, अंग्रेजी भाषा का, कम से कम उसकी सामान्य विशेषताओं का, ज्ञान आवश्यक है। अंग्रेजी भाषा की प्रमुख विशेषताएं हैं: (१) वह एक निरन्तर विकासशील भाषा रही है; (२) उसने अपने शब्द-समूह की, अन्य भाषाओं के शब्दों को, उनके मूल तथा अनुवादित रूपों में ग्रहण करके, निरन्तर अभिवृद्धि की है; (३) उसने कुछ निश्चित विराम-चिह्नों का विकास किया है; (४) अनुच्छेदों की व्यवस्था की है: (५) विभिन्न प्रकार के विषयों के लिए भिन्न भिन्न प्रकार की शैलियां खोजी हैं; (६) गद्य और पद्य दोनों में ही अनेक साहित्यिक रूप और उनके भी बहुत से प्रकार विकसित किये हैं; तथा (७) इस प्रकार उसने अपने को ज्ञान की विभिन्न धाराओं को अभिव्यक्त करने के योग्य बना लिया है।

अंग्रेजी भाषा की इन समस्त विशेषताओं ने हिन्दी भाषा को प्रभावित किया है। अंग्रेजी प्रभाव ने सबसे पहले हिन्दी के शब्द-समूह पर कार्य किया था। प्रारम्भ में अंग्रेजी शब्द अपने मूल रूप में ग्रहण किये गये; किन्तु समय के विकास के साथ अंग्रेजी के शब्दों को अनुवादित करके ग्रहण करने की प्रवृत्ति बढ़ती गई। अंग्रेजी शब्दों के साथ-साथ उस भाषा की कुछ शब्दावलियाँ, मुहावरे तथा कहावतें भी हिन्दी भाषा में ग्रहण की जाने लगीं। इसके अनन्तर अंग्रेजी के व्याकरण तथा वाक्य-विन्यास ने, हिन्दी को प्रभावित किया। अंग्रेजी प्रभाव से ही हिन्दी भाषा ने विराम-चिह्नों के प्रयोग तथा अनुच्छेदों की व्यवस्था को ग्रहण किया। हिन्दी के लेखकों ने

१—मेरी एस० सरजीनसन: 'ए हिस्ट्री ऑफ फॉरेन वर्ड्स इन इंगलिश', पृ० २२०-२६

२—सुलिवन लेवी, जीम प्रज्यलास्की तथा जूल ब्लाक: 'प्री-आर्यन एण्ड प्री ड्रिबेडियन इन इण्डिया', पी० सी० बागची द्वारा फ्रेंच से अंगरेजी में अनुदित ग्रन्थ में संस्कृत भाषा पर विभिन्न प्रभावों का विवेचन है।

अंग्रेजी की विभिन्न प्रकार की शैलियों के भी अनुकरण किये। इस बहुमुखी प्रभाव के फल-स्वरूप ही हिन्दी भाषा ने जीवन के विभिन्न पक्षों तथा ज्ञान की विभिन्न धाराओं को प्रकट करने की शक्ति अर्जित की है।

अंग्रेजी भाषा ने, अपनी इन समस्त विशेषताओं को, शताब्दियों के काल में, विकसित किया था, किन्तु हिन्दी भाषा को उन्होंने एक ही समय में प्रभावित किया। फिर भी, ये सभी विशेषताएं, एक ही समय में नहीं ग्रहण कर ली गयीं; उनके ग्रहण में हम एक निश्चित विकास-क्रम देखते हैं। प्रारम्भ में हिन्दी भाषा ने अंग्रेजी भाषा के ऐसे शब्दों को ग्रहण किया, जो उन नई वस्तुओं के नाम थे, जिन्हें अंग्रेज व्यापारी अपने देश से भारतवर्ष लाये थे। इस प्रकार के शब्द हिन्दी भाषा में, हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजों के आने के बहुत पूर्व ही, प्रयोग में आने लगे थे। अंग्रेजी शासन की स्थापना के अनन्तर इस नवीन व्यवस्था से सम्बन्धित शब्दावली को, हिन्दी में स्थान मिलने लगा था। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के फल-स्वरूप यह प्रभाव बहुत व्यापक हो गया। विभिन्न पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत अँग्रेजी पुस्तकों के सम्पर्क से, हिन्दी-प्रदेश के लोगों को अंग्रेजी भाषा की विभिन्न विशेषताओं का ज्ञान हुआ और उन्होंने उनका उपयोग अपनी भाषा की अभिवृद्धि के लिए करना आरम्भ कर दिया। मुद्रण-कला के प्रचार तथा उसी के फल-स्वरूप होने वाले, पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन ने, पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को लोक-प्रिय बनाते हुए, अंग्रेजी प्रभाव को हिन्दी भाषा में बद्ध-मूल कर दिया। इस सम्बन्ध में अनेक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं का योग भी विशेष लाभप्रद रहा है।

इस सामान्य विवेचन के अनन्तर, अब विस्तृत अध्ययन प्रारम्भ किया जा सकता है। सुविधा के लिए, प्रारम्भ में, हिन्दी के शब्द-समूह पर, इस प्रभाव की विवेचना होगी। उसके अनन्तर, अंग्रेजी प्रभाव से ग्रहण की गयी शब्दावलियों, मुहावरों तथा कहावतों का अध्ययन होगा। तत्पश्चात हिन्दी व्याकरण पर अंग्रेजी व्याकरण के प्रभाव का विश्लेषण किया जायेगा, और उसके बाद इस प्रभाव के फल-स्वरूप हिन्दी के वाक्य-विन्यास में होने वाले परिवर्तन, विराम-चिह्नों के प्रयोग, अनुच्छेदों की व्यवस्था तथा विभिन्न प्रकार की शैलियों के सूत्रपात का अनुशीलन होगा।

१—शब्द-समूह

किसी भाषा के शब्द-समूह की अभिवृद्धि, अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करने से ही होती है। अन्य भाषाओं के साथ सम्पर्क, विजय, उपनिवेषीकरण, व्यापार अथवा साहित्य के माध्यमों से स्थापित हो सकता है। अंग्रेजी भाषा के साथ, हिन्दी भाषा का सम्पर्क, अंग्रेजों की भारत विजय से ही स्थापित हुआ था।

हिन्दी के शब्द-समूह पर अंग्रेजी प्रभाव की मूल प्रवृत्ति तथा कार्य-प्रणाली को समझने के लिए, मेरी एस० सरजीनसन के ग्रंथ 'ए हिस्ट्री ऑफ फारेन वर्ड्स इन इंगलिश' का निम्नलिखित अवतरण दृष्टव्य है :

"When one nation subdues another which speaks a different language, the conquerers, if their object has been political power rather than settlement, may constitute an authority, or ruling class, which is in point of view of numbers much in the minority compared with the whole body of conquered people. In case like this it is only the native language which survives, though the incoming dialect will very probably transfer to native vocabulary works which express its own method of government and other cultural words."[१]

जहां तक हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का सम्बन्ध है यह सर्वांशतः सही हुआ है।

किसी भाषा में, अन्य भाषाओं के शब्द, कहां तक उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति को ग्रहण कर पाते हैं, इसमें पर्याप्त विभेद देखने को मिलता है। विजित जाति जैसे ही विजेताओं को अपनी भूमि से निकाल पाती है, अपनी स्फूर्ति और उत्साह में विजेताओं की भाषा से लिए गये शब्दों को भी अपनी भाषा से निकालने लगती है। भारतवर्ष से अंग्रेजों के जाने के बाद, हिन्दी भाषा में इस प्रकार की प्रवृत्ति का प्रारम्भ अवश्य हो गया है, किन्तु यह प्रवृत्ति बहुत समय तक नहीं चल सकती। हिन्दी भाषा को अंग्रेजी भाषा से अभी बहुत कुछ लेना है। यह सम्भव है कि अंग्रेजी के बहुत से ऐसे शब्द, जिन्होंने कि हिन्दी भाषा की स्वाभाविक वृत्ति को भी ग्रहण कर लिया है, निकाल दिये जाएँ, और उनके स्थान पर यहां के बने हुए शब्दों का उपयोग होने लगे। फिर भी, बहुत से अंग्रेजी शब्द, अपने मौलिक अथवा अनुवादित रूप में, हिन्दी भाषा में कुछ समय तक ग्रहण किये जाते रहेंगे। प्रस्तुत अध्ययन में, इस सम्बन्ध में, विशेष विचार-विमर्ष के लिए स्थान नहीं है।

अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी भाषा में प्रथम प्रयोग

हिन्दी भाषा में, अंग्रेजी शब्दों का सर्व प्रथम प्रयोग, रीवां के महाराज विश्वनाथ सिंह के रामचरित से सम्बन्धित नाटक 'आनन्द रघुनन्दन' में देखने को मिलता है। राम के लंका से अयोध्या लौटने के अनन्तर, एक समारोह होता है,

---

१—मेरी एस० सरजीनसन : 'ए हिस्ट्री ऑफ फॉरेन वर्ड्स इन इंगलिश', पृ० १-२

जिसमें नाटककार ने संसार के लगभग सभी देशों के नर्तकों तथा नर्तकियों को अपनी कला का प्रदर्शन करते हुए दिखाया है। एक नर्तकी गरुण्ड देश (इंगलैंड) से भी आयी है। वह रामचन्द्र की प्रशस्ति अपनी भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत करती है।

'प्रविश्य गरुण्ड देशीयोनर्तक:

प्रणम्य नृत्यति गायतिच: ए किंग हितकारी माई डियर वेरी।
लिबरल एण्ड बरेव विश ट्रिरी।
गुड स्प्रेड माइ सिन टाप लाड।
गुड आल टैम विश्वनाथ आफ गाड।[1]

नीचे इन पंक्तियों की व्याख्या इस प्रकार की गई है :

"अर्थ : ए किंग बादशाहों का बादशाह, हितकारी भगवान माई हमारा डियर प्यारा वेरी बहुत परस्पर प्यारा लिबरेल दातों का दाता एण्ड और बरेव शूरवीरों का सरदार, वीश ट्रिरी सुरतरु दोनों जहान का गुड स्प्रेड अच्छा करने वाला माइसिन हमारे तकसीर टाप लाड सरदारों का सरदार गुड आल टैम अच्छा येकरस..... विश्वनाथ आफ गाड विश्व नाथ का ईश्वर।"[2] इन उद्धरणों में हमें अंग्रेजी के शब्द, हिन्दी भाषा में सर्व प्रथम देखने को मिलते हैं; किन्तु ये ऐसे शब्द नहीं हैं, जिन्होंने हिन्दी भाषा के प्रकृत स्वरूप को ग्रहण कर लिया हो। ये अब भी अंग्रेजी के ही शब्द हैं और हिन्दी भाषा में लिखे गये सर्व प्रथम अंग्रेजी शब्दों के उदाहरण मात्र हैं। अन्तिम पंक्ति में 'विश्वनाथ ऑफ गाड' प्रयोग गलत है।

अंग्रेजी शासन ने, हिन्दी प्रदेश में अपने प्रसार के पूर्व, बंगभूमि में, विशेष रूप से उसके प्रमुख नगर कलकत्ता तथा उसके निकट के क्षेत्र में, अपनी स्थापना कर ली थी। कलकत्ता, उस समय भी व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र था, और हिन्दी-प्रदेश के बहुत से लोगों ने वहां जाकर रहना प्रारम्भ कर दिया था। इन्हीं लोगों ने हिन्दी में सर्व प्रथम अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग आरम्भ किया। उस समय अंग्रेजी भाषा के किस प्रकार के शब्द, हिन्दी में ग्रहण किये गये थे, यह जानने के लिए, कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले, हिन्दी के सर्व प्रथम समाचार-पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' के विभिन्न अंक देखने चाहिएं। अंग्रेजी के कुछ शब्दों का प्रयोग, लल्लू जी लाल ने अपने 'प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र ने अपने नासिकेतोपाख्यान' में भी पहली बार किया था; किन्तु वे बहुत थोड़े से शब्द थे, जैसे गवर्नर जनरल, लार्ड, कप्तान, डाक्टर, लिपटन तथा कम्पनी।

१—विश्वनाथ सिंह : 'आनन्द रघुनन्दन' (बनारस १९२८), पृ० १४२

२—वही, पृ० १४२

इन लेखकों की रचनाओं के विषय पुराने थे, इसीलिए अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग उन्होंने बहुत ही कम किये। ये शब्द तो भूमिका भाग में ही आ गये हैं।

'उदन्त मार्तण्ड' का प्रथम अंक ३० मई, सन् १८२६ को प्रकाशित हुआ था। हिन्दी का यह प्रथम समाचार पत्र, केवल १५ दिसम्बर, १८२७ तक ही चला; किन्तु इस थोड़े से जीवन-काल में ही वह, अंग्रेजी के बहुत से शब्द, हिन्दी भाषा में, अपने मौलिक तथा अनुवादित रूपों में लाने में समर्थ हुआ। मौलिक रूप में लिये गये शब्दों में शासन सम्बन्धी शब्द अग्रलिखित थे : गवर्नर जेनरल, काउन्सिल, कम्पनी, लार्ड, गवर्नमेंट, गेजेट, सुपरीम कोर्ट, पलटन, मेजर आदि; अंग्रेजी महीनों के नामों में अपरिल, एप्रिल, जुलाई, सिपटेम्बर, मार्च, डीसेम्बर आदि; तथा सामान्य शब्द: फोर्ट, सेक्राटरी, मिसियर्स, रसीद इत्यादि।

इस समाचार-पत्र में प्रयुक्त अंग्रेजी से अनुवादित शब्दों की संख्या भी पर्याप्त थी, और उनमें से अधिकाँश का सम्बन्ध समाचार-पत्र सम्बन्धी कार्य से ही था। अंग्रेजी के शब्द News paper के ही 'कागज' 'समाचार का कागज' 'सम्वाद-पत्र' तथा 'समाचार-पत्र' इन चार शब्दों का प्रयोग किया गया था। Prospectus शब्द के लिए 'अनुष्ठान-पत्र, तथा 'विवरण पत्रिका' इन दो शब्दों का प्रयोग हुआ था। मकान तथा समाचार-पत्र दोनों की ही क्रम-संख्या को 'अंक' कहा गया था। Editor के लिए 'सम्पादक' शब्द का प्रयोग हुआ था, और यही शब्द आज तक प्रचलित है। Printing concern के लिए छापाखाना तथा छापाघर, Printers के लिए छापे वाले, Government Press के लिए सरकारी छापाधर। अंग्रेजी की सकर्मक क्रिया, publish का अनुवाद 'प्रकाश पाना' किया गया था। इस पत्र के स्वामी को, अंग्रेजी में लिखे गये एक पत्र का, हिन्दी रूपांतर भी, एक अंक में, अपने मौलिक रूप के साथ प्रकाशित हुआ था। इस अनुवाद में, Editor के लिए 'कर्त्ता' तथा proprietor के लिए 'धनी' शब्दों का प्रयोग मिलता है। अंग्रेजी के प्रयोग, Yours obediently का अनुवाद, 'तुम्हारा आज्ञावह' किया गया था। इस समाचार-पत्र में एक मिश्र अनुवाद भी देखने को मिलता है : 'कौंसिल सभा'। यह उसी प्रकार का शब्द है, जिस प्रकार इलाहाबाद में, इक्के वाले कहा करते हैं 'किला फोट चलोगे बाबू जी' और 'जमुना ब्रिज का पुल'।

इस समाचार-पत्र में प्राप्त अंग्रेजी शब्दों के अनुवादित रूपों के सम्बन्ध में, इतना और लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है, कि यह कलकत्ते से प्रकाशित हुंआ था, इस लिए इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि ये शब्द बंगला भाषा से ग्रहण किये गये हों। हिन्दी का प्रथम दैनिक-पत्र 'समाचार सुधावर्षण' भी, कलकत्ते से ही एक बंगाली

सज्जन श्याम सुन्दर सेन के सम्पादकत्व में, प्रकाशित हुआ था। इस पत्र में भी अंग्रेजी के जो शब्द, मौलिक तथा अनुवादित रूपों में, प्रयुक्त हुए हैं, वे बँगला-भाषा में पूर्व प्रयोग के कारण बड़े मंजे-घिसे प्रतीत होते हैं। इन शब्दों के ध्वनि-विज्ञान में भी बंगला भाषा के तत्व हैं।

हिन्दी का यह सर्व प्रथम दैनिक-पत्र, जून सन् १८५४ में प्रकाशित हुआ था, और सन् १८६८ तक या इस से भी अधिक समय तक चलता रहा।[1] इस पत्र में प्रयुक्त कुछ शासन सम्बन्धी शब्द हैं : पोलीस, माजिस्ट्रेट, ब्रिटिस गवर्नमेंट, कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर तथा अन्य; हिन्दी भाषा में सर्व प्रथम लिखे गए पाश्चात्य देशों के नाम रूसिया, प्रूसिया, आस्ट्रिया, डेनमार्क आदि; अन्य सामान्य शब्द थे: स्टीमर, सेकण्ड क्लास, एलक्ट्रिक, टालीग्राफ, बेलून, ग्यास, टौनहाल तथा अन्य। अनुवादित शब्दों में शासन सम्बन्धी शब्द थे : शासन कर्त्ता (Administrator) राज विद्या (politics) प्रधान सेनापति (Commander-in-chief) तथा व्यवस्थापिका (Legislative); सामान्य शब्द : कल की गाड़ी (Railway train), धुएं की सेकण्ड क्लास की गाड़ी, (?) आदि। इस समाचार-पत्र में Advertisement के लिए 'विज्ञापन' शब्द का प्रयोग किया गया है, यही शब्द आज भी उसके लिए प्रचलित है।

ये थोड़े से शब्द, इस समाचार-पत्र के प्रथम वर्ष के कुछ अंकों से लिए गये हैं, और यह स्पष्ट करते हैं कि उस समय हिन्दी-भाषा, किस प्रकार के अंग्रेजी शब्दों को ग्रहण कर रही थी। इस स्थान पर, विशेष विस्तार में हम इसलिए भी नहीं जा रहे हैं, क्योंकि प्रस्तुत अध्ययन का सम्बन्ध हिन्दी भाषा पर सन् १८७० से लेकर १९२० तक पड़ने वाले अंग्रेजी प्रभाव से है। हिन्दी-प्रदेश में, अंग्रेजी प्रभाव का प्रारम्भ १८७० के ही लगभग हुआ था, जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ किया था।

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के प्रारम्भिक काल में, विशेष रूप से उन्नीसवीं शताब्दी में, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-८५) तथा बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) का सबसे अधिक योग रहा था। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सबसे अधिक कार्य, अपनी पत्र-पत्रिकाओं 'कविवचनसुधा' (१८६९) 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' (१८७३) तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (१८७३) के माध्यम से किया था। बाल कृष्ण भट्ट ने भी, अपनी पत्रिका 'हिन्दी प्रदीप (१८७७)

१—**ब्रजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय : 'हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक पत्र', 'विशाल भारत', मई, १९३६, पृ० ५६५**

के माध्यम से, अंग्रेजी प्रभाव को, हिन्दी-भाषा में, व्यापक बनाया था। इसके अनन्तर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से, अंग्रेजी प्रभाव के हिन्दी भाषा में प्रसार का कार्य 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने अपने हाथों में ले लिया। उसने विभिन्न विषयों के पारिभाषिक शब्दों की रचना करते हुए हिन्दी भाषा को अंग्रेजी के बहुत से मौलिक तथा अनुवादित शब्द प्रदान किये। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी 'सरस्वती' के माध्यम से, इस क्षेत्र में बहुत महत्व पूर्ण योग दिया था। किसी भाषा पर कार्य करने वाले विदेशी प्रभाव का विश्लेषण करते हुए, ओटो जेस्पर्सन का कहना है कि कोई भी भाषा अन्य भाषाओं से सर्वनाम, क्रिया आदि न लेकर, अधिकांश में पूर्ण-शब्दों, अर्थात् पूरे भावों को व्यक्त करने वाले शब्दों, संज्ञा और विशेषणों को ही ग्रहण करती है।[1] यह विचार कहां तक ठीक है, इसका निर्णय, हिन्दी भाषा में, अंग्रेजी से ग्रहण किये गये सभी शब्दों को देख लेने के अनन्तर ही किया जा सकेगा।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की सर्व प्रथम रचना 'विरह शतक' का प्रकाशन सन् १८६७ में हुआ था; किन्तु उनकी रचनाओं में अंग्रेजी के मौलिक तथा अनुवादित शब्दों का प्रयोग उसके एक वर्ष बाद 'कविवचन सुधा' नामक पत्रिका के प्रकाशन से प्रारम्भ हुआ। 'हरिश्चन्द्र-मैगज़ीन' तथा 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' के प्रकाशन के साथ तो उनकी संख्या और भी अधिक बढ़ती गयी। भारतेन्दु युग में, हिन्दी शब्द-समूह पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन के लिए, हमें, भारतेन्दु जी के अतिरिक्त, उस युग के अन्य लेखकों की रचनाओं में प्रयुक्त, अंग्रेजी के मौलिक तथा अनुवादित शब्दों पर भी विचार करना होगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके युग के अन्य लेखकों की रचनाओं में प्रयुक्त अंग्रेजी के मौलिक तथा अनूदित शब्दों की वर्गीकृत सूची निम्नलिखित है :

(क) शासन सम्बन्धी शब्द : गवर्नर जनरल, वाइस राय, गवर्नर, कमिश्नर, मजिस्ट्रेट, जन्ट मजिस्टर, कलक्टर, डेप्टी कलक्टर, चीफ जस्टिस, जस्टिस, जज, आनरेरी मजिस्ट्रेट, हाई कोर्ट, कोर्ट, स्माल काज कोर्ट, वारन्ट, नोट्स, अपील, पीनल कोड, सेक्सन, कमान्डर-इन-चीफ, जनरल, कोर्ट-मार्सल, कप्तान, सुपरेन्टेन्डेन्ट पोलीस, इंस्पेक्टर, पेटरौल, गजेट, एक्ट, रिपोर्ट, मिनिट, लार्ड, ड्यूक, रजीडेन्ट, आफिस सेक्रेटरी, फाइनेन्शल डेपार्टमेंट, डेक्री, इन्सालवेन्ट, इन्सालवेन्सी, लोकल सेल्फ गवर्नमेंट, एडीकांग, ग्रांड मार्च, हेराल्ड, चीफ हेराल्ड, प्रीवी कौनसिल, क्लार्कस, टैक्स;

१—ओटो जेस् पर्सन : 'लैंगवेज', (१९३४), पृ० २११

(ख) प्रतिदिन के प्रयोग की वस्तुओं से सम्बन्धित शब्द : बक्स, चुरुट, बिस्कुट, कोट, पतलून, बूट, हैट, लालटेन, लवेन्डर, बुरुश, वाच, क्लाक, लोट, बग्गियां, कौच, हरमोनियम बाजा, आरगन बाजा, अलबम, पाकेट चेन, नेकलस, पालिस;

(ग) अंग्रेजों द्वारा स्थापित संस्थाओं से सम्बन्धित शब्द : पास्ट आफिस, पोस्ट मास्टर, पोस्ट मैन, म्यूनिसीप्यालिटी, म्यूनिसीपल कमेटी, अस्पताल, डाक्टर, वोट, टौन हाल, पार्क, म्यूजियम, इस्टेशन, इञ्जन, टिकट, टिकट मास्टर, बारिस्टर, प्लीडर, बिअरिंग पत्र, प्राईवेट टेलीग्राम, वालन्टियर, चेम्बर आफ कामर्स, रोमन कैथोलिक, चर्च, क्रिस्तान, क्रिश्चियन, होटेल, प्रूफरीडर, टैप, कालम, स्पलीमेंट प्रेस, अडीटर, आरटिकिल, करसपान्डेन्ट, म्यूनिसीपल कमिश्नर, म्यूनिसीपल सेकरिटरी, मैडिकल सेकरटरी, पब्लिक वर्क, जेल, कम्पनी, जुएलर, पोस्ट कार्ड, रजिस्टरी;

(घ) शिक्षा सम्बन्धी शब्द : हाई स्कूल, नारमल स्कूल, कालिज, इंटरमीडिएट कालेज, हेडमास्टर, प्रिंसीपल, सेकेंण्ड क्लास, सारटीफिकट, यूनिवर्सिटी, फेलोसिप, फ़िलासफी, फिलासफर, मेडिकल कालिज, फीता, लाइन, पेन्सिल, कोमा, सेमीकोलन, फुलइस्टाप, ब्रेकेट्स, कोलन. पैराग्राफ, इंट्रोगेशन, एक्सक्लेमेशन, पैरेन थीसिस, इनवरटिड कामा।

(ङ) वैज्ञानिक शब्द : साइनटिफिक एसोसियेशन, ग्यास, फासफरस, केमेस्ट्री, कारबनिक, ऐसिड, सलफरिक ऐसिड, बैलून, रेल।

(च) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक शब्द : डिबेटिंग क्लब, यन्गमैन्स एसोसियेशन, प्रेसिडेंट, सेकरेटरी, एसिसटेंट सेकरेटरी, मेम्बर, सोसाइटी, रिपोर्ट, ऐनुअल रिपोर्ट, मिस्टर, इजूकेटिड, सिविलाइज्ड, इन्गलिसाइज्ड, इल्लिटरेट, सेकिंड हैंड, ऐन्टीक्वेरियन, मेमोरियल, थियेटर, ड्रामा, ट्रेजिडी, कोमेडी, आपेरा।

(छ) अंग्रेजी महीनों के नामवाची शब्द : जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रेल, मे तथा मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, सेप्टम्बर, ऑक्टूबर, नवम्बर और दिसम्बर।

भारतेन्दु युग की पत्र-पत्रिकाओं तथा अन्य रचनाओं में अंग्रेजी के अनुवादित शब्दों की संख्या भी काफी है :

(क) शासन सम्बन्धी शब्द : न्यायाधीश (Judge), विचारपति (Justice), अध्यक्ष (President), स्वतः मुख्याधिकारी (Dictator), शरीर-रक्षक (Body-guard), विश्वासपात्र क्लर्क या लेखक (Personal Assistant), अधिकारी (Officer), विदेशी राजदूत (Ambassador), बाहरी राज्यों के प्रतिनिधि

(Foreign Representatives), दामवरदार बालक (Poge), बन्दीजन (Herald) सूचना पत्र (Notice), दर्शनानुशासन (?), कार्यालय (Office), अनुरोध पत्र (Application), नीति (Policy), निरस्त्रीकरण का विधान (Policy of Disarmament), पंचायत की अदालत (Honrary Magistrate's Court), मुन्शी (Clerk);

अंग्रेजों द्वारा स्थापित संस्थाओं से सम्बन्धित शब्द: प्रेस: अखबार (Newspsper) दैनिक पत्र (Daily paper), साप्ताहिक पत्र (Weekly paper), पाक्षिक पत्र (Fortnightly paper), प्रसिद्धि पत्र (Advertisement), कार्याध्यक्ष (Manager), कार्य सम्पादक (Managing Editor), शोधक (Proof Reader), प्रति (Copy तथा Issue), पूर्ति (Suppliment), साम्वतसरिक मूल्य अथवा वार्षिक मूल्य (Annual Subscription), षट्मासिक मूल्य (Six monthly-subscription), अग्रिम मूल्य (Advance subscription), सम्वाददाता (Correspondent); पोस्ट आफिस : डाकघर (Post Office), डाक के चपरासी (Postman), लौटती डाक (Return post), प्रेरण व्यय (Postal Charges), अन्य शब्द: डाकगाड़ी (Mail train), रेल गाड़ी (Trian), धूएं की कल (Steam Engine), धुआंकस (Engine), कारखाना (Work Shop), विचित्र वस्तु संग्रहालय (Museum), पादरी (Jesuit Father);

(ग) शिक्षा सम्बन्धी शब्द : प्रधान शिक्षालय अथवा विश्वविद्यालय (University), उष्णकाल की छुट्टी (Summer Vacation) किंचित विश्राम (Comma), ऊर्ध विश्राम (Semi-colon), पूर्ण विश्राम (Full-stop) शब्द कल्पद्रुम (Dictionary), प्राचीन विद्या (Antiquiety);

(घ) वैज्ञानिक शब्द : यन्त्र शास्त्र (Chemistry), पारदर्शक-किरण-चलन (Movement of transparent ray), प्रकाश वलन (Delation of Light), दूर दर्शक यन्त्र (Telescope), ऊष्मा अथवा गरमी (Heat), उत्तम ऊष्मा संचालक, (Good conductor of Heat), अधम उष्मा संचालक (Bad conductor of Heat), संचालन (Conduction), समवहन (Convection), स्फेरण संचालित गरमी (Rediation of Heat), शीतोष्ण मापक यंत्र (Barometer), घनरूप (Solid), द्रवरूप (Liquid), गूढ़ोष्मा (Latent Heat), संकोच (Pressure), दीप्तोत्पल (Illumination), दूरबीन (Telescope);

(ङ) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक शब्द : समाज (Society), सभा (Club, Association or meeting), सभ्य (Member), सभाध्यक्ष अथवा सभापति (President), सभोपपति (Vice-president), साधारण सभा (General

meeting), मासिक सभा (Mouthly meeting), वार्षिक सभा (Annual meeting), कार्य सभा (Working Committee or Executive Committee), उपस्थित सभासद (Members present), लेखाध्यक्ष (Secretary), उपलेखाध्यक्ष (Assistant Secretary), भाषक (Speaker), विवरण (Roport), वार्षिक विवरण (Annual report), प्रस्ताव (Proposal or Resolution), प्रलम्ब पत्र (Condolence letter or Condolence Resolution), प्रशंसा पत्र (Certificate), शोक सूचक कृत्य (Condolence meeting), शोक पत्र (Condolence letter or Condolence Resolution), सरस्वती भण्डार (Library), वाद विवाद (Debate), प्रतिपक्षी (Opponent), सूची पत्र (List), शृंखलाबद्ध इतिहास (Chronological history), पुनः सम्स्कार (renaissance), पूर्ववृत्त (Antiquity), पुरातत्ववेत्ता (Antiquarion), नई तलाश के लोग (Enlightened), स्मरण कीर्ति (Memorial), उपृष्टम्भक (Appendix), सुखांत अथवा संयोगांत (Comedy), दुखांत अथवा वियोगांत (Tragedy), गीतिनाट्य (Opera)।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके समकालीन अन्य लेखकों की रचनाओं में प्राप्त अंग्रेजी के शुद्ध तथा अनूदित शब्दों का यह अध्ययन, अपूर्ण ही रह जायेगा, यदि कुछ ऐसी पंक्तियाँ उद्धृत न की जायं जिनमें इन का प्रयोग हुआ है। भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध कवि, अम्बिकादत्त व्यास (१८५८-१९००) की काव्य रचना 'भारतधर्म' की निम्नलिखित पंक्तियां देखिये :

पहिरि कोट पतलून बूट अरु हैट धारि सिर
भालू चरबी चरचि लवेंडर की लगाई फिर
नई विदेशी विद्या ही को मानत सर्वस
संस्कृत के मृदु वचन लगत इनको अति कर्कश।[१]

इनमें कई अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग है, जो भारतवर्ष में अंग्रेजों के साथ आई हुई कुछ नवीन वस्तुओं की संज्ञाएं हैं। इस प्रकार के शुद्ध तथा अनूदित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, हमें भारतेन्दु युग के अन्य लेखकों की रचनाओं में भी, जब उन्होंने नवीन विषयों को ग्रहण किया है, मिलता है। इस प्रकार के शब्दों की सबसे अधिक संख्या स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में है; क्योंकि उन्होंने, अंग्रेजी का भाषा सम्बन्धी तथा साहित्यिक प्रभाव ही नहीं, सांस्कृतिक प्रभाव भी ग्रहण किया था। राधाकृष्णदास ने, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन-वृत्त में लिखा है कि एक बार उन्होंने, पहली अप्रैल के दिन बहुत से लोगों को एक विशेष प्रदर्शन देखने के लिए एक स्थान पर निमन्त्रित किया था; किन्तु जब लोग वहां पर एकत्रित हुए तो उन्होंने पर्दा उठने पर, एक काले तख्ते के ऊपर

१--डॉ० केसरी नारायण शुक्ल : 'आधुनिक काव्यधारा,' पृ० ९१ से उद्धृत।

'April Fools' लिखा हुआ पाया।[1] अपने पत्रों पर भी अकसर वे 'Forget me not' 'To love is heaven and heaven is love' जैसे सिद्धान्त-वाक्य लिख दिया करते थे।[2] अपने पत्रों के ऊपर, कभी कभी वे, अंग्रेजी की शैली के अनुसार 'Reply soon, 'Urgent' तथा 'Love' के लिए 'उत्तरशीघ्र' 'जरूरी' तथा 'प्रेम' आदि शब्द लिख देते थे :[3] अयोध्या प्रसाद खत्री ने, अपने ग्रन्थ 'खड़ी बोली का पद्य' (१८८९) में, यह दिखाने के लिए कि भारतेन्दु जी अंग्रेजी के शब्दों का कितना अधिक प्रयोग किया करते थे, उनके जीवन के अन्तिम क्षणों से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रसंग प्रस्तुत किया है :

"...६ जनवरी सन् १८८५ ईस्वी प्रातःकाल के समय जब भीतर से बीमारी का हाल पूछने के लिए मजदूरिन आई तो आपने कहा कि ...जाकर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया-नया छप रहा है, पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खांसी की, सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब आती है।"[4]

बालकृष्ण भट्ट

हिन्दी-भाषा को अंग्रेजी प्रभाव प्रदान करने में, बालकृष्ण भट्ट ने, अधिकांश में 'हिन्दी प्रदीप' नामक पत्रिका के माध्यम से कार्य किया था। इस पत्रिका का प्रकाशन १८७७ से प्रारम्भ हुआ था। अब तक हमने अंग्रेजी के शुद्ध तथा अनूदित शब्दों की जो सूचियां प्रस्तुत की है, वे इस पत्रिका के प्रकाशन-काल तक की ही हैं। इस समय तक हिन्दी भाषा ने, अंग्रेजी से जो शब्द ग्रहण किए थे, उनमें से अधिकांश, शासन व्यवस्था, शिक्षा संस्थाओं, वैज्ञानिक विषयों तथा नवीन सांस्कृतिक वातावरण से सम्बन्धित थे; किन्तु 'हिन्दी प्रदीप' के प्रकाशन के अनन्तर, हिन्दी भाषा में जो अंग्रेजी शब्द ग्रहण किये गये, उन्हें और भी अधिक वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :

(क) ब्रिटिश संस्थाओं से सम्बन्धित शब्द : पार्लियामेंट, हौस आफ कामन्स, प्राइम मिनिस्टर, कन्जरवेटिव पार्टी, लिबरल पार्टी, रैडिकल पार्टी, पार्टी पालिटिक्स;

(ख) राजकीय संस्थाओं से सम्बन्धित शब्द: हाई कोर्ट, प्रीवीकौन्सिल, जूडिशल, क्रिमिनल, पीनल कोड, रूल, सेक्शन, सेड्डीशन, कोर्ट आफ जस्टिस, जाइन्ट जज,

---

१—**राधाकृष्ण दास : 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'राधाकृष्ण दास ग्रन्थावली', पृ० ३९०**

२—**वही, पृष्ठ ४०६ तथा ४०८**

३—**वही, पृ० ४०८**

४—**अयोध्या प्रसाद खत्री : 'खड़ी बोली का पद्य' (१८८९), पृ० ३१-३२**

इन्गलिश बार, लोकल बार, एडवोकेट, अपील, कोर्ट फीस, डिगरी, करनल, सार्जेन्ट, लेफ्टीनेन्ट, मार्शल, पोलिस, कान्सटेबिल, सुपरिन्डेन्ट, इन्सपेक्टर, रेजीमेंट, पलटन, राइफल, किर्च, क्विकमार्च, पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट, फारेन डिपार्टमेंट, सदर बोर्ड, बोर्ड आफ रेविन्यू, फाइनेन्शियल डिपार्टमेंट, कमसेरियट डिपार्टमेंट, अन्डर सेक्रेटरी, जाइन्ट सेक्रेटरी, लाइसेंस, टैक्स, इनकमटैक्स, गजेटिड आफीसर्स, कन्सरवेटर, पतरौल, इस्टाम डियूटी, साल्ट डियूटी, सिविल सर्विस, सिविल सर्वेन्ट, हैड क्लर्क, जूरिसडिक्शन टैकज़ेशन, गवर्नमेंट आरगन, सरकुलर, गजेटियर, बजट, रेकार्ड, रिमार्क, पेन्शन पेन्शनर, फैक्ट्री ऐक्ट, टेरिफ ऐक्ट;

(ग) अंग्रेजों द्वारा स्थापित संस्थाओं से सम्बन्धित शब्द: रेलवे: रेलवे स्टेशन, इस्टेशन मास्टर, ब्रेकवान, मेलवान, गार्ड, इञ्जन ड्राइवर, टिकट, रिटर्न टिकट; पोस्ट आॅफिस: पोस्टेज, इस्टाम्प, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, लैटर, डैड्लयटर, लेटर बक्स; प्रेस: पब्लिशर, प्रिन्टर, आर्टिकिल, प्रूफशीट, कापी राइट; अन्य शब्द: सेनीटरी कमिश्नर हाउस टैक्स, मेशीन, मेकेनिक, एक्सेक्शन, कम्पास, क्यूरेटर, लाइब्रेरियन, लीथोग्राफ, प्रोमेसरी नोट;

(घ) अंग्रेजों के साथ आई हुई नई वस्तुओं से सम्बन्धित शब्द: गटापार्चा वारनिश, टाइप, लालटेन, लैम्प, बरान्डी, चुरुट, बिस्कुट, पाव रोटी, गौन, लवेण्डर बैलून, टेलीफोन, एलेक्ट्रिक लाइट, मैक्रोफोन, सोडावाटर, रबर, क्रिकेट, बाल, सरकस कंसर्ट, टर्किश क्याप, जाकेट, सोप, पाउडर;

(ङ) शिक्षा सम्बन्धी शब्द: एडुकेशन डिपार्टमेंट, एंग्लो वर्नाक्यूलर, प्रोफेसर, टीचर, मास्टर, ग्रेजुएट, इक्जामिनेशन, बोर्ड, डिफिनीशन, पेन्सिल, बुक, प्राइमरी, जामिती, ग्रामर, इस्कालरशिप, रजिस्टर, इंक, कापींग इंक, डिक्शनरी, होल्डर, इंच, फुट, मील ;

(च) ज्ञान की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित शब्द: साइंस, किमिस्ट्री, मेडीकल साइंस, मिसमेरिज़म, एस्ट्रालोजी, थियासोफी, थियासोफिस्ट, पालिटिक्स, हिस्ट्री, यूरेनस, नेपचून, मिटियर्स, शूटिंग स्टार;

(छ) भौगोलिक शब्द: योरोप, आयरलैंड ग्रीस, रोमानिया, क्रीमिया, सरबिया, जर्मनी, आस्ट्रिया, हालैण्ड, बेलजियम, डेनमार्क, इटाली, इस्पेन, फ्रांस, पुर्तगाल, आइसलैंड, मान्टीनीगरो, मैनचेस्टर, पेरिस, ग्रीनविच, पाम्पाई, लिसबन, माल्टा, एडन, वाशिंगटन, न्यूयार्क, आइल, डेल्टा;

(ज) वैज्ञानिक शब्द: आक्सिजन, आक्सीजन, हैड्रजन, कम्बश्चन, कारबन, क्लोरीन, फासफरस, पोटाशियम, सैडियम, केलशियम, क्रोमियम, याल्कोहल, नाइट्रोजन,

एअर पम्प, वाटर पम्प, क्रिस्टल. कारबोनिक एसिड, कास्टिक सोडा, इस्टीम, इस्टीम इञ्जन, थर्मामीटर, माईक्रास्कोप, डाइनमाइट;

(झ) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक शब्दः लैक्चर, थियेटर, नेशन, नेटिव, इस्पीच फैशन, सब्जक्ट, सिविलियन, लीडर, इन्डीविडुअल, प्रपोजल, रिज़ोल्यूशन, रिसर्च सोसाइटी, पेम्फ्लेट, लिटरेचर, क्रिटिक, नावेल, एसे, इस्टेज, जुबली, रिफार्मर, ऐड्रस, पोज़ीशन, ट्रांसलेटर, बेटरहाफ, स्वीट हार्ट, इस्टाइल;

(ञ) नवीन भाव वाचक शब्दः पब्लिक ओपीनियन, सेल्फरिस्पेक्ट, इन्सल्ट, लायल, लायल्टी, डिसलायल्टी, ड्यूटी, लिबर्टी, इनफीरियर, इम्पर्टीनेन्ट, रीज़न, होली, फ्री थिंकिंग, मारल करेज, प्रेजूडिस, सिम्पैथी, केआस, इस्पीरीचुअलइज़िम, कम्पिटीशन, नेशनेलिटी, इम्मारल, रिफाइनमेंट, इस्टैन्डर्ड, प्रेस्टिज, पालीसी, डिप्लोमेमी, इस्टेट-मैनशिप, प्रिविलेज, रैडिकल, आइडियल्स, लव, फेट, चान्स, मेजारिटी, मैनारिटी, प्रेक्टिकल;

(ट) अन्य प्रकार के शब्दः प्रिंस, टाइटिल, मिनिट, सेकिण्ड, फ़ेमीन, कमीशन, ट्रेड, सेंट्रल, ग्रेड, इम्पोर्ट, डेपूटेशन, बेयरा (Bearer), इंशोरेन्स, लाटरी, हार्स रेस, मलेरिया, बोनस, वेन्टिलेशन, स्ट्रीट, वोटर, ट्रेडिंगकम्पनी, प्रोफेशन, गिलोटीन, स्लाटर हाउस, डिग्रीदार (Degree holders) डिसप्याच, एजेंट, नानसेंस, हम्बग;

अनुवादित शब्दों की संख्या और भी अधिक थी। उनकी वर्गीकृत सूची निम्नलिखित है :

(क) राजकीय संस्थाओं से सम्बन्धित शब्दः जन्ट साहेब, (Joint magistrate) प्रधान मन्त्री तथा प्रधानामात्य (Prime minister), कोषाधिपति (Fianance minister), पारिषद वर्ग (Advisors), स्वाधीन हाता (Presidency), व्यवस्था (Law), प्रार्थना पत्र (Application), कोषाध्यक्ष (Treasurer), उदार सम्प्रदाय (Liberal party), राज्य प्रबन्ध (Administration), सैन्यदल (Regiments) प्रतिपालन (Execution),

(ख) नव स्थापित संस्थाओं से सम्बन्धित शब्दः कार्यालय तथा कारखाना (Workshop), मालगाड़ी (Goods train),सवारी तथा मुसाफिर गाड़ी (Passenger train), रेलघर (Station), यन्त्रालय (Press), शिला-यन्त्र (Lethograph), त्वरित लेख (phonography), स्तम्भ (Column), हुन्डी पत्रों के कारखाने (Banking Firms), सार्वजनिक गृह (Town Hall), पुस्तकालय (Library), पुस्तकालयाध्यक्ष (Librarian), संशोधन (Correction), नूतन तड़ित समाचार (Telegram), आत्मशासन (Self government), प्रदर्शिनी (Exhibition);

(ग) शिक्षा सम्बन्धी शब्द: शिक्षा विभाग तथा विद्या विभाग (Education Department), रेखा गणित (Geometry), त्रिकोण (Triangle) चतुष्कोण (Rectangle), पंचकोण (Pentagon), समकोण (Right angle), विषमकोण (Obtuse angle), साध्य (Theorem), मध्यम शिक्षा (Secondary education), उत्तम शिक्षा (High education), उत्कृष्ट शिक्षा (Higher education), हाजिरी (Roll call), सोख्ता कागज (Blotting paper), प्रवेशिका परीक्षा (Enterance examination), प्रशंसा पत्र (Testimonial), प्रतिष्ठा पत्र (Certificate), प्रधानाध्यापक (Head of the department), उपाधि दान (Convocation);

(घ) ज्ञान की विभिन्न धाराओं से सम्बन्धित शब्द: डाक्टरी (Medical scince), विज्ञान शास्त्र (Science), पदार्थ विद्या (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), रसायन शास्त्र विद् (Chemist), भूगर्भ विद्या (Geology) वृक्षायुर्वेद (Botany), कल की विद्या (Mechanics), आत्मचिकित्सा (Anatomy), आत्मचिकित्साविद्या विद् (Anatomist), प्राचीन विवरण ज्ञानी (Antiquarians), इतिहास तथा इतिवृत्त (History), इतिहास विद् (Historians) राज्य शासन की विद्या (Politics), भाषा विज्ञान (Science of language);

(ङ) भौगोलिक शब्द: शान्त समुद्र (Pasific Ocean), त्रिकोण मंडल (Delta), सामुद्रिक त्रिकोण मण्डल (Sea delta), नादेय त्रिकोण मण्डल (River delta), उल्का (Meteor), विशुव रेखा (Equator), स्थिर तारे (Fixed stars), केन्द्रीयाकर्षण शक्ति (Centrifugal Force), व्यास (Axis), धरातल (Plain), उत्तम आशा अन्तरीप (Cape of good Hope), महासागर (Ocean), गोलार्ध (Hemisphere), सौर मण्डल (Solar system);

(च) वैज्ञानिक शब्द: तत्व (Elements), तत्व धातु रूप तथा अधातु रूप (Solids & Liquids), प्राण प्रद वायु (Oxygen), जलकर तथा जलकर वायु (Hydrogen), अंगार तथा अंगार तत्व (Carbon), हरित वायु (Chlorine), प्रकाशदा (Phosphorus), वातार्किर्षण यन्त्र (Air pump), जलाकर्षक यन्त्र (Water pump), स्फटिक (Crystal), अंगाराम्ल वायु (Carbonic-acid-gas) वाष्प (Steam), वाष्पीय यन्त्र (Steam Engine), ताप (Heat), आकर्षण (Attraction), अणु Atoms, परिष्कृत मद्य (Ractified spirite of wine), संयोग (Mixture), अंश (Degree), चूर्णबीज (Calcium), क्षार बीज (Potassium), मृद् बीज (Milicium), शून्य (Vacum), अनुवीक्षण यन्त्र (Micro-scope), संयोजन (Cohesion), संयोजन जनित आकर्षण (Cohesive attraction), वियो-

जन (Repulsion), विद्युत (Electric), तेजाब (acid), यौगिक (Compound), रूढ़ (Elementary), पदार्थ (Substance), सूक्ष्मवायु (Ether), कठिन तरल और वाष्पमय (Solid, liquid & steam), किरन्त पदार्थ (Rediant matter), आलोक विश्लेषणी यन्त्र (Spectroscope), प्रस्फुटक (Phosphorus), विकीर्ण (Radiant), रसायनिक शक्ति (Chemical force), रसायनिक क्रिया (Chemical process), आसमान के पिण्ड (Heavenlybodies), सम और विषम मेरू (Positive and negative poles), सौर जगत (Solas system);

(छ) मनोवैज्ञानिक शब्द: मनोविज्ञान (Psychology), ज्ञान (Knowledge), मूर्ति विषयक तथा जड़जगत सम्बन्धीय (Objective), अमूर्ति विषयक तथा अन्तर्जगत सम्बन्धीय (Subjective), प्रभा (Consciousness), मानसिक शक्ति (mental-power), ज्ञान की अवस्था (cognition or knowledge), भाव की अवस्था (feeling), धारण शक्ति (Retention), उन्नयन (Recollection), निष्क्रमण (Deduction), निष्कर्षण (Induction), साधारण धर्म का निष्कर्षण करना (Generalisation), आभ्यंतरिक शक्ति (Mental energy), विचार शक्ति (Thinking Capacity), अभिज्ञात [Experience], ध्यान गम्य वस्तु [Conception], विचार शक्ति तथा विवेचना शक्ति (Conscience), मानसिक शक्ति (Mental capacity), वास्तविक (Real), कल्पित (Imaginary), हलचल (Agitation), पशुबुद्धि (Animal instinct), विवेक बुद्धि (Reason), प्रकृत ज्ञान (perception), बोध (Sensation);

(ज) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक शब्द: सभ्यता (Civilisation), असभ्य unciviliged), ऐका, एक्य तथा एकता (Unity), श्वेतांगों (White races), गौरांग (White peoplo), सभ्य (Gentleman), स्थानिक तथा स्थानीय (Local), मध्यमश्रेणी (Middle class), श्वेत दीप (White islands), श्वेतपुरुष (Whitemen), सभ्य (Polite), सुनिति शिक्षा (Morality), पदार्थवादी (Materialist), स्मारक (Memorial), सम्मेलन (Conference), समागम तथा अधिवेशन (Session), सांख्य तत्व तथा पदार्थवाद (Materialism), नागरिक (Citizen), अगुआ तथा अग्रगामी (Leader), बधाइयां (Congratulations), धन्यवाद (Thanks), स्थापक (Founders), संरक्षण (Patronage), प्रतियोगी (Competitor), प्रतियोगिता (Competition), अभिनन्दन पत्र (Address), मांगलिक स्वागत (Welcome), मान्यवर (Honourable), जातीय महा सभा (National Congress), पाठक वर्ग (Readers), संस्कार-कारक (Reformer),

पुनर्उद्घाटन (Revival), जाति (Race तथा Nation), अनियमबद्ध कविता Blankverse), इतिहासिक नाटक (Historical drama), कला उत्पादन Artistic Composition), पात्रों की व्यक्ति (Characterization), गुटका (Pamphlet), मुख्य नायक (Hero);

(झ) भाववाचक शब्द: जात्याभिमान (Self-respect), स्वदेशानुराग (Patriotism), स्वार्थ भ्रंश तथा स्वार्थ हानि (Self-sacrifice), स्वच्छन्द अनुभूति (Free opinion), सहानुभूति (Sympathy), महा प्रलय (Chaos), साफल्य (Success), कुसंस्कार (Prejudice), स्थिर (Stationary), योग्यता (Merit), सामयिक (Present), राजकीय (Political), सामाजिक (Social), तेजस्विता (Spirit), बुद्धि भ्रंशक (Immoral), भोग लोलुप (Luxurious), स्वच्छन्दता (Liberty), आत्म निर्भरता (Self-dependence), स्वदेशानुरागी (Patriot), दु:साध्य धर्म (Enterprise), प्रणबंध (Contract), आविष्कृत (Invented), आत्मा का तत्व (Real-Self), स्वतंत्रकर्त्ता (Liberator), अनुपात (Proportion), स्वच्छ (Transparent), नयेपन (Novelty), क्रम (Order), परिभाषा तथा उन्मापक (Standard) महार्धता (Scarcity), जातीय गौरव (National Prestige) सम्स्कार (Idea), व्यवहार (Practice), लागडांट (Competition), आत्म गौरव (Prestige), स्वत्व रक्षा (Previlage), राजनीतिक कुटिलता (Policy), राजनीति की काट छांट (Diplomacy), राज्यतत्व निपुणता (Statesnamship), जातीयता (Nationality), राजभक्त (Loyal), वाह्येन्द्रिय शक्ति (Bodily energies), निमित्त कारण तथा असूल (Principle), विद्रोह (Revolt), अराजकता (Anarchy), उपयोगिता (Ablity), मनुष्यता (Humanity), कालातिक्रमण (Procrastination), प्रथकत्वाभिमान (Individuality)।

इस स्थान पर, उन रचनाओं से भी कुछ उद्धरण देना आवश्यक प्रतीत होता है, जिनमें अंग्रेजी के इन शुद्ध तथा अनुवादित शब्दों का प्रयोग हुआ था। अयोध्या प्रसाद खत्री द्वारा संकलित, 'खड़ी बोली का पद्य' (१८९९) नामक काव्य-संग्रह में इस प्रकार की कई रचनायें हैं, जिनमें अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग बहुत अधिक है। इसी प्रकार की एक रचना की कुछ पंक्तियाँ हैं:

रैन्ट लो का गम करें, या बिल ऑफ इनकम टैक्स का

Rent law bill of income-tax

क्या करें अपना नहीं है सैन्स राइट नाउ ए डेज़ ।
Sense right nowadays
फंस गई जाने हमारी किस मुसीबत में, एलास ।
alas
नींद तक आती नहीं है होल नाइट नाउ ए डेज़ ।
whole night now-a-days.[1]

इस प्रकार की पंक्तियाँ, जिनमें अंगरेजी शब्दों का प्रयोग बहुत बडी संख्या में किया जाता था, व्यंग तथा हास्य को प्रधानता देने वाले पत्र, 'अल पंच' में प्रकाशित हुआ करती थीं। किन्तु इस पत्र की रचनाओं में प्रयुक्त अंग्रेजी शब्दों को हिन्दी भाषा में ग्रहण किये गये शब्दों के रूप में, स्वीकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे रचनाएँ जिनमें इनका प्रयोग होता था, स्थायी महत्व की नहीं थीं। बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालमुकुन्द गुप्त तथा अन्य लेखकों की रचनाओं में बहुत से अंगरेजी शब्द, जो हिन्दी भाषा में कालान्तर में ग्रहण कर लिये गये, विशेष रूप से देखने को मिलते थे। बाल कृष्ण भट्ट को, इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग की विशेष रुचि थी, जो उनकी रचनाओं के निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट है;

१. शांडिल्य ने जो कुछ निरे ख्याल थ्योरी में रक्खा, उसको वल्लभाचार्य ने प्रेक्टिस करके दिखला दिया।[2]

२. नेशन में नैशेनेलिटी जातीयता और आध्यात्मिक उन्नति स्पिरिचुआलिटी सदा चलती रहती है.....।[3]

३. उतार चढ़ी कम्पिटीशन से तो केवल दौड़ धूप स्ट्रगल को बुरी न कहेंगे ।[4]

४.....ऋगवेद में डान उषा को देवी कह कर उसकी कमनीय कोमल मूर्ति के वर्णन में कवित्व प्रतिभा को छोर तक पहुंचा दिया है ।[5]

इन पंक्तियों में एकाध स्थानों पर तो अंग्रेजी शब्द का प्रयोग पूर्णतः अनावश्क है: अंतिम वाक्य में उषा के पहले डान शब्द इसी प्रकार का है।

१—अयोध्या प्रसाद खत्रीः 'खड़ी बोली का पद्य' (१८८६), पृ० १३

२—धनञ्जय भट्ट सम्पादितः 'भट्ट निबन्धावली', भाग २, (१६४८), पृ० ४१

३—वही, पृ०६

४—वही, पृ० १२५

५—वही, पृ० ८२

अंग्रेजी के शुद्ध तथा अनुवादित शब्दों की, हिन्दी रचनाओं में बढ़ती हुई संख्या को देखकर, भाषा के क्षेत्र में शुद्धतावादी, बड़े चिन्तित हो उठे; और वे केवल अंग्रेजी शब्दों का ही नहीं, वरन् अरबी, फारसी आदि अन्य विदेशी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग का भी, विरोध करने लगे। अपनी स्फूर्ति में, उन्होंने उन शब्दों का भी बहिष्कार प्रारम्भ कर दिया, जिन्होंने हिन्दी भाषा का प्रकृत स्वरूप ग्रहण कर लिया था। किन्तु उनके इस प्रयत्न का, अयोध्या प्रसाद खत्री ने, जो उस समय, समस्त साहित्यिक रूपों के लिए खड़ी बोली के उपयोग का आन्दोलन चला रहे थे, बड़ा प्रबल विरोध किया था। उनका विचार था, कि जनता, विशेष रूप से मध्यम-वर्ग के लोग, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किये बिना, अपना दैनिक कार्यक्रम बिल्कुल ही नहीं चला सकते; और अपने इस मत की पुष्टि के लिए उन्होंने 'अवध अखबार' में प्रकाशित एक वार्ता अवतरित की थी। उस वार्ता में दो मित्रों के वार्तालाप में यह दिखाया गया था कि अंगरेजी न छोड़ने का निश्चय कर लेने के कारण, उनमें से एक सज्जन, प्रातः काल अपने दातों को बुरुश से साफ नहीं कर सके, सिगार नहीं पी सके, न फिल्टर किया हुआ पानी ही ग्रहण कर पाये, न ब्रिटेन के बने हुए बिस्कुट ही खा सके और न वाच अथवा क्लॉक से समय ही जान सके; जो कुछ वे चाहते थे, उसे उन्होंने अपनी भाषा में स्पष्ट करने का प्रयास किया, और जिसमें उन्हें असफलता हुई; किन्तु अपने प्रयत्नों से उन्होंने अपने नौकरों तथा घर के लोगों के लिए तमाशा-सा खड़ा कर दिया। इस उदाहरण के द्वारा अयोध्या प्रसाद खत्री ने हिन्दी भाषा की शुद्धता के प्रचारकों के सामने यह स्पष्ट किया कि अंगरेजी शब्दों का प्रयोग, जनसाधारण के प्रतिदिन के जीवन यापन के लिए, आवश्यक हो गया है। उन्होंने युग की अन्तार्धारा को भली प्रकार समझ लिया था; और जहाँ कहीं भी आवश्यक हो अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग को उचित समझते थे।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने हिन्दी भाषा में अंग्रेजी के शब्दों को उनके शुद्ध रूप में अपनाये जाने के सम्बन्ध में, सन् १८८९ के लगभग विशेष प्रयत्न किया था; और हम बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप' मे, सन् १८७७ से लेकर १९०० तक अंगरेजी के शब्दों का बहुत बड़ी संख्या में ग्रहण देखते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि भाषा की शुद्धता के समर्थकों के विचार चाहे जितने भी पवित्र रहे हों, हिन्दी

१—अयोध्या प्रसाद खत्रीः 'खड़ी बोली का पद्य', पृ० १७—२२

२—परिशिष्ट 'क'

भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में, उनका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। फिर भी, इतना तो मानना ही पड़ेगा, कि उन्होंने अंग्रेजी शब्दों को शुद्ध रूप में ग्रहण किये जाने का जो विरोध किया था, उसके फलस्वरूप, अनुवादित रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति, प्रारम्भ हो गई थी; और समय के प्रसार के साथ यह प्रवृत्ति और भी अधिक विकसित होती गयी।

नागरी-प्रचारिणी-सभा
(हिन्दी वैज्ञानिक कोष)

इस संस्था की स्थापना, सन् १८९३ में, किस प्रकार हुई थी, इस संबन्ध में, अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराओं का विश्लेषण करते हुए, पहले ही लिखा जा चुका है। सन् १८९८ में अपनी एक बैठक में, इसके अधिकारियों ने, विभिन्न विषयों के विशिष्ट शब्दों का एक कोष प्रकाशित करने का निश्चय किया। प्रारम्भ में, इस सम्बन्ध में, एक उपसमिति बनाई गई, जिसने विचार विमर्श के अनन्तर, यह परामर्श दिया कि वेब्सटर के अंग्रेजी भाषा के कोष से, भूगोल, गणित, नक्षत्र-विज्ञान, अर्थ-शास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायन तथा दर्शनशास्त्र के विशिष्ट शब्दों का संग्रह किया जाय। जब विशिष्ट शब्द संगृहित कर लिये गये, और उनकी विषयानुक्रम, सूचियाँ तैयार हो गईं, तो विभिन्न विषयों के विद्वानों को, उनके लिए, हिन्दी के शब्द निश्चय करने का कार्य सौंपा गया। यह कार्य भी १९०२ तक पूरा हो गया; और तब उसे संशोधन तथा परामर्श के लिए छपवा कर, विद्वानो के पास भेजा गया। नागरी-प्रचारिणी-सभा ने, सन् १९०३ में, इन कार्य के पुनरावलोकन तथा संशोधन के लिए, विभिन्न विषयों के विद्वानों की एक समिति बनाई। इस समिति ने निम्न लिखित सिद्धान्तों के आधार पर कार्य प्रारम्भ किया :

"१— पारिभाषिक शब्दों को चुनने के लिए उपयुक्त हिन्दी शब्दों को पहले स्थान दिया जाय।

२— इन शब्दों के अभाव में मराठी, गुजराती, बंगला और उर्दू के उपयुक्त शब्द ग्रहण किये जायं।

३— इनके अभाव में पहले संस्कृत के शब्द ग्रहण किये जायं, तब अंग्रेजी के शब्द रक्खे जायं और अंत में संस्कृत के आधार पर नये शब्द निर्माण किये जायं।"[१]

इस पुनरावलोकन तथा संशोधन के कार्य में तीन वर्ष लगे; और तीस जून, १९०६ को आठ वर्षों के कठिन प्रयत्न के अनन्तर, 'हिन्दी वैज्ञानिक कोष' तैयार

१—श्यामसुन्दर दासः 'मेरी आत्म कहानी', पृ० ४५-५५

हुआ।

इस कोष में संगृहित शब्द, कुछ तो अंग्रेजी के शुद्ध शब्द थे, और कुछ अनुवादित: भूगोल के विशिष्ट शब्दों में ४८१ अंग्रेजी के शुद्ध तथा ६७५ अनुवादित शब्द थे; नक्षत्रविज्ञान शुद्ध ८१३, अनुवादित ६४८; अर्थशास्त्र, शुद्ध १३२०, अनुवादित २११५; रसायन, शुद्ध १६३८, अनुवादित २२१२; गणित, शुद्ध १२४०, अनुवादित १५२०; भौतिकविज्ञान, शुद्ध १३२७, अनुवादित १५४१; तथा दर्शनशास्त्र, शुद्ध ३५११, अनुवादित ७१६८। इस कोष का जो रूप, पुनरावलोकन तथा संशोधन के लिए भेजा गया था, उस में ७४८३ शुद्ध अंग्रेजी शब्द थे, और ११४७२ अनुवादित; किन्तु संशोधन के उपरांत, उसके शुद्ध शब्दों की संख्या १०३३०, और अनुवादित शब्दों की संख्या १६२६६ हो गयी थी।

अंग्रेजी उपसर्गों का अनुवाद

रसायनशास्त्र के, अंग्रेजी के विशिष्ट शब्दों के अनुवादित रूपों का निर्माण करते हुए, अंग्रेजी के उपसर्ग तथा प्रत्ययों के भी, अनुवाद किये गये थे। एकरूपता के लिए अंग्रेजी के निम्नलिखित उपसर्गों को हिन्दी में इस प्रकार अनुवादित किया गया था :

"A, An	= अ या अन,	as Anhyoxide	= अनाद्र
Bi, Di,	= द्वि,	as Bisulphate, Disulphate	= द्विगन्धित
Hepta	= सप्त,	as Heptavalent	= सप्तशक्तिक
Hexa	= षट,	as Hexavalent	= षट शक्तिक
Hypo	= उप,	as Hyposulphite	= उपगंधायित
Meta	= मित,	as Metaphosphate	= मित स्फुरित
Mono	= एक,	as Monoxide	= एकाम्लजित
Octa	= अष्ट,	as Octavalent	= अष्टशक्तिक
Ortho	= ऋजु,	as Orthophosphate	= ऋजुस्फुरित
Penta	= पंच,	as Pentasulphide	= पंचगन्धित
Per	= परि,	as Persulphate	= परिगन्धित
Poly	= बहु,	as Polyatomic	= बहूवर्णिक
Proto	= प्रति,	as Protosulphate	= प्रतिगंधित
Pyro	= मध्य,	as Pyrophosphate	= मध्यस्फुरित
Sesqui	= स्कार्ध,	as Sesquioxide	= स्कार्द्धमूलजिद
Sub	= अधि,	as Subchloride	= अधिहरिद
Super	= अति,	as Superoxide	= अत्यम्लजिद

Tetra	= चतुर,	as Tetraoxide	= चतुरम्लजिद
Tri	= त्रि,	as Trioxide	= त्र्यम्लजिद"[1]

अनुवादित प्रत्यय निम्नलिखित थे :

"Ate	= इत,	as Carbonate	= कार्बनित
Ation	= करण,	as Oxidation	= अम्लजनीकरण
Et	= एत,	as Sulphuret	= गंधेत
Ic	= क, इक	as Antimonic	= आंजनिक
Ide	= इद,	as bromide	= ब्रमिद
Ine	= इन,	as Amine	= अमीन
Ite	= आयित,	as Arsenite	= लालायित
Myl	= इल,	as Chromyl	= क्रोमिल
Oid	= औद,	as Alkaloid	= क्षारोद
ous	= स, अस,	as Ferous	= लोहस[2]

यह समस्त कार्य इसलिए किया गया था कि हिन्दी भाषा को उच्च कक्षाओं में विभिन्न विषयों के लिए शिक्षा का माध्यम बनाया जा सके। इस दिशा में यह पहला प्रयत्न था, और यद्यपि इसके बाद अब तक किये गये प्रयत्नों के फल-स्वरूप भी हिन्दी भाषा अभी इस योग्य नहीं हो सकी है कि वह विश्वविद्यालयों में विभिन्न विषयों के लिए सफलता के साथ शिक्षा के माध्यम के रूप में कार्य कर सके, तथापि यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा किये गये इस प्रारम्भिक प्रयत्न का, विशेष महत्व है।

'सरस्वती'

(१९०० से १९२० तक अपनाये गए अंग्रेजी शब्द)

सन् १८९९ में, इलाहाबाद के इंडियन प्रेस के स्वामी, चिन्तामणि घोष ने, हिन्दी में एक उच्चकोटि की पत्रिका के सम्पादन के सम्बन्ध में, नागरी-प्रचारिणी सभा के अधिकारियों को लिखा। उनका प्रस्ताव स्वीकार किया गया, और उसी के फलस्वरूप सन् १९०० से, राधाकृष्णदास, कार्तिक प्रसाद, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', किशोरी लाल गोस्वामी, तथा श्यामसुन्दर दास के संयुक्त सम्पादकत्व में, 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। सन् १९०३ से, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसके सम्पादन का भार ग्रहण किया। घोष बाबू का विचार था कि यह एक उच्च कोटि का प्रकाशन हो

१—श्यामसुन्दर दास : 'मेरी आत्म कहानी', पृ० ५८

२—वही, पृ० ५८-५९

और प्रथम अंक ने ही उनकी इस इच्छा को पूर्ण कर दिया। 'सरस्वती' वर्षों तक हिन्दी की प्रमुख पत्रिका रही। हिन्दी भाषा को इस पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से भी अंग्रेजी के बहुत से शुद्ध तथा अनुवादित शब्द प्राप्त हुए। 'सरस्वती' के प्रमुख लेखक, जिनकी रचनाओं के माध्यम से, अंग्रेजी के शुद्ध तथा अनुवादित शब्द, हिन्दी भाषा में आये, श्यामसुन्दर दास, मिश्र-बन्धु तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी थे; कुछ लेखक ऐसे भी थे, जो अमरीका तथा यूरोपीय देशों से, इस पत्रिका के लिए लेख भेजा करते थे, उनमें स्वामी सत्यदेव का नाम सर्व प्रमुख है। उन्होंने, अमरीका के सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में, कई लेख तथा कुछ कहानियों के अनुवाद प्रकाशित कराये थे। इस प्रकार की रचनाओं से भी हिन्दी भाषा में अंग्रेजी के कुछ शब्द अपने शुद्ध तथा अनुवादित रूपों में आये।

यदि 'सरस्वती' पत्रिका के जनवरी, १९०० के प्रथम अंक से लेकर प्रस्तुत अध्ययन की अवधि दिसम्बर १९२० तक के सभी अंकों को देखा जाय तो हमें उसमें, साहित्यिक, भाषा सम्बन्धी, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, अर्थ-शास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक-पुरातत्व-विज्ञान तथा अन्य सभी प्रकार के विषयों की रचनाएँ देखने को मिलेंगी। इन्हीं रचनाओं के माध्यम से हिन्दी में बहुत से अंग्रेजी शब्द आये। इस काल की अन्य पत्र-पत्रिकाओं तथा स्वतन्त्र साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से भी, बहुत से अंग्रेजी शब्द हिन्दी में आये। इस प्रकार आये हुए अंग्रेजी के शुद्ध शब्दों की वर्गीकृत सूची निम्नलिखित है:

[क] सामान्य शब्द: पार्क, डिवीजन, कैनटूनमैंट, सिटी, वेटिंगरूम, प्लेट फार्म सिंगल, पैसेन्जर, सेनीटोरियम, सम्मन, पियानो, डिगरी, एलेक्ट्रो टाईपिंग, कापी राइट टाइटिल-पेज, हाफटोन, नोट्स, हाईड्रोप्याथी, अलार्म, पोर्ट-मैंटो, रिज़र्व, रिसर्च, अरोरा बोरियालिस, पैकेट, पार्सल, बन्डल, पेटेन्ट, पेन्डुलम, मील, टारपीडो, एडमिरल, पोर्ट, सर्च लाइट, जिप्सी, बायोग्राफर, फोनोग्राफ, सीनरी;

[ख] वैज्ञानिक शब्द: बैटरी, डाइनमो, रेडियम, यलेक्ट्रोन, यूरेनियम, रेटिना, येलेक्ट्रास्कोप, एक्सरेज, फीजियालोजी, मैकेनिज्म, इस्पेट्रक्म, अनालिसिस, फोसिल्स;

[ग] फोटोग्राफी से सम्बन्धित शब्द: फोटोग्राफी, क्यामेरा, तथा केमरा, लेन्स, केलोटाइप, हेलोग्राफी, प्लेट, ड्राइप्लेट, फोटो, फोटोग्राफर, नेगेटिव, एक्सपोज, फिल्म, मरकरी, क्लोराइड, ग्रेन, ग्राउंस, डेवलप, डेवलपर, वार्निश, रिटच, रिटचिंग, शेड, लाइट, ग्लास, डार्क रूम, ब्याक ग्राउण्ड, टेबिल, ब्रोमाइड, ओपलस, पेपर, इनलार्जमेंट फारमूला, ड्राम, हाइपोवाथ, डिश, वाटरप्रूफ, पोर्ट्रेट्स, केमिकल फाग, ग्रीनफाग अलकली फाग, पोटास, फीलिंग, मीडियम;

[घ] राजनीतिक अर्थशास्त्र से सम्बन्धित शब्दः पोलिटिकल एकानामिक्स लेबर, प्रोडक्टिव लेबर, अनप्रोडक्टिव लेबर, वेजिज, एक्सचेंज, कोआपरेटिव सोसाइटी;

[ङ] दार्शनिक शब्दः यूटीलीटेरियनइज्म, इवाल्यूशन, रिलेटिव, एब्सोल्यूट आइडियलइज्म।

यह सम्भव है कि इस काल की पत्र-पत्रिकाओं तथा स्वतन्त्र रचनाओं में अंग्रेजी से लिये गए कुछ और शब्द खोजे जा सकें, किन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं होगी, क्योंकि, अंग्रेजी शब्दों को अनुवादित रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति अब तक बहुत दृढ़ हो चुकी थी। यही कारण है कि इस काल की 'सरस्वती' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में अंग्रेजी के शुद्ध शब्दों से अनुवादित शब्दों की संख्या बहुत अधिक है।

अनुवादित शब्दों की वर्गीकृत सूची निम्नलिखित है :

[क] सामान्य शब्दः स्वास्थ्य निकेतन [Sanatorium] बाग [Park], छावनी [Cantonment], प्रान्तिक [Provincial], आवेदन-पत्र तथा प्रार्थना पत्र [Application], प्रबन्ध विभाग [Administration department], सूचना पत्र [Notice], संशोधन [Amendment], संक्षेप चिह्न [Short hand], जल्द चिकित्सा [Hydropathy], शस्त्राघात तथा शस्त्रोपचार [Operation], झिल-मिलियाँ [Ventilators], लटकन [Pendulum], अकस्मात [At once], पदत्याग [Resignation], प्राण संहारक यन्त्र तथा प्राण नाशक यन्त्र [Guillotine], सन्नि-पात [Delirium], अवैतनिक [Honorary], भूमि प्रदेश [Landscape] समका-लीन तथा समसामयिक [Contemporary], ढोलन [Roller], स्वाधीनता [Liberty], दिनचर्या [Daily Routine], फुटकर [Miscellaneous], भत्ता [Allowance], ठिकाना [Address], लोक संख्या [Census];

[ख] शिक्षा सम्बन्धी शब्दः विद्यालय [School], विद्या भवन [College] अध्यक्ष [Principal], क्रीड़ा क्षेत्र [Play-ground], नायक [Captain], समुदाय [Group], व्याख्यान [Lecture];

[ग] वैज्ञानिक शब्दः बिजली के धक्के [Galvanic shocks], प्राणप्रद अंश [Oxygen], दूषित वायु [Carbonic-acid gas], पदार्थ विज्ञानी [Naturalist], शरीर शास्त्र [Anatomy], वैद्युतिक अणु [Electrons], प्रकाश प्रभाव हीन [Opaqe], किरण तथा रश्मि [Rays], श्वास गृह [Rospiratory chamber], घटक [Cells], हयकल [Plug], क्षिति [Solid], जल [Liquid], तेज [Gaseous], वायु [Ether], व्योम [Etheron], तड़ित लहरी [Electric-woves], संग्रहक

[Positive], अभिसारक [Negative,], तन्तु [Tisshe], प्रकार्यालय [laboratory];

[घ] फोटोग्राफी से सम्बन्धित शब्द: आलोक चित्रण [Photography] द्विभुजाकार कांच [Convex glass], अंधेरे घर [Dark chambers तथा Camera obscura], यक्षारीय रौप्य [Nitraite of Silver], स्थायी [Fixed], तिमिरावरी [Camera], दृष्टि वैज्ञानिक [Optician], अंकित तथा मुद्रित [Print], धुंधलापन [Fog], रसायनिक धुंधलापन [Chemical fog], हरा धुंधलापन [Green fog], अंधकार गृह [Dark tent], छाया और आलोक [Shade & light], शीशे का रोशनीदार मकान [Glass light room], शीशे का घर [Glass room], आलोक गृह [Light room], अभ्यास [Practice], शिल्पी [Artist], आलोक चित्रकार [Photographer], तिरछे भाव [Sideways], स्वाभाविक भाव [Unnatural pose], वर्धित चित्र [Enlargement], आलोकित [Expose];

[ङ] अन्तर्राष्ट्रीय नियमों से सम्बन्धित शब्द: पारस्परिक राजधर्म [International Law], दण्ड संग्रह तथा दण्ड शास्त्र (Penal code), स्वतन्त्र सागर [High seas], शक्ति [Power], रियासत [State], राजदूत [Ambassodor], वर्जित [Banned], जलयान ग्रहण [Embargo], छीना छोरी [Repressal], शान्ति में घेरा [Peace ful Blockade], युद्धकर्त्ता शक्ति [Warring power], अयुद्धकर्त्ताशक्ति [Nonwarring power], नियम [Rules], शत्रु रियासत [Enemy State], उदासीन [Neuteral], अधिकार [Right], निश्चित [Conditional], अनिश्चित [Unconditional], बलशाली [Powerful], व्यक्तिगत लूट [Privateering];

(च) नौसेना सम्बन्धित शब्द: बन्दर [Port], युद्ध सामग्री [War-material], युद्धपोत तथा संग्रामपोत [Battle Ships], विनाशक [Destroyer], रण नौका [Battle Ships], रक्षित रणसेना [Reserved armoured Cruisers], जल सेनाधिपति [Admiral];

(छ) भूगोल से सम्बन्धित शब्द: गोला [Globe], अक्षांस [Latitude], रेखांश [Longitude], अंश [Degree], पृथ्वी की कक्षा [Earth's orbit], क्रांति वृत्त [Orbit], मेरु सन्निहित देश [Arctic regions], मेरुज्योति [Aurora Borealis], ध्रुवदर्शक सुई [Magnetic needle], विसुव वृत्त [Equator line] नतांश [Magnetic dip], चुम्बकीय तूफान [Magnatic Storm];

(ज) अर्थशास्त्र, व्यापार तथा वाणिज्य से सम्बन्धित शब्द: अर्थशास्त्र तथा सम्पत्तिशास्त्र [Political economy], श्रम तथा मेहनत [Labour], उत्पादक श्रम

(Productive labour), अनुत्पादक श्रम (Unproductive labour,) वेतन (Wages), विनिमय (Exchange), सम्भुय समुत्थान (Co-operative society), व्यापार नीति (Trade policy), अप्रतिबद्ध व्यापार-नीति (Free trade policy), संरक्षित व्यापार नीति (Protectivetrade policy), अन्तर्गत व्यापार तथा भीतरी व्यापार (Internal trade), आयात (Import), निर्यात (Export), अर्थशास्त्रज्ञ (Economist);

(झ) लेखनकला से सम्बन्धित शब्द—लेखन कौशल तथा लेखन कला(The art of writing), लेखन शैली (Style), निबन्ध (Essay), कथात्मक (Narrative), वर्णना मक (Descriptive), व्याख्यात्मक(Expository), तार्किक (Argumentative), व्यापक (General), अमूर्त (Abstract), एकता (Unity), यौक्तिक क्रम (Logical sequence), गौरव तथा प्रभाव (Emphasis); सौष्ठव (Summary), भूमिका (Introduction), विकास (Development), परिणाम (Conclusion), ढांचा (Outline), शीर्षक (Heading). अभ्यास (Exercise), सादृश्य समता (Proportion), ताजगी (Freshness), भावपूर्ण कवित्व शैली (Style), शब्द कोष तथा शब्द भँडार (Vocabulary), सत्यता (Exactness), व्यञ्जकता (Suggestiveness) औचित्य (Propriety), सन्देहात्मक विचार (Vague thinking), विशेष भाव बोधक (Specific), लेख चिह्न तथा विराम चिह्न (Punctuation marks) अनिश्चित(Ambiguous), प्रमत्त विचार (Careless thinking), पद विराम (Comma), अर्ध विराम (Semicolon), आदेशक (Dash), पूर्ण विराम(Full stop), उद्गार चिह्न (Note of Exclamation), प्रश्नात्मक चिह्न (Question mark), अवतरण चिह्न तथा उद्धरण चिह्न (Quotation marks), बन्धनी (Parenthesis), कोष्ठक (Brackets), योजक चिह्न (Hyphen), वर्जन (Omission), पद योजना (Consrtuction), व्याघात (Interruptions) संयोजक शब्द (Conjunction), मालिका (Series), पद (Clause), विरोधात्मक पद (Antithetical clause), प्रासंगिक (Paren thetical), अव्ययीभावात्मक (Adverbial) सामान अधिकरण (Appositional), निर्देश (Reference), ज्ञापक वाक्य (Descriptive sentence) स्वतन्त्र निवेषितलेख (Interpolation), कल्पना प्रसूत तथा मन गढ़न्त (Imaginary), स्थापना (Setting), द्वैधीभाव (Suspense), पराकाष्ठा (Climax), परावर्त्तन (Retreat), निकटवर्ती (Surroundings), स्थान वर्णन (Topographical), कार्य तथा क्रिया (Action), वार्त्तालाप (Dialogue), विकृत रूप (Infexions), गल्प तथा छोटी कहानी (Short story), स्थिति (Situation), विन्यास (Plot),

मुख्य पात्र (Chief character,) गति (Movement), शब्दाडम्बर चित्र तथा शब्द चित्र (Word painting), वृत्तान्ताख्यान (Details), शीघ्रगामी वाक्य (Rapid sentences), उत्तेजना (Stimulation), विचित्र (Striking), सार्वलौकिक भाव (Universal idea), जाति निर्देश (Generalization), व्यक्ति (Individual), लक्षण तथा परिभाषा (Definition), संघटन (Combination), प्रतिनिधि तथा नियोजक (Factors), स्थिति के प्रधान (Underline), सादृश्य (Like), असादृश्य (Unlike), स्पष्टता (Clearness), प्रभावोत्पादक शक्ति तथा ओज (Force), लालित्य (Elegance), लालित्यकला विशिष्ट गुण (Aesthetic quality), यथार्थ (Accuracy), सापेक्ष (Relative), वचन (Expression), संदिग्धार्थक (Ambiquiety), अनिश्चय (Vagueness), अनिश्चित (Vague), अव्यक्त (Obscure), अव्यक्तता (Obscurity), हार्दिक सम्वेदना (Feeling), यान्त्रिक (Mechanical), चित्रोपम (Picturesque), आकार (Form), निष्कर्ष (Substance), ध्वनि (Tone), ताल (Rhythm), तुल्यता (Balance), धारा प्रवाह (Smooth flowing), विचार (thought), भाव (Feeling), अक्षारान्तर (Transliteration), भाषान्तर (Translation)।

(ञ) प्रेस तथा सम्पादन कार्य से सम्बन्धित शब्द : दफ्तर की स्थिति स्थापकता (Office Establishment), विज्ञापन विभाग (Advertisement department), शोधन (Proof reading), सम्पादकीय लेख (Editorial), स्वत्वरक्षण (Copy right), संस्करण तथा आवृत्ति (Edition), आवरण पृष्ठ (Title page), प्रकाशक (Publisher)।

इस स्थान पर अंग्रेजी की कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के हिन्दी अनुवादों का उल्लेख भी मनोरञ्जक होगा। प्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ Gladstone का रूपान्तर एक स्थान पर आनन्दरत्न किया गया था। इसी प्रकार डैनियल डेफो के 'रॉबिसन क्रूसो' के एक हिन्दी अनुवाद में Friday, व्यक्तिवाचक संज्ञा को, शुक्रवार अनुवादित किया गया था। इस प्रकार के प्रत्यन श्लाघनीय तो नहीं कहे जा सकते, किन्तु ये उस प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हैं, जिसके अनुसार, अंग्रेजी शब्द अपने शुद्ध रूप से अधिक, अनुवादित रूप में ग्रहण किये जाने लगे थे। इस काल में हिन्दी भाषा अंग्रेजी शब्दों को उनके शुद्ध तथा अनुवादित रूपों में कितना अधिक ग्रहण कर रही थी, यह निम्न अवतरणो से स्पष्ट है:

"(१) आज लोगों ने कवित्व और पद्य को एक ही चीज़ समझ रक्खा है। यह

भ्रम है। कविता और पद्य में वही भेद है जो अंग्रेजी के पोयटरी और वर्स में है।"[1]

(२) "वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है कि आदि जीवन-तत्व या प्राण-रस प्रोटोप्लाजम का एक टुकड़ा, जिसे हम आदि जीव या जीवाणु प्रोटो-जोआ कह सकते हैं, पहले अपने सब अंगों से सब कार्य करता है।"[2]

(३) "व्यंजकता लाने के लिए जरूरी है कि विशेष भाव बोधक स्पेसिफिक शब्दों का प्रयोग किया जाय, अमूर्त एब्सट्रेक्ट शब्दों में यह गुण कम पाया जाता है।"[3]

हिन्दी भाषा के शब्द-समूह पर, अंग्रेजी प्रभाव ने किस प्रकार कार्य किया है, इसके सम्बन्ध में, अब कुछ निष्कर्ष दिये जा सकते हैं। अंग्रेजी भाषा के जो शब्द, अपने शुद्ध रूप में ग्रहण किये गये, उन्हें हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे शब्द आते हैं, जिनका प्रयोग केवल एक दो बार ही हुआ था, और फिर उनके स्थान पर, यहाँ के ही बने हुए शब्द प्रयोग में आने लगे; दूसरा वर्ग उन शब्दों का है, जो बहुत समय तक प्रयोग में आते रहे हैं, और अभी और भी, प्रयोग में आयेंगे, किन्तु आगे चल कर उनके स्थान पर यहाँ के ही बने हुए शब्द प्रयोग में आने लगेंगे; तथा तृतीय वर्ग उन शब्दों का है, जिनका प्रयोग उस समय तक रहेगा, जब तक हिन्दी भाषा चलेगी। अनुवादित शब्दों के भी तीन वर्ग हैं: प्रथम वर्ग में वे शब्द आते हैं, जो अंग्रेजी शब्द के भाव को पूर्णतः प्रकट न कर सकने के कारण, प्रचलित नहीं हो सके; दूसरा वर्ग उन शब्दों का है, जो बहुत शिथिल थे और अपने आप ही, जिनका प्रयोग बन्द हो गया; तथा तृतीय वर्ग, उन शब्दों का है, जो अपने जन्म काल से ही प्रयोग में आते रहे हैं और भविष्य में भी प्रचलित रहेंगे। अंग्रेजी से ग्रहण किये गये, शुद्ध तथा अनुवादित शब्दों ने, नवीन भावों की अभिव्यक्ति के लिए, हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति की बहुत अधिक अभिवृद्धि की है। हिन्दी भाषा में अंग्रेजी शब्दों को उनके शुद्ध तथा अनुवादित रूपों में ग्रहण का क्रम अब तक चल रहा है, और सम्भवतः अभी कुछ और वर्षों तक चलता रहेगा।

२—शब्दावलियाँ, मुहावरे तथा कहावतें

हिन्दी भाषा ने अंग्रेजी से बहुत से शुद्ध तथा अनुवादित शब्द ग्रहण करने के साथ-साथ कुछ शब्दावलियां, मुहावरे तथा कहावतें भी ग्रहण की हैं। यह ग्रहण अपने

१—महावीर प्रसाद द्विवेदीः 'रसज्ञ रञ्जन', पृ० ३६

२—डॉ० हीरालाल संपादितः 'गद्य कुसुमावली' में श्यामसुन्दर दास का निबन्ध 'साहित्य और समाज', पृ० १३७

३—स्वामी सत्यदेव परिव्राजकः 'लेखन कला', पृ० ७४

शुद्ध रूप में नहीं, वरन् अनुवादित रूप में हुआ है। अंग्रेजी से अनुवादित शब्दावलियाँ वर्गीकृत रूप में इस प्रकार हैं:—

(क) सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित शब्दावलियाँ: सुप्रभात (Good-morning), करमर्दन (Shake-hand), नवयुग्म पर्यटन (Honey moon), शुभपरामर्श (Good advice), मन की दृढ़ता (Presence of mind), दृष्टि, सम्मति तथा विचार बिन्दु (Point of view), दृष्टिकोण (Angle of vision), सामाजिक सम्मान (Social status), स्वास्थ्य भवन (Health resort], वायुपरिवर्त्तन (Change of climate), जीवन होड़ प्राबल्य (Struggle for life), सामाजिक बन्धन (Social ties), साधारण बुद्धि तथा साधारण ज्ञान (Common sense), सर्व साधारण का सहज लाभ (common interest), स्वार्थ भ्रंश, स्वार्थहानि तथा आत्म त्याग (self-sacrifice), खुदमुखतार तबियत (Independent spirit), साम्प्रदायिक जोश (Party feeling);

(ख) विभिन्न संस्थाओं से सम्बन्धित शब्दावलियां: स्वायत्त शासन (Local-self-government), नियम बनाने वाली सभा (Legislative Council), प्रतिनिधि शासन तथा प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्यसत्ता (Representative Government), कार्य कारिणी सभा तथा कार्य संचारिणी सभा (Executive Committee);

(ग) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक शब्दावलियां: साहित्य समालोचना (Literary Criticism,) शब्द मालिका (Series of words), शब्द समूह (Group of words), विचार-क्रम (Continuity of thought), विहंगम दृष्टि (A bird's eye view), इंसाफ पसन्द (Justice loving), सर्वतोन्मुखी (All round), मातृ-भाषा (Mother tongue), देश व्यापक भाषा (Lingua franca), जातियों का अनूठा पन (National Character), बड़े बोल (High sounding), सुसंस्कृत समय (Classical stage), उत्कृष्टता की माप (Standard of excellence), समय मात्र के भाव (Spirit of the times), नव जीवन विज्ञान (The science of new life), शीघ्रगति लेख (Short hand writing);

(घ) व्यापार तथा वाणिज्य से सम्बन्धित शब्दावलियां: स्वतंत्र वाणिज्य (Free trade), लाभदायक व्यवसाय (Lucrative trade), यथोचित स्पर्द्धा (Fair competition.);

(ङ) सामान्य शब्दावलियां: जान माल की रक्षा (Security of life and property) स्फटिक सा उज्जवल (Crystal clear), रक्तातप (Red hot) समाज का परिश्रम विभाग तथा क्रिया विभाग (Division of labour), सामाजिक नियम (Social laws),

हवामहल (Castle in the air)।

अंग्रेजी से ग्रहण की गई कुछ शब्दावलियों को इस भाषा से ग्रहीत शब्दों की सूचियों में भी स्थान मिल चुका है।

मुहावरों का विकास, प्रत्येक भाषा में, अपनी निज की प्रकृति के अनुसार होता है। सामान्यत: अन्य भाषाओं से इन्हें ग्रहण नहीं किया जाता; किन्तु हिन्दी भाषा ने, सम्भवत: अन्य भाषाओं के साथ अपने निकट सम्पर्क के कारण, उनके बहुत से मुहावरों को भी ग्रहण कर लिया है। डॉ० हरदेव बाहरी ने, हिन्दी भाषा पर फारसी प्रभाव का अध्ययन करते हुए, फारसी से गृहीत मुहावरों की एक लम्बी सूची दी है। अंग्रेजी से ग्रहण किये गए मुहावरों की संख्या यद्यपि बहुत अधिक नहीं है; किन्तु उन्होंने भी हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति की पर्याप्त वृद्धि की है, और इसी दृष्टि से उनका महत्व है।

अंग्रेजी से ग्रहीत सर्वाधिक प्रचलित मुहावरे हैं : तदनन्तर (After that), कालान्तर (After some time), आज्ञा के बमूजिब तथा आज्ञानुकूल (According to orders), नियमानुसार (According to Rule), साधारणत: तथा साधारणतया (Generally), विशेष कर (Specially), पूर्वोक्त तथा उपरोक्त (Above said), क्रमश: (Continued from the last issue), प्रथम तो (Firstly), दूसरे (Secondly), सम्बन्धीय (Concerning), प्रबन्ध से (By arrangement), विशेष (greatly), अनुग्रहीत कीजिए (Oblige), आपका सदा सच बोलने वाला (Yours truly), आपका शुभ चिन्तक (Your well wisher), दिन का प्रकाश देखा (Saw the light of the day), उसके साथ-साथ (To-gether with it), जैसा कि वह है (As it is), दूसरी ओर (On the other hand), निम्नलिखित (Following)।

कहावतों में चाहे वे किसी भी भाषा की हों सर्वमान्य अथवा सर्व स्वीकृत सत्य निहित होते हैं। इस प्रकार की कहावतें प्रत्येक भाषा में देखने को मिलती हैं; और जहां तक उनके उद्गम का प्रश्न है, उनमे से बहुत सी परम्परा से ग्रहण की जाती हैं और शेष उस भाषा के साहित्यकारों अथवा साधारण वक्ताओं द्वारा प्रचलित की जाती हैं। जिस भाषा का साहित्य विस्तृत काल तक विकसित होता रहता है, उसमें परम्परा से, गृहीत कहावतों से, साहित्यिक रचनाओं में प्राप्त कहावतों की संख्या अधिक होती है। हिन्दी के लेखकों ने, अंग्रेजी के शब्दों, शब्दावलियों तथा मुहावरों के साथ-साथ उस की कुछ कहावतों को भी अपनी रचनाओं में यदा-कदा अनुवादित रूप में ग्रहण किया है।

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं तथा स्वतन्त्र साहित्यिक रचनाओं में, प्रस्तुत अध्ययन की अवधि तक, निम्नलिखित अंग्रेजी कहावतों का, अनुवादित रूप में प्रयोग मिलता है:

1. Rome was not built in a day.	१ दिल्ली शहर एक ही दिन में नहीं तैयार हुआ था। १८७७
2. Love is the root cause of all evils.	२ सब बुराइयों की जड़ इश्क है। १८७७
3. Man is a descendent of ape.	३ आदमी बन्दर की औलाद है। १८७७
4. Nature abhors vacum.	४ प्रकृति शून्य से घृणा करती है। १८७८
5. God helps those who help themselves.	५ वे जो बिना किसी की सहायता के धुन बांध के अपने प्रयोजन में तत्पर रहते हैं उनका ईश्वर सहायक होता है। १८७९
6. I think, therefore I am.	६ मैं हूँ, क्योंकि मैं अपने को सोच सकता हूँ। १८७९
7. As is the God so is the worshipper.	७ जैसी रूह वैसे फरिस्ते। १८७९
8. Every tree is known by its fruits.	८ हर एक पेड़ अपने फलों से पहचाने जाते हैं। १८९९
9. More haste less speed.	९ अति उतावली मन्द गति। १८८०
10. Might is right.	१० जबरदस्त का ठेंगा सिर पर। १८८०
11. Honesty is the best policy.	११ दियानतदारी उम्दा हिकमत है। १८८०
12. Sickness of wisdom.	१२ समझदारी बेइलाज बीमारी है। १८८०
13. All that glitters is not the gold.	१३ जो चमकत सो सुबरन नाहीं। १८८०
14. Man is born to wage war against the empire of falsehood and insincerety.	१४ मनुष्य का जन्म ही इस निमित्त हुआ है कि वह मिथ्या और पाखंड के साम्राज्य के विरुद्ध सदा वैर भाव

रक्खे और लड़ा करे। १८८१

15. To err is human, to forgive Devine.
१५ भूल करना मनुष्य का स्वभाव है परन्तु उसको क्षमा करना ईश्वर का गुण है। १८८४

16. An honest man is the noblest work of God.
१६ एक प्रामाणिक मनुष्य ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है। १८८४

17. Liberty is gift which not even God can give.
१७ स्वच्छन्दता खुद अपने बाहुबल से पैदा की जाती है। १८८४

18. Unity is strength.
१८ समुदाये शक्तिः। १८८५

19. Let the past bury its dead.
१९ पिछली बातों को छोड़ो। १८८५

20. Jack of all trades master of none.
२० रोटी कमाय पेट भर लेने को थोड़ा, सब सीख रक्खा है पर पूरे एक में भी नहीं। १८८६

21. As civilization increaseth, muses decrease.
२१ ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता जाता है पद्यमयी सरस्वती क्षीणता की दशा को आती जाती है। १८८८

22. Simple living and high thinking.
२२ साधारण जीवन उत्कृष्ट विचार। १८९०

23. Necessity is the mother of inventions.
२३ दरिद्रता की पराकाष्ठा में समझ बढ़ती है। १८९६

24. Action is a language that never errs.
२४ क्रिया वह भाषा है जिसके अभिज्ञान में कभी भूल ही नहीं होती। १९०३

25. An idle mind is Satan's workshop.
२५ निष्क्रिय मन शैतान का कार्यालय है। १९१०

26. Righteousness exalteth a man.
२६ केवल धर्म ही जाति को उन्नत करता है। १९११

27. Out of sight, out of mind.
२७ आंखों से दूर हो जाने पर मन से भी दूर हो जाता है। १९१६

28. Style is the man himself.
२८ लेखन शैली लेखक का अपना स्वरूप है। १९१६

29. There is nothing new under
२९ सूर्य मण्डल में कोई बात नयी नहीं

	the sun.	है। १९१६
30.	Look before you leap.	३० कूदने के पहले खूब देख भाल लो। १९१६
31	The art of boring people is to tell everything.	३१ दुनिया भर की बातें ठूँस देना ही श्रोताओं को उबा देने का साधन है। १९१:
32	Condensation is a safer process than expansion.	३२ विस्तार से बातें कहने की अपेक्षा थोड़े में बातें करना अधिक नीति संगत है। १९१६
33	I call a spade a spade.	३३ मैं तो कुल्हाड़ा को कुल्हाड़ा कहता हूं। १९२०

कुछ रचनाओं में अंग्रेजी की कहावतें, अनुवादित रूप में नहीं, वरन मौलिक रूप में मिलती है। इस प्रकार की कुछ कहावतें है :

1. Fools' make feast and wise men eat.[1]
2. Two is company three is none.[2]
3. Love is heaven and heaven is love.[3]

किन्तु इस प्रकार के प्रयोग अधिक देखने को नहीं मिलते। अधिकांश लेखकों ने अंग्रेजी की कहावतों को रूपान्तरित करके ही प्रस्तुत किया है।

अंग्रेजी की शब्दावलियों, मुहावरों तथा कहावतों के ग्रहण से हिन्दी भाषा को विशेष लाभ हुआ है। अंग्रेजी शब्दों के उनके मौलिक तथा अनुवादित रूप में ग्रहण से जिस प्रकार हिन्दी भाषा को, नवीन भावों को अभिव्यक्त करने की शक्ति प्राप्त हुई थी, उसी प्रकार मुहावरों आदि के ग्रहण ने भी उसकी अभिव्यञ्जना शक्ति की अभिवृद्धि की तथा उसमें नवजीवन का संचार किया।

व्याकरण

व्याकरण, भाषा-विशेष के बोलने तथा लिखने के नियमों की सैद्धांतिक विवेचना है। इसीलिए किसी भाषा के व्याकरण की रचना उस समय होती है, जब वह पर्याप्त विकसित होने के अनन्तर कुछ व्यवस्थित तथा परिमार्जित हो जाती है।

१—'हिन्दी प्रदीप', खण्ड ७, संख्या ११, पृ० २४

२—वही, खण्ड ८, संख्या ९, पृ० २०

३—वही, खण्ड ८, संख्या ११, पृ० १५

अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी भाषा में, अधिकांश में काव्य-रूपों का ही विकास हुआ था। गद्य रचनायें भी लिखी गई थीं, किन्तु उनमें, भाषा का रूप, बहुत शिथिल तथा अव्यवस्थित था। इसीलिए उस समय तक हिन्दी भाषा का कोई व्याकरण नहीं लिखा गया था; और न उसके सही बोलने तथा लिखने के नियमों का ही निर्धारण हुआ था।

अंग्रेजों ने जब उत्तर भारत के कुछ भागों पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया, तो उन्हें इस क्षेत्र की भाषाओं के बोलने तथा लिखने के नियमों को समझने की अपेक्षा प्रतीत हुई। किसी भाषा को सीखने के लिए उसके व्याकरण को भली प्रकार समझना आवश्यक होता है। उत्तर भारत की बंगाली, बिहारी, हिन्दी, उर्दू तथा अन्य प्रचलित भाषाओं के व्याकरणों की रचना तब तक हुई ही नहीं थी। उनके लिखने तथा बोलने के नियम, अभी तक निश्चित नहीं किये जा सके थे; इसलिये, अंग्रेजों को स्वयं, इस कार्य को अपने हाथों में लेना पड़ा।

अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराओं की विवेचना करते हुए, कलकत्ते के 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के कार्य का उल्लेख किया जा चुका है। इस कॉलेज की स्थापना, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हितों की रक्षा के लिए, इंग्लैंड से नये आये नवयुवकों को, भारतीय भाषाओं तथा अन्य आवश्यक विषयों की शिक्षा प्रदान करने के लिए, हुई थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने, उस समय तक, एक राजनीतिक शक्ति का रूप प्राप्त कर लिया था; और हिन्दी-प्रदेश का कुछ भाग भी उसके राजनीतिक प्रभाव के अन्तर्गत आ गया था। इस कारण अंग्रेजों को हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने की भी आवश्यकता हुई। अंग्रेज, उस समय, हिन्दुस्तानी को ही, हिन्दी-प्रदेश की भाषा समझते थे। यदि अंग्रेजों द्वारा उस समय लिखी गयी, हिन्दुस्तानी की रचनाओं को देखा जाय, तो उनमें हमें हिन्दी के अपने विशुद्ध रूप का नहीं, वरन् उर्दू रूप का बाहुल्य मिलेगा। इसीलिए उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा का जो सैद्धांतिक विवेचन उपस्थित किया, वह उर्दू की ही व्याकरणगत विशेषताओं का विश्लेषण था। हिन्दी-प्रदेश की भाषा के सम्बन्ध में, अंग्रेजों की यह धारणा, बहुत समय तक बनी रही। यही कारण है कि डन्कन फॉर्ब्स ने, सन् १८४६ में लिखित ग्रामर ऑफ हिन्दुस्तानी लैंगवेज में, हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में केवल चार पृष्ठ ही लिखे हैं। शे पृष्ठों में उर्दू भाषा के व्याकरण का ही सैद्धांतिक विवेचन है।

'फोर्ट विलियम कॉलेज' के अधिकारियों ने, हिन्दी को, हिन्दुस्तानी भाषा के विभिन्न स्वरूपों में, एक स्वरूप स्वीकार किया था; और संभवतः इसीलिए उन्होंने, उसकी एक बोली, ब्रजभाषा का अध्ययन करके, उसका व्याकरण सन् १८१

में प्रकाशित कराया था। टॉमस रोएबक ने, अपने 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के विवरण में, इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार किया है :

"Grammatical Principles of the Braj Bhasa, or Dialect of Braj, comprizing Mathoora, Brindabun, and the adjacent territory, as far as Gwalior, with an English Translation, by Shree Luloo Lal Kavi, the Bhasha Moonshee....., assisted by Captain Taylor, Professor of the Hindoostanee language, to whom is inscribed this attempt to facilitate the study of one of the forms of Indian Dialects, considered to form a principal part of the basis of this language"[1]

किन्तु यह ग्रंथ अब प्राप्त नहीं है। कामता प्रसाद गुरू ने डॉ० गिलक्राइस्ट के अंग्रेजी भाषा में 'हिन्दी व्याकरण' का भी उल्लेख किया है।[2] डॉ० गिलक्राइस्ट की ही प्रेरणा से लल्लू जी लाल ने भी 'कवायद हिन्दी' नाम का एक हिन्दी व्याकरण लिखा था।[3] ये दोनों ग्रन्थ भी अप्राप्य है।

हिन्दी भाषा की व्याकरण रचना के इन प्रार्थमिक प्रयोगों के कोई २५ वर्ष बाद, फादर एडम्स नाम के एक ईसाई प्रचारक ने, 'हिन्दी व्याकरण' नाम का एक छोटा सा ग्रथ लिखा। हिन्दी में, अंग्रेजी व्याकरण के ढंग की, यह प्रथम रचना थी, और उसके पारिभाषिक शब्द सम्भवतः बंगला से लिये गये थे। इस ग्रंथ में, मध्ययुगीन भाषा का प्रयोग था, जिसमें स्थान-स्थान पर वाक्य रचना की भूलें थीं। एक विदेशी की रचना होने के कारण, यह स्वाभाविक था।

जब अंग्रेजी शासन की स्थापना हिन्दी-प्रदेश में भी हो गयी, और नये शिक्षा-केन्द्र खोले जाने लगे, तो पं० रामजसन नाम के एक सज्जन ने, 'भाषा तत्व बोधिनी' नाम का एक हिन्दी व्याकरण प्रकाशित किया। इस ग्रंथ में, हिन्दी भाषा के व्याकरण की विवेचना, संस्कृत भाषा के व्याकरणिक सिद्धांतों से मिला जुला कर की गयी थी। इसके अनन्तर पं० श्री लाल का 'भाषा चन्द्रोदय' प्रकाशित हुआ। सन् १८६६ में नवीन चन्द्र राय ने, जो पंजाब प्रान्त के शिक्षा-विभाग के एक उच्च अधिकारी थे, 'नवीन चन्द्रोदय' नाम का एक और हिन्दी व्याकरण प्रकाशित किया।

१—टॉमस रोएबक: 'दि ऐनल्स ऑफ दि कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम' (१८१६), पृ० २६१

२—कामता प्रसाद गुरु: 'हिन्दी व्याकरण', सं० १६२७, भूमिका, पृ० ६

३—वही, पृ० ६

इस में संस्कृत व्याकरण की पद्धति का भी थोड़ा बहुत अनुसरण किया गया था। इसके अनन्तर पं० हरिगोपाल पाध्ये की 'भाषा तत्व दीपिका' प्रकाशित हुई। पाध्ये जी महाराष्ट्री थे, इसलिये उन्होंने मराठी व्याकरण के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया था; किन्तु उनकी विवेचना अंग्रेजी व्याकरण के ढंग की थी।

सन् १८७५ में राजा शिव प्रसाद ने अपना 'हिन्दी व्याकरण' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया। यह प्रयत्न, शिक्षा-संस्थाओं के लिये किया गया था; इस लिए उसमें, विशेष विद्वता पूर्ण विवेचना नहीं थी। राजा साहब की विवेचना अंग्रेजी पद्धति की थी; साथ ही उन्होंने संस्कृत व्याकरण के सूत्रों का भी अनुकरण किया। उनका विचार था कि हिन्दी तथा उर्दू, दोनों को मिला-जुलाकर, एक भाषा बनायी जाय। इसीलिए उन्होंने, अपने इस ग्रंथ में, उर्दू भाषा के व्याकरणिक सिद्धांतों की भी, कुछ विवेचना की थी। भारतेन्दु जी ने भी शिक्षा-संस्थाओं के लिए एक हिन्दी व्याकरण के निर्माण का प्रयत्न किया था। शिक्षा संस्थाओं की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही थी; और हिन्दी व्याकरण के ग्रंथ भी बढ़ते जाते थे। इस सम्बन्ध में विशेष महत्व के ग्रंथ थे—केशोराम भट्ट लिखित 'हिन्दी व्याकरण', रामचन्द्र सिंह का 'भाषा भास्कर', रामावतार शर्मा कृत 'हिन्दी व्याकरण', विश्वेश्वर दत्त शर्मा का 'भाषा तत्व प्रकाश' आदि। इस क्षेत्र में सब से अधिक महत्व का ग्रंथ सन् १९२० में प्रकाशित कामता प्रसाद गुरू का 'हिन्दी व्याकरण' था। यह ग्रंथ भी अंग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर ही लिखित है।

हिन्दी के इस व्याकरण के ऊपर, अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना करने के पूर्व, पाश्चात्य विद्वानों के हिन्दी व्याकरण के सिद्धान्तों के विश्लेषण को देख लेना आवश्यक है। इस क्षेत्र में प्रथम ग्रन्थ जॉन बीम्स कृत 'ए कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ इन्डो-आर्यन लैंगवेजेज़ ऑफ इण्डिया' था। इस ग्रंथ में, उत्तर भारत की सात भाषाओं हिन्दी, पंजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, उड़िया, तथा बंगाली के व्याकरणिक नियमों की विवेचना की गई थी। यह ग्रथ तीन खंडों में प्रकाशित हुआ था : प्रथम खंड १८७२ में, उसमें इन भाषाओं की ध्वनियों की विवेचना थी; द्वितीय, सन् १८७५ में, उसमें संज्ञा, लिंग, रूप-विचार तथा सर्वनामों का विवेचन था; तथा तृतीय सन् १८६९ में, उसमें क्रिया, कृदन्त, तद्धित, वाच्य आदि पर विचार किया गया था। बीम्स के इस ग्रंथ के प्रथम खंड के, एक दो वर्ष बाद, फादर एथेरिंगटन का 'भाषा भास्कर' प्रकाशित हुआ। यह ग्रंथ हिन्दी में लिखा गया था, किन्तु उसमें अंग्रेजी व्याकरण की शैली का अनुकरण था। कामताप्रसाद गुरु ने अपनी 'हिन्दी व्याकरण' की भूमिका में लिखा है कि इस ग्रंथ के प्रकाशन के बाद, हिन्दी व्याकरण के

सभी ग्रन्थों में इसकी पद्धति का ही अनुसरण किया गया। इस ग्रंथ में, जॉन क्रिश्चियन लिखित, हिन्दी के छन्द-शास्त्र पर भी एक प्रकरण था।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखित हिन्दी के व्याकरणों में सबसे अधिक महत्व पूर्ण सन् १८७५ में प्रकाशित एस० एच० केलॉग का "हिन्दी व्याकरण" है। यह ग्रन्थ भी, अंग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर ही लिखा गया था, और उसमें विभिन्न शब्द-भेदों की विवेचना के साथ, वाक्य-विन्यास पर भी लगभग १०० पृष्ठों का एक प्रकरण था, अन्त में २६ पृष्ठों के एक पूरक में हिन्दी छन्द-शास्त्र पर भी विचार किया गया था। इसके अनन्तर ए० ई० ग्यूडॉल्फ हॉर्नली का ग्रंथ 'ए कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ गौडियन लेंगजेवेज़ विद स्पेशल रिफरेंस टू ईस्टर्न हिन्दी' १८८० प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ में भी हिन्दी व्याकरण के सिद्धाँतों पर थोड़े से पृष्ठों में विचार किया गया था। सन् १८९६ में रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स ने अपना ग्रंथ 'ग्रामर ऑफ माडर्न हिन्दी' प्रकाशित किया। इसके ठीक एक वर्ष पहले उन्होंने छब्बीस पृष्ठों का एक छोटा सा ग्रन्थ 'नोट्स आन दि ग्रामर ऑफ तुलसीदासेज़ रामायण' प्रस्तुत किया था; उनके हिन्दी व्याकरण में अंग्रेज़ी व्याकरण की पद्धति पर, अंग्रेजी भाषा-भाषी लोगों के लिए, हिन्दी भाषा बोलने तथा लिखने के नियमों का विश्लेषण था।

अब कामता प्रसाद के 'हिन्दी व्याकरण' पर अंग्रेजी व्याकरण के प्रभाव का विश्लेषण किया जा सकता है। गुरु जी की यह हिन्दी व्याकरण सम्बन्धी सर्व प्रथम रचना नहीं थी, सन् १९०० में उन्होंने, अंग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर 'भाषा-वाक्य पृथककरण' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया था। इसके अनन्तर उन्होंने 'सरस्वती' में, अंगरेजी से ग्रहण किये गए विराम-चिह्नों के हिन्दी रचनाओं में प्रयोग के सम्बन्ध में, दो लेख लिखे थे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार तथा हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के कारण, हिन्दी साहित्य की जो अभिवृद्धि हो रही थी, उसके लिए हिन्दी के एक आदर्श व्याकरण की आवश्यकता थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' का सम्पादन भार ग्रहण करने के समय से ही, प्रकाशन के लिए आने वाले लेखों की व्याकरण सम्बन्धी भूलों को बड़े परिश्रम के साथ, सुधारने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके इस प्रयास के फल-स्वरूप, हिन्दी भाषा बहुत व्याकरण सम्मत तथा व्यवस्थित होती जा रही थी। फिर भी एक आदर्श हिन्दी व्याकरण की आवश्यकता थी, जिसके अध्ययन से नये लेखक भाषा का शुद्ध प्रयोग सीख सकें। इस आवश्यकता की पूर्ति कामता प्रसाद गुरु के 'हिन्दी व्याकरण' के प्रकाशन से हुई।

गुरु जी के इस ग्रंथ में, पहले दो अध्यायों में, भाषा के साथ व्याकरण के सम्बन्ध, व्याकरण के अध्ययन की उपयोगिता तथा हिन्दी भाषा के विकास की एक

संक्षिप्त रूप रेखा प्रस्तुत की गयी है। इसके अनन्तर, हिन्दी वर्णमाला, शब्द-भेद तथा वाक्य रचना पर विचार है। शब्दों के भेद वही किये गये हैं, जो अंग्रेजी व्याकरणों में मिलते हैं। शब्द के विभिन्न व्याकरणिक रूपों का विवेचन, 'रूपान्तर' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है; और आगे चलकर जो वाक्य-विन्यास से सम्बन्धित प्रकरण हैं, वह पूर्णतः किसी अंगरेजी व्याकरण के आधार पर लिखित है। पहले उसमें, वाक्य में शब्दों के क्रम पर विचार है; उसके बाद वाक्य के विभिन्न प्रकारों तथा उपवाक्य के विभिन्न प्रकारों का निरूपण है। इससे अनन्तर विराम-चिन्हों के प्रयोग के नियम दिये गये हैं। यह प्रकरण भी किसी अंग्रेजी व्याकरण से लिया गया है, क्योंकि हिन्दी भाषा में विराम-चिन्हों का प्रयोग, अंगरेजी से ही आया है।

इस प्रसंग को समाप्त करते हुए अंगरेजी से गृहीत शब्दों के व्याकरण की चर्चा आवश्यक है। अंग्रेजी से ग्रहीत शब्द मुख्यतः संज्ञाएं हैं। अन्य प्रकार के शब्द केवल अनुवादित रूप में ही ग्रहण किये गये हैं। अंगरेजी की अनेक क्रियायें हिन्दी में अनुवादित रूप में ग्रहण की गयी हैं। अन्य प्रकार के शब्द भी इसी रूप में ग्रहण किये गये हैं। किन्तु इस रूप में भी, संज्ञाओं को छोड़कर, अन्य प्रकार के शब्द बहुत कम ग्रहण किये गये हैं। हिन्दी संज्ञाओं के दो लिंग हैं, स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग; इसीलिए अंग्रेजी के नपुंसक लिंग के शब्दों ने, हिन्दी में इन्हीं दो लिंगों में से किसी एक को ग्रहण कर लिया है। अंग्रेजी से ली गयी नपुंसक लिंग की संज्ञाओं को, हिन्दी के दो लिंगों में से किसी एक में स्वीकार करते हुए, किसी विशिष्ट सिद्धान्त का पालन नहीं किया गया है। कामताप्रसाद गुरू ने अपने 'हिन्दी व्याकरण' में कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख अवश्य किया है: आकारांत शब्द जैसे सोडा, डेल्टा, केमरा आदि पुल्लिग माने गये हैं; ईकारांत शब्द जैसे म्यूनिसीपैल्टी, लाईब्रेरी, डिक्शनरी आदि स्त्रीलिंग स्वीकार किये गये हैं। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके लिंग का निर्णय उन्हीं से मिलते जुलते हिन्दी शब्दों के आधार पर किया गया है। कम्पनी, लैम्प, कमेटी आदि हिन्दी से मिलते जुलते शब्द—मण्डली, दिया, सभा आदि की भाँति स्त्रीलिंग माने जाते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी के कोट, बूट, लेक्चर शब्द हिन्दी के अंगरखा जूता तथा व्याख्यान से मिलते जुलते होने के कारण पुल्लिग स्वीकार किये गये हैं। किन्तु ये नियम प्रत्येक स्थिति में लागू होते नहीं देखे जाते। अंग्रेजी से ग्रहण किये गये कुछ शब्द जैसे स्टेशन, टिकट और मोटर ऐसे हैं, जो दोनों लिंगों में प्रयोग किये जाते हैं।

अंग्रेजी से गृहीत शब्दों के बहु वचन बनाने में, अंग्रेजी के 'नोट्स' शब्द को छोड़ कर, जो अपने मौलिक रूप में ग्रहण कर लिया गया है, हिन्दी शब्दों के साथ

लागू होने वाले नियम ही कार्य करते हैं। अंग्रेजी से लिये गये शब्दों के रूपों का निर्माण भी हिन्दी के शब्दों की भांति ही किया जाता है। हिन्दी में भाववाचक संज्ञाएँ 'ई' अथवा 'ईय' लगाकर बनाई जाती हैं। अंग्रेजी शब्दों के साथ भी इनका प्रयोग करके डाक्टरी, कलक्टरी, जजी, योरोपीय, इंगलैंडीय आदि भाव वाचक संज्ञाएं बनाई गई हैं।

वाक्य-विन्यास

वाक्य-विन्यास के अन्तर्गत, वाक्य में शब्दों के अनुक्रम तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार किया जाता है, अथवा वाक्य रचना के नियमों का निर्धारण होता है। वाक्य रचना के नियम प्रत्येक भाषा के अपने अलग अलग होते हैं। हिन्दी तथा अंग्रेजी की वाक्य रचना में शब्दों के क्रम इस प्रकार हैं: अंग्रेजी, कर्त्ता+क्रिया +कर्म तथा हिन्दी, कर्त्ता+कर्म+क्रिया। किन्तु शब्द-क्रम सम्बन्धी ये विधान प्रत्येक परिस्थिति में लागू नहीं होते। आधुनिक युग में, हिन्दी भाषा का विकास, विशेष रूप से, अंग्रेजी प्रभाव की छाया में हुआ है, इस लिए स्वीकृत शब्द-क्रम भिन्न होते हुए भी अंग्रेजी की वाक्य व्यवस्था कभी कभी हिन्दी रचनाओं में भी मिल जाती है। यह विशेष रूप से, उन लेखकों की रचनाओं में देखने को मिलता है, जो अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का अध्ययन करके हिन्दी के क्षेत्र में आये हैं।

हिन्दी के वाक्य-विन्यास पर, अंग्रेजी के वाक्य-विन्यास के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए, पहले हमें अंग्रेजी की वाक्य व्यवस्था के सिद्धांतों का परिचय प्राप्त करना चाहिए। सी० एलफान्ज़ो स्मिथ ने अपने ग्रन्थ 'स्टडीज़ इन इंगलिश सिन्टैक्स' में लिखा है कि उसकी सबसे अधिक व्यापक विशेषता है:

"Its tendency to operate at close quarters, to span only limited areas, and to make its laws of concord depend not so much on logic as on proximity."[1]

इसी लेखक के अनुसार:

"Another characteristic of English syntax, closely related to the proceding and equaly operative on the development of the language, is the controling influence exerted by the position of words in a sentence."[2]

आगे चल कर इस द्वितीय विशिष्टता की व्याख्या करते हुये लिखा गया है:

"Subject and object for example have preemted places,—the

---

१ सी० एलफान्ज़ो स्मिथ: 'स्टडीज़ इन इंगलिश सिन्टैक्स १९०६ पृ० ६०

२—वही, पृ० ६०

subject before the predicate and object after the predicate. For long continuance in these places, or rather the place itself becomes actively subjective or objective, so that if an objective case remain long in the position of the subject, it begins to be looked upon as the subject and may chage to fit its new relationship."[1]

हर्बर्ट रीड ने अंग्रेजी की गद्य शैली की विवेचना करते हुए इस स्थिति को अभिव्यञ्जना की आवश्यकताओं अथवा लेखक के वांछित प्रभाव से प्रसूत माना है।[2] अब देखना है कि अंग्रेजी की वाक्य व्यवस्था की इन विशेषताओं ने हिन्दी की वाक्य व्यवस्था को किस सीमा तक प्रभावित किया है।

अंग्रेजी वाक्य-विन्यास का प्रभाव सबसे अधिक स्पष्टता के साथ अंग्रेजी से अनुवादित रचनाओं में है। अंग्रेजी के उपन्यासकार राइडर हैगर्ड की एक रचना, 'शी' का अनुवाद, हिन्दी में 'श्री' अथवा 'अवश्य माननीय' नाम से हुआ था। इस अनुवाद के प्रथम वाक्य में ही अंग्रेजी ढंग की व्यवस्था देखी जा सकती है :

"इस किस्से को अपने पाठकों के सन्मुख उपस्थित करने के समय, जो मेरे विचार से मानुषी अनुभवों में सबसे ज्यादा अद्भुत और विचित्र बोध होता है, मैं यह बतलाना अपना धर्म समझता हूँ कि मुझे इस किस्से से क्या सम्बन्ध है।"[3]

इस प्रकार के वाक्य, जिनमें अंग्रेजी वाक्य-विन्यास का ग्रहण स्पष्ट है, उन रचनाओं में भी मिलते हैं जो अंग्रेजी की रचनाओं को आदर्श मानकर लिखी गयीं थीं। इस तथ्य का स्पष्टीकरण श्रीनिवासदास के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (१८८४) के निम्नलिखित वाक्य से हो जाता है :

"आपके कहने के बमूजिब किसी आदमी की बातों से उसका स्वभाव, नहीं जाना जाता, फिर उसका स्वभाव जानने के लिये क्या उपाय करें ....लाला मदन मोहन ने तर्क की।"[4]

इस प्रकार की वाक्य रचना यह स्वतः ही स्पष्ट कर देती है कि वह किसी अन्य भाषा से ग्रहण की गई है, क्योंकि इसमें हिन्दी गद्य का प्रवाह देखने को नहीं मिलता।

हिन्दी रचनाओं में सामान्यतः वाक्यों में शब्दों का क्रम कर्त्ता+कर्म+क्रिया होता है; किन्तु इस नियम के अपवाद भी कभी कभी देखने को मिलते हैं। ओटो

१—सी०एलफ़ान्जो स्मिथ : 'स्टडीज इन इंगलिश सिन्टैक्स' (१९०६), पृ० ६०

२—हरबर्ट रीड : 'इन्गलिश प्रोज स्टाइल', पृ० ९९

३—कन्हैया लाल : 'श्री या अवश्य माननीय' (१९०२), पृ० १

४—श्री निवास दास : 'परीक्षा गुरू' (१८७४), पृ० ३६

जेसपर्सन ने वाक्यों की रूप-रेखा के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखा है :

"No grammatical rules of word order can however, be strictly observed in all cases; there is a certain freedom in that respect, and much depends on what is at every moment uppermost in the mind of the speaker. He will always tend to pronounce first what is most actual to him; and, on the other hand, he may sometimes on purpose more or less consciously, hold back an idea so as to produce a greater effect if its appearance is prepared in the right way."[1]

हिन्दी के लेखकों ने भी, जब उन्होंने, पाठकों के ऊपर कोई विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है, शब्द-क्रम के स्वीकृत विधान की अवहेलना की है। जेसपर्सन का मत है कि शब्द-क्रम में यह परिवर्तन साधारण वाक्य के केवल प्रारम्भ अथवा अन्त में ही किया जा सकता है।[2] हिन्दी के लेखकों ने भी, स्वीकृत शब्द-क्रम में, अधिकांश में, इन्हीं स्थलों पर परिवर्तन किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'नाटक' शीर्षक लेख का प्रथम वाक्य है :

"नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया"[3]

लेखक ने इस वाक्य में, नाटक शब्द के अर्थ पर विशेष बल देने के लिए, उसे क्रिया के पूर्व न रख कर, क्रिया के बाद स्थान दिया है। निम्नलिखित वाक्य में लेखक ने कर्म को सर्व प्रथम स्थान दिया है; क्योंकि वह उसे विशेष महत्व देना चाहता है:

"धोखा वह किसी को नहीं देता।"[4]

इस प्रकार के वाक्य हिन्दी की रचनाओं में बहुत देखने को मिलते हैं। अंग्रेजी में इस प्रकार की वाक्य रचना विशेष प्रचलित थी, इसलिए यह हिंदी में अंग्रेजी से आयी होगी।

साधारण वाक्य की रचना में, केवल शब्द-क्रम ही परिवर्तित किया जा सकता है; किन्तु मिश्रित तथा संयुक्त वाक्यों में, उपवाक्यों के क्रम, तथा उपवाक्यों में शब्दों के क्रम को भी बदला जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन के काल में, सबसे

१—ओटो जेसपर्सन : 'एसेंशल्स ऑफ इंगलिश ग्रामर' (१९३६), पृ० ९९

२—वही, पृ० ९९

३—श्यामसुन्दर दास संपादित : 'भारतेन्दु नाटकावली' द्वितीय भाग, परिशिष्ट, पृ० ७८९

४—श्यामसुन्दर दास संपादित : 'हिन्दी निबन्ध माला', प्रथम भाग (१९३३), पृ० ११

अधिक महत्व के प्रभाववादी लेखक, सरदार पूर्णसिंह थे। इनकी रचनाओं में बहुत से ऐसे वाक्य हैं, जिनमें, प्रभाव विशेष उत्पन्न करने के लिए, शब्दों का क्रम बदल दिया गया है। इस सम्बन्ध में, उनके निबन्ध 'मजदूरी और प्रेम' से निम्नलिखित वाक्य उद्धृत है :

'विद्या यह नहीं पढ़ा, जप और तप यह नहीं करता, संध्या वंदनादि इसे नहीं आते, गिरजे, मन्दिर से इसे सरोकार नहीं, केवल साग पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है।"[1]

इस वाक्य में, प्रत्येक उपवाक्य में, कर्त्ता के पूर्व कर्म को स्थान दिया गया है; क्योंकि लेखक कर्त्ता से अधिक कर्म को महत्व देना चाहता था।

हिन्दी के वाक्य-विन्यास पर अंग्रेजी के वाक्य-विन्यास का प्रभाव, केवल शब्दों के क्रम को परिवर्तित कर देने तक ही सीमित नहीं रहा; उस के फल-स्वरूप हिन्दी में एक नये प्रकार के उपवाक्य का सूत्रपात हुआ है : जिस वाक्य में, कर्त्ता को प्रथम स्थान देने के अनन्तर, सम्बन्धवाचक सर्वनाम के साथ, एक विशेषण उपवाक्य भी लिख दिया जाता है, वह व्यवस्था अंग्रेजी से गृहीत है। कामताप्रसाद गुरू ने अपने 'हिन्दी व्याकरण' में, वाक्य-पृथक्करण पर विचार करते हुए, इस प्रकार की वाक्य रचना के सम्बन्ध में लिखा है कि वह अंग्रेजी प्रभाव से पूर्व, हिन्दी गद्य में, प्रचलित नहीं थी; और सर्व प्रथम लल्लू जी लाल के 'प्रेम सागर' (१८१०) में देखने को मिली।[2] उन्होंने पद-टिप्पणी में यह भी लिखा है कि लल्लू जी लाल ने सम्भवतः इस प्रकार की वाक्य रचना अंग्रेजी से ग्रहण की हो।[3] गुरु जी इस सम्बन्ध में निश्चित नहीं थे कि इस प्रकार का वाक्य-विन्यास अंग्रेजी से गृहीत है अथवा हिंदी भाषा ने स्वयं ही विकसित किया है। किन्तु इस प्रकार की वाक्य रचना, 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत किये गये निबन्धों में बहुधा देखने को मिलती है; लल्लू जी लाल ने इसलिए ज्ञात या अज्ञात रूप से उसे उन्हीं निबन्धों से ग्रहण किया होगा। इस कॉलेज के सन् १८०२ के वाद-विवाद में डब्ल्यू० बी० बेली द्वारा प्रस्तुत निबन्ध के इस वाक्य में उसी प्रकार की व्यवस्था है :

"हिन्दू भी जो कदरे इम्तियाज रखता हो या मुसलमानों से जिसको कुछ ऐलाका

१—श्यामसुन्दर दास संपादित : 'हिन्दी निबन्ध माला', प्रथम भाग (१९३०) पृ० १०-११

२—कामता प्रसाद गुरू : 'हिन्दी व्याकरण' (१९२७), पृ० ६०७

३—वही, पृ० ६०७

है थोड़ी बहुत हसविहाल अपने नहीं हो सकता कि न जाने।"[१]

इस प्रकार की वाक्य रचना, इस निबन्ध में अन्य कई स्थानों पर भी है। 'प्रेम सागर' के दूसरे ही पृष्ठ पर, इसी प्रकार की योजना का एक वाक्य है :

"यह पाप रूप, यह काल आवरण, डरावनी सूरत जो आपके सन्मुख खड़ा है सो पाप है···।"[२]

यह पहले ही लिखा जा चुका है, कि इस प्रकार की वाक्य रचना, अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी में नहीं मिलती; और इसका सर्व प्रथम प्रयोग 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के विद्यार्थियों की रचनाओं में है; इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है, कि लल्लू जी लाल ने, उनके निकट सम्पर्क, में होने के कारण, इसे उन्हीं की रचनाओं से ग्रहण किया होगा।

इस प्रकार की वाक्य रचना, राजा शिवप्रसाद की रचनाओं में भी मिलती है। उनकी 'राजा भोज का सपना' शीर्षक कहानी में इस प्रकार की व्यवस्था का एक वाक्य है :

"उस बड़े मन्दिर की जिसके जल्द बना देने के वास्ते सरकार से हुक्म हुआ है आज नीव खुद गई·····।"[३]

राजा साहब की यह रचना किसी अंग्रेजी ग्रंथ के आधार पर लिखित कही जाती है;[४] इसलिए यह पूर्णतः सम्भव है कि इस प्रकार की वाक्य व्यवस्था अंग्रेजी से ग्रहण की गई हो। अन्य लेखकों, की रचनाओं में भी इस प्रकार के वाक्य देखने को मिलते हैं। उन्होंने या तो सीधे अंग्रेजी से, अथवा अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत राजा शिवप्रसाद जैसे लेखक से ग्रहण किया होगा।

अंग्रेजी की कुछ रचनाओं में, एक विचित्र प्रकार की वाक्य रचना, जिसमें कर्त्ता अथवा क्रिया की एक विस्तृत सूची होती है, मिलती है। हरबर्ट रीड ने वर्ड्सवर्थ तथा बर्क की रचनाओं से, कुछ ऐसे वाक्य उद्धृत किये हैं, जिनमें कर्त्ताओं की सूची है।[५] हिन्दी में इस प्रकार की वाक्य व्यवस्था सरदार पूर्णसिंह तथा बालकृष्ण भट्ट की

१—डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : 'ग्रोथ एण्ड डेवलपमेंट ऑफ हिन्दी लिट्रेचर (१८५०-१९००),' टंकित प्रबन्ध, एपेन्डिक्स, पृ० ३१२

२—कामताप्रसाद गुरु : 'हिन्दी व्याकरण,' पृ० ६०७

३—श्यामसुन्दर दास संपादित : 'हिन्दी निबंध माला', प्रथम भाग, पृ० १५

४—डॉ० माताप्रसाद गुप्त : 'हिन्दी पुस्तक साहित्य', पृ० २५५

५—हरबर्ट रीड : 'इंगलिश प्रोज़ स्टाइल' (१९५६), पृ० ४३

रचनाओं में है। इस बात की सम्भावना अधिक है कि हिन्दी लेखकों ने इस प्रकार की वाक्य रचना अंग्रेजी के प्रसिद्ध वक्ता बर्क के भाषणों के अध्ययन से ग्रहण की हो; क्योंकि उसके व्याख्यान इन लेखकों के समय में हिन्दी-प्रदेश में शिक्षा-संस्थाओं के माध्यम से प्रचलित हो गये थे। सरदार पूर्णसिंह के निम्नलिखित वाक्य में कर्त्ताओं की सूची देखने को मिलती है :

"पशुओं को चराना, नहलाना, खिलाना, पिलाना, उनके बच्चों की अपने बच्चों की तरह सेवा करना, खुले आकाश के नीचे उनके साथ रातें गुजार देना, क्या स्वाध्याय से कम है।"[1]

प्रासंगिक उपवाक्य (Parenthetical clause)—जो कि एक वाक्य के भीतर व्याकरण के नियमों से पूर्णतः स्वतंत्र एक छोटा-सा वाक्य होता है—का प्रयोग भी हिन्दी लेखकों ने अंग्रेजी प्रभाव से ही ग्रहण किया है। निम्नलिखित वाक्य में जो 'प्रकृति सौन्दर्य' शीर्षक एक निबन्ध से लिया गया है, सूचीमय वाक्य की विशेषता तथा प्रासंगिक उपवाक्य, दोनों ही देखे जा सकते हैं :

"प्रचंड ऊर्मिमय गम्भीर घोषी महासागर का प्रथम दर्शन करने, निर्जन घोर-घोर अरण्य में···जहां चिड़ियां पंख नहीं मारतीं···प्रथम ही प्रवास करने, पृथ्वी के ऊँचे पहाड़ों की चोटियों के स्फोट के कारण महाभयंकर ज्वालामुखी के डरावने मुख से पृथ्वी के पेट से बह निकलते हुए पत्थर, मिट्टी, धातु इत्यादि पदार्थों के रस के प्रवाह को प्रथम ही देखने अथवा नितांत शीत के कारण बर्फ से ढके हुये स्फटिकमय प्रदेश में चलने से जो नया और अपूर्व अनुभव प्राप्त होता है उसका कुछ अकथनीय संस्कार मन पर होता है।"[2]

उपर के अवतरण में प्रासंगिक उपवाक्य बिन्दुओं के बीच में है। इसका प्रयोग, वाक्य में सामान्यतः उस समय किया जाता है, जब किसी विशिष्ट शब्द अथवा उपवाक्य की अलग से व्याख्या करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रासंगिक उपवाक्यों का प्रयोग महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा सरदार पूर्णसिंह की रचनाओं में बहुधा देखने को मिलता है।

विधेयांशों की व्याख्या करते हुए अग्रलिखित वाक्य का उदाहरण देकर:

"Mount-Blank appears,—still, snowy and serene."

जेसपर्सन ने लिखा है:

"Sentences of this kind may be considered the last link of a

१—श्यामसुन्दर दास संपादित : 'हिन्दी निबंध माला', प्र०भा०, पृ० ११

२—वही, पृ० ४३-४४

long series, beginning with descriptions which stood really outside the sentence as an after thought (in extrapositions)."[1]

इस प्रकार की अतिरिक्त स्थितियों (extraposition) के प्रयोग हिन्दी रचनाओं में भी देखे जाते हैं:

"एक क्षण के अनन्तर वाटिका में एक साधु आया, सिर पर जटायें, शरीर पर भस्म रमाये।" [2]

और क्योंकि इस प्रकार की वाक्य रचना पहले के साहित्य में देखने को नहीं मिलती, यह जान बूझ कर या अनजाने अंग्रेजी प्रभाव से ही ग्रहण की गई होगी।

एक अन्य प्रकार के विधेयांशों का प्रयोग भी अंग्रेजी से ग्रहण किया गया है, जिन्हें जेसपर्सन ने 'quasipredicatives' की संज्ञा दी है। इस प्रकार के विधेयांश के प्रयोग में वर्णन वाक्य का आवश्यक भाग होता है और क्रिया भी अपना स्वाभाविक बल नहीं खोती।[3] निम्नलिखित वाक्य में इस प्रकार के विधेयांश का प्रयोग देखा जा सकता है :

"When sorrows come, they come not single spies, but in battalions.' [4]

हिन्दी में इस तरह के विधेयांश का प्रयोग निम्नलिखित वाक्य में किया गया है:

"यहां की मूर्तियां बोल रही हैं···वे जीती जागती हैं, मुर्दा नहीं।" [5]

अंग्रेजी के लेखकों ने कभी कभी अपने वर्णन को स्पष्टता प्रदान करने के लिए वाक्य के कर्त्ता और कर्म, दोनों का लोप कर दिया है। इस प्रकार की वाक्य-रचना यदा-कदा ही देखने को मिलती है। सरदार पूर्णसिंह ने ऐसे वाक्य का भी एक उदाहरण प्रस्तुत किया है :

"इस सफेद आटे से भरी हुई छोटी सी टोकरी सिरपर, एक हाथ में दूध से भरा हुआ लाल मिट्टी का कटोरा, दूसरे हाथ में मक्खन की हांडी।" [6]

१—ओटो जेसपर्सन : 'एसेन्शल्स ऑफ इंगलिश ग्रामर' (१९३७), पृ० १२४

२—प्रेमचन्द : 'प्रेमपूर्णिमा' (१९४६), पृ० १२९

३—ओटो जेसपर्सन : एसेन्शल्स ऑफ इंगलिश ग्रामर', पृ० १२४

४—वही, पृ० १२४

५—श्यामसुन्दर दास (सम्पादित) : 'हिन्दी निबन्ध माला', द्वितीय भाग (१९३३), पृ० २८-२९

६—वही, पृ० १८-१९

कथा-साहित्य में ऐसी वाक्य-रचना सामान्यत: मिलती है। हिन्दी कथा-साहित्य के विकास का अभी प्रारम्भ ही हुआ था, इसलिए ऐसी वाक्य-रचना हिन्दी-लेखकों की रचनाओं में यदा कदा ही देखने को मिल जाती थी।

कर्त्ता और क्रिया से शून्य वाक्यों पर विचार करने के अनन्तर अव्यवस्थित वाक्यों (amorphous sentences) जिनमें कि केवल एक ही सदस्य होता है, यद्यपि उसमें कई शब्द हो सकते हैं, को भी देख लेना चाहिए। जेसपर्सन ने ऐसे वाक्यों की रचना पर विचार करते हुए लिखा है:

"While the sentences of complete predicational nexuses are (often at any rate) intellectual and formed so as to satisfy strict requirements of logicians, amorphous sentences are more suitable for the emotional side of human nature. When anyone wants to give vent to strong feeling, he does not stop to consider logical analysis of his ideas, but language furnishes with a great many adequate means of bringing the state of his mind to the consciousness of his hearers or readers," [1]

इस प्रकार के अव्यवस्थित वाक्यों के अंग्रेजी भाषा के उदाहरण निम्नलिखित हैं :

'Yes!' 'Good-bye!' 'Thanks!' 'What!' 'Nonsense!' 'Out with your suspicions!' 'Why all this fuss!" [2]

हिन्दी लेखकों ने भी अपनी रचनाओं में इस प्रकार के अव्यवस्थित वाक्यों का प्रयोग किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा अन्य लेखकों के नाटकों के पात्रों ने अवसर अपने भावों को इसी प्रकार के वाक्यों द्वारा प्रकट किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं के कुछ अव्यवस्थित वाक्य निम्नलिखित हैं :

'छि: छि: !' 'निखट्टू नैपाली टट्टू !' 'मरकट्टा बैल !' 'बहुत ठीक !' 'क्या ! क्या क्या !' 'दु:ख दु:ख' ! 'वाह' ! आदि।

प्रेमचन्द जी ने अपनी कहानियों में भी इस प्रकार के अव्यवस्थित वाक्यों का प्रयोग किया है :

"हां !' 'बिल्कुल बेकसूर' ! 'अच्छा अच्छा !' 'तुम्हारा सिर !' 'अरे !' राम राम !' 'उफ़ !' 'आकांक्षा की प्रबलता !' तथा अन्य।

हिन्दी के अन्य लेखकों की रचनाओं में भी इस प्रकार के वाक्य देखे जा सकते हैं, किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इनके प्रयोग में अंग्रेजी प्रभाव का

१—ओटो जेसपर्सन : 'एसेन्शल्स ऑफ इंगलिश ग्रामर (१९३७), पृ० १०५

२—वही, पृ० १०५

विशेष हाथ नहीं है; क्योंकि ऐसे वाक्य सामान्य बोलचाल में पहले भी प्रयोग में आते रहे होंगे। विस्मय सूचक चिह्न के साथ इनका लिखा जाना अवश्य अंग्रेजी प्रभाव से ग्रहण किया गया होगा।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी के वाक्य-विन्यास ने हिन्दी के वाक्य-विन्यास को पर्याप्त रूप में प्रभावित किया है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी में केवल काव्य रचनाएं ही प्रस्तुत की गई थीं। कुछ गद्य रचनाएँ भी लिखी गई थीं, किन्तु उनमें गद्य का रूप बहुत अव्यवस्थित तथा शिथिल मिलता है। अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी गद्य के विकास को विशेष बल मिला और उस ने अपनी अभिवृद्धि के लिए कभी कभी अंग्रेजी ढंग की वाक्य-रचना का भी अनुकरण किया। अंग्रेजी ढंग की वाक्य-रचना से प्रभावित होकर हिन्दी भाषा में नवीन भावों, नये विचारों, जीवन के नये तथा विभिन्न पहलुओं को प्रगट करने की शक्ति की अभिवृद्धि हुई। इसी प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी लेखकों ने व्याकरण में स्वीकृत वाक्य-रचना के सिद्धान्तों की, भाषा के हितों को बिना किसी प्रकार की हानि पहुंचाये, उपेक्षा करना सीखा था। व्याकरण में स्वीकृत नियमों की उपेक्षा करके उन्होंने हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति को बढ़ा दिया था।

५ विराम-चिह्न तथा अनुच्छेद

आज हिन्दी के सामान्यतः प्रचलित विराम-चिह्नों, अल्प-विराम, अर्ध-विराम, प्रश्न-वाचक, विस्मय-वाचक, निर्देशक आदि का प्रयोग भी अंग्रेजी से ही आया है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी में, केवल । तथा ।। का ही प्रयोग होता था, जो क्रम से किसी काव्य रचना की प्रथम पंक्ति, तथा रचना की समाप्ति के बोधक होते थे। अंग्रेजी भाषा के साथ निकट सम्पर्क के अनन्तर उसके ये विराम-चिह्न भी हिन्दी में प्रयोग में आने लगे। अनुच्छेदों का विधान भी हिन्दी ने अंग्रेजी से ही ग्रहण किया है। अंग्रेजी के विराम-चिह्न, हिन्दी में किस प्रकार प्रयोग में आने लगे, इसी का विवरण हम यहां उपस्थित कर रहे हैं। अंग्रेजी में अनुच्छेदों को भी एक प्रकार का विराम ही माना गया है[1] इसलिए हिन्दी में अंग्रेजी प्रभाव से आयी हुई अनुच्छेदों की व्यवस्था पर भी यहाँ विचार-विमर्श होगा।

अंग्रेजी में विराम-चिन्हों का प्रयोग तर्क, भौतिक आवश्यकताओं तथा रचना की गति की दृष्टि से प्रेरित माना जाता है। तर्क से प्रेरित विरामों को, रूपविधान के विराम भी कहा गया है।[2] हरबर्ट रीड ने लिखा है:

१—हरबर्ट रीड : 'इंगलिश प्रोज़ स्टाइल' (१९३७), पृ० ५५

२—वही, पृ० ४७

'Punctuation by structure is logical; it serves to indicate and help the sense of what is being said. It marks off the process of thought outlines the steps of arguement, in fact, orders and controls the expression in the interests of meaning."[1]

भौतिक आवश्यकताओं से प्रेरित विरामों को, श्वास की गति से निर्णीत विराम भी कहा गया है; वह यह मान लेता है कि जो कुछ लिखा जा रहा है वह चाहे अनजाने ही हो, वास्तव में बोला जा रहा है; और जो कुछ बोला जा रहा है, उसमें श्वास की गति के आधार पर विराम होने चाहियें। एक लिखित रचना भी इस प्रकार एक मौन अथवा कल्पित व्याख्यान है और इसलिये उसमें भी भौतिक आवश्यकताओं से प्रेरित विराम होने चाहिएं :[2] रचना की गति से प्रेरित विरामों का प्रयोग बहुत ही कम, मिल्टन, रस्किन आदि एक दो लेखकों की रचनाओं में ही, मिलता है।[3] इन तीन प्रकार के विरामों में भौतिक आवश्यकताओं से प्रेरित विराम अंग्रेजी में सब से अधिक प्रचलित रहे हैं और उनके सम्बन्ध में हरबर्ट रीड का कथन है :

"Each stop—comma, semi-colon, colon, full-stop,—represents a degree of pause; it has a certain time-value and is inserted to represent a proportionate duration."[4]

आगे यह देखा जायेगा कि हिन्दी रचनाओं में कहां तक विरामों का प्रयोग इन तीन प्रकार की आवश्यकताओं से प्रेरित रहा है और इनमें से कौन सब से अधिक प्रेरणा प्रदान करने वाली रही है।

अंग्रेजी से लिये गये विराम-चिन्हों का प्रयोग सर्व प्रथम हमें 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के द्वारा प्रकाशित की जाने वाली रचनाओं में मिलता है। इस संस्था के सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रकाशन जिनमें इन चिन्हों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है, लल्लू जी लाल कृत 'प्रेम सागर' तथा सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान' थे। 'प्रेम सागर' के प्रथम पृष्ठ में ही अल्प-विराम, अर्ध-विराम तथा पूर्ण-विराम—इन तीन विराम-चिन्ह का प्रयोग किया गया है और दूसरे पृष्ठ में दो अन्य—प्रश्नवाचक तथा विस्मय सूचक चिन्हों का प्रयोग है। बाद के पृष्ठों में इनका प्रयोग व्यापक रूप से किया गया है, जहां कहीं तर्क के आधार पर वे आवश्यक रहे हैं। 'प्रेमसागर' वस्तुतः एक गद्य रचना है, किन्तु उसमें स्थान-स्थान पर कई पद्य भी हैं। इन पद्यों में अर्ध-विराम तथा

१—हरबर्ट रीड : 'इंगलिश प्रोज़ स्टाइल' (१९३७), पृ० ४७

२—वही, पृ० ४८

३—वही, पृ० ४९

४—वही, पृ० ४७

पूर्ण-विराम इन्हीं दो चिन्हों का प्रयोग किया गया है ; किन्तु पृष्ठ १७८ पर प्रश्नवाचक चिह्न, १९२ पर विस्मय-बोधक चिह्न तथा १९६ पर अर्ध-विराम भी प्रयोग में लाये गये हैं। 'नासिकेतोपाख्यान' में भी इन्हीं विराम-चिह्नों का प्रयोग हुआ है। ये दोनों ही रचनायें 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के प्राध्यापकों के, जो कि अंग्रेज थे, निरीक्षण में लिखी जाकर, उसी के अधिकारियों द्वारा प्रकाशित की गयी थीं। इस प्रकार पूर्ण निश्चय के साथ यह कहा जा सकता है कि इन रचनाओं में ये विराम-चिह्न उन अंग्रेज प्राध्यापको की प्रेरणा से प्रयोग में लाये गये होंगे, जिनके निरीक्षण में ये लिखी गई थीं। यही कारण है कि इन रचनाओं में पूर्ण-विराम का प्रयोग, उसके हिन्दी रूप में नहीं, वरन् अंग्रेजी रूप में किया गया है।

'फोर्ट विलियम कॉलेज' की इन रचनाओं को देखने के अनन्तर अब यह देखना चाहिये कि हिन्दी के प्रथम समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' में इन विराम-चिह्नों का प्रयोग किस प्रकार किया गया था। इसके प्रारम्भिक अंकों में। तथा ।। चिह्नों का ही प्रयोग किया गया था, जो पहले से काव्य रचनाओं में प्रचलित चले आ रहे थे। इन में से कभी पहले का और कभी दूसरे का प्रयोग, अनुच्छेद की समाप्ति पर किया गया है; किन्तु आगे के अंकों में पहले का प्रयोग वाक्य की समाप्ति पर और दूसरे का अनुच्छेद के अन्त तथा रचना की समाप्ति पर होने लगा था। यह साप्ताहिक-पत्र था; हिन्दी के प्रथम दैनिक-पत्र 'समाचार सुधावर्षण' का प्रकाशन सन् १८५४ से प्रारम्भ हुआ था। इसके प्रारम्भिक अंको मे केवल पूर्ण-विरामों का प्रयोग किया गया था; किन्तु आगे के अंकों में अल्पविराम, अर्धविराम, प्रश्नवाचक चिह्न भी प्रयोग में आने लगे थे। हिन्दी-प्रदेश की सर्व प्रथम पत्र-पत्रिकाओं 'कविवचन सुधा' तथा 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' आदि में अधिकांश में पूर्ण-विरामों का ही प्रयोग हुआ था; किन्तु कुछ स्थानों पर अल्पविराम तथा अर्धविराम भी प्रयोग में लाये गये थे। इन विरामों का प्रयोग कभी तो तर्क और कभी श्वास की गति के आधार को लेकर हुआ था।

हिन्दी के कुछ प्रमुख लेखकों ने इन विराम-चिह्नों का प्रयोग किस प्रकार किया है, यह भी देख लेना चाहिये। इस अध्ययन को व्यवस्थित रूप देने के लिए, इसे तीन कालों—प्रारम्भिक काल, संक्रान्ति युग तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी का युग में—विभक्त किया जा सकता है। प्रारम्भिक काल के प्रमुख लेखक राजा शिवप्रसाद (१८५३-९५), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-८५), तथा श्रीनिवास दास (१८५०-८७), थे। राजा शिवप्रसाद ने सामान्यतः छोटे छोटे वाक्य लिखे थे। इसलिए उनकी रचनाओं में अधिकांश में वाक्य के अन्त का बोध कराने के लिए पूर्ण-विराम का प्रयोग मिलता

है; किन्तु उन्होंने अल्पविराम, अर्धविराम, कोष्ठक तथा निर्देशक के भी प्रयोग किये हैं। उन्होंने सामान्यतः प्रासंगिक उपवाक्य को कोष्ठक में रख दिया है और कभी कभी किसी विशिष्ट शब्द के पर्यायवाची को भी उन्हीं के भीतर स्थान दे दिया गया है। निर्देशक का प्रयोग किसी उद्धरण के पूर्व अथवा किसी विशिष्ट शब्दावली या उपवाक्य के वास्तविक अर्थ की व्याख्या करते हुए किया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि राजा शिवप्रसाद ने अपनी रचनाओं में विराम चिन्हों का प्रयोग बहुत कुछ उसी प्रकार किया है, जैसे कि वे अंग्रेजी की रचनाओं में प्रयोग में लाये जाते थे। इनके प्रयोग के सम्बन्ध में उनके विचार स्पष्ट थे।

किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के विराम-चिह्नों के सम्बन्ध में, जैसा कि इनकी रचनाओं को देखने से स्पष्ट है, कोई स्पष्ट विचार नहीं थे। निम्नलिखित पंक्तियों में जो कि उनके निबन्ध 'खत्रियों की उत्पत्ति' का प्रथम अनुच्छेद है, केवल अनुच्छेद की समाप्ति पर ही पूर्ण-विराम का प्रयोग किया गया है :

"मेरी बहुत दिनों से इच्छा थी कि इस जाति का पुरावृत्त संग्रह करूं परन्तु मुझे इसमें कोई सहायक न मिला और जिन जिन मित्रों ने मुझ से पुरावृत देने को कहा था वे इस विषय में असमर्थ हो गये और इसी से मेरा भी उत्साह बहुत समय तक मन्द पड़ा रहा परन्तु मेरे परम मित्र ने मुझे इस सम्बन्ध में फिर उत्साहित किया और कुछ ऐसी सहायता भी मिल गई कि मैं फिर से इस जाति के समाचार अन्वेषण में उत्सुक हुआ।"[१]

इस पूरे अनुच्छेद में, जिसे एक वाक्य का रूप दिया गया है, पूर्ण-विराम का प्रयोग करके कई वाक्य बनाये जा सकते थे; तथा अन्य भी कई विराम चिन्हों का प्रयोग किया जा सकता था। किन्तु यह सब इसलिए नहीं हो सका क्योंकि लेखक को इनके प्रयोग के नियमों का स्पष्ट ज्ञान नहीं था। भारतेन्दु जी ने कभी कभी अपनी रचनाओं में पूर्ण-विराम का प्रयोग विशेष रूप से किया है :

"अकबर अति बुद्धिमान और परिणामदर्शी था। आलस्य तो उसे छू नहीं गया था। प्रथमावस्था में तो कुछ भोजन पानादि का व्यसन भी था पर अवस्था बढ़ने पर वह बड़ा ही सावधान हो गया था।"[२]

विस्मयादिबोधक चिह्न के प्रयोगमें उनकी विशेष रुचि थी :

१—रामबहिनसिंह सम्पादित : 'हरिश्चन्द्र कला', द्वितीय भाग, 'खत्रियों की उत्पत्ति' पृ० १

२—वही, 'मुगलराजत्व का संक्षिप्त इतिहास': पृ० १४

(१) "वही नैपोलियन इङ्गलेंड के एक गांव में एक छोटे से घर में मरा!!!"[१]

(२) "हाय! हाय! कैसा दारुण समय हुआ है!!"[२]

(३) "हा! ईश्वर फिर यह दिन न लावे!!"[३]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में प्रयुक्त अन्य विराम-चिह्न, अल्पविराम, निर्देशक तथा अवतरण चिन्ह थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें अर्धविराम के प्रयोग का विशेष ज्ञान नहीं था। उनके नाटकों में इसका प्रयोग यदा कदा ही हुआ है और कुछ में तो हुआ ही नहीं है। केवल अपनी एक रचना 'दिल्ली दरबार दर्पण' में, एक स्थान पर, बारह पंक्तियों में अर्धविराम का प्रयोग उन्होंने चौदह बार किया है;[४] किन्तु यह संभवतः उन पंक्तियों के अंग्रेजी से प्रभावित होने के कारण है। अपनी रचनाओं में कुछ स्थानों पर उन्होंने प्रश्नवाचक चिह्नों का भी प्रयोग किया है।

श्रीनिवास दास ने अपने उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (१८८४) की भूमिका में विराम-चिह्नों के प्रयोग के सम्बन्ध में भी थोड़ा सा विवरण दिया था। प्रथम अनुच्छेद में अवतरण चिह्नों के प्रयोग के सम्बन्ध में तथा दूसरे अनुच्छेद में अल्पविराम, अर्ध-विराम, व्याख्या चिह्न (Colon), पूर्ण-विराम, प्रश्नवाचक चिह्न, विस्मयादि बोधक चिह्न, निर्देशक आदि के प्रयोग के विषय में लिखा गया है। किन्तु उनकी रचनाओं में केवल पूर्ण विराम, अवतरण चिह्न, विस्मयादि बोधक चिह्न, अल्पविराम, प्रश्नवाचक चिह्न तथा निर्देशकों का ही प्रयोग किया गया है। अर्धविराम का प्रयोग उनकी रचनाओं में बहुत ही कम हुआ है। उनके तीन सौ पृष्ठों के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' में इस विराम-चिह्न का प्रयोग केवल आठ बार ही किया गया है; और इनमें से भी कई स्थानों पर उसका प्रयोग सही नहीं है, जैसा कि निम्नलिखित अवतरणों से स्पष्ट हो जाता है :

(१) "मैं यह नहीं कह सकता जो बहकाते होंगे; अपने जी में आप समझते होंगे..... ।"[५]

(२) "मैं आपका शत्रु नहीं; मित्र हूँ परन्तु आपको ऐसा ही जंचता है... ।"[६]

१—रामबहिन सिंह संपादित : 'चरितावली', पृ० १०६

२—वही, पृ० १२२

३—वही, पृ० १३०

४—वही, 'दिल्ली दरबार दर्पण', पृ० ७

५—श्रीनिवास दास : 'परीक्षा गुरु', पृ० ३५

६—वही, पृ० १३६

(३) "जहां तक औरों के हक में अन्तर न आये; वे अपने ऊपर दुःख उठाकर भी परोपकार करते हैं।"[१]

(४) "वह लोगों की देखा देखी नहीं; अपनी बुद्धि से व्यापार करता था।[२]

(५) "वह मन्त्री था इस लिए तनदुरुस्त था वह अपने कामों का बोझा हरगिज औरों के सिर नहीं डालता था, हां यथाशक्ति वाजबी बातों में औरों की सहायता करने को तत्पर रहा था ... ।"[३]

ये उद्धरण, केवल यह स्पष्ट नहीं करते, कि श्रीनिवास दास को अर्धविराम के प्रयोग के नियमों का विशेष ज्ञान नहीं था; वरन् यह भी प्रकट करते हैं कि उन्हें विराम चिह्नों का सही प्रयोग विशेष ज्ञात नहीं था। इन वाक्यों में से पहले, दूसरे और पाँचवें जहां तक वे दिए गये हैं, पूर्ण हो गये हैं, किन्तु लेखक ने उन्हें, दो एक वाक्य और जोड़ने के बाद पूर्ण-विराम का प्रयोग करके समाप्त किया है। उनकी रचनाओं में बहुत से स्थानों पर यह देखने को मिलता है कि पाँच छः वाक्यों के बाद पूर्ण विराम का प्रयोग किया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान श्रीनिवास दास को भी विस्मयादि-बोधक चिह्न के प्रयोग के प्रति विशेष रुचि प्रतीत होती है, क्योंकि उन्होंने भी उन्हीं की भांति एक ही स्थान पर दो-दो तीन-तीन बार उसका प्रयोग किया है।

संक्रांति अथवा परिवर्तन के युग के प्रमुख लेखकों, बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४), प्रताप नारायण मिश्र (१८५६-९४), राधाकृष्ण दास (१८६५-१९०७) तथा बालमुकुन्द गुप्त (१८६५- १९०७) ने अपनी रचनाओं में अधिकांश में अल्पविराम तथा पूर्णविरामों का प्रयोग किया है। इन्हें पूर्णविराम के प्रयोग का स्पष्ट ज्ञान था। इनकी रचनाओं में अर्धविरामों का भी यदा कदा प्रयोग किया गया है, और वह उचित स्थानों पर हुआ है। किन्तु इन लेखकों ने, उन अधिकांश स्थलों पर, जहां इसका प्रयोग होना चाहिए था, अल्पविराम के प्रयोग से ही काम चला लिया है। कभी कभी इन लेखकों ने अपनी रचनाओं में अवतरण चिह्नों, निर्देशकों, प्रश्न-वाचक तथा विस्मयादि-बोधक चिह्नों का भी सही प्रयोग किया है। इन विराम-चिह्नों के प्रयोग कभी तो तर्क के आधार पर किये गये हैं, और कभी श्वास की गति में विराम का बोध कराने के लिए।

तर्क के आधार पर विराम-चिह्नों का सबसे अधिक प्रयोग महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके युग के अन्य लेखकों की रचनाओं में मिलता है। द्विवेदी जी सामान्यतः

१—श्रीनिवास दास : 'परीक्षा गुरु', पृ० १६७
२—वही, पृ० १७३
३—वही, पृ० १७५

छोटे-छोटे वाक्य लिखा करते थे, जिनके अन्त में पूर्णविराम का प्रयोग किया जाता था; किन्तु जब वे लम्बे वाक्य लिखते थे तो अपने भावों अथवा विचारों को और अधिक स्पष्टता प्रदान करने के लिए, अल्पविराम, अर्धविराम, निर्देशकों आदि का प्रयोग कर देते थे। निर्देशकों का प्रयोग अधिकाँश में उन्होंने प्रासंगिक उपवाक्य के प्रारम्भ तथा अन्त में किया है। उनकी रचनाओं में प्रश्नवाचक चिह्न का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु केवल उन्हीं स्थानों पर, जहां उसकी विशेष आवश्यकता रही है। पर्याय-वाची शब्दों और कभी-कभी प्रासंगिक उपवाक्यों को उन्होंने कोष्ठकों के भीतर रख दिया है। अवतरण चिह्नों का प्रयोग किसी उद्धरण के प्रारम्भ तथा अन्त में किया गया है। भावुकता के प्रवाह में आकर उन्होंने भी पहले के लेखकों की भांति एक ही स्थान पर विस्मयादि, बोधक चिन्ह का प्रयोग, दो-दो तीन-तीन बार कर दिया है, जैसा कि उनके निबन्धों, 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' तथा 'नल का दुस्तर दूतकार्य' में देखा जा सकता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग के अन्य महत्व पूर्ण लेखक 'मिश्रबन्धु', श्यामसुन्दर दास, सरदार पूर्ण सिंह, प्रेमचन्द आदि थे। इनमें से 'मिश्रबन्धु' तथा श्यामसुन्दर दास ने, अपनी रचनाओं में अधिकतर अल्पविराम तथा पूर्णविरामों का ही प्रयोग किया है; किन्तु अर्धविराम, व्याख्या-चिह्न, निर्देशक, विस्मयादि-बोधक, तथा अवतरण चिह्न भी उनकी रचनाओं में सही रूप में प्रयोग किये गये देखे जा सकते हैं। विराम-चिह्नों के प्रयोग में इन लेखकों ने तर्क की दृष्टि से कार्य किया है। सरदार पूर्णसिंह की रचनाओं में, अंग्रेजी से लिये गये सभी विराम-चिह्नों का प्रयोग मिलता है, किन्तु कभी कभी उन्होंने, जहां अर्धविराम का प्रयोग होना चाहिए था, वहां अल्प-विराम से ही काम निकाला है। प्रेमचन्द जी ने भी अपनी रचनाओं में सभी विराम-चिह्नों का प्रयोग किया है; और वह अधिकांश में सही ही हुआ है।

काव्य रचनाओं में विराम-चिह्नों के प्रयोग का सूत्रपात भी 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के लेखकों ने ही किया था, किन्तु वह बहुत समय तक प्रचलित नहीं हो सका। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी काव्य रचनाओं में एक-आध स्थल पर अल्पविराम का प्रयोग कर दिया है। भारतेन्दु जी स्वयं, तथा उनके युग के अन्य लेखकों ने, पहले से चले आते हुए। तथा ।। के प्रयोग को ही प्रचलित रक्खा था। श्रीधर पाठक पहले कवि थे, जिन्होंने कि इन्हें छोड़कर इनके स्थान पर अंग्रेजी के विराम चिह्नों का प्रयोग आरम्भ किया। उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में अल्पविराम, विस्मयादि-बोधक तथा प्रश्नवाचक चिह्नों का प्रयोग किया। अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप मुक्त-छन्द की रचनाओं का प्रारम्भ हो जाने से, अंग्रेजी से लिये गये विराम-चिह्नों का प्रयोग

बहुत अधिक आवश्यक हो गया था, और लोचन प्रसाद पाण्डेय तथा जयशंकर प्रसाद ने, श्रीधर पाठक द्वारा प्रयुक्त विराम-चिह्नों के अतिरिक्त, पूर्णविराम, निर्देशक तथा अवतरण चिह्नों का भी, अपनी छन्दोबद्ध तथा मुक्त छन्द की रचनाओं में, विशेष रूप से दूसरे प्रकार की रचनाओं में, प्रयोग किया।

किसी रचना का अनुच्छेदों में विभाजन भी, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, विराम के प्रयोग का ही एक विधान है, और क्योंकि अनुच्छेदों की व्यवस्था करना भी अंग्रेजी प्रभाव से ही सीखा गया था, इसलिए इस सम्बन्ध में भी यहां पर विचार हो जाना चाहिए। विराम-चिह्नों के प्रयोग की ही भाँति किसी रचना के अनुच्छेदों में विभाजन में तर्क, भौतिकता तथा भाषा की गति की आवश्यकताओं के ही अनुसार कार्य किया जाता है। हिन्दी भाषा में प्रस्तुत की जाने वाली रचनाओं को अनुच्छेदों में विभाजित करने की परम्परा का प्रारम्भ भी 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के लेखकों ने ही किया था। लल्लू जी लाल ने अपने 'प्रेम सागर' तथा सदल मिश्र ने अपने 'नासिकेतोपाख्यान' में, जो अनुच्छेदों की व्यवस्था की है, वह तार्किक आवश्यकताओं पर आधारित है। राजा शिव प्रसाद ने भी तर्क की आवश्यकताओं के आधार पर ही अपनी रचनाओं को अनुच्छेदों में विभाजित किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा श्रीनिवास दास को, जिस प्रकार विराम चिन्हों के प्रयोग के नियमों का ज्ञान नहीं था, उसी प्रकार वे अनुच्छेदों के सही प्रयोग के विषय में भी अनभिज्ञ थे। इसी कारण उनके अनुच्छेद कभी तो बहुत छोटे हो गये हैं, इतने कि तीन चार को मिलाकर एक सही अनुच्छेद बन सके, और कभी इतने बड़े हो जाते हैं कि उनमें कई अनुच्छेद बनाये जा सकते हैं।

संक्रांति युग के लेखकों, बाल कृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र तथा राधाकृष्ण दास ने, अपनी रचनाओं को, तर्क के आधार पर अनुच्छेदों में विभाजित करने का प्रयास किया है। बाल मुकुन्द गुप्त भावात्मक शैली के लेखक थे, इस लिए उनकी रचनाओं में हमें, लय तथा गतिमय अनुच्छेद देखने को मिल जाते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कभी तर्क के आधार पर और कभी श्वास की आवश्यकता के लिए अपनी रचना को अनुच्छेदों में विभाजित किया है। मिश्र-बन्धुओं ने, अपनी रचनाओं में, अनुच्छेदों की व्यवस्था तर्क के आधार पर—एक अनुच्छेद में एक भाव का पूर्ण विकास हो—की है, इसीलिए उनकी रचनाओं में बड़े लम्बे-लम्बे, कभी कभी तो तीन-तीन पृष्ठ के अनुच्छेद, मिलते हैं। प्रेमचन्द तथा सरदार पूर्णसिंह ने भी, अपनी रचनाओं को, तर्क के आधार पर ही अनुच्छेदों में विभाजित किया है, किन्तु उन्होंने मनुष्य की भौतिक सीमा, श्वास की अवधि का भी, पूर्ण ध्यान रक्खा है, इसी लिए उनके अनुच्छेद विशेष लम्बे नहीं हो गये हैं। सरदार पूर्णसिंह भावुक मनोवृत्ति

के लेखक थे, इसलिए उन्होंने भी कभी-कभी बालमुकुन्द गुप्त की भांति लय तथा गति से युक्त अनुच्छेद लिखे हैं।

इस अध्ययन को समाप्त करते हुए यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी के विराम-चिन्हों को ग्रहण करने से हिन्दी गद्य के विकास को विशेष गति मिली थी। उन्होंने हिन्दी में लिखी जाने वाली रचनाओं को अधिक तर्क-पूर्ण तथा बोधगम्य बना दिया था। अनुच्छेदों की व्यवस्था से भी रचना के विभिन्न भागों, तर्कों तथा विषय के विविध पक्षों को अधिक स्पष्टता प्रदान करने में सहायता मिली थी। किसी विषय पर लिखे गये निबन्ध में, किस भाव, तर्क अथवा पक्ष का क्या महत्व है, उनसे संबंधित अनुच्छेदों के बड़े अथवा छोटे होने से स्पष्ट हो जाता था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि विराम-चिह्नों के प्रयोग तथा अनुच्छेदों की व्यवस्था से, किसी विषय की निश्चित रूपरेखा तथा उतार-चढ़ावों को समझने में, विशेष सहायता मिलने लगी; और यह हिन्दी गद्य के लिए विशेष लाभप्रद सिद्ध हुई।

६ शैली

शैली के सम्बन्ध में विचार करते हुए पाश्चात्य आलोचक बफून ने लिखा है :

"Style consists in the order and movement which we introduce into our thought."[१]

अर्थात शैली उन क्रमिक तथा गतिशील विधान में निहित है, जिनका उपयोग हम अपने भावों तथा विचारों को प्रकट करते हुए करते हैं। इस प्रकार शैली के दो पक्ष होते हैं: एक, वह क्रम जो कि लेखक अपनी भाषा को प्रदान करता है; तथा दूसरा, वह गति जिसका कि उपयोग वह किसी विषय से सम्बन्धित अपने भावों तथा विचारों को प्रकट करते हुए अपनी भाषा में करता है। हरबर्ट रीड ने इनमें से प्रथम के लिए रचना-विधान (Composition), तथा द्वितीय के लिए अलंकरण (Rhetoric) संज्ञाओं का प्रयोग किया है। अंग्रेजी की गद्य शैली का अध्ययन करते हुए उन्होंने रचना के अन्तर्गत शब्दों, उपमानों, रूपकों, वाक्य-व्यवस्था, अनुच्छेदों तथा इनके संयोजन पर विचार किया है, और अलंकरण के अन्तर्गत उन्होंने विभिन्न प्रकार की शैलियों, व्याख्यात्मक, कथात्मक आदि का विवेचन किया है जो कि लेखक की समय-विशेष की मनोवृति तथा व्यक्तिगत विशेषताओं से प्रेरित होती है। आगे यह देखा जायेगा कि हिन्दी के लेखकों की शैली के ये दोनों पक्ष कहां तक अंग्रेजी से प्रभावित हुए हैं। कवियों तथा गद्य लेखकों की शैली में मूलगत अन्तर होता है—कवि भावुक मनोवृत्ति के होते हैं और गद्य लेखक तार्किक—इसलिए काव्य शैली तथा गद्य शैली दोनों पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन अलग अलग किया जायेगा।

१—हरबर्ट रीड : 'इंगलिश प्रोज स्टाइल' पृ० १६, भूमिका भाग में उद्धृत

क–काव्य

यदि अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व की, तथा उसके बाद लिखी गई काव्य रचनाओं को एक साथ रख कर देखा जाय, तो अंग्रेजी प्रभाव ने हिन्दी कविता को कहाँ तक परिवर्तित कर दिया है, यह पूर्णतः स्पष्ट हो जायगा। जहाँ तक शब्दों [काव्यात्मक], उपमानों तथा रूपकों का सम्बन्ध है, जिन्हें कि संयुक्त रूप से 'काव्य भाषा' की संज्ञा दी जा सकती है, अंग्रेजी प्रभाव के ठीक पूर्व के हिन्दी कवियों ने उसे, संस्कृत से सीधे अथवा अपभ्रंश भाषाओं के माध्यम से ग्रहण किया था। मुसलिम शासन के युग में बहुत से अरबी तथा फारसी के शब्द भी हिन्दी भाषा ने ग्रहण कर लिये थे ; किन्तु उन्होंने विशेष काव्य सौन्दर्य नहीं धारण कर पाया था। इस प्रकार अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी की काव्य-भाषा एक प्रकार से 'प्रति बद्ध भाषा' थी, जिसका कि प्रयोग उस युग के प्रत्येक कवि ने किया था। उस युग में उस प्रकार की काव्य प्रतिभा का अभाव था, जो कि पुराने शब्दों से भी नवीन भावनाओं को जागृत करती है; और नये उपमानों तथा रूपकों के प्रयोग को प्रचलित करती है। उस युग के कवि, अपनी रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग, काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए नहीं, वरन् साहित्यिक कौशल के प्रदर्शन के लिए किया करते थे। अंग्रेजी प्रभाव के बाद के युग में, हिन्दी कवियों को हम इस प्रतिबद्ध शैली को छोड़ कर, एक स्वाभाविक शैली ग्रहण करते हुए पाते हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता में, स्वाभाविक शैली का सर्व प्रथम उपयोग, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कुछ रचनाओं में देखने को मिलता है। भारतेन्दु जी ने अपनी अधिकांश काव्य रचनाओं में भक्ति तथा रीति युग की भावनाओं को ही अभिव्यक्त किया है; और इन्हीं युगों की काव्य पद्धति का भी उपयोग किया है; किन्तु उनकी लिखी हुई कुछ ऐसी भी रचनायें हैं, जिनमें आधुनिक युग की भावधारा के अनुकूल स्वाभाविक शैली का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से उन्हीं का विशेष महत्व है। अपनी 'प्रात समीरण' शीर्षक रचना में उन्होंने प्राकृतिक वातावरण का एक यथातथ्य चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार 'भारत भिक्षा', 'भारत वीरत्व,' आदि रचनाओं में भी, जो कि भावपूर्ण शैली में लिखी गई हैं तथा जिनमें भारतवर्ष के पुरातन वैभव का स्मरण है, स्वाभाविक शैली का ही उपयोग हुआ है। बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने इस स्वाभाविक शैली के ग्रहण के क्रम को और आगे बढ़ाया था; और अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ की स्वाभाविक शैली का अनुकरण करते हुए 'जीर्णजन पद' नामकी एक लम्बी रचना लिखी थी। यह रचना पूर्णतः गोल्डस्मिथ के 'दि डेजर्टेड विलेज़' की पद्धति पर लिखित है।

इन कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से, हिन्दी कविता को जो नवीन स्वरूप प्रदान किया था और, उसके विकास की गति बिल्कुल नई दिशा की ओर परिचालित की थी, उसके फलस्वरूप, कविता में थोड़ा बहुत रूखापन आ गया था। आगे चलकर श्रीधर पाठक तथा लोचनप्रसाद पाण्डेय ने, हृदय की प्रेरणा से लिखी गई अपनी रचनाओं द्वारा, हिन्दी कविता में फिर से कोमलता तथा स्निग्धता की अवतारणा की। हिन्दी के ये कवि, अपनी शैली की दृष्टि से अंग्रेजी के कवियों टॉमसन, गोल्ड-स्मिथ, वर्ड्स्वर्थ तथा बायरन से प्रभावित थे। हिन्दी कविता के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद के आगमन के साथ वर्ड्स्वर्थ, शैली तथा कीट्स की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का प्रारम्भ भी, हो गया था। हिन्दी के ये कवि, कितनी सीमा तक अंग्रेजी के कवियों से प्रभावित हुए थे, इसका विस्तृत विवरण तो अगले प्रकरण में दिया जायेगा; यहाँ हम केवल उनके ऊपर पड़ने वाले भाषागत प्रभाव का वर्णन करेंगे।

अंग्रेजी के कवियों ने, शैली की दृष्टि से, अपनी भावनाओं को ओड, सॉनेट ब्लैक-वर्स (अमित्राक्षर छन्द), एलेजी (शोककाव्य) आदि रूपों में अभिव्यक्त किया था। अंग्रेजी के कवियों के सम्पर्क में आकर, हिन्दी के कवियों ने भी इन नवीन साहित्यिक रूपों का थोड़ा बहुत उपयोग किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'भारत भिक्षा', 'भारत वीरत्व' तथा 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' शीर्षक तीन ओड लिखे थे। सॉनेट की रचना हिन्दी में सर्व प्रथम श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ की रचना 'दि ट्रेविलर' के हिन्दी अनुवाद 'श्रांत पथिक' के समर्पण में की थी। इसके अनन्तर लोचनप्रसाद पाण्डेय तथा जयशंकर प्रसाद ने बहुत से सॉनेट लिखे। हिन्दी में अमित्राक्षर छन्द का प्रारम्भ जयशंकर प्रसाद ने किया था। उन्होंने तो इस शैली में एक छोटा सा नाटक 'करुणालय' भी लिखा था। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने भी इस शैली में कुछ रचनायें प्रस्तुत की थीं। हिन्दी में प्रथम शोक-काव्य (एलेजी), बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निधन पर लिखा था। उसके अनन्तर श्रीधर पाठक तथा जयशंकर प्रसाद ने भी कुछ इसी प्रकार की रचनाएं लिखीं। अंग्रेजी के एक एपोटैफ (शोकोद्गार) का हिन्दी रूपान्तर श्रीधर पाठक ने प्रकाशित कराया था; और उसके बाद 'श्रीवर' ने अपने चारण नामक कथा-काव्य में, एक मौलिक शोकोद्गार लिखा था। यह कथा-काव्य, सर वाल्टर स्कॉट के 'ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रैल' के अनुकरण में लिखा गया था। अंग्रेजी प्रभाव के इस पक्ष की अगले प्रकरण में विस्तृत रूप से विवेचना की जायेगी।

अंग्रेजी प्रभाव के कारण हिन्दी कविता ने, किस प्रकार अपनी काव्य-भाषा को

बदल दिया था, और अंग्रेजी के कुछ अलंकारों का प्रयोग सीख लिया था, इसके संबन्ध में भी कुछ विचार कर लेना चाहिए। नवीन काव्य भाषा की खोज का प्रारम्भ तो उसी दिन से हो गया था, जब से हिन्दी-प्रदेश में नवयुग का सूत्रपात हुआ था; किन्तु इस प्रयास में सफलता, हिन्दी कविता के क्षेत्र में, जयशंकर प्रसाद के आविर्भाव से ही मिली थी। निम्नलिखित पंक्तियों में, जो कि उनकी काव्य रचनाओं से ली गई हैं, ऐसे उपमान हैं तथा शब्दावलियां हैं, जिनका हिन्दी में पहले प्रयोग नहीं हुआ था, कम से कम उस अर्थ में तो नहीं ही हुआ था, जिसमें कि यहाँ पर हुआ है :

(१) "हे कल्पना सुखदान। तुम मनुज जीवन प्राण॥"[१]

(२) "यह नीरस है तरू जानत ना। अति कोमल जानि अजान बना॥"[२]

(३) "अरे नहिं जानत फूल अजान। यहै करिहै तब मर्दन मान॥"[३]

(४) "प्रथम भाषण ज्यों अधरान में। रहत है तव गूंजन प्रान में॥"[४]

(५) "प्रभो? प्रेममय प्रकाश तुम हो, प्रकृति पद्मिनी के अंशुमाली॥"[५]

(६) "मनोवेग मधुकर सा फिर तो गूंज के।
मधुर मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा॥"[६]

(७) "यद्यपि है अज्ञात ध्वनि कोकिल तेरी मोदमय॥"[७]

इन अवतरणों में 'कल्पना सुख' अंग्रेजी की एक शब्दावली 'Pleasures of fancy' का अनुवाद प्रतीत होता है, जो कि अंग्रेजी के कवि कीट्स की एक रचना का शीर्षक है। 'अजान' का प्रयोग अंग्रेजी के शब्द 'Innocent' के स्थान पर किया गया जान पड़ता है। इसी प्रकार 'प्रथम भाषण' 'First utterance', 'प्रेममय प्रकाश' 'light of love', 'स्वर्गीय गान' 'heavenly music' तथा 'अज्ञात' 'Unknown' के रुपांतर प्रतीत होते हैं।

जयशंकर प्रसाद की रचनाओं के सभी काव्यात्मक शब्द अंग्रेजी से ही नहीं ग्रहण किये गये थे, उनमें से कुछ को उन्होंने बंगला काव्य से भी ग्रहण किया था। फिर वे

१—जयशंकर प्रसाद : 'चित्राधार' (१९१८), पृ० १४१

२—वही, पृ० १५१

३—वही, पृ० १५२

४—वही, पृ० १६५

५—जयशंकर प्रसाद: 'कानन कुसुम' (१९१२), पृ० २

६—वही, पृ० १६

७—वही, पृ० ४८

स्वयं भी तो स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति के कवि होने के कारण पुरा ने शब्दों को नवीन भावात्मकता प्रदान करने, नये उपमान खोजने तथा नई शब्दावलियों का निर्माण करने की प्रतिभा से वे सम्पन्न थे। अपनी इस प्रतिभा को उन्होंने, अंग्रेजी तथा बंगला के कवियों, विशेष रूप से रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं के अध्ययन से और भी विकसित कर लिया था। इस प्रकार जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी को जो काव्य-भाषा प्रदान की थी, वह विस्तृत अध्ययन तथा विचार-विमर्श से प्रसूत थी।

जयशंकर प्रसाद की रचनाओं के वे शब्द, जिनमें काव्य-तत्व निहित हैं, और जिन्होंने आगे चल कर काव्य-भाषा का रूप धारण किया था, निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं :

(१) नये विशेषण: कल्पित, पुलकित, आनंदित, पल्लवित, मुकुलित, कुसुमित रञ्जित, प्रेममय, सुखमय, प्रभातिक;

(२) ध्वन्यानुकरण मूलक शब्द: तरंग, तरंगिणी, वीचीविल्लोल, हिलोर, खिल-खिल, कलकल, गूंज, निनाद, गम्भीर;

(३) नवीन भावात्मकता से अनुप्राणित शब्द: मधुर, कोमल, आनन्द, विमल, अमल, चपल, तरल, अजान, असीम, सुषमा, प्रकाश, विकास, कल्पना, प्रतिभा, अभि-राम, सुगन्ध, मञ्जुल, नीरव, सुमन, क्लांत, शिथिल, प्रभञ्जन, स्पन्दन, स्पर्श;

(४) शब्द युग्म: नीरवप्रेम, मधुराक्षर, स्पन्दनहीन, मधुअन्ध, छविधाम तथा अन्य।

इन शब्दों तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दों के काव्य-भाषा के रूप में उपयोग से हिन्दी कविता में पूर्णत: नवीन जीवन का सूत्रपात हो गया था; और वह नव युग की भावना से अनुप्राणित हो गई थी।

हिन्दी कवियों ने अंग्रेजी से तीन अलंकार, मानवीकरण (Personification) विशेषण विपर्यय (Transfered epithet) तथा ध्वन्यानुकरण (Onomatopoeia) ग्रहण किये है। इनमें से प्रथम, मानवीकरण का प्रयोग, अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व भक्ति-कालीन तथा रीतियुगीन रचनाओं में भी मिलता है; किन्तु तब वह अलंकार के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता था। आधुनिक हिन्दी काव्य में, अलंकार के रूप में, इसका सर्व प्रथम प्रयोग श्रीधर पाठक की रचनाओं में देखने को मिलता है, जो कि अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों से प्रभावित है। काश्मीर के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है :

"प्रकृति यहां एकान्त बैठि निज रूप संवारति।
पल पल पलटति भेस क्षणिक छवि छिन छिन धारति॥"[1]

इन पंक्तियों में प्रकृति को नारी का रूप प्रदान कर दिया गया है। जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में इस अलंकार का प्रयोग और भी अधिक मिलता है; क्योंकि उन्होंने स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति को विशेष रूप से ग्रहण किया था। निम्नलिखित पंक्तियों मे मलयानिल का मानवीकरण है :

"अहो विमल मलयानिल नेकधीर धरि आओ।
कावेरी के रम्य तीर सों वेगि न धाओ॥
बरबस कुल कामिनी अंचल को नाहिं उड़ाओ।
नव मुकुलित मंजरी अहै इत धीरे आओ॥"[2]

इसी प्रकार आगे की पंक्तियों में उद्यानलता को नारी के रूप में देखा गया है:

"सुमनावलि सो लदि मोद भरी,
पतियां सों लखात नवीन हरी।
भरि अंक अहो तुम भेंटति को,
तरू के हिय दाह समेटति को॥"[3]

निम्नलिखित पंक्तियाँ संध्यातारा को सम्बोधित करके लिखी गई हैं :

"सन्ध्या के गगन महं सुन्दर बरन
को हौ झलकत तुम अमल रतन।"[4]

विशेषण विपर्यय अलंकार का प्रयोग केवल जयशंकर प्रसाद ने ही किया था : और उसे हम निम्नलिखित पंक्तियों में देख सकते हैं :

(१) "तब मधुर ध्यान ललाम।"[5]
(२) "वह सुधारत मंजुल नेम को।
लहत है जब नीरव प्रेम को॥"[6]
(३) "प्रभो प्रेममय प्रकाश तुम हो।"[7]

१—श्रीधर पाठक: 'काश्मीर सुषमा', पृ० १
२—जयशंकर प्रसाद: 'चित्राधार' (१९१८), पृ० १४७
३—वही, पृ०१५१
४—वही, पृ० १६०
५—वही, पृ० १४१
६—वही, पृ० १६५
७—जयशंकर प्रसाद : 'काननकुसुम' (१९१२), पृ० १

(४) "आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया हमें,
खुली आंख आनन्द दृश्य दिखला दिया।"[१]

इन पंक्तियों में प्रयुक्त विशेषण, मधुर, नीरव, प्रेममय तथा आनन्द, जिन भावनाओं को जागृत करते हैं, उनके अनुसार, जिन शब्दों के साथ उनका प्रयोग हुआ है, उनसे अधिक, उपस्थित अथवा अन्तर्हित अन्य शब्दों के साथ सम्बन्धित हैं। 'मधुरध्यान' शब्दयुग्म में मधुर शब्द, ध्यान किये जाने वाले व्यक्तियों के साथ अधिक सम्बन्धित प्रतीत होता है, स्वयं ध्यान के साथ उतना नहीं। यह शब्दयुग्म अंग्रेजी के संयुक्त-शब्द Sweet rememberance का अनुवाद भी प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'नीरव प्रेम' में, जो कि सम्भवतः Silent love का हिन्दी रूपान्तर है, 'नीरव' शब्द, प्रेम से अधिक, एक दूसरे को प्रेम करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित है। 'प्रेममय प्रकाश' में, प्रेम की भावना, प्रकाश के साथ उतनी सम्बन्धित नहीं है, जितनी 'प्रभो' के साथ, जिससे प्रेममय रूप में देखा गया है। 'आनन्द दृश्य' में आनन्द शब्द, दृश्य से अधिक द्रष्टा की मानसिक प्रसन्नता से सम्बन्धित है। इस अलंकार के प्रयोग से काव्य-रचनाओं में और अधिक ध्वन्यात्मकता अथवा व्यञ्जना शक्ति आ गयी है; और जयशंकर प्रसाद ने इसका प्रयोग करके हिन्दी भाषा की व्यञ्जना शक्ति की ही अभिवृद्धि की है।

ध्वन्यानुकरण अलंकार के प्रयोग से, जिसमें शब्दों की ध्वनि, भाव को प्रति-ध्वनित करती है, काव्य रचनाओं में एक नवीन संगीतात्मकता उत्पन्न हो जाती है। प्रसाद जी की रचनाओं में इस अलंकार के भी उदाहरण देखने को मिल जाते हैं :

"तरंग तरल चपल चपल लेत हिलोर अपार।
कूलन सों मिली करै खिल खिल तटन विस्तृत धार॥
वृत्ति वेगवति चलत ज्यों अति मनुजता बस होत।
तरंगिनि धारा चलत अपारा चारु कल कल होत॥"[२]

इन पंक्तियों में चपल चपल, हिलोर, खिलखिल तथा कलकल शब्द ध्वन्यानुकरण मूलक ही हैं।

जहाँ तक काव्य-शैली का सम्बन्ध है यह कहा जा सकता है कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य जयशंकर प्रसाद ने किया था। उन्होंने एक नवीन काव्य-भाषा का

१—जयशंकर प्रसाद : 'काननकुसुम' (१९१२), पृ १५
२—जयशंकर प्रसाद : 'चित्राधार' (१९१८), पृ० १५०

सूत्रपात किया था; और उसके माध्यम से हिन्दी कविता को नवजीवन प्रदान किया था। प्रसाद जी ने ही अपनी रचनाओं में, अंग्रेजी काव्य के अलंकारों का प्रयोग करके, हिन्दी कविता को एक नये प्रकार की लाक्षणिकता तथा ध्वन्यात्मकता प्रदान की थी। काव्य शैली में परिवर्तन के क्रम का आरम्भ तो उसी दिन से हो गया था, जब से नव-युगीन प्रवृत्तियों ने हिन्दी साहित्य में प्रविष्ट होना आरम्भ किया था; किन्तु हिन्दी के कवि, अपनी वर्षों से प्रचलित, विशेष परिश्रम-लब्ध, शैली को छोड़कर, यथातथ्य वर्णन की प्रवृत्ति को ग्रहण कर रहे थे, इसलिए उनकी रचनाओं में कुछ नीरसता आ गई थी, और उनमें काव्यतत्व का भी कुछ अभाव हो गया था। श्रीधर पाठक तथा लोचन प्रसाद पाण्डेय ने, अपनी रचनाओं से, आधुनिक हिन्दी कविता में फिर से काव्य-तत्व का संचार आरम्भ कर दिया था; किन्तु वास्तविक काव्य सौन्दर्य तो जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में ही देखने को मिला। जयशंकर प्रसाद जी ने हिन्दी की काव्य-भाषा के निर्माण मे जो योग दिया था, उसके सम्बन्ध में वही कहा जा सकता है, जो अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० जॉनसन ने ड्राइडन के सम्बन्ध में कहा था :

"He found it (ie. the language of poetry) brick, and he left it marble."

अर्थात उसने काव्य-भाषा को ईंटों के रूप में पाया था और उसे संगमर्मर बनाकर छोड़ा। यह कथन ड्राइडन से कहीं अधिक प्रसाद जी के सम्बन्ध में उचित कहा जा सकता है।

ख—गद्य

हिन्दी में विभिन्न प्रकार की गद्य शैलियों के विकास में भी अंग्रेजी प्रभाव का थोड़ा बहुत योग रहा है। हिन्दी के भाषा सम्बन्धी तथा साहित्य आदर्शों के निर्माण का अध्ययन करते हुए, यह बताया जा चुका है, कि किस प्रकार अंग्रेजी प्रभाव के फल-स्वरूप तथा अंग्रेजी भाषा और साहित्य के संपर्क से, हिन्दी में विभिन्न साहित्यिक रूपों का विकास प्रारम्भ हुआ था। विभिन्न साहित्यिक रूपों के प्रयोग से ही, विभिन्न प्रकार की शैलियों के विकास को प्रेरणा मिली। शैली के दो पक्षों, रचना-विधान तथा अलंकरण में से प्रथम की विवेचना हम, हिन्दी के शब्द-समूह, शब्दावलियों, मुहावरों, कहावतों, व्याकरण, वाक्य रचना तथा विराम-चिह्नों के प्रयोग में अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन करते हुए कर चुके हैं; इसीलिए आगे हम हिन्दी की गद्य शैली के अलंकारिक पक्ष पर ही अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण करेंगे।

यूनान के प्रसिद्ध विचारक अरस्तू ने अलंकरण पर विचार करते हुये उसकी परिभाषा की थी :

"Tha power to see possible ways of persuading people about any given subject."[1]

इसीलिए उसका तात्पर्य अनुरोधात्मक भाषा (Persuasive language) से लिया जाने लगा है। यह अनुरोधात्मक भाषा, लेखक की बौद्धिकता तथा भावात्मकता के आधार पर तथा इन दोनों मानसिक वृत्तियों के कार्य करने की विधि से निम्नलिखित प्रकार की हो सकती है :

	बौद्धिकता (Thought)	भावात्मकता (Sensibility)
तर्क (Logic)	प्रत्यक्षीकरण (Exposition)	कथात्मक (Narrative)
चिंतन (Speculation)	अतिवृत्त (Fantasy)	कल्पना (Imagery)
भाव (Emotion)	बुद्धिमत्ता (Intelligence)	व्यक्तित्व (Personality)
चरित्र (Character)	प्रभाषण (Eloquence)	परम्परा 'रुचि' (TraditionTaste)

अंग्रेजी के गद्य लेखकों फ्रैंसिस बेकन (१५६१-१६२६), जॉन मिल्टन (१६०५-७४), जॉन बनियन (१६२६-८८), जॉन ड्राइडन (१६३१-१७००) डैनियल डेफो (१६६१ १७३१), जोनेथन स्विफ्ट (१६६७-१७४५), जोज़फ एडीसन (१६७८-१७१९), सैमुएल जॉनसन (१७०९-८४), ऑलिवर गोल्डस्मिथ (१७२८-७४), चार्ल्स लैम्ब (१७७५-१८३२) आदि ने जिनकी रचनाएं उन दिनों हिन्दी-प्रदेश में पढ़ी जाती थीं तथा कुछ अनुवादित भी हुई थीं, अपनी कृतियों में इन विभिन्न प्रकार की अनुरोधात्मक भाषाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। आगे यह अध्ययन किया जायेगा कि कहां तक इन लेखकों की रचनाओं के अध्ययन तथा अनुवाद ने हिन्दी में इन विभिन्न प्रकार की शैलियों को उत्पन्न करने में सहायता दी थी।

हिन्दी भाषा में बौद्धिकता अथवा विचारों की तर्क पूर्ण अभिव्यक्ति अथवा प्रत्यक्षीकरण को लेकर चलने वाले महावीरप्रसाद द्विवेदी, 'मिश्रबन्धु' तथा श्यामसुन्दर दास रहे हैं। इस प्रकार की शैली की प्रमुख विशेषताएं—प्रसाद गुण, ऋजुता तथा व्यवस्था हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी की रचनाओं में प्रथम दोनों विशेषताएं तो सदा ही देखने को मिल जाती हैं, किन्तु तीसरी विशेषता व्यवस्था की, पहली दो विशेषताओं पर विशेष बल देने के लिए ही कभी कभी उपेक्षा कर दी गयी है। श्यामसुन्दर दास की रचनाओं में की सामग्री अधिकता देखने को मिलती है, क्योंकि उन्होंने किसी विषय से सम्बन्धित अपने विचारों को पूर्णतः व्यवस्थित रूप में अभिव्यक्त करने के स्थान पर अपने ज्ञान के प्रदर्शन को ही अपना उद्देश्य मान लिया है। समाज और साहित्य के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना करते हुए, प्रोटोजोआ तथा प्रोटोप्लाज्म के सम्बन्ध

१—हरबर्ट रीड : 'इंगलिश प्रोज़ स्टाइल' (१९३७), पृ० ८८ २—वही, पृ० ८९

में जो कुछ कहा गया है उसकी आवश्यकता नहीं थी। इसी पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना के कारण उनकी रचनायें कभी कभी क्लिष्ट हो गई हैं। यह सम्यक दृष्टि मिश्रबन्धुओं की रचनाओं में सबसे अधिक देखने को मिलती है। ये लोग पूर्व निश्चित योजना के अनुसार लिखा करते थे, इसलिए इनकी रचनाओं में इस प्रकार की शैली की तीसरी विशेषता, व्यवस्था सदैव देखने को मिलती है। इनकी रचनाओं में इस प्रकार की शैली की अन्य विशेषताएँ भी देखी जा सकती हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा श्यामसुन्दर दास जी ने भी, जब सम्यक दृष्टि से काम लिया है, और व्यवस्था को बनाये रक्खा है, तो इस प्रकार की शैली के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। इन तीनों ही लेखकों ने अंग्रेजी साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था, किन्तु इस प्रकार जो कुछ उन्होने सीखा था उसे पूर्णतः आत्मसात कर लिया था। इसलिए यह मानते हुए भी कि इनकी रचनाओं पर अंग्रेजी प्रभाव है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अंग्रेजी के किन लेखकों से ये प्रभावित थे।

भावात्मकता की तर्कपूर्ण अभिव्यक्ति अथवा कथात्मक शैली दो प्रकार की मानी गई है : वस्तु-वर्णन तथा किसी घटना का वर्णन। कथा लेखक को, किसी वस्तु का वर्णन प्रस्तुत करते हुए, उसकी यथार्थता का ध्यान रखना होता है; और किसी घटना का वर्णन करते हुए उसकी गतिमयता प्रस्तुत करनी होती है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व भी भारतीय भाषाओं में कथा साहित्य लिखा गया था; और हिन्दी में भी जटमल की 'गोरा बादल की कथा' जैसी रचनांएं लिखी गई थीं। किन्तु इन रचनाओं में वस्तु के यथार्थ वर्णन तथा घटनाओं की गतिमयता को प्रधानता देने के स्थान पर कथानक के वर्णन को अधिक महत्व दिया गया है। कथात्मक शैली की ये दोनों विशेषताएं अंग्रेजी के कथा साहित्य के अध्ययन से ग्रहण की गईं। राजा शिवप्रसाद ने सर्वप्रथम इस प्रकार की शैली का प्रयोग हिन्दी में किया। उनकी 'राजा भोज का सपना' शीर्षक कथात्मक रचना से ली गई निम्नलिखित पंक्तियों में राजा भोज के बैठने के स्थान का विवरण बड़ी यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया गया है :

"एक दिन शरद ऋतु में संध्या के समय सुन्दर फुलवारी के बीच, स्वच्छ पानी के कुण्ड के बीच, जिसमें कुमुद और कमलों के बीच जलपक्षी कलोलें कर रहे थे, रत्न जटित सिंहासन पर कोमल तकिये के सहारे स्वस्थ चित बैठा···वह महलों की सुनहली कलंगियां लगी हुई···संगमर्मर की गुम्जियों के पीछे से उदय होता हुआ पूर्णिमा का चन्द्रमा देख रहा था और निर्जन स्थान होने के कारण···'[1]

---

१ श्यामसुन्दर दास (सम्पादित) : 'हिन्दी निबन्ध माला, प्रथम भाग (१९३४), पृष्ठ १३–१४

इस दृश्य की यथार्थता और अधिक सुन्दर रूप में नहीं प्रस्तुत की जा सकती थी। जो कुछ छूटा जा रहा था उसे भी लेखक ने प्रासंगिक उपवाक्य में दे दिया है। राजा शिव प्रसाद के बाद के सभी कथाकारों ने अपनी रचनाओं में वस्तुओं तथा दृश्यों के इसी प्रकार के यथातथ्य वर्णन प्रस्तुत किये हैं। देवकी नन्दन खत्री (१८६१-१९१३), भी ने जिन्होंने अधिकांश में फारसी कथा साहित्य तथा भारतीय जन कथाओं से प्रभावित होकर लिखा था, अपनी रचनाओं में प्राकृतिक दृश्यों के इसी प्रकार के यथातथ्य वर्णन दिये हैं; और यह उनकी रचनाओं पर अंग्रेजी के उपन्यासकार रेनाल्ड के प्रभाव के कारण सम्भव हुआ है। किशोरी लाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) तथा गोपालराम गहमरी (१८६६-१९४१) की रचनाओं में इस प्रकार के वर्णन, अंग्रेजी के लेखकों के साथ उनके निकट सम्पर्क के कारण और भी अधिक देखने को मिलते हैं।

कथात्मक शैली का उपयोग करते हुए घटना की गतिमयता को प्रस्तुत करने में और भी अधिक कौशल का उपयोग अपेक्षित होता है, इसलिये इस प्रकार की कथात्मक शैली का विकास हिन्दी में कुछ विलम्ब से हुआ था। सर्व प्रथम इसका प्रयोग प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाओं में किया। निम्नलिखित पंक्तियों में उन्होंने एक गांव में मिठाई बेचने वाले के आने के समय का अच्छा वर्णन किया है :

"मंगल का शुभ दिन था, बच्चे बड़ी बेचैनी से अपने दरवाजों पर खड़े गुरदीन की राह देख रहे थे। कई उत्साही लड़के पेड़ों पर चढ़ गये थे और कोई-कोई अनुराग से विवश होकर गाँव से बाहर निकल गये थे। सूर्य भगवान अपना सुनहला थाल लिये पूरब से पच्छिम में जा पहुंचे थे कि गुरदीन आता हुआ दिखाई दिया। लड़कों ने दौड़ कर उसका दामन पकड़ा और आपस में खींचा तानी होने लगी। कोई कहता था, मेरे घर चलो, कोई अपने घर का नेवता देता था। सब में पहले भानु चौधरी का मकान पड़ा, गुरदीन ने अपना खोंचा उतार लिया। मिठाइयों की लूट शुरू हो गई। बालकों और स्त्रियों का ठट्ठ लग गया। हर्ष-विषाद, संतोष और लोभ, ईर्षा और जलन की नाट्य शाला सज गई। कानूनदां वितान की पत्नी भी अपने तीनों लड़कों को लिये हुए निकली। ज्ञान की पत्नी भी अपने दोनों लड़कों के साथ उपस्थित हुई। गुरदीन ने मीठी बातें करनी शुरु की। पैसे चोली में रक्खे, धेले धेले की मिठाई दी, धेले-धेले का आशीर्वाद। लड़के दोने लिये उछलते कूदते घर में दाखिल हुए, अगर गाँव में कोई ऐसा बालक था जिसने गुरदीन की उदारता से लाभ न उठाया हो तो वह बांके गुमान का लड़का धान था।"[1]

१—प्रेम चन्द : 'प्रेमपूर्णिमा' (१९४६), आठवां संस्करण, पृ० ३८

इस अवतरण में घटना की गतिशीलता को प्रस्तुत करने के लिए छोटे-छोटे वाक्यों का द्रुत गतिक प्रवाह प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार की शैली जीवन-वृत्त, इतिहास, यात्रा-विवरण तथा अन्य वर्णनात्मक रचनाओं के लिए भी उपयोगी होती है; क्योंकि इनमें भी कथात्मकता होती है। राधाकृष्णदास ने बाप्पा रावल का जीवन चरित्र लिखते हुए इसी प्रकार की शैली का उपयोग किया है।

विचारों के क्षेत्र में चिन्तन के उपयोग से एक विशेष प्रकार की शैली उत्पन्न होती है जिसे 'अतिवृत्त' कहते हैं। इस प्रकार की शैली की दो विशेषतायें हैं—वस्तु-प्राधान्य तथा बन्धन-निरपेक्षिता। वस्तु-प्राधान्य से तात्पर्य दृष्टिगत वस्तुओं का स्पष्ट चित्रण है; और बन्धन-निरपेक्षिता का भाव, स्थान और काल के बन्धनों से मुक्त स्मरण शक्ति का उपयोग माना जाता है। अंग्रेजी के लेखकों में, जोनेथन स्विफ्ट (१६६७-१७४५) ने अपनी 'गूलिवर्स ट्रेवल्स' में इसी प्रकार की शैली का उपयोग किया है। हिन्दी में इस प्रकार की शैली का सूत्रपात बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) तथा कार्तिक प्रसाद खत्री (१८५१-१९०४) ने अपने निबन्धों 'कलिराज की सभा' तथा 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' में किया था, जो सन् १८७३ की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन के कुछ अंकों में प्रकाशित हुए थे। इस प्रकार की शैली की विशेषतायें 'कलिराज सभा' शीर्षक निबन्ध से ली गई निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट हो जायेंगी :

"झुठाई की नेव पर बनी, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य की दीवालों से घिरी एक बड़ी विस्तृत सभा है जिसके चारों ओर चार फाटक हैं जिनके यह नाम हैं, नास्तिकता, अल्पज्ञता, कौमुर्यता, और पाखंड़···उस सभा के बीच में एक लोहे का सिहासन है जिस पर बुद्धि के कूर, मन से चूर, सत्पथ से दूर, आंखों के सूर, क्रोध में भरे, मुंह के जरे, भले को बूरे, झुठाई पर कमर कसे, गणिकाओं में फंसे, पाप के बाप, डसने को सांप, जालसाजों के सिरताज, कल्लेदराज, धरम के गाज, कलयुगराज आज की प्रजा पर विराजमान हैं।[1]

उस निबन्ध में, जिससे यह अंश अवतरित है, तथा 'कलिराज की सभा' में भी, जोनेथन स्विफ्ट के 'गूलिवर्स ट्रेविल्स' की व्यंगात्मक शैली का उपयोग है। 'कलिराज की सभा' में तो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महापुरुष पर भी बड़ा तीखा व्यंग है।

चिन्तन के साथ रागात्मकता के संयोग से, शैली के जिस आविष्कारात्मक या काल्पनिक विधान की सृष्टि होती है, बाल मुकुन्द गुप्त के निबन्धों में, उसका उपयोग है। अपने

---

१ 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', संख्या १, पृ० ५८

निबन्ध संग्रहों 'शिव शम्भु के चिट्ठे' (१९०६) और 'चिट्ठे और खत' (१९०८) में, उन्होंने अंग्रेजी के निबन्धकारों एडिसन और स्टील के 'सर रोजर डे' कोवरले' की भाँति, 'शिवशम्भु' नाम के एक चरित्र की सृष्टि की है। गुप्त जी का यह चरित्र, सर रोजर की अनुकृति नहीं, वरन् अपनी निज की विशेषताओं से ओत-प्रोत है; किन्तु इन दोनों साहित्यिक चरित्रों के निर्माण की मूल भावना एक ही है : इनके निर्माता स्पष्ट रूप से अपनी बात नहीं कहना चाहते थे, इसीलिये उन्होंने, विशिष्ट चरित्रों का आविष्कार करके, उनके माध्यम से, अनेक घटनाओं तथा जीवन के विभिन्न पक्षों पर अपने विचार प्रकट किये हैं।

मनोभावनाओं की विचार पूर्ण अभिव्यक्ति, जिसे हरबर्ट रीड ने 'प्रातिभ-विधान' कहा है,[1] सरदार पूर्णसिंह की रचनाओं में अनेक स्थलों पर देखने को मिलती है। इस प्रकार की रचना शैली की मूल विशेषता, आवेग पूर्ण स्थिति की गीतात्मक अभिव्यक्ति है। सरदार जी भावुक प्रकृति के लेखक थे, और उनके सभी निबन्ध जैसे 'मजदूरों और प्रेम' 'नयनों की गंगा' आदि, जीवन का भावनापूर्ण तथा साथ ही विचारात्मक चित्र उपस्थित करते हैं। उनके निबन्ध 'आचरण की सभ्यता' की निम्न लिखित पंक्तियों में, विषय से सम्बन्धित भावों की, विचार पूर्ण एवं गीतात्मक विधान में अभिव्यक्ति है:

"जिस समय आचरण की सभ्यता संसार में आती है उस सयय नीले आकाश से मनुष्य को वेद ध्वनि सुनाई देती है, नर नारी पुष्पवत खिलते जाते हैं, प्रभात हो जाता है, प्रभात का गजर बज जाता है, नारद की वीणा अलापने लगती है, ध्रुव का शंख गूंज जाता है, प्रह्लाद का नृत्य होता है, शिव का डमरू बजता है, कृष्ण की बंसुरी की धुन प्रारम्भ हो जाती है। जहां ऐसे शब्द होते है, जहां ऐसे पुरुष रहते हैं, जहां ऐसी ज्योति होती है, वहीं आचरण की सभ्यता का सुनहरा देश है यही देश मनुष्य का देश है"।[2]

सरदार पूर्णसिंह ने अपने भावों को विचारात्मकता के साथ अभिव्यक्त करते हुए कुछ स्थलों पर अपनी रचना शैली में अपने व्यक्तित्व की भी प्रतिष्ठा कर दी है। अभिव्यञ्जना प्रणाली के इसी व्यक्तित्व से अनुप्राणित विधान को देखकर ही, शैली को व्यक्ति का आत्मरूप कहा गया है। अभिव्यञ्जना के सभी विधान, किसी न किसी रूप में आत्मगत होते हैं, किन्तु इस प्रणाली में लेखक की अपनी विशेषताएं और भी निखर कर प्रगट होती हैं। इसकी आधार भूत वृत्तियां, अपनी व्यक्तिगत प्रति-

१—हरबर्ट रीड : 'इंगलिश प्रोज़ स्टाइल', ० ८९

२—श्यामसुन्दर दास संपादित : 'हिन्दी निबन्ध माला' द्वितीय भाग, पृ० २०६-७

क्रियाओं के प्रति सजगता तथा आत्माभिव्यक्ति नहीं वरन् आत्म-प्रसार की विधि से उनकी अभिव्यक्ति की क्षमता है। सरदार जी की निम्नलिखित पंक्तियों में इन दोनों वृत्तियों का प्रकाशन है :

"उधर प्रभात ने अपनी सफेद किरणों से अंधेरी रात पर चाँदी सी छिड़काई, इधर मेरी प्रेयसी, मैना अथवा कोयल की तरह, अपने बिस्तर से उठी। उसने गाय का बछड़ा खोला, दूध की धारों से अपना कटोरा भर लिया। आते आते अन्न को अपने हाथों से पीस कर सुफेद आटा बना लिया। इस सुफेद आटे से भरी हुई छोटी सी टोकरी सिर पर, एक हाथ में दूध से भरा हुआ लाल मिट्टी का कटोरा, दूसरे हाथ में मक्खन की हाँड़ी। जब मेरी प्रिया घर की छत के नीचे इस तरह खड़ी होती है, तब वह छत के ऊपर की श्वेत प्रभा से भी आनन्द दायक, बल दायक, बुद्धि दायक जान पड़ती है। उस समय वह उस प्रभा से भी अधिक रसीली, अधिक रंगीली, जीती-जागती, चैतन्य और आनन्दमयी प्रातःकालीन शोभा सी लगती है। मेरी प्रिया अपने हाथ से चुनी हुई लकड़ियों को अपने दिल से चुराई हुई एक चिनगारी से लाल अग्नि में बदल देती है। जब वह आटे को छलनी से छानती है तब मुझे उसकी छलनी के नीचे एक अद्भुत ज्योति की लौ नज़र आती है। जब वह उस अग्नि के ऊपर मेरे लिए रोटी बनाती है तब उसके चूल्हे के भीतर मुझे तो पूर्व दिशा की नयी लालिमा से भी अधिक आनन्ददायिनी लालिमा देख पड़ती है। मेरे गुरु ने इसी प्रेम से संयम करने का नाम योग रखा है। मेरा यही योग है।"[1]

लेखक के आत्मप्रसार का स्वरूप प्रगट करने वाली इस अभिव्यञ्जना प्रणाली की एक और विशेषता है, जो उसकी वाग्भंगिमा से सम्बन्धित है। वाग्भंगिमा से तात्पर्य, उक्ति के विशेष प्रकार के विधान से है; और सामान्यतः प्रत्येक लेखक की अपनी अलग वाग्भंगिमा होती है। सरदार पूर्णसिंह जी ने भी अपने निबन्धों में अपनी विशिष्ट वाग्भंगिमा विकसित की है। अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवि कीट्स और छायावाद के उन्नायक प्रसाद जी की भांति, उन्हें भी नवीन शब्द-युग्मों के निर्माण तथा प्रचलित शब्दों में नवीन अर्थ प्रतिष्ठा की रुचि रही है। अपनी ये दोनों प्रवृत्तियां, सम्भवतः उन्होंने, प्रसिद्ध अमरीकी कवि वाल्ट ह्विटमैन के अध्ययन से विकसित की थीं। इस कवि के सम्बन्ध में उन्होंने, उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं का उद्घाटन, तथा काव्य रचनाओं का प्रभावात्मक अनुशीलन उपस्थित करते हुए 'सरस्वती' में एक निबन्ध भी लिखा था। उनकी रचनाओं में प्रयुक्त शब्द-युग्म हैं :

आध्यात्मिक शोभा, अनाथ आत्मा, अनाथ नयन, अनाश्रित जीवन, आलस्य सुख,

---

१—श्यामसुन्दर दास (सं०) : 'हिन्दी निबन्ध माला' द्वितीय भाग, पृ० १८-१९

ईश्वरीय जीवन, चेतन्य पूजा. दिखावटी जीवन, दिव्य परिवार, निष्काम सेवा, प्रेम मजदूरी, मानसिक जुआ, मानसिक महाभारत, मानसिक शोभा, मौन आचरण, मौन जीवन, मौन पदार्थ, मौन प्रार्थना, मौन भाषा, मौनमयी भाषा मौनरूपिणी सुगंधि, शारीरिक राज्य, शुद्ध पूजा, सफेद ईश्वर आदि ।

नवीन अर्थ से अनुप्राणित शब्दों में, 'प्रेम' को हम सदा, उसके सामान्य वासनात्मक सम्बन्धों से मुक्त, एक पवित्र भावना के तात्पर्य में प्रयुक्त देखते हैं । सरदार जी की रचनाओं में नवीन भावभंगिमा से अनुप्राणित कुछ अन्य शब्द आनन्द, दिव्य, मौन, जीवन आदि हैं ।

अभिव्यञ्जना कौशल के शेष दो प्रकार, वाग्वैदग्ध्य और पारम्परिक-उक्ति-विधान, प्रस्तुत अध्ययन की अवधि तक हिन्दी में विशेष विकसित नहीं हुए थे । इन दोनों रचना प्रणालियों का जो थोड़ा-बहुत विकास हुआ भी था, वह अंग्रेजी प्रभाव से नहीं वरन् स्वतः उद्भूत था । वाग्वैदग्ध्य को हरबर्ट रीड ने विषय की महानता से अनुप्राणित अभिव्यञ्जना का विधान कहा है ।[1] यह अभिव्यंञ्जना कौशल शब्दगत तथा अर्थगत दोनों ही प्रकार का होता है ।[2] शब्दगत वाग्वैदग्ध्य, शक्ति-हीन और बाल्य कल्पना मात्र होता है ।[3] गोविन्द नारायण मिश्र और सत्यनारायण 'कविरत्न' की रचनाओं में, इसी प्रकार उक्ति कौशल है; किन्तु उनके पीछे अंग्रेजी प्रभाव की कोई प्रेरणा नहीं है । वाग्वैदग्ध्य का दूसरा प्रकार, जिसमें लेखक के विचार उभर कर आते हैं, वास्तविक वाग्वैदग्ध्य है : प्रसाद जी अपनी स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति को लेकर यदा कदा उसकी अभिव्यक्ति करने लगे थे । इसी प्रकार चरित्र अथवा आत्मगत शील की रागात्मक अभिव्यक्ति, पारम्परिक-उक्ति-विधान या आत्म संस्कार, कभी-कभी प्रेमचन्द जी की रचनाओं में भी प्रगट होने लगा था ।

अभिव्यंञ्जना कौशल के दो प्रकार, वाग्वैदग्ध्य और पारम्परिक-उक्ति-विधान हिन्दी में इसलिए विकसित नहीं हो सके थे, क्योंकि चरित्र अथवा आत्मगत शील, जो इनकी मूल प्रेरणा है, उन दिनों स्वयं अंग्रेजी प्रभाव की छाया में रूपांतरित हो रहा था । जब तक वह इस रूपांतरण को प्रक्रिया को पूरा न कर ले, तब तक यह संभव ही कैसे था कि वह रागात्मकता के साथ अपनी अभिव्यक्ति करे । इसीलिए

१—हर्बर्ट रीड : 'इंगलिश प्रोज़ स्टाइल', पृ० १८६

२—वही, पृ० १८६

३—वही, पृ०१८६-८७ में लारेंन्स स्टर्न के उद्धरण में इ० रचना शैली का प्रयोग है ।

प्रसाद और प्रेमचन्द ने इन दोनों अभिव्यंञ्जना प्रणालियों के प्रयोग मात्र आरम्भ किये थे; कालान्तर में जब नवीन चरित्र पर्याप्त विकसित हो गया, तो इन दोनों लेखकों ने उनके अधिक सशक्त प्रयोग उपस्थित किये ।

निष्कर्ष

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के अब निष्कर्ष दिये जा सकते हैं । हिन्दी का शब्द-भंडार, इस प्रभाव के फल-स्वरूप, सीधे तथा अनुवादित दोनों प्रकार के ग्रहणों से, अभिवर्धित हुआ है । अंग्रेजी से अनुवादित रूप में गृहीत शब्दावलियों की संख्या भी पर्याप्त रही है । प्रयोग अथवा मुहावरों के सम्बन्ध में हम पहले कह चुके हैं कि प्रत्येक भाषा में इनका अपना स्वयं विकास होता है; किन्तु आधुनिक काल में हिन्दी भाषा, विशेष रूप से उसका खड़ी बोली रूप, अंग्रेजी प्रभाव की छाया में विकसित हुआ, इसलिए कुछ अंग्रेजी मुहावरे भी उसमें अनुवादित हो कर आ गये हैं । इसी प्रकार अंग्रेजी की कुछ कहावतें भीं अनुवादित रूप में ग्रहण कर ली गई हैं । हिन्दी के व्याकरणिक नियमों की खोज और उन्हें लिखित रूप देने का प्रयास सर्व प्रथम पाश्चात्य विद्वानों ने ही किया था; और उन्होंने संस्कृत व्याकरण की नहीं, वरन् अंग्रेजी की पद्धति अपनायी थी । उनके बाद जब स्वयं यहाँ के लोगों द्वारा इस दिशा में प्रयास हुए तो भी अंग्रेजी की पद्धति का ही उपयोग किया गया । अंग्रेजी साहित्य से निकट संपर्क के कारण अंग्रेजी का वाक्य-विधान भी, जाने-अनजाने हिन्दी लेखकों की रचनाओं में आता रहा । विराम-चिन्हों के प्रयोग और अनुच्छेदों की व्यवस्था भी अंग्रेजी से हिन्दी में आये हैं । हिन्दी के गद्य और पद्य की विभिन्न रचना शैलियों पर भी अंग्रेजी का पर्याप्त प्रभाव है ।

अंग्रेजी प्रभाव के इतने व्यापक स्वरूप का सम्मिलित प्रतिफल यह हुआ है कि हिन्दी भाषा ने जीवन के विभिन्न पक्षों तथा ज्ञान-विज्ञान की अनेक धाराओं को अभिव्यक्त करने की शक्ति अर्जित कर ली है । यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि अंग्रेजी प्रभाव के बिना हिन्दी भाषा में यह शक्ति उत्पन्न ही न हुई होती; तथापि, जो वस्तु स्थित है, उसमें अंग्रेजी प्रभाव का पर्याप्त योग है । सम्भवतः इस प्रभाव की अनुपस्थिति में, हिन्दी में नवीन साहित्यिक रूपों का इतना द्रुतगति पूर्ण विकास न हो पाता । हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति, अंग्रेजी प्रभाव को आत्मसात करके, कितनी बढ़ गई है, यह आगे के प्रकरणों से भली प्रकार स्पष्ट हो जायगा ।

: ७ :

हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के इस विश्लेषण के अनन्तर, हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक रूपों पर इस प्रभाव का अध्ययन प्रारम्भ किया जा सकता है। प्रायः सभी देशों के साहित्य का प्रारम्भ काव्य रचनाओं से ही हुआ है; इसलिए प्रस्तुत अध्ययन का प्रारम्भ भी हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना से किया जा सकता है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी साहित्य ने मुख्यतः अपने काव्य-रूप को ही विकसित किया था, इसलिए प्रारम्भ में ही हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण, इस प्रभाव की विभिन्न वृत्तियों को स्पष्ट कर देगा। यह उस ऐतिहासिक अध्ययन की परम्परा के भी अनुरूप होगा, जिसे हम आरम्भ में ही प्रस्तुत कर चुके हैं।

अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से प्रसूत सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा मूलभूत परिवर्तन साहित्य निर्माण के केन्द्रों का परिवर्तन रहा है। अंग्रेजी प्रभाव के सम्पर्क से पूर्व राज-सभाएं तथा नवाबों के दरबार साहित्य निर्माण के केन्द्र थे। अंग्रेजी प्रभाव के प्रारम्भ तथा प्रसार ने केवल उनका महत्व ही नहीं, वरन् बहुत कुछ उन्हें भी समाप्त कर दिया; और उनके स्थान पर नवीन साहित्यिक केन्द्रों की स्थापना की परिस्थितियां उत्पन्न कीं। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि अंग्रेजों की शासन प्रणाली, हिन्दी-प्रदेश की इसके पूर्व की शासन प्रणालियों से किस प्रकार भिन्न थी। अंग्रेजी शासन ने

अपने को सुदृढ़ करने के लिए एक नवीन सामाजिक वर्ग, मध्यम वर्ग, को विकसित किया था। हम देख आये हैं कि इस नवीन सामाजिक वर्ग, मध्यम वर्ग, के लोगों ने ही नवीन साहित्यिक-केन्द्रों की स्थापना की थी। इस वर्ग के लोगों के, तथा पहले के साहित्यिक-केन्द्रों के लोगों के, बौद्धिक तथा साहित्यिक दृष्टिकोणों में विशेष अन्तर था। पहले के हिन्दी कवियों को राजाओं अथवा नवाबों तथा उनके सभासदों की रुचि-अरुचि को देखना पड़ता था; उन्हें अपने अन्तर की भावनाओं को यदा कदा ही अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता था। किन्तु अब वे अपनी निज की भावनाओं को स्वतन्त्रता के साथ अभिव्यक्त कर सकते थे, यदि उनकी अभिव्यक्तियों से अंग्रेजी साम्राज्य के लिए किसी प्रकार के अहित की सम्भावना न हो।

हिंदी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव का केवल यही रूप नहीं रहा है। अंग्रेजों द्वारा स्थापित शिक्षा-संस्थाओं के माध्यम से अंग्रेजी कविता के साथ स्थापित सम्पर्क, तथा अंग्रेजी कविता का अध्ययन भी, हिन्दी काव्य पर अपनी स्पष्ट छाप छोड़ गए हैं। हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव का यही सबसे महत्व पूर्ण पक्ष रहा है और आगे हम उसी का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं।

हिन्दी कविता पर अंग्रेजी, वस्तुतः अंग्रेजी कविता के प्रभाव के विश्लेषण के लिए, अंग्रेजी कविता का अध्ययन आवश्यक है। अंग्रेजी कविता के सम्यक अध्ययन के बिना इस प्रभाव के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसी लिए आगे हम सबसे पहले अंग्रेजी कविता, विशेष रूप से उसके उन युगों का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे, जिनकी रचनाएं हिन्दी-प्रदेश में पढ़ी गयी थीं। इसके अनन्तर अंग्रेजी से अनुवादित रचनाओं का अध्ययन होगा, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि अंग्रेजी कविता की कौन सी धाराएं तथा प्रवृत्तियां हिन्दी-प्रदेश के लोगों को रुचिकर हुई थीं। हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव के साथ साथ, कुछ अन्य प्रभाव भी कार्य करते रहे थे, उनका भी विश्लेषण किया जायगा। यह विश्लेषण अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख विशेषताओं को और भी अधिक स्पष्ट कर देगा; और तभी हिन्दी के विभिन्न कवियों पर अंग्रेजी प्रभाव की भली प्रकार विवेचना हो सकेगी। प्रारम्भ में हम अंग्रेजी काव्य की विशेषताएं प्रस्तुत कर रहे हैं।

अंग्रेजी काव्य

हिन्दी-प्रदेश के लोगों का, अंग्रेजी कविता के साथ प्रथम सम्पर्क, नवीन शिक्षा-संस्थाओं के माध्यम से हुआ था। इन शिक्षा-संस्थाओं के विभिन्न पाठ्यक्रमों में निर्धारित अंग्रेजी कवि थे : मिल्टन ('पैरेडाइज लॉस्ट' 'लिसिडस', 'ल' एलेग्रो' तथा 'इल पेन्सोरोजो'), पोप ('दि टेम्पिल ऑफ फेम', 'ऐन एसे ऑन क्रिटिसिज्म', तथा 'एसे

ऑन मैन'), जॉनसन, ('दि वैनिटी ऑफ ह्यमन बिशेज' तथा 'लन्दन'), गोल्डस्मिथ ('दि हरमिट', 'दि डेजर्टेड बिलेज' तथा 'दि ट्रेविलर,), टॉमसन ('दि सीज़न्स') ग्रे ('एलेजी रिटेन इन एक न्ट्री चर्चयार्ड), काउपर ('दि टास्क'), वर्ड्सवर्थ ('एक्सकर्शन', 'टु ए हाइलैन्ड गर्ल', 'दि रीपर', 'दि कुक्कू' तथा अन्य बहुत सी रचनाएं), स्काट ('दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल' 'मैरमिअन' 'दि लेडी ऑफ दि लेक), बायरन ('चाइल्ड हेराल्डस पिलग्रिमेज'), शैली ('एडोनेस' 'टु दि स्काईलार्क' तथा अन्य), कीट्स ('एनडिमियन' 'स्लीप एन्ड बिउटी' तथा अन्य), टेनिसन ('दि प्रिन्सेस' 'एनक आर्डेन 'दि लेडी ऑफ शेलाट्' तथा अन्य) मेकाले ('लेज़ ऑफ एन्शेन्ट रोम') तथा कुछ अन्य। अमरीका के दो प्रसिद्ध कवि लांगफेलो तथा वाल्ट ह्विटमैन की रचनाएं भी हिन्दी-प्रदेश में पढ़ी गई थीं। श्रीधर पाठक ने 'लांगफेलो की इवैन्जेलीन' का हिन्दी अनुवाद सन् १८९६ ई० में प्रकाशित किया था; और सरदार पूर्णसिंह ने 'सरस्वती' पत्रिका के १९१३ के एक अंक में 'अमरीका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन' शीर्षक एक निन्बध लिखा था।

इन समस्त कवियों तथा इनकी रचनाओं के अध्ययन का तात्पर्य अंग्रेजी कविता के विकास के तीन विशिष्ट युगों के सम्पर्क में आना था। इन तीन युगों में प्रथम को हम स्वच्छन्दतावाद के पूर्व का युग (Pre-Romantic Age) कह सकते हैं। इस युग के कवियों में जॉन मिल्टन (१६०८-७४) का नाम सर्व प्रथम आता है, उसके अनन्तर एलेकजेन्डर पोप (१६८८-१७४४), सैमुअल जॉनसन (१७०९-८४), ऑलिवर गोल्डस्मिथ (१७२८-७४), जेम्स टॉमसन (१७००-४८), विलियम काउपर (१७३१-१८००) तथा टामस ग्रे (१७१६-७१) के नाम आते हैं। स्वच्छन्दतावाद के पूर्व के इन कवियों की रचनाओं में, वास्तविक काव्यात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति के स्थान पर तर्कशीलता पर अधिक बल दिया गया है। इसके बाद आने वाले युग को हम स्वच्छन्दतावादी कवियों का युग (Romantic Age) कह सकते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि विलियम वर्ड्सवर्थ (१७७०-१८५०), पर्सी बुशे शेली (१७९२-१८२२), जॉन कीट्स (१७९५-१८२१), वाल्टर स्कॉट (१७७१-१८३२), तथा जार्ज गार्डन बायरन (१७८७-१८२४) ने अपनी रचनाओं में तर्कशीलता के स्थान में अपनी आन्तरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया है। इन सभी कवियों में प्रकृति के प्रति, उसके नयन-रंजन दृश्यों के लिए नहीं वरन् उसे जीवन पर एक प्रभाव के रूप में स्वीकार करके, विशेष अनुराग था। स्वच्छन्दतावाद के बाद के युग (Post Romantic Age), के कवियों एलफ्रेड टेनिसन (१८०९-९२), मेथ्यू आर्नल्ड आदि की रचनाओं में भी, यद्यपि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियां देखने को मिलती हैं, किन्तु उन्होंने जो कुछ

कहा है, उसके स्थान पर कैसे कहा है, अर्थात् अभिव्यंजना की रीति पर, विशेष बल दिया है। इन तीनों युगों की काव्यगत विशेषताओं की अभी कुछ और स्पष्टी करण की आवश्यकता है।

मिल्टन से लेकर ग्रे तक, स्वच्छन्दतावाद के पूर्व के युग के कवियों ने, जैसा पहले कहा जा चुका है, अपनी निज की भावनाओं को अभिव्यक्त करने के स्थान पर, तर्क-शीलता को अधिक प्रश्रय दिया है; और इस प्रकार उन्होंने जनसाधारण में प्रचलित ज्ञान और वार्ताओं को लेकर अपनी रचनाएं लिखी हैं। मिल्टन ने अपनी काव्य रचनाओं में जीवन को एक ऐसे सघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसमें सद्वृत्तियाँ असद् वृत्तियों को पराजित करने का प्रयास कर रही हैं। अपने पैरेडाइज़ लॉस्ट' ('स्वर्ग से पतन') नामक महाकाव्य के प्रारम्भ में ही उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि वे इस काव्य-ग्रन्थ को मनुष्य के आगे ईश्वरीय मार्ग का औचित्य सिद्ध करने के लिए लिख रहे हैं।[1] पोप ने अपनी प्रत्येक पंक्ति में सदाचार अथवा साहित्यिक आदर्श की शिक्षा दी है। जॉनसन ने अपने दो व्यंग-काव्यों 'लन्दन' तथा 'दि वैनिटी ऑफ ह्यूमन विशेज़' में अपने युग की कुत्सित तथा असद् वृत्तियों पर तीव्र आक्रोश प्रगट किया है; और सद् वृत्तियों के उत्थान के लिए आवाज़ उठाई है।[2] गोल्डस्मिथ ने अपनी दो प्रसिद्ध रचनाओं 'दि ट्रेविलर' तथा 'दि डेज़र्टेड विलेज' में अपने समय के सामाजिक तथा आर्थिक पतन के प्रति विशेष चिन्ता प्रदर्शित की है। टॉमसन ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'दि सीज़न्स' में, प्रकृति के प्रति विशेष आकर्षण व्यक्त किया है; और साथ ही शोषितों तथा प्रताड़ितों के लिए समवेदना तथा सहानुभूति की भावनाएं प्रगट की हैं। उन्होंने अपनी कुछ रचनाओं में देश-भक्ति की भावना को भी व्यक्त किया है। काउपर ने अपने 'दि टास्क' में प्रकृति के प्रति और तीव्र आकर्षण प्रगट किया है; किन्तु वह, स्वतः प्रकृति के प्रति आकर्षण है, उसके उस स्वरूप के प्रति नहीं, जो मनुष्य में भावनाएं जागरूक करने में समर्थ होता है। ग्रे ने अपनी 'एलेजी' में गांव के निकट के एक कब्रिस्तान के बीच, शोक-विह्वल तथा चिन्तन की मुद्रा में खड़े होकर वहां पड़े हुए लोगों की स्थिति की तुलना, उन महान जीवनधाराओं से की है, जिनसे नियति ने उन्हें अलग कर दिया था। ये सभी काव्य रचनाएं वस्तु-प्रधान हैं, अर्थात् किसी वस्तु स्थिति अथवा यथार्थ को लेकर लिखी गई हैं। इनमें से प्रायः प्रत्येक रचना में जो मानवतावादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है, वह केवल कवि

1—To justify the ways of od to man.

2—To raise for good the supplicating voice.

विशेष द्वारा गृहीत उस युग की तर्कशीलता का उन्मेष है।

इसके बाद आने वाले स्वच्छन्दतावादी युग के वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि कवियों ने अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया; तथा प्रकृति को जीवन पर एक विशिष्ट प्रभाव के रूप में स्वीकार करके, उसके प्रति विशेष अनुराग को वाणी दी। वर्ड्सवर्थ ने अपनी रचनाओं में अपने अन्तरंग जीवन को अभिव्यक्त किया है, अथवा साधारण जनों और सामान्य वस्तुओं को लेकर उनके प्रति अपनी आन्तरिक भावनाओं को प्रगट किया है। अपनी रचना 'एक्सकर्शन', एक आत्मकथात्मक काव्य में, वर्ड्सवर्थ ने अपने प्रारम्भिक जीवन की स्मृतियों तथा अपनी काव्यात्मा के विकास को प्रस्तुत किया है। इस रचना से यह भी प्रगट होता है कि वर्ड्सवर्थ ने बचपन के दिनों में ही प्रकृति के प्रति आकर्षण तथा अनुराग का अनुभव किया था; और इस प्रकार संगृहीत अनुभूतियों को ही आगे चल कर अपनी काव्य रचनाओं में अभिव्यक्त किया था। प्रकृति को उन्होंने जीवन के ऊपर, एक नैतिक तथा आध्यात्मिक प्रभाव के रूप में, स्वीकार किया था। स्कॉट ने आख्यानक काव्यों में साहसिकता तथा स्वच्छन्दता (Chivalary and Romance) के पुरातन संसार को, उसकी पूर्ण रंगीनी के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इन रचनाओं में पुरातन को कल्पना की दृष्टि से अनुरंजित करके बड़ी जगमगाहट के साथ उपस्थित किया गया है। अपनी इन्हीं रचनाओं में स्कॉट ने यदा कदा देश-भक्ति की भावना को भी अभिव्यक्त किया है। बायरन ने अपनी रचना 'चाइल्ड हेराल्डस पिलग्रिमेज' ('Childe Herold's Pilgrimage') में अपनी यात्रा के विवरण को, एक साहसिकता तथा स्वच्छन्दता के आख्यान के रूप में, प्रस्तुत किया है। अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए उन्होंने सागर, सरिताओं, प्राकृतिक दृश्यों, नगरों, भग्नावशेषों, नर-नारियों, प्राय मार्ग की उस प्रत्येक वस्तु का वर्णन प्रस्तुत किया है, जो एक स्वच्छन्दतावादी कवि की काव्य प्रतिभा को जागरुक करने में समर्थ हुई है। कभी कभी बायरन ने इन वस्तुओं अथवा दृश्यों के प्रति अपने निज के विचार भी प्रगट किये हैं। शेली ने वस्तुतः अपनी प्रत्येक रचना के माध्यम से, इस महान संदेश को प्रस्तुत किया है कि यदि मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर दिया जाय, तो जीवन सुन्दर, और यह ससार रहने योग्य हो जायगा। कीट्स ने अपनी रचनाओं से सौन्दर्य के प्रति अनुराग की भावना जगाने का प्रयत्न किया। उनकी सभी रचनाओं में हमें एक गम्भीर पीड़ा की भावना परिव्याप्त मिलती है। स्वच्छन्दतावादी कवियों के इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि ये सभी कवि 'स्वच्छन्दतावादी' कहे गये हैं, तथापि प्रत्येक कवि की अपनी अलग विशेषताएं हैं। किन्तु एक वर्ग में

स्थान पाने के कारण ये सामुहिक रूप से शास्त्रीय-पद्धति की नियम-बद्धता तथा सायान्यता के प्रति विद्रोह, और एक मौलिक, स्वच्छन्द, चित्रोपम तथा कल्पना-प्रधान अभिव्यंजना प्रणाली के प्रति अनुराग प्रगट करते हैं।

इसके अनन्तर स्वच्छन्दतावादोत्तर (Post-romantic) युग के कवि आते हैं जिनमें हिन्दी-प्रदेश के लोगों ने सबसे अधिक टेनिसन का अध्ययन किया था। ब्राउनिंग, रोज़ेटी और स्विनबर्न की भी कुछ रचनाएं पढ़ी गई थीं। इन कवियों ने वर्ड्सवर्थ, शेली तथा कीट्स की स्वच्छन्दतावादी परम्परा को आगे बढ़ाया था, तथा साथ ही अपने चारों ओर के कठोर यथार्थ की उपेक्षा कर के, स्वप्नों तथा भावजगत् में आश्रय लेने का प्रयत्न किया था। यह प्रवृत्ति एक बड़े सामाजिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुई थी। इन कवियों का जीवन काल, उन्नीसवीं शताब्दी, नवीन खोजों औद्योगीकरण तथा व्यापार के प्रसार का युग रहा था। इन नूतन शक्तियों ने एक द्रुत गति पूर्ण सामाजिक परिवर्तन के युग का सूत्रपात किया था। उस युग के कवियों ने, परिवर्तित होती हुई सामाजिक परिस्थितियों के साथ चलने में अपने को असमर्थ पाकर, अपनी रचनाओं में अपने चारों ओर के जीवन को अभिव्यक्त करना ही छोड़ दिया था; और अपने स्वप्नों तथा भाव-दृश्यों को ही प्रगट करने लगे थे। टेनिसन के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने औद्योगीकरण तथा अर्थोत्पादन के प्रसार की उपेक्षा करके, स्वप्न के जगत को प्रश्रय दिया था। ब्राउनिंग भी अपनी समस्त आशावादिता के साथ, पलायनवादी ही था, क्योंकि उसने भी अपनी रचनाओं में, अपने चारों ओर के कठोर यथार्थ के स्थान पर, केवल अपने भाव-दृश्यों का ही वर्णन किया है। रोज़ेटी ने भी इसी प्रकार अपनी कविताओं में, अपने व्यक्तिगत संसार के विषय में ही कहा है, और संघर्ष तथा कोलाहल से भरे हुए सामाजिक जीवन की उपेक्षा की है। स्विनबर्न ने भी सांसारिक जीवन की उपेक्षा करके प्रतीकवाद तथा काव्य-कौशल के प्रदर्शन का आश्रय लिया है। किन्तु इस पलायनवादी प्रवृत्ति के होते हुए भी, इन कवियों ने, काव्य-कला को निखार कर, अंग्रेजी कविता के विकास में अपने लिए एक विशिष्ठ स्थान बना लिया है। हिन्दी के रीतियुग के कवियों ने भी काव्य-कला को निखारने का प्रयास किया था; किन्तु उनमें तथा अंग्रेजी के इन स्वच्छन्दतावादोत्तर कवियों में विशेष अन्तर है: रीतियुग के कवियों ने शास्त्रीय-पद्धति का अनुसरण करते हुए काव्य-कला को निखारा था, किन्तु अंग्रेजी के इन कवियों ने काव्य रचनाओं को नये-विधानों तथा नवीन अलंकारों से संवारने का प्रयत्न किया था। इन कवियों के प्रयत्न के फलस्वरूप ही अंग्रेजी कविता में और अधिक संगीतात्मकता तथा सम्मोहन की सृष्टि हुई थी।

अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद

हिन्दी-प्रदेश में पढ़े गये अंग्रेजी के कवियों के इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी कवियों ने अभी तक इन पद्धतियों को ग्रहण नहीं किया था। अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण, धर्म-निरपेक्ष भावना का उनके लिये कोई महत्व ही नहीं था; और इसीलिए उन्होंने इस प्रकार की भावनाओं को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त ही नहीं किया था। परम्परा के भार से वे इतने बोझिल हो गये थे कि नवीन प्रयोगों की ओर उनकी कोई रुचि ही नहीं रही थी। इन परिस्थितियों में अंग्रेजी की काव्य रचनाओं को हिन्दी में अनुवादित करना भी दुष्कर रहा होगा। हिन्दी भाषा में अभी तक इस प्रकार की भावनायें अभिव्यक्त ही नहीं हुई थीं; इस लिए हिन्दी के कवियों को अंग्रेजी कविताओं को अनुवादित रूप में प्रस्तुत करने में कठिनाई हुई होगी। अंग्रेजी से अनुवादित प्रारम्भिक रचनाओं को देखने से यह भय सत्य सिद्ध होता है! सम्भवतः इसी कारण अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवादित रचनाओं की संख्या थोड़ी ही है।

अंग्रेजी कविताओं के हिन्दी अनुवाद सर्व प्रथम लाला श्रीनिवास दास के उपन्यास 'परीक्षा गुरू' (द्वि. सं. १८८२) में मिलते हैं। इस उपन्यास के दो चरित्र शम्भू दयाल तथा ब्रज किशोर अंग्रेजी साहित्य से विशेष परिचित हैं; और अपनी बात-चीत में अपने विचारों की पुष्टि के लिए, ये चरित्र, अंग्रेजी के साहित्यकारों की सूक्तियां प्रस्तुत करते रहते हैं। सर्व प्रथम शम्भू दयाल ने शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'दि मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' की पोर्शिया की कही हुई कुछ पंक्तियाँ तथा उनका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है। यह अनुवाद कुंडलिया छन्द में मध्ययुगीन शैली में प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में आगे चलकर काउपर तथा बायरन की कुछ पंक्तियों के अनुवाद भी मिलते हैं। ये अनुवाद भी पुराने छन्दों तथा मध्ययुगीन भाषा में ही हैं। इन रचनाओं के भाव मध्ययुगीन हैं, इसलिए ये रूपान्तर निर्जीव नहीं हैं।

अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद के यही सर्व प्रथम प्रयास थे। अंग्रेजी कविताओं के हिन्दी अनुवाद व्यवस्थित रूप से गोल्डस्मिथ की रचनाओं के रूपान्तर से प्रारम्भ हुए; इस कवि की हिन्दी में सर्व प्रथम अनूदित रचना 'हरमिट' थी, जिसे किन्ही लोचन प्रसाद ने खड़ी बोली हिन्दी में 'योगी' नाम से प्रकाशित किया था। अनुवादक ने रचना को सजीवता प्रदान करने के लिए उसमें भारतीय वातावरण की सृष्टि कर दी थी। श्रीधर पाठक (१८५९-१९२८) ने इस रचना का एक अन्य अनुवाद खड़ी

१—यह रचना अप्राप्य है: केवल कुछ उद्धरण अयोध्यानाथ खत्री के 'खड़ी बोली का पद्य' (लन्दन संस्करण, १८८८) में ही देखने को मिलते हैं।

बोली हिन्दी में ही 'एकान्तवासी योगी' (१८८६) नाम से प्रस्तुत किया। इस रूपांतर में मूल रचना की संगीतात्मकता तथा मधुर प्रवाह का भली प्रकार निर्वाह है। पाठक जी ने मूल का पूर्णतः अनुसरण करते हुये भी शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद की पद्धति को नहीं ग्रहण किया है जिससे उनका अनुवाद असुन्दर होने से बच गया है। पाठक जी ने मूल रचना की अन्तर्धारा को इतना अधिक आत्मसात् कर लिया था कि वे अपनी ओर से भी कुछ पंक्तियां बढ़ा सके। इन पंक्तियों से इस कथा-काव्य का सौन्दर्य और भी अविवर्द्धित हो गया है।

इस प्रथम प्रयत्न की सफलता से प्रोत्साहित होकर श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ की दो अन्य रचनाओं 'दि डेजर्टेड विलेज' तथा 'दि ट्रेविलर' के हिन्दी अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' (१८८९) तथा 'श्रान्त पथिक' (१९०२) प्रस्तुत किये। प्रथम का अनुवाद उन्होंने ब्रजभाषा में किया था और द्वितीय का खड़ी बोली में। ये दोनों अनुवाद शब्द-प्रति-शब्द किये गए थे और इनमें से प्रथम की सफलता के विषय में लन्दन की एक पत्रिका ने निम्नलिखित टिप्पणी प्रकाशित की थी :

"A very successful translation of the 'Deserted Village' into Hindi has just made its appearence·····It reads with perfect fluency and sonority in Its Hindi dress, indeed, had an Indian composed an orginal poem on English village life, he could not have put together a more finished production."[1]

गोल्डस्मिथ की दूसरी रचना के अनुवाद में भी श्रीधर पाठक को इसी प्रकार की सफलता मिली।

पाठक जी ने अंग्रेजी की कुछ मुक्तक कविताओं के भी अनुवाद प्रस्तुत किये : ग्रे की रचना 'शेफर्ड एन्ड दि फिलॉस्फर' को 'गडरिया और आलिम (१८८४), लाँगफेलो की 'इवैंजेलीन' को 'अंजलैना' तथा पर्नेल की 'हरमिट' को 'योगी' के रूप में। अंग्रेजी के एक समाधि-लेख (एपीटैफ) को उन्होंने 'शव शिलालेख' शीर्षक से अनुवादित किया। इन अनुवादों में भी उन्होंने मूल की भावधारा को भली प्रकार अभिव्यक्त किया है।

पाठक जी के इन अनुवादों के अनन्तर, जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने पोप के 'ऐन एसे ऑन क्रिटिसिज्म' को 'समालोचनादर्श' नाम देकर प्रस्तुत किया। यह अनुवाद ब्रजभाषा में किया गया था, और फारसी की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित हुआ था। यह शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद था, केवल अन्त में रत्नाकर जी ने अपनी ओर से चौबीस पंक्तियां और जोड़ दी थीं। हिन्दी आलोचना पर अंग्रेजी प्रभाव का

१—'ऐलेन्स इंडियन मेल', लन्दन, १७ फरवरी १८९०

विश्लेषण करते हुए, इस अनुवाद पर पुनः विचार किया जायगा।

अंग्रेजी की प्रसिद्ध रचना ग्रे की 'एलेजी' के हिन्दी में तीन अनुवाद किये गये। सर्व प्रथम अनुवाद आबू पर्वत के विद्या रसिक ने 'ग्रामस्थ शवागार लिखित शोकोक्ति' (१८९७) के रूप में प्रस्तुत किया था। इसके अनन्तर कामता प्रसाद गुरु ने 'सरस्वती' के सन् १९०८ के एक अंक में इसका एक अनुवाद प्रकाशित किया। इस अनुवाद को लोचन प्रसाद पांडेय ने अपने काव्य-संकलन 'कविता कुसुम माला' (१९१०) में भी स्थान दिया था। तृतीय अनुवाद किन्ही महेशचन्द्र ने किया था, और वह एक स्वतन्त्र पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ था (१९१५)। इन तीन अनुवादो में प्रथम तो संस्कृत के शार्दूल विक्रीड़ित छन्द में था और पूर्णतः असफल रहा था। प्रथम छन्द में ही अनुवादक ग्रामीण वातावरण प्रस्तुत करने में असफल रहा है।[1] वह बड़ी सरलता के साथ गिरजाघर की घंटा-ध्वनि के स्थान पर मन्दिर के घन्टे के स्वर का उल्लेख कर सकता था। ग्रामीण वातावरण की अन्य सभी वस्तुओं—गायों, बकरियों आदि के चरागाहों से लौटाने, दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद किसान के हल लेकर वापस आने, तथा सन्ध्या होने पर चारों ओर से अंधकार के घिरने आदि से तो वह भली, प्रकार परिचित रहा होगा। फिर भी वह ग्रामीण संध्या का दृश्य-विधान प्रस्तुत करने में सफल नहीं हुआ है; और उसकी इस असफलता का कारण सम्भवतः यह रहा है कि हिन्दी में इसके पूर्व इस प्रकार के वातावरण का इतना यथार्थ चित्रण प्रस्तुत ही नहीं किया गया था। द्वितीय अनुवाद में, शब्द-प्रति-शब्द निर्वाह के साथ भारतीय वातावरण को भी ग्रहण कर लिया गया है, मिल्टन और क्रामवेल के स्थान पर अयोध्यानाथ, शिव प्रसाद, राणा प्रताप, मानसिंह आदि नाम दे दिये गये हैं। तृतीय अनुवाद में मूल रूप को ही बनाये रक्खा गया है।

ग्रे के इसी शोक-काव्य के समान मेकाले का कथा-काव्य लेज ऑफ एन्शेंट रोम' के भी हिन्दी में तीन अनुवाद हुए। सबसे पहले इस काव्य-ग्रन्थ के एक कथा-प्रसंग 'होरेशस' का अनुवाद, मैनपुरी के 'मिशन हाई स्कूल' के अंग्रेजी के अध्यापक, छंगा लाल मिश्र ने, सन् १९०३ में किया था; द्वितीय, इटावा के 'गवर्नमेंट हाई स्कूल' के अध्यापक बच्चन पाण्डेय ने सन् १९११ में किया था; तृतीय सन् १९१२ में रघुनाथ प्रसाद कपूर द्वारा प्रस्तुत किया गया। इस ग्रन्थ की पहली कथा में, होरेशस द्वारा रोम

१—संध्या झालर नाद ने दिवस का अस्तान्त दिया बजा।
डों डों रांभत गाय बैस वन से आने लगे गांव में॥

की ओर जाने वाले पुल के, शत्रुओं से वीरता के साथ संरक्षण का वर्णन है। इस प्रकार के कथा-प्रसंग, राजस्थान के चारणों की रचनाओं में भी प्राप्त होते हैं; इस लिए हिन्दी कवियों का उसकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था। मेकाले ने अपने इस काव्य-ग्रन्थ में रोम के भूले हुए वीर-गीतों की परम्परा को अंग्रेजी भाषा में पुनः जीवित करने का प्रयत्न किया था। हिन्दी कवियों द्वारा प्रस्तुत किये गये इस ग्रन्थ के ये सभी अनुवाद, यदि खड़ी बोली में होते तो उनमें मूल की भावना का भली प्रकार निर्वाह हो जाता। सबसे पहला अनुवाद, अवधी बोली में है; फिर भी अनुवादक को मूल की भावना को व्यक्त करने में यदा कदा सफलता मिली है। इस अनुवाद में व्यक्ति-वाचक संज्ञाओं को छोड़कर अंग्रेजी का एक 'कप्तान' शब्द ही है। अंग्रेजी के संयुक्त शब्द City fathers के स्थान पर हिन्दी के 'पंच' शब्द का प्रयोग किया गया है। दूसरे अनुवाद में प्रारम्भ में मंगलाचरण की चार पंक्तियां हैं; और उसके बाद समस्त कथा चौपाई छन्द में प्रस्तुत की गई है। इस अनुवाद में मूल की भावना का भली प्रकार निर्वाह नहीं हो सका है, अनुवादक ने अपनी ओर से भी कुछ पंक्तियां लिख दी हैं। अपने अनुवाद को हिन्दी पाठकों के लिए विशेष ग्राह्य बनाने के लिये अनुवादक ने 'मेघनाथ समवीर', 'रुस्तम ज्वान', 'हनुमत सम' आदि शब्दावलियों का प्रयोग किया है। फिर भी उसने अंग्रेजी के कुछ शब्दों—सिटी फादर्स, कौन्सिल आदि—का अपने मूल रूप में प्रयोग किया है। अनुवादक ने जिस स्वच्छन्द वृत्ति को ग्रहण किया है, उसके साथ ये शब्द किसी प्रकार खपते नहीं। इन त्रुटियों के होते हुए भी इस अनुवाद में प्रवाह है, इसलिये इस प्रयत्न को असफल नहीं कहा जा सकता। तीसरा अनुवाद खडी बोली में है, और सम्भवतः इसलिए विशेष सफल है।

अंग्रेजी की कुछ और काव्य रचनाएँ हिन्दी में अनुवादित होकर 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थीं। सर वाल्टर स्कॉट के गीत 'लव ऑफ दि फॉदरलैंड' का अनुवाद 'स्वदेश प्रीति' शीर्षक देकर किया गया था। ग्रे की 'दि नाइटएंगिल एन्ड ग्लोवर्म' का 'बुलबुल और जुगनू' जेम्स टायलर की 'माई मदर' का 'मेरी मैया', सेद के 'स्कॉलर' का 'पुस्तकावलोकन प्रेमी विद्वान', शेक्सपियर के 'फ्रेन्डशिप' का 'मित्रता', केम्पबेल की 'लार्ड उलिन्स डॉटर' का 'लार्ड उलिन कुमारी', टामस मूर के 'दि लास्ट रोज ऑफ समर' का 'ग्रीष्म का अन्तिम गुलाब', लांगफेलो के 'दि सॉंग ऑफ लाइफ' का 'जीवन गीत', वर्ड्सवर्थ के 'दि एफ्लिकशन ऑफ मारग्रेट' का 'माता का विलाप', पोप के 'दि हैपीनेस ऑफ रिटायरमेन्ट' का 'एकान्तवास का सुख', वायरन के 'फेयर दी वेल' का 'आशीर्वाद' इत्यादि। इनमें से अधिकांश अनुवादों को लोचनप्रसाद पांडेय ने, अपने काव्य संकलन 'कविता कुसुम माला'

में भी स्थान दिया था। प्रत्येक अनुवाद अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

लोचन प्रसाद पांडेय ने स्वयं भी कुछ अंग्रेजी कविताओं के रूपान्तर किये थे: वे अनुवाद उनके अपने काव्य-संग्रह 'माधव मंजरी' (१९१४) में प्रकाशित हुए। इन अनुवादों में मूल लेखक का नाम नहीं, केवल मूल शीर्षक दे दिये गये हैं। अंग्रेजी की 'दि बी' शीर्षक रचना का अनुवाद 'मधुमक्खी' किया गया था; 'थैंकफुलनेस' का 'निहोरा', 'दि थी रुल्स' का 'नियमत्रय', 'दि चाइल्ड एन्ड दि बर्ड' का 'चिड़िया और बालिका', 'दि वैस्प एन्ड दि बी' का 'मधुमक्खी और बरैया', 'द ट्रेवलरस रीटर्न' का 'घर का प्रभाव' तथा 'होम' का 'घर'। आगे चलकर 'सरस्वती' पत्रिका में कुछ और अनुवाद प्रकाशित हुए थे; उनमें से विशेष महत्वपूर्ण जेम्स टॉमसन के 'रूल ब्रिटेनियां', का 'इग्लैंड का राष्ट्रीय गीत' तथा अमरीकी कवि लोएल की एक रचना का रूपान्तर 'स्वदेश' थे। ये सभी रूपान्तर सफल कहे जा सकते हैं, क्योंकि इनमें मूल रचना की भावना का भली प्रकार निर्वाह है:

इन रूपान्तरों के हिन्दी कविता के विकास पर प्रभाव के सम्बन्ध में, श्रीधर पाठक द्वारा गोल्डस्मिथ के 'दि हरमिट' के हिन्दी रूपान्तर पर एक समाचार-पत्र में प्रकाशित टिप्पणी दर्शनीय है।

"ऊजड़ ग्राम केवल हिन्दी जानने वालों को यह दिखलावेगा कि योरोपीय कवियों का क्या गुण है। शब्दाडम्बर बाहुल्यता, कृत्रिमता कितनी स्वल्प इनकी कविताओं में होती है। मातृभूमि का प्रेम, पदार्थों का, मनुष्यों का, समाजों का यथावत वर्णन, मनुष्यों के प्रति दया, इनकी रचनाओं में कितनी झलकती है। ऐसी कवितायें हम लोगों के चित को उन्नत करती हैं, मनुष्यों में प्रीति बढ़ाती हैं और समाज का उपकार साधन करती हैं।"[1]

इस अनुवाद पर अंग्रेजी की पत्रिकाओं में भी टिप्पणियां प्रकाशित हुई थीं। उन्होंने विशेष सम्भावनाएँ प्रकट की थीं। लन्दन से प्रकाशित 'दि इंडियन मैगज़ीन' ने अपने जून १८८८ के संस्करण में लिखा था:

"This is a work the merit of which is not to be measured by its length. It is obviously an attempt on the part of an observing man to lead his countrymen, from the extravagence of romance, induce them to realise the more satisfying beauties of nature.....the consequences of such a change of sentiment if ever accomplished would be most beneficial

---

१—श्रीधर पाठक: 'मनोविनोद', तृतीय खण्ड, 'ओपीनियन्स ऐन्ड रिव्यूज़', पृ० ४२

to India. The exuberance of hyperbole which disfigures oriental verse and legend, lifts the mind into clouds of dreamland and weakans the practical virtues which make a people great. The simplicity of the nature on the other hand, while satisfying and ennobling the heart, keeps the mind within the range of fact and probability".[1]

'अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट' ने अपने ६ जुलाई १८८६ के अंक में लिखा था :

Works such as these will not ouly make a valuable addition to Hindi literature..... .....They will give them an insight into that fine imagery, those delicate paintings of scenes and characters which are the peculiar attractions of English poetry. They will lead them from the land of the wild, the fantistic, the supernatural and the impossible, with which so much of oriental poetry and romance abounds, into the regions of reason and reality and beauty"[2]

लन्दन मे प्रकाशित 'ऐलन्स इंडियन मेल' ने अपने फरवरी १७, १८९० के अंक में इस अनुवाद से विशेष सम्भावनायें प्रकट की थीं :

"It is much to be hoped that other Indians, will take to heart the lesson silently rendered them by this masterly composition. It teaches them to abandon mere word jingling and give their power to the production of a literature which shall reflect simple beauties of Nature, which shall call forth pure and noble thoughts, which shall raise the mental, moral and material condition of the country and which shall endure as memorial of patriotic labour".[3]

यह देखने के पूर्व कि ये सम्भावनायें कहां तक पूर्ण हुई, हमें [यह भी देख लेना चाहिए कि हिन्दी कविता पर अंग्रेजी कविता के साथ ही अन्य कौन से प्रभाव कार्य करते रहे। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दी कविता ने अंग्रेजी कविता के सपर्क के अभाव मे भी, क्या नवीनतायें प्राप्त कर ली होतीं।

अन्य प्रभाव

अंग्रेजी प्रभाव के साथ सक्रिय अन्य प्रभाव, संस्कृत कविता तथा हिन्दी की विभिन्न ग्रामीण बोलियों के लोक-गीतों के प्रभाव रहे है। अंग्रेजी प्रभाव के विषय में

१—श्रीधर पाठक : 'मनोविनोद', तृतीय खण्ड, 'ओपीनियन्स ऐन्ड रिव्यूज', पृ० ४२

२—वही, पृ० ५०

३—वही, पृ० ५७

हम पहले ही कह चुके हैं, कि उसने अपने प्रारम्भ से ही, एक सांस्कृतिक पुनरुत्थान तथा पुरातन साहित्य और कला के पुनर्जागरण का सूत्रपात किया था। इस प्रकार यह पूर्णतः स्वाभाविक था, कि जब संस्कृत साहित्य के अध्ययन के प्रति पुनः अनुराग उत्पन्न हो गया था तो उसका प्रभाव हिन्दी कविता के विकास पर भी अनुभूत होता। लोक-गीतों के प्रति आकर्षण भी अंग्रेजी प्रभाव के ही फल-स्वरूप था। अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार ने, मध्य युग के साहित्य निर्माण के केन्द्रों राज-सभाओं को विनष्ट अथवा महत्व-हीन कर दिया था; इसीलिए हिन्दी के जो कवि अब भी कविता लिखना चाहते थे, वे लोक-गीतों के प्रति विशेष आकर्षण का अनुभव करते थे; क्योंकि उनसे ही उन्हें काव्य निर्माण के लिए जीवित प्रेरणा प्राप्त होती थी। इस काल में उर्दू कविता ने भी हिन्दी कविता को थोड़ा बहुत प्रभावित किया था; किन्तु यह प्रभाव कुछ विशेष कारणों से सफल न हो सका।

संस्कृत प्रभाव से हिन्दी कविता को इस काल में प्रकृति के प्रति यथार्थवादी एवं चित्रोपम दृष्टि-कोण, वर्णनात्मकता तथा कुछ छन्द प्राप्त हुए। हिन्दी के प्रकृति परक काव्य को प्रभावित करने वाली संस्कृत रचनाओं में, कालिदास के 'ऋतुसंहार' का सबसे अधिक महत्व है। श्रीधर पाठक तथा मैथिलीशरण गुप्त ने इसके हिन्दी रूपान्तर भी प्रकाशित किये थे। भवभूति के 'उत्तर राम चरित्र' का हिन्दी रूपान्तर हुआ था: इस रचना में प्रकृति वर्णन का बाहुल्य है, इसलिए इस ने भी हिन्दी के प्रकृति काव्य को प्रभावित किया है। संस्कृत के इन कवियों का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण, शास्त्रीय पद्धति तथा राजाश्रित कवियों की कोटि का था; जिसमें जन-साधारण की भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए कोई स्थान ही नहीं था। हिन्दी के प्रकृति-काव्य पर, अंग्रेजी कविता के प्रभाव का विवेचन करते हुए, इन कवियों के प्रभाव का भी उल्लेख होगा।

संस्कृत में वर्णनात्मक काव्यों की संख्या पर्याप्त है, इसलिए संस्कृत साहित्य के प्रति पुनः आकर्षण जागृत होने के अनन्तर, उसकी वर्णनात्मकता का हिन्दी काव्य को प्रभावित करना स्वाभाविक था। इतिवृत्तात्मक काव्य के प्रति आकर्षण, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-८५ के समय से ही प्रारम्भ हो गया था। अम्बिकादत्त व्यास (१८६८-१९००) ने अपनी 'सुकवि सतसई' (१८८७) में, 'अलौकिक लीला' शीर्षक देकर, कृष्ण के प्रारम्भिक जीवन का वर्णन किया था। अंग्रेजी प्रभाव का अब तक विशेष प्रचार नहीं हुआ था; और फिर ये कवि इस काव्य से विशेष परिचित भी नहीं थे, इसलिए इनकी रचनाओं में इतिवृत्तात्मकता, संस्कृत साहित्य के अध्ययन से ही आयी होगी।

आधुनिक हिन्दी कविता ने संस्कृत के छन्दों में विशेष रूप से उसके वर्णिक वृत्तों को ग्रहण किया है। मध्ययुग में हिन्दी कविता में विशेष रूप से मुक्तक छन्दों का प्रयोग हुआ था, जिसमें कि प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र होता है। संस्कृत कविता के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी में इतिवृत्तात्मक छन्दों का प्रयोग होने लगा, इस विधान में छन्द एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। संस्कृत काव्य में वर्णवृत्तों अथवा वर्णिक छन्दों का प्रयोग कथात्मक तथा वर्णनात्मक दोनों ही प्रकार की रचनाओं में हुआ है; संस्कृत प्रभाव ने इसलिए हिन्दी काव्य में इन दोनों ही प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया।

लोकगीत, जैसा कि संज्ञा से ही स्पष्ट है, जन साधारण द्वारा गाये जाते हैं; इसलिये उनमें संगीतात्मक तत्व विशेष रूप से होता है। लोक गीतों की संगीतात्मकता ने भी हिन्दी-काव्य को प्रभावित किया है। भारतेन्दु युग में लोकगीतों के आदर्श को लेकर बहुत सी गीति रचनाएं प्रस्तुत की गयीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने इस क्षेत्र में विशेष कार्य किया।

अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी कविता पर अन्य प्रभावों का यह विश्लेषण, यह स्पष्ट कर देता है कि अंग्रेजी प्रभाव के बिना भी हिन्दी कविता में कुछ नवीन प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गयी होतीं। हिन्दी कविता में प्रकृति के प्रति स्वाभाविक अनुराग, वर्णनात्मकता, संगीत-तत्व आदि की सृष्टि संस्कृत काव्य और लोकगीतों के सम्पर्क से भी सम्भव थी। हिन्दी कविता में इन नवीनताओं की सृष्टि का जो वास्तविक स्वरूप है, उसमें अंग्रेजी प्रभाव, विशेष रूप से अंग्रेजी कविता के सम्पर्क का, वास्तविक योग रहा है। हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव के इसी रूप का विश्लेषण हम उपस्थित कर रहे हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हिन्दी कविता के विकास में नवयुग का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं से हुआ था। उन्होंने केवल हिन्दी कविता ही नहीं वरन् हिन्दी साहित्य के अन्य रूपों तथा हिन्दी भाषा को भी नवजीवन प्रदान किया था। उनकी अधिकांश काव्य रचनाओं की भावना मध्ययुगीन है; किन्तु नवीन प्रवृत्तियों को लेकर लिखी जाने वाली काव्य रचनाओं की संख्या भी थोड़ी नहीं है। नवीन प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करने वाली विशेष महत्वपूर्ण रचनाएँ 'प्रातः समीरण' (१८७४), 'भारत भिक्षा' (१८७५), 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' (१८७७), 'भारत वीरत्व' (१८७८), 'विजयिनी विजय पताका' अथवा 'वैजयन्ती' (१८७८), 'जातीय संगीत' (१८८४), आदि हैं। इन रचनाओं की नवीन वृतियाँ प्रकृति के प्रति स्नेह, देश-भक्ति की भावना, वर्णनात्मकता तथा अंग्रेजी के एक काव्य रूप 'ओड' का अनुकरण कही जा सकती हैं।

'प्रातः समीरण' शीर्षक रचना की निम्नलिखित पंक्तियों में प्रातःकाल का बड़ा यथार्थ वर्णन है :—

बजै सहनाई कहूँ दूर सों सुनाय भैरवी की तान लेत चित्त को चुराय।
उड़त कपोत कहूँ काग करें रोर चुहू चुहू चिरैयन कीनो अति सोर॥
बोले तमचोर कहूँ ऊँचो करि माथ अल्ला अकबर करैं मुल्ला साथ साथ।
बुझी लालटेन लिए झुक रहे माथ पहरु लटक रहे लम्बो किये हाथ॥[1]

इन पंक्तियों में जो यथार्थवादी प्रवृत्ति है, वह अंग्रेजी प्रभाव से ही आयी हुई कही जा सकती है। संस्कृत काव्य में भी प्राकृतिक दृश्यों के यथार्थ वर्णन मिलते हैं; किन्तु उनमें प्रकृति अधिकांश में मानव चेष्टाओं की पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत की गई है; उस प्रकार स्वतंत्र विषय के रूप में नहीं ग्रहण की गयी, जिस प्रकार हम उसे इन पंक्तियों में देखते हैं। इस प्रकार के यथार्थवादी चित्रण को इसलिए संस्कृत काव्य से प्रेरित नहीं कहा जा सकता। ग्रे ने अपनी 'एलेजी' शीर्षक रचना की पहली चार पंक्तियों में ग्रामीण सन्ध्या का बड़ा यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है। यह रचना शिक्षा संस्थाओं में पाठ्यक्रम में स्वीकृत थी; इसलिए इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि भारतेन्दु जी ने इस रचना को स्वयं पढ़ा हो, अथवा अपने किसी ऐसे मित्र से, जिसने इसे पढ़ा हो, उन्होंने इसके प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में सुना हो; प्रकृति के प्रति उनका नवीन दृष्टिकोण अंग्रेजी कविता के प्रभाव से ही उत्पन्न प्रतीत होता है।

भारतेन्दु की रचनाओं में प्राप्त देश-भक्ति की भावना, दो प्रेरणाओं से उत्पन्न कही जा सकती है : एक तो साम्राज्यवादी शोषण के फल-स्वरूप, जिसने उन्हें तथा उनके समकालीन अन्य हिन्दी लेखकों को, अपने चारों ओर की कठोर वास्तविकताओं के प्रति जागरूक करके, देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत कर दिया; तथा दूसरे अंग्रेजी की देश-भक्ति से परिपूर्ण काव्य-रचनाओं का अध्ययन। साम्राज्यवादी शोषण से प्रेरित देश-भक्ति की भावना ने उन्हें पुरातन गौरव का स्मरण दिलाया, अपने समय की, अपने चारों ओर की कठोर यथार्थताओं के प्रति जागरूक किया; तथा भविष्य के सम्बन्ध में मार्ग खोजने की प्रवृत्ति उत्पन्न की। इस रूप में देश-भक्ति की भावना, उनकी 'भारत-भिक्षा' तथा 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' आदि रचनाओं में मिलती है। अंग्रेजी की देश-भक्ति से परिपूर्ण रचनाओं से ग्रहण की गई देश-प्रेम की भावना 'जातीय संगीत' जैसी रचनाओं में है। इस रचना के शीर्षक से

१—'भारतेन्दु ग्रन्थावली', दूसरा खन्ड, पृ० ६८८

ही यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि राष्ट्रीय गीत की रचना कर रहा है। इस भाव-धारा का गीत हिन्दी में अब तक लिखा ही नहीं गया था।

अंग्रेजी के विशिष्ट काव्य-रूप 'ओड' का अनुकरण उनकी 'भारत भिक्षा' 'भारत वीरत्व' 'विजयनी विजय पताका' अथवा 'वैजयन्ती' शीर्षक रचनाओं में है। इस काव्य-रूप का प्रारम्भ यूनान में हुआ था; और वहां से रोम, फ्रांस आदि होते हुए वह इंगलैण्ड पहुँचा। अपने जन्म की भूमि में यह काव्य-रूप, विशेष सामाजिक उत्सवों पर, कई व्यक्तियों द्वारा सम्मिलित रूप से गाया जाता था। इंगलैण्ड पहुंचने पर, इसका यह रूप समाप्त हो गया; और वह केवल उदात्त विषय या भावनाओं तथा शैली की एक तुकान्त गीति रचना ही, कभी-कभी अतुकान्त भी, रह गयी, जो सम्बोधन (Address) के रूप में होती थी।[1]

इस कथय-रूप का छन्द-विन्यास भी कुछ विचित्र होता है: प्रारम्भ में स्ट्रोफी (Strophe), फिर ऐन्टी-स्ट्रोफी (Anti-strophe) और तब एपोड (Epode) होते हैं। यह क्रम इस काव्य-रूप में कई बार मिलता है। यह काव्य रचना अपने मूल रूप में संगीत तथा नृत्य के साथ प्रस्तुत की जाती थी। प्रोफेसर ब्रेसन के अनुसार:

"The singer moved on one side during the strophe, retracing their step in the antistrophe and stood still during the epode."[2]

अंग्रेजी में लिखे गये 'ओडों' में मूल की यह भावना समाप्त हो गई है, केवल उसका बाह्य-रूप ही रह गया है; किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जो 'ओड' लिखे हैं, उनमें मूल काव्य-रूप की भावना थोड़ी बहुत देखने को मिल जाती है। उन्होंने अपने सभी 'ओड' विशेष अवसरों पर गाये जाने के लिए लिखे थे। पहला 'ओड' 'भारत भिक्षा' सन् १८७५ मे लिखा गया था, जब प्रिंस ऑफ वेल्स, जो आगे चलकर एडवर्ड सप्तम हुए, भारतवर्ष आये थे; द्वितीय, 'भारत वीरत्व' सन् १८७८ के अफ़गान युद्ध के समय लिखा गया था; और तृतीय 'विजयिनी विजय पताका', अथवा 'वैजयन्ती' सन् १८८२ मे, अंग्रेजों के मिस्र में विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने यह काव्य - रूप सीधे अंग्रेजी साहित्य से नहीं ग्रहण किया था। इनमें से प्रथम 'ओड' 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' नामक भारतेन्दु की स्वसम्पादित पत्रिका में प्रकाशित हुआ था; और उसके नीचे टिप्पणी थी कि यह हेमचन्द्र बनर्जी की एक बंगला कविता का स्वतन्त्र हिन्दी रूपान्तर हैं। इस प्रकार यह काव्य-रूप हिन्दी साहित्य में, बंगला से ग्रहण किया गया कहा जा सकता है। इस काव्य-रूप

१—ए० आर० 'एनट्विसिल: दि स्टेडी ऑफ पोएट्री', पृ० ५९

२—वही, पृ० ५९ में उद्धृत।

के विशिष्ट नामों के तीन छन्द 'स्ट्रोफी', 'ऐन्टी-स्ट्रोफी' तथा 'इपोड' हिन्दी में 'आरम्भ', 'शाखा' तथा 'पूर्ण कोरस' कहे गये हैं। ये संज्ञाएं भी मूल बंगला कविता से ही ग्रहण की गई होगी। हिन्दी की इन तीनों कविताओं में छन्दों के स्वीकृत क्रम की अ वृति हुई है, किन्तु जहां तक विभिन्न छन्दों के विस्तार का सम्बन्ध है, उसमें समानता नहीं है; विभिन्न आवृतियों में छन्द छोटे बड़े होते गये हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविताओं पर, अंग्रेजी प्रभाव के इस विवेचन के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि वह उनकी रचनाओं में विशेष स्पष्ट नहीं है। यह सभवतः वल्लभ-सम्प्रदाय के परम्परागत प्रभाव के कारण है; जिसके वे प्रमुख उन्नायक थे। इस सम्प्रदाय की साहित्यिक रचनाएं अधिकाँश में काव्य-रूप में ही प्रस्तुत की गई थीं; इसीलिए भारतेन्दु जी ने भी अंग्रेजी प्रभाव को ग्रहण कर लेने पर भी इस सम्प्रदाय के पहले के कवियों की भांति काव्य रूप में ही कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति भावना की अभिव्यक्ति के क्रम को बनाये रक्खा। हिन्दी साहित्य में विभिन्न गद्य-रूपों का विकास अंग्रेजी साहित्य के विशेष सम्पर्क में आकर ही हुआ था; इसीलिए उनकी गद्य रचनाओं में प्रारम्भ से ही अंग्रेजी प्रभाव की स्पष्ट छाप मिलती है। भारतेन्दु की काव्य रचनाओं में अंग्रेजी प्रभाव प्रकृति के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण, देश-भक्ति की भावना, इति-वृत्तात्मकता तथा अंग्रेजी के एक विशिष्ट काव्य-रूप 'ओड' के अनुकरण तक ही सीमित है। इनमें से अन्तिम प्रभाव तो स्पष्ट रूप से बंगला साहित्य के माध्यम से गृहीत कहा जा सकता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अंग्रेजी काव्य के अध्ययन के विषय में कुछ निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है; इसलिए सम्भव है, अन्य प्रभाव भी बंगला साहित्य के माध्यम से ग्रहण किये गये हों।

बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

जब श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ की प्रसिद्ध काव्य रचना 'दि डेजर्टेड विलेज' का हिन्दी रूपान्तर 'ऊजड़ ग्राम' (१८८९) प्रकाशित किया था, तो हिन्दी की एक पत्रिका ने टिप्पणी लिखी थी :

"पाठक जी आंख फेरकर इधर भी देखें, अब ऊजड़ ग्राम इंगलैण्ड में कहीं नहीं है, उनकी जन्म भूमि हतभाग्य भारतवर्ष में सर्वत्र हैं।"[१]

हिन्दी के कवियों ने इस तथ्य को भली प्रकार समझा था, और उन्होंने गोल्डस्मिथ की इस रचना के प्रभाव को लेकर इसी प्रकार की कई काव्य रचनायें लिखी थीं। सर्व प्रथम बालमुकुन्द गुप्त ने अपनी 'वनमहोत्सव' शीर्षक रचना की कुछ पंक्तियों में

१—'सुदर्शन', फरवरी, १९००

ग्रामीण जीवन के समाप्त-प्राय हर्ष और उल्लास पर आंसू बहाये थे।[1] इस भावधारा की सबसे अधिक महत्व पूर्ण रचना बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की 'जीर्ण जनपद' थी। इस शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि इसमें उजड़ते हुये ग्रामीण जीवन का वर्णन है; 'जनपद' शब्द का प्रयोग ग्राम के लिए किया गया है।

गोल्डस्मिथ की रचना का प्रधान वक्तव्य है : व्यापार और वाणिज्य के प्रसार ने ग्रामीण जीवन के हर्ष और उल्लास को विनष्ट कर दिया है। कवि ने द्रुतगति पूर्ण औद्योगिक विकास के दुष्परिणामों को तीव्र संवेदना के साथ ग्रहण किया है। कवि अपने गांव ऑबर्न को पुनः जाता है, और फिर वह वहाँ के पूर्व जीवन, पुरातन दृश्यों तथा पुराने आमोद-प्रमोदों का स्मरण करता है। किन्तु सब कुछ उसे परिवर्तित प्रतीत होता है : समस्त भूमि पर एक ही व्यक्ति का अधिकार हो गया है; किसानों को बेदखल कर दिया गया है, और चारों ओर नष्ट-प्राय जीवन का ही रूप देखने को मिलता है। कवि के मन में गांव के गिरजाघर के पादरी, स्कूल के अध्यापक आदि की स्मृतियाँ जागृत होती हैं और वह ऐसी सामाजिक स्थिति के प्रति तीव्र विरोध की भावना व्यक्त करता है, जिसमें धन

१—बाल मुकुन्द गुप्तः 'स्फुट कविता', पृष्ठ ५९-६८। इस रचना में गोल्डस्मिथ की रचना से सबसे अधिक मिलती हुई पंक्तियां निम्नलिखित हैं:

कहां गये वह गांव मनोहर परम सुहाने।
सबके प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने॥
कपट द्वेष क्रूरता पाप अरु मद से निर्मल।
सीधे सादे लोग बसे जिनमें नहिं बल छल॥
एक साथ बालिका और बालक जंह मिलकर।
खेला करते औ घर जाते सांझ पड़े पर॥
पाप भरे व्यवहार पाप मिश्रित चतुराई।
जिनके सपने में भी पास कभी नहिं आई॥
एक भाव से जाति छतीसों मिलकर रहतीं।
एक दूसरे का सुख दुख मिल जुल कर सहतीं॥
\+ \+ \+
दिन दिन होती जिनकी सच्ची प्रीति सवाई।
एक चिह्न भी उसका नहिं देता दिखलाई॥

'स्फुट कविता', पृ० ६०-६१

को मनुष्य से अधिक महत्व दिया जाता है। अपनी इस रचना को समाप्त करते हुए कवि ने कहा है कि धन प्राप्त कर लेना ही सुखानुभूति का प्रेरणा स्रोत, तथा व्यापारिक उन्नति ही राष्ट्र की महानता का दृढ़ आधार नहीं है। कवि ने व्यतीत ग्रामीण जीवन की प्रशंसा भी बड़ी मार्मिक शब्दावली में की है।

हिन्दी के इस काव्य-ग्रन्थ 'जीर्ण जनपद' का विन्यास भी कुछ इसी प्रकार का है। कवि, विशेष अवस्था प्राप्त करने पर अपने गांव दत्तापुर को पुनः जाता है, और तब उसे वहाँ चारों ओर जो विनाश का दृश्य देखने को मिलता है, उसी का उसने इस रचना में वर्णन किया है। उसने भी गोल्डस्मिथ की भांति, पहले के ग्रामीण जीवन के हर्ष, उल्लास और आनन्द क्रीड़ाओं का स्मरण किया है। उसने भी गोल्डस्मिथ की भाँति युवकों की आनन्द-क्रीड़ा, धनिकों के वैभव - विलास, मन्दिर के पूजन, स्कूल के अध्यापक, वृद्ध सैनिक, विभिन्न ऋतुओं की दृश्यावली, त्यौहार, फूले-फले उपवन, निकटवर्ती सरिता, सरोवर, शैशव के खेल-कूद, सभी को वह स्मरण करता है; और पुरातन जीवन के लिए तीव्र विषाद की भावना को वाणी देता है। आगे चलकर उसने इस व्यापक विनाश के कारणों का विश्लेषण करते हुए कहा है, कि यह सब इसलिए सम्भव हुआ है, क्योंकि मनुष्य स्वार्थी हो गया है, और केवल अपने हित का ही चिन्तन करता है। गोल्डस्मिथ ने भी अपनी रचना को समाप्त करते हुए कुछ इसी प्रकार मन्तव्य दिया है।

हिन्दी की इस रचना पर गोल्डस्मिथ का प्रभाव स्पष्ट है। दोनों रचनाओं के विषय और विन्यास में पर्याप्त समानता है; तथा अभिव्यंजना प्रणाली में भी काफी साम्य है। गोल्डस्मिथ ने अपने गांव के युवकों की आनन्द-क्रीडाओं को इस प्रकार स्मरण किया है :

> And all the village train from labour free
> Led up their sports beneath the spreading tree
> While many a pasttime circled in the shade
> The young contending as the old surveyed
> And many a gambol frolicked over the ground
> And slights of art and feats of strength went round
> × × × ×
> These round thy bowers their cheerful influence shed
> These were the charms but all these charms are fled

१—गोल्डस्मिथ : 'दि डेज़र्टेड विलेज', पंक्तियाँ ७–३४

प्रेमघन जी ने अपनी रचना में इसी प्रसंग की समृतियों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

"झिल्ली गन को सोर रोर चातक चहुँ ओरन।
सुनि सखीन संग सबै नवेली झूलन झूलन ॥
गावत झूलन सावन कजरी राग मलारहिं।
करहिं परस्पर चुहुल नवल चोंचले वधारहिं ॥
× × × ×
यों वह बालकपन कै क्रीड़ा कौतुक हम सब।
करत रहे जहं सो थल हूँ नहि सूझि परत अब ॥"[1]

दोनों काव्य रचनाओं में स्कूल के अध्यापक के सम्बन्ध में लिखी गयी पंक्तियों में भी विशेष साम्य है। गोल्डस्मिथ ने लिखा था :

"Beside yon struggling fence that skirts the way
With blossombed twigs unprofitably gay
There in his noisy mansion skill'd to rule
The village master taught his village school
A man severe he was and stern to view;
I knew him well and every truant knew
× × × ×
Full well they laughed with counterfeited glee
At all his jokes for many a jokes had he"[2]

हिन्दी कविता में गांव के स्कूल के अध्यापक के विषय में निम्नलिखित पंक्तियां हैं :

यही ठौर पर हुतो हाय वह मकतब खाना।
पढ़न फारसी विद्या शिशुगन हेतु ठिकाना ॥
पढ़त रहे बचपन में हम जहं निज भाइन संग।
अजहुं आय सुधि जाकी पुनि मन रंगत सोई रंग ॥
रहे मोलवी साहब जहं के अतिशय सज्जन।
बूढ़े सत्तर वत्सर के पै ताऊ पुष्ट तन ॥
× × × ×

१—'प्रेमघन सर्वस्व', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृष्ठ ४०
२—गोल्डस्मिथ 'दि डेजर्टिड विलेज', पंक्तियां १९३-२०२

पढ़त कुरान शरीफ अजब मुख विकृत जनावत ।
जिहि लखि हम सब की न हंसी रुकि सकत, बचावत ।।[1]

वृद्ध सैनिक के विषय में लिखी गई पंक्तियों में दोनों रचनाओं में सबसे अधिक साम्य है :

"The broken soldier kindly bade to stay
Sat by his fire, and talked the night away
Wept over his wounds and tales of sorrow done
Shouldered his crutch, and show'd how fields were won'[2]

हिन्दी कविता में उसके विषय में पंक्तियां हैं :

वृद्ध वीर एक रह्यो सुभाव सरल तिन माहीं ।
जा ढिग हम सब बालक गन मिलि नित प्रति जाहीं ।।
वीर कहानी जो कहि हम सब के मन मोहै,
भारी भारी घाव जासु तन पै बहु सोहैं ।।[3]

इन समानताओं के होते हुये भी, यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दी कविता, अंग्रेजी काव्य रचना की अनुकृति मात्र है । 'प्रेमघन' जी ने पुरातन ग्रामीण जीवन के हर्ष और आह्लाद के संस्मरण के लिए गोल्डस्मिथ की रचना से प्रेरणा अवश्य ली थी; किन्तु उनके संस्मरण संख्या में अधिक और विस्तृत भी है, तथा उनमें भारतीय ग्रामीण जीवन का बड़ा यथार्थ चित्रण मिलता है । उन पंक्तियों में भी जो गोल्डस्मिथ की रचना की कुछ पंक्तियों से मिलती हुई हैं, भारतीय तथा इंग्लैण्ड के ग्रामीण जीवन का अन्तर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । प्रेमघन जी की इस रचना पर कुछ स्थलों में सर वाल्टर स्कॉट का भी प्रभाव है, विशेष रूप से उन पंक्तियों में, जिनमें कवि ने देश-भक्ति की भावना को अभिव्यक्त किया है । उन पंक्तियों पर स्कॉट के कथा काव्य 'दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल' के देश-भक्ति पूर्ण गीत का प्रभाव है ।

प्रेमघन जी की अन्य काव्य-रचनाओं में अंग्रेजी प्रभाव देखने को नहीं मिलता; केवल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निधन पर लिखी गई काव्य-रचना 'शोकाश्रु बिन्दु' (१८८५) को हम अंग्रेजी के एक विशिष्ट साहित्यिक रूप 'एलेजी' अथवा शोक-काव्य के ढंग की रचना कह सकते हैं । अंग्रेजी का यह विशिष्ट साहित्यिक रूप, जिसमें अपने किसी निकट सम्पर्क अथवा प्रिय व्यक्ति के निधन पर शोकोद्गार प्रकट किये

१—'प्रेमघन सर्वस्व' पृ० १९-२०
२—गोल्डस्मिथ 'दि डेज़र्टेड विलेज', पंक्तियां १५५-१५८
३—'प्रेमघन सर्वस्व, पृ० २८

जाते हैं, हिन्दी के लिए बिलकुल नया था। तुलसीदास ने एक बार अपने अभिन्न मित्र टोडर के निधन पर अपने हृदय की शोक भावना को अभिव्यक्त करना चाहा था, किन्तु थोड़ी सी पंक्तियां लिखने के बाद, उनकी लेखनी रुक गई, क्योंकि उनके विचार से प्राकृत जन के गुण गान से सरस्वती को अत्यन्त पश्चाताप होता है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व इस दिशा में और कोई प्रयत्न देखने को नहीं मिलता। अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से ही हिन्दी कवियों ने यह सीखा है कि अपने निकट संपर्क अथवा प्रिय व्यक्ति के निधन से उत्पन्न शोक-भावना को भी साहित्य में अमर बनाया जा सकता है। 'प्रेमघन' जी ने इस दिशा में सबसे पहले प्रयत्न किया था। उनका यह शोक-काव्य यद्यपि अंग्रेजी प्रभाव को लेकर लिखा गया है, तथापि उसमें उनकी अपनी निज की भावनाएं अभिव्यक्त हुई हैं। उन्होंने अंग्रेजी के किसी शोक-काव्य का अनुकरण नहीं किया है। प्रथम प्रयास की अनगढ़ता भी हमें उनकी इस रचना में मिलती है।

श्रीधर पाठक

हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार में, श्रीधर पाठक का विशेष योग रहा है। पाठक जी ने अंग्रेजी काव्य का अच्छा अध्ययन किया था। जब उनका, गोल्डस्मिथ के 'दि डेजर्टेड विलेज' का हिन्दी रूपांतर प्रकाशित हुआ था, तो हिन्दी की एक पत्रिका ने बड़ी महत्वपूर्ण टिप्पणी लिखी थी :

"घोर दुर्भिक्ष और महामारी के समय जिस देश के कवि कुल कलंक नायिका के रूप वर्णन में मग्न हैं, वहाँ उजड़ ग्राम जैसे भावमय काव्य का पाठक जी ने अनुवाद कर डाला, यही आश्चर्य है।"

अब यह देखना है कि क्या यह आश्चर्यमय भावना उनकी अपनी मौलिक रचनाओं में भी मिलती है ?

पाठक जी की काव्य रचनाओं का प्रथम संग्रह 'मनोविनोद' (१८८२) था; जिसे उन्होंने अंग्रेजी में 'Mind's Delight' संज्ञा दी थी। इस काव्य संग्रह की रचनाओं के विषय 'मंगलाचरण, 'वसंतागमन', 'प्रेमांकुर', 'वसंत राज्य', 'प्रिया विमर्ष', 'गोपिका गीत', 'ब्रज महिमा' तथा 'स्वभामिनी स्मरण' थे। इन शीर्षकों को देखकर ऐसा लगता है कि इन रचनाओं में बिलकुल नए प्रकार की भावनाएँ अभिव्यक्त हुई होगी। किन्तु रचनाओं को पढ़ने पर हमें उनमें मध्य-युगीन भावनाओं का ही आधिक्य मिलता है। कुछ नए तत्व भी इन रचनाओं में हैं, प्रकृति के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण तथा व्यक्तिगत अथवा आन्तरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रकृति के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण, विभिन्न ऋतुओं पर लिखी गई रचनाओं में अभिव्यक्त हुआ है; और व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति 'स्वभामिनी स्मरण'

शीर्षक रचना में सबसे अधिक है। यह रचना संभवतः वर्ड्सवर्थ की इसी प्रकार की रचनाओं से प्रेरणा लेकर लिखी गई होगी, क्योंकि हिन्दी में उस समय तक इस प्रकार की काव्य रचना लिखने का प्रचलन नहीं था।

पाठक जी के दूसरे काव्य संग्रह 'मनोविनोद', द्वितीय खण्ड (१९०५) में संगृहीत और सन् १८८७ में लिखित 'जगत-सचाई-सार' शीर्षक कविता लाँगफेलो की प्रसिद्ध रचना 'ए साम आफ् लाइफ' के आधार पर रचित प्रतीत होती है। लाँगफेलो की रचना के प्रारम्भ के दो छन्द हैं :

"Tell me not mournful numbers
'Life is but an empty dream'
For the soul is dead that slumbers
And the things are not what they seem.
Life is real, life is earnest ;
And the grave is not its goal ;
'Dust thou art, to dust returnest'
Was not spoken of the soul."[1]

श्रीधर पाठक की रचना की प्रारम्भिक पंक्तियाँ है :

कहो न प्यारे मुझसे ऐसा : झूठा है यह सब संसार
थोथा झगड़ा जी का रगड़ा, केवल दुःख का हेतु अपार
माना हमने वस्तु जगत की नाशवान है निस्सन्देह
फिर भी तो छोड़ा नहिं जाता पल भर को भी उनसे नेह

× × ×

जगत है अच्चा तनक न कच्चा समझो बच्चा इसका भेद
पीओ खाओ सब सुख पाओ कभी न लाओ मन में खेद

× × ×

समझ के सारे जग को मिट्टी, मिट्टी जो कि रमाता है
मिट्टी करके सरबस अपना मिट्टी में मिल जाता है।[2]

इस रचना की कुछ पंक्तियाँ टॉमसन की 'स्प्रिंग' ('Spring') शीर्षक काव्य रचना की कुछ पंक्तियों से काफी मिलती जुलती हैं। पाठक जी की प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं पर टॉमसन की रचना 'सीज़न्स' ('Seasons') का प्रभाव पर्याप्त रहा है, जो आगे के पृष्ठों में स्पष्ट किया जायगा; इसलिए यह सम्भव है कि कवि इस रचना को लिखते

१—'पोएटिकल वर्क्स आफ लांगफेलो', कॉलिन्स पिलग्रर टाइप प्रेस, पृ० १९
२—श्रीधर पाठक : 'जगत-सचाई-सार', पृ० १-२

हुए भी, अंग्रेजी के इस कवि की कुछ पंक्तियों से प्रभावित हुआ हो। टॉमसन ने अपनी एक रचना में प्रकृति के विभिन्न तत्वों पर, वसन्त के प्रभाव का वर्णन करते हुए, उस सर्वशक्तिमान का गुणगान किया है; और कहा है कि यह सब उसी की अनुकम्पा से सम्भव हुआ है। पाठक जी ने भी इसी प्रकार अपने चारों ओरकी शोभा में भगवान की महिमा के दर्शन किये हैं।

पाठक जी के इस द्वितीय काव्य संग्रह की अन्य रचनाओं पर भी अंग्रेजी प्रभाव है, विशेष रूप से विभिन्न ऋतुओं से सम्बन्धित काव्य रचनाओं पर। इन काव्य रचनाओं पर संस्कृत की प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं का प्रभाव भी है। अंग्रेजी काव्य कृतियों में टॉमसन के 'सीजन्स' और संस्कृत काव्य रचनाओं में कालिदास के 'ऋतु संहार' का प्रभाव पाठक जी प्रकृति की परक रचनाओं पर निश्चित रूप से है। आधुनिक काल के पूर्व के हिन्दी कवियों में प्रकृति को लेकर काव्य रचनाएँ लिखने में 'सेनापति' को सबसे अधिक प्रसिद्धि मिली है। हिन्दी के कवि होने के कारण पाठक जी 'सेनापति' की काव्य-रचनाओं से भी परिचित रहे होंगे। प्रकृति के प्रति इन तीनों कवियों के अपने अलग-अलग दृष्टिकोण थे। कालिदास की रचनाओं में राजाश्रय में पोषित शास्त्रीय पद्धति के कवि का दृष्टिकोण मिलता है; 'सेनापति' भी शास्त्रीय पद्धति के पुनर्जागरण युग के राजाश्रित कवि थे; किन्तु उनके प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण में सम्पूर्ण मानव जीवन का ज्ञान परिलक्षित होता है। टॉमसन ने एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में प्रकृति को देखा था, जो प्रकृति के सभी रूपों से काव्य निर्माण की प्रेरणा ग्रहण करता है। इन तीनों कवियों के अपने-अपने प्रकृति सम्बन्धी दृष्टि-कोणों को अभी और स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

कालिदास ने अपने 'ऋतु संहार' में विभिन्न ऋतुओं के वर्णन राजाश्रय में पोषित होने वाले कवि के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने विभिन्न ऋतुओं के केवल उन पक्षों का वर्णन किया है, जो शृंगार भावना को जगाने में सहायक होते हैं तथा कवि को अपनी काव्य-कला के प्रदर्शन का भी अवसर देते हैं। प्रत्येक ऋतु के दो पक्ष होते हैं, एक आनन्दमय और दूसरा विषादपूर्ण। कालिदास ने प्रकृति के, आनन्दप्रद पक्ष का ही विशेष वर्णन किया है। ऐश्वर्य और विभूति के सहारे प्रकृति के दूसरे पक्ष को भी आनन्दमय बनाया जा सकता है, और कालिदास समाज के उच्चवर्ग के कवि थे, इसलिए उन्होंने प्रकृति के विभिन्न ऋतुओं के विषाद पूर्ण पक्ष को भी अपनी काव्य रचनाओं में आनन्दमय बनाकर प्रस्तुत किया है। प्रकृति के विषादोत्पादक पक्ष का भी उन्होंने वर्णन किया है; किन्तु उसका सम्बन्ध भी शृंगार भावना से है। उन्होंने विभिन्न ऋतुओं में वियोगिनी नायिका को मिलने वाले कष्ट का वर्णन किया है। केवल ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए उन्होंने, साधारण मानव तथा कुछ अन्य जीव-

धारियों के कष्ट का वर्णन किया है, किन्तु ये वर्णन भी यथार्थता से समन्वित नहीं, वरन् कलात्मकता लिए हुए हैं।

अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व के हिन्दी कवियों में केवल सेनापति ने ही, प्रकृति के प्रति अनुराग की भावना को लेकर, काव्य रचनाए लिखी थीं। 'सेनापति' भी राजाश्रय में रहते थे, इसलिये उन्होंने भी कालिदास की ही भांति प्रकृति का वर्णन किया है, केवल जनसाधारण की दुःखानुभूति के वर्णन की प्रवृत्ति उनमें विशेष रही है।

अंग्रेजी कवि टॉमसन के प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने के लिए हमें उनकी रचना 'सीजन्स' की एक कविता के भाव-क्रम को देखना चाहिए। उनकी 'विन्टर' शीर्षक कविता का भाव-क्रम इस प्रकार है—"विषय की प्रस्तावना। विलिंगटन के अर्ल को सम्बोधन। शीत का प्रारम्भ, ऋतु के विकास क्रम के अनुसार आंधी, वर्षा, हिम, आदि के वर्णन। हिम का प्रसार, एक मनुष्य का उसमें फंस जाना और फिर मनुष्य जीवन के दुख और कष्टों का चिन्तन·····शीत ऋतु की एक सन्ध्या में दार्शनिक, ग्रामीण-जनों आदि के जीवन के विवरण। एक नगर में हिमपात ध्रुवक्षेत्र में शीतऋतु। अन्त में मनुष्य के भविष्य पर नैतिक दृष्टि से चिन्तन।" इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि टॉमसन ने प्रकृति को अधिक व्यवस्थित रूप में देखा था, तभी उन्होंने उसके सुखद तथा दुःखद दोनों ही पक्षों को प्रस्तुत किया है। टॉमसन की वर्णन पद्धति बड़ी वैज्ञानिक है, साथ ही उसमें कल्पना का भी प्रयोग है; और इन दोनों तत्वों के साथ लेखक के मानवतावादी दृष्टिकोण का समन्वय हो जाने से, उसकी रचनाओं का साहित्यिक महत्व विशेष हो गया है।

आलोचकों का मत है कि टॉमसन ने अंग्रेजी काव्य के क्षेत्र में प्रकृति को पुनः प्रतिष्ठित किया था, जिससे कि पोप तथा उनकी धारा के अन्य कवियों ने उसे बहिष्कृत कर दिया था; और यह थॉमसन की प्रसिद्ध कृति 'सीजन्स' के अध्ययन का ही परिणाम था कि हिन्दी काव्य-जगत में भी प्रकृति को पुनः स्थान मिला। अंग्रेजी प्रभाव के अनन्तर हिन्दी काव्यलोक में, श्रीधर पाठक पहले कवि थे, जिनके मन में प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग था; और उनकी प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में टॉमसन का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित होता है। पाठक जी ने कालिदास के 'ऋतु संहार' का भी अनुवाद किया था; किन्तु उनकी रचनाओं में संस्कृत के इस कवि का प्रभाव नहीं मिलता। पाठक जी की प्रकृति सम्बन्धी रचनायें 'मेघागमन' 'घन विनय' 'शरद-समागत-स्वागत', 'हेमन्त', 'गुणवन्त-हेमन्त' आदि हैं। इन रचनाओं पर टॉमसन का प्रभाव प्रकृति के यथार्थ चित्रण, उसके सुखद तथा दुःखद दोनों पक्षों के वर्णन तथा दुःखितों और पीड़ितों के प्रति सम्वेदना एवं सहानुभूति की

अभिव्यक्ति में है। अंग्रेजी प्रभाव की ये प्रवृत्तियां और अधिक स्पष्ट हो जायेंगी, यदि श्रीधर पाठक की इन रचनाओं का अध्ययन, उनके कालिदास के 'ऋतु-संहार' के अनुवाद के साथ किया जाये। संस्कृत के इस कवि ने वर्षा-ऋतु के दुःखद पक्ष को प्रकट करने के लिए एक विरहिणी नायिका की वियोग व्यथा का वर्णन किया है।[1] किन्तु श्रीधर पाठक ने अपनी वर्षा, ऋतु विषयक रचना में अपने युग की सामाजिक भावना से प्रेरित होकर एक बाल विधवा की मनोव्यथा का विवरण दिया है।[2] पाठक जी की इस रचना में वर्षा का वर्णन बहुत यथार्थवादी है; और जिस प्रकार उन्होंने बाल-विधवा की मानसिक व्यथा का बार बार उल्लेख किया है, उसमें टॉमसन का मानवतावादी एवं व्यथितों और पीड़ितों के प्रति सम्वेदना एवं सहानुभूति का दृष्टि-कोण दृष्टिगोचर होता है। यह मानवतावादी दृष्टिकोण उन्होंने अपने युग के समाज-सुधार के आन्दोलन से भी ग्रहण किया होगा, जो अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से उत्पन्न होकर, उसकी एक विशिष्ट धारा के रूप में विकसित हो रहा था।

श्रीधर पाठक के मन में प्रकृति के प्रति वास्तविक अनुराग प्रतीत होता है। टॉमसन की भांति प्रकृति के सूक्ष्माति-सूक्ष्म परिवर्तन को देखने की प्रवृत्ति भी उनमें थी। अपनी 'हेमन्त' शीर्षक रचना में उन्होंने हिमपात का बड़ा चित्रोपम वर्णन प्रस्तुत किया है। उसमें सूर्य की किरणों के स्पर्श से जो नये नये रंग हिम में उत्पन्न होते हैं, उनका भी वर्णन है :

"पड़ने लगा तुषार बरफ पड़ने लगी,
अद्भुत शोभा के कौतुक करने लगी,
× × ×
घर पर, दीवारों पर, वन के पेड़ पर,
खेतों में बागों में उनकी मेड़ पर
जम कर धरती वहां अनेकों आकृती
दृश्य बनाती विविध विलक्षण प्राकृती
ह्याँ से उत्तर ओर दृष्टि जो कीजिये
अकथनीय छवि अवलोकन सुख लीजिये
स्वच्छ स्वेत हिमयुक्त हिमाँचल चोटियाँ
रजतमयी कैलाश शिखर की जोटियां।"[3]

१—श्रीधर पाठक : 'मनोविनोद', भाग २, पृ० ३३
२—श्रीधर पाठक : 'घन विनय'
३—श्रीधर पाठक : मनोविनोद', भाग २, 'हेमन्त', पृ० ३४

यह हिमालय पर हिम के दृश्य का वर्णन है, और टॉमसन की एक काव्य रचना 'विन्टर' की कुछ पंक्तियों से पर्याप्त साम्य रखता है।[1] श्रीधर पाठक की रचनाओं में टॉमसन की पंक्तियों से बहुत अधिक साम्य खोजना निरर्थक है, क्योंकि उन्होंने अँग्रेजी के इस कवि की प्रेरणा से प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग ग्रहण किया था, तथा उसके प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण को भी थोड़ा बहुत अपनाया था। इसके अनन्तर वे स्वयं अपनी अनुभूति के आधार पर अपने देश की प्राकृतिक शोभा का वर्णन करने लगे थे। पाठक जी का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण टॉमसन के दृष्टिकोण जैसा विस्तृत न था; इसीलिए एक तो उनकी रचनायें छोटी हैं, और दूसरे, उनमें इस अँग्रेजी कवि के प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण की सभी विशेषतायें नहीं आ पायी हैं।

पाठक जी की रचनाओं पर टॉमसन का प्रभाव एक अन्य प्रकार से भी है। यह हम पहले ही कह आये हैं, कि टॉमसन के लिखे हुए ब्रिटेन के राष्ट्रीय गीत 'रूल ब्रिटेनियां' का रूपान्तर हिन्दी में हो चुका था। पाठक जी ने भी इसी प्रकार के कई गीत लिखे। इनके कुछ देश-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत गीत 'मनोविनोद' के द्वितीय भाग में प्रकाशित हुये थे; आगे चलकर इस भावना के सभी गीत 'भारतगीता' (१९१८) में संकलित हुये। यदि हम इस संग्रह के सभी गीतों का सम्यक अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है, कि पाठक जी ने यह देश-भक्ति की भावना बँगला साहित्य के माध्यम से भी ग्रहण की थी। कुछ गीतों, जैसे 'जय जय भारत भूमि हमारी' तथा 'जय भारत जय' की तो भाषा भी बंगला की काव्य-भाषा से प्रभावित है।

अभी हमें पाठक जी की दो और काव्य रचनाओं 'काशमीर सुषमा' (१९०४) तथा 'देहरादून' (१९१५) पर विचार करना है। अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से इन दोनों ही रचनाओं पर बायरन की विस्तृत काव्य रचना 'चाइल्ड हेरॉल्ड्स पिलग्रिमेज' का प्रभाव स्पष्ट है। 'काशमीर सुषमा' पर यह प्रभाव उन विषयांतर के स्थलों में है, जहाँ कवि ने अपने धर्म गुरू, उस देश की नारियो तथा महाराज आदि की प्रशंसा के गीत गाये हैं। बायरन ने भी अपनी उल्लिखित रचना में, इसी प्रकार विषयान्तर करके, स्थान-स्थान पर, विभिन्न देशों की सामाजिक व्यवस्था तथा शासन पद्धति के वर्णन किये हैं। 'चाइल्ड हेरॉल्ड' के प्रथम प्रकरण में तेरहवें पद्य के अनन्तर कवि ने विषयान्तर करके अपनी मातृभूमि से विदा का गीत गाया है; तथा स्पेन पहुँचने पर वहाँ के सामाजिक जीवन तथा राजनीतिक व्यवस्था का वर्णन किया है। बायरन के इस

१—'दि कम्पलीट पोएटिकल वर्क्स ऑफ जे० थॉमसन', आक्सफ़ोर्ड एडीसन (१९०८), पृ० १९४

प्रभाव के अतिरिक्त 'काशमीर सुषमा' की प्रकृति वर्णन की शैली पर टॉमसन का भी प्रभाव है। किन्तु इन दोनों प्रभावों के होते हुए भी 'काशमीर सुषमा' एक मौलिक रचना है; और पाठक जी के प्रकृति के प्रति सच्चे अनुराग से अनुप्राणित है।

पाठक जी की 'देहरादून' रचना का वर्णन क्रम 'चाइल्ड हेरॉल्डस् पिलग्रिमेज' से बहुत मिलता जुलता है। बायरन ने अपनी इस काव्य रचना में एक ऐसे नवयुवक के मानसचित्रों को प्रस्तुत किया है, जो आनन्दातिरेक से विक्षुब्ध होकर विदेशों की यात्रा में आश्रय लेता है। कवि ने हमारे मानस चक्षुओं के आगे हरे भरे भू-भागों, पर्वतों, नदियों, नगरों, ध्वँसावशेषों आदि, जो कुछ भी उसके कवि-मन को प्रभावित कर सका है, उसका दृश्य प्रस्तुत किया है; तथा इन सभी प्रकार के स्थानों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की जीवन पद्धतियों पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं। इस यात्रा-विवरण में वर्णन के साथ विचाराभिव्यक्ति का क्रम बराबर चलता रहा है। कवि का मन प्राकृतिक शोभा के वर्णन में तो विशेष रमा है, किन्तु उसने संकरी अँधेरी गलियों, युद्ध की सम्भावनाओं, स्वाधीनता खो कर जनता के मन में जागृत होने वाले भावों आदि किसी को भी नहीं छोड़ा है। पाठक जी ने भी इसी प्रकार अपने देहरादून के यात्रा विवरण को, जहाँ वे विशेष अस्वस्थता के कारण ऋतु-परिवर्तन और स्वास्थ्य लाभ के लिए गये थे, प्रस्तुत किया है। बायरन की भाँति हिन्दी कवि ने, काव्यात्माओं का स्मरण नहीं किया है; वरन् इतिवृत्तात्मक ढंग से सीधे यात्रा विवरण प्रारम्भ कर दिया है। बॉयरन तथा पाठक जी के यात्रा-वर्णनों का इसी इतिवृत्तात्मकता में अन्तर है। पाठक जी कल्पना की ऊँची उड़ाने नहीं ले पाये हैं; वे वस्तु स्थिति के साथ बन्धे रहे है। बायरन की कल्पना मुक्त पंखों के साथ आकाश में विचरी है, साथ ही साथ उसने पुरातन को भी स्मरण किया है तथा वर्त्तमान स्थिति पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं। पाठक जी ने भी एक स्थान पर राम का स्मरण किया है, किन्तु यह पुरातन स्मृति, विशेष रसमय नही है; इसीलिए उन्होंने आगे इस स्मरण को छोड़ दिया है, और केवल वर्त्तमान पर ही अपने विचार प्रकट किये हैं।

कहीं कहीं पाठक जी की इस रचना की कुछ पंक्तियां, बायरन की कुछ पंक्तियों से मिलती हुई हैं; किन्तु काव्य दृष्टि के विभेद के कारण बहुत अधिक साम्य नहीं है। कुछ साम्य विषयान्तर के स्थलों पर भी मिलता है। बायरन ने जब विषयान्तर किया है, तो छन्द का रूप बदल कर अपनी मनोभावनाओं को अभिव्यक्त कर दिया है। प्रथम प्रकरण में ही दो विषयान्तर के स्थल हैं। इस प्रकार के स्थलों पर कवि ने विषय को पूर्णतः छोड़ दिया है। पाठक जी ने भी विषयान्तर किये हैं, किन्तु उन्होंने विषय के सूत्र को बनाये रक्खा है। जब उनकी गाड़ी गंगा के पुल पर है, वे

गंगा जी के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रकट करने लगते हैं। इसी प्रकार आगे चलकर उन्होंने वाइसराय-भवन को देखकर अपने मनोभाव प्रकट किये हैं। अपने इस यात्रा-विवरण में पाठक जी ने अंग्रेजों तथा भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों बंगाल, पंजाब आदि के लोगों के विषय में जो विचार प्रकट किये हैं, वे भी बॉयरन के 'चाइल्ड हेरॉल्ड' से प्रेरित हैं, यद्यपि उनकी वर्णन शैली पाठक जी की अपनी है।

श्रीधर पाठक जी की काव्य रचनाओं पर इस प्रकार अंग्रेजी प्रभाव कई रूपों में देखने को मिलता है। उसने उनके प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण को प्रभावित किया है, पीड़ितों और प्रताड़ितों के प्रति उनके हृदय में सम्वेदना की भावना जगाई है, उनमें देश-भक्ति जागरुक की है, तथा अपने देश की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति पर विचार करने के लिए प्रेरणा प्रदान की है। इनमें से प्रथम का सबसे अधिक महत्व है, क्योंकि उसने उनके मन में प्रकृति के प्रति वास्तविक अनुराग उत्पन्न करके, हिन्दी कविता के लिए एक नया विषय प्रदान किया था।

लोचन प्रसाद पांडेय

अंग्रेजी के कवि गोल्डस्मिथ की काव्य रचनाओं के अनुवाद के सम्बन्ध में हम पहले विचार कर चुके हैं। उनकी रचना 'दि डेजर्टेड विलेज' के हिन्दी कविता पर प्रभाव का भी विवेचन किया जा चुका है। यहां हमें उनकी एक अन्य काव्य रचना 'दि ट्रेविलर' के प्रभाव का विश्लेषण करना है, जो लोचन प्रसाद पांडेय की 'प्रवासी' (१९०७) नामक काव्य ग्रन्थ पर स्पष्ट देखने को मिलता है। पांडेय जी के इस काव्य ग्रन्थ पर पोप के 'एसे ऑन मैन' का भी कुछ प्रभाव है। विशेष रूप से उसके चतुर्थ प्रकरण का, जिसमें कवि ने आनन्द की भावना को दृष्टि में रखकर, प्रकृति और मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्ध का दिग्दर्शन कराया है।

गोल्डस्मिथ ने 'दि ट्रेविलर' में, अपने को एक ऐसे यात्री के रूप में, जो वास्तविक और स्थायी आनन्द की खोज कर रहा है, आल्पस पर्वत श्रेणी की एक ऊंची चोटी पर प्रस्तुत किया है। उस स्थान पर बैठा हुआ वह यात्री, अपने चारों ओर के समस्त देशों को देखने की कल्पना करता है, और फिर बताता है कि जिस प्रदेश में भी लोग रह रहे हैं उन्हें उसी का वातावरण आनन्दप्रद प्रतीत हो रहा है। अन्त में उस यात्री का निष्कर्ष है, कि वह आनन्द जिसकी वह अब तक खोज कर रहा था, वाह्य जगत की वस्तु नहीं है, इसीलिये तो उसका प्रयत्न असफल रहा, आनन्द तो वास्तव में मनुष्य के अन्तर्मन में सदा स्थित है।

पोप ने अपनी काव्य रचना, 'एसे ऑन मैन' में भी, इसी विषय को लिया है। किन्तु उनकी अभिव्यञ्जना शैली काव्यात्मक न होकर, तर्क पूर्ण अधिक है। प्रारम्भ

में उन्होंने दर्शन ग्रन्थों द्वारा एवं जनसाधारण के बीच प्रचलित आनन्द सम्बन्धी भ्रान्त धारणाओं का विवेचन किया है, और तब उन्होंने अपना विचार दिया है कि आनन्द की अनुभूति सभी लोग कर सकते हैं, ईश्वर ने उसे सबके लिए ही बनाया है। इसी जीवन-दर्शन को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि आनन्द अथवा सुख की भावना सांसारिक वैभव एवं ऐश्वर्य से उत्पन्न नहीं होती, सांसारिक विभूति, सम्मान, कुलगत श्रेष्ठता यश, असाधारण प्रतिभा आदि भी मनुष्य को आनन्द प्रदान नहीं कर सकीं। उनका अन्तिम निष्कर्ष है, आनन्द की अनुभूति मनुष्य पुण्य कर्मों के द्वारा ही कर सकता है।

लोचन प्रसाद पांडेय ने, अपनी 'प्रवासी' नामक काव्य रचना में, अंग्रेजी के इन दोनों कवियों की विचार-परम्परा का समन्वय कर दिया है। किन्तु आनन्दानुभूति के सम्बन्ध में अपने जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अपने देश की परिस्थितियों का भली प्रकार ध्यान रखा है।[1] इस काव्य-रचना के प्रारम्भिक भाग में, जहां कवि ने अपने गांव में व्यतीत किए हुए प्रारम्भिक जीवन का स्मरण किया है,[2] वह, गोल्डस्मिथ की रचना के, अपने घर पर अपने भाइयों के साथ व्यतीत किये गये जीवन के संस्मरणों[3] से बहुत मिलता जुलता है। पांडेय जी ने अपनी मातृ-भूमि के प्रति जिस भक्ति भावना को प्रकट किया है[4] वह भी गोल्डस्मिथ की उस तर्क परम्परा से मिलती हुई है, जिसमें उन्होंने कहा है कि मनुष्य सर्वोत्कृष्ट आनन्द का अनुभव उसी स्थान पर करता है, जहां उसका जन्म हुआ हो।[5] आगे चलकर पांडेय जी ने पोप की तर्क परम्परा ग्रहण करते हुए यह कहा है कि मनुष्य को आनन्द की अनुभूति, यश राज्याधिकार, ऐश्वर्य, ज्ञान तथा इसी प्रकार की अन्य सांसारिक विभूतियों के अर्जन से नहीं हो सकती।[6] तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति को लेकर इसके बाद उन्होंने यह भी कहा है कि मनुष्य, जीवन की सामान्य स्थितियों, निर्धनता, श्रमिक जीवन, किसानों के व्यवसाय आदि को ग्रहण करके भी आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता[7]।

१—पांडेय जी ने, अपने देश की परिस्थितियों का ध्यान रखते हुए ही, समर्पित जीवन के साथ, विदेशों की यात्रा को भी उचित माना है।

२—लोचन प्रसाद पांडेय : 'प्रवासी', पृ० १

३—गोल्डस्मिथ : 'दि 'ट्रेवलर', पृ० ११-२२

४—लोचन प्रसाद पांडेय : 'प्रवासी', पृ० ३

५—गोल्डस्मिथ : ट्रेवलर', पृ० ७१–७७

६—लोचन प्रसाद पांडेय :'प्रवासी', पृ० ३, ५, ६, ७ और ८

७—वही, पृ० ५, ६ और ७

अन्त में उनका निष्कर्ष है कि मनुष्य यदि स्वार्थ की भावना का परित्याग कर औरों के लिए सुख के आयोजन में अपने को लगा दे तो आनन्द का अनुभव किया जा सकता है।[1]

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोल्डस्मिथ, पोप और पांडेय जी के निष्कर्ष बहुत कुछ एक से हैं। गोल्डस्मिथ ने, अपने इस जीवन-दर्शन को, प्रारम्भ में ही यह कहकर स्पष्ट कर दिया है, कि संसार में, वास्तव में, वही व्यक्ति बुद्धिमान है जिसके उद्योग से मनुष्य मात्र को सर्वाधिक सुख प्राप्त हो तथा जो निरन्तर इसी विचार में तत्पर रहे।[2] पोप ने इसी प्रकार के प्रयास को पुण्य कर्म की संज्ञा दी है।[3] पांडेय जी ने उसे औरों के सुख के लिए अपने जीवन का पूर्ण समर्पण कहा है।[4]

गोल्डस्मिथ और पोप के इस प्रभाव के विवेचन के पश्चात्, जब हम पांडेय जी की अन्य रचनाएं उठाते हैं, तो उनकी 'मेवाड़ गाथा' पर हमें मेकॉले के 'लेज़ ऑफ एन्शेंट रोम' का प्रभाव दिखाई देता है। मेकॉले ने अपनी इस काव्य रचना में, रोम के प्राचीन वीर-गीतों से प्रेरणा लेकर, अंग्रेजी भाषा में उन्हें प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था। मेकॉले के इस काव्य-ग्रंथ में प्रारम्भ में चार वीर-गाथाएं थीं : प्रथम वीर-गीत 'होरेशस' में, इसी नाम के वीर पुरुष द्वारा, रोम पर टस्कनों के आक्रमण के समय, एक पुल की साहस पूर्ण सुरक्षा का वर्णन है; दूसरे वीर-गीत 'दि बैटिल ऑफ लेक रेजिलस' में, रोम के लोगों की, देवताओं की सहायता से, लातनी लोगों पर विजय का वर्णन है; 'वर्जिनिया' में एक ऐसे मार्मिक प्रसंग का वर्णन है, जिसमें एक पिता अपनी पुत्री की सम्मान-रक्षा के लिए, उसका वध कर डालता है; चतुर्थ गाथा में रोम के लोगों के सम्बन्ध में एक दृष्टिहीन सन्त का भविष्य कथन है। मेकॉले ने आगे चल कर अपने इस ग्रन्थ में दो गाथाएं और जोड़ी थीं : जिनमें से एक में फ्रान्स के एक ऐतिहासिक युद्ध का विवरण है; और दूसरे में स्पेन के इतिहास प्रसिद्ध जहाजी बेड़े आर्मडा के आने पर इंग्लैंड के लोगों के मन में जागृत हुई भावनाओं का वर्णन है। इस प्रकार इन नई गाथाओं का सम्बन्ध पुरातन रोम से किसी प्रकार नहीं है। मेकॉले के इस ग्रंथ का 'मेवाड़ गाथा' पर प्रभाव भी पहली चार वीर-कथाओं तक ही सीमित है।

१—लोचन प्रसाद पांडेय : 'प्रवासी', पृ० १३

२—गोल्डस्मिथ : 'दि ट्रेवलर', पृ० ४३-४४

३—पोप : 'एसे ऑन मैन', पृ० ३८७

४—लोचन प्रसाद पांडेय : 'प्रवासी', पृ० १२

लोचन प्रसाद पांडेय की 'मेवाड गाथा' में मध्य युग के राजपूत वीरों की असीम साहसिकता तथा अतुल पराक्रम के वर्णन हैं। प्रारम्भ में विषय प्रवेश है, जिसमें काव्य-ग्रन्थ के प्रमुख रस देश-भक्ति की भावना का वर्णन है। उसके बाद बारह वीर-कथाएँ है, जिनके, शीर्षक हैं—'आत्मत्याग', 'दुर्ग द्वार', 'आदर्श राज-भक्ति', 'प्रतापी प्रताप का प्रण', 'अलौकिक धैर्य', 'धैर्य परीक्षा', 'स्वामि-भक्त-मंत्री', 'कृष्णा कुमारी', 'राणा संग्राम सिंह', 'राणा सज्जन सिंह', 'बाबू हरिश्चन्द्र' तथा 'प्रताप स्तव'। इन शीर्षकों से उनकी कथा-वस्तु स्वयं ही स्पष्ट है। केवल यह बताना शेष रह जाता है, कि इतिहास प्रसिद्ध हल्दी घाटी के युद्ध का वर्णन 'आदर्श राजभक्ति' शीर्षक वीर-गाथा में है। इस वीर-गाथा में उस प्रसंग का वर्णन है, जिसमे झाला मान सिंह ने, अपने प्राणों को संकट में डालकर, राणा प्रताप सिंह के जीवन की रक्षा की थी। अन्य गाथाओं में भी यह आत्म-बलिदान की भावना व्यक्त हुई है।

मेकॉले के काव्य-ग्रन्थ 'दि लेज़ ऑफ एन्शेन्ट रोम' तथा पांडेय जी की काव्य रचना 'मेवाड गाथा' के नामों में भी परस्पर काफी साम्य है। मेकॉले को रोम के साथ 'एन्शेन्ट' शब्द जोड़ने की आवश्यकता पड़ी है; किन्तु मेवाड तो मध्य युग के अपने राजपूत वीरों के साहस पूर्ण कार्यों के लिए ही प्रख्यात है, इसी लिए पांडेय जी को उसके साथ कोई विशेषण नहीं जोड़ना पड़ा है। मेकॉले की काव्य रचना में आत्म-बलिदान की भावना को अभिव्यक्ति मिली है;[1] और ऐसे वीर कार्यों का वर्णन है, जिनकी शत्रु भी सराहना करते हैं :[2] 'मेवाड़ गाथा' में भी इन्हीं दोनों भावनाओं को अभिव्यक्ति मिली है। आत्म-बलिदान और देश भक्ति की भावना का तो विषय-प्रवेश में ही वर्णन है;[3] और ग्रन्थ के मूल भाग में ये भावनाएं अन्तर्धारा के रूप में प्रवाहित हैं। विषय प्रवेश में ही, ऐसे साहसपूर्ण कार्यों की ओर संकेत किया गया है, विपक्ष के लोग भी जिनकी सराहना करते हैं।[4] मूल काव्य-रचना में भी यह भावना कई स्थलों पर अभिव्यक्त हुई है।[5]

पांडेय जी की 'मेवाड़-गाथा' मेकॉले के 'लेज' से कई स्थलों पर बहुत अधिक मिलती जुलती है। होरेशस जब, कई घण्टों तक पुल की रक्षा करने के अनन्तर, यह

१- मेकॉले : 'दि लेज़ ऑफ एन्शेंट रोम', पृ० ३२०-३३१

२—वही, पृ० ४७७-८४

३—लोचन प्रसाद पांडेय : 'मेवाड़ गाथा', पृ० ३

४—वही, पृ० ३

५—वही, पृ० २६

देखता है कि उसके पक्ष के लोगों ने पुल तोड़ दिया है, और शत्रु नदी को पार करके रोम नहीं पहुंच सकते, तो टाइबर नदी को, पिता टाइबर कह कर सम्बोधित करता हुआ, अपना जीवन उसे अर्पित कर देता है।[1] 'मेवाड़ गाथा' में भी इसी प्रकार का एक प्रसंग है : झाला मानसिंह जब युद्ध-क्षेत्र में घायल होकर गिरने लगते हैं, तो वे भी धरती को, माता सम्बोधित करते हुए, अपना शरीर अर्पित कर देते हैं। रोम[2] में इस प्रकार के वीरता-पूर्ण और साहसिक कार्यों के दर्शन रोम में उस समय हुए थे जब वहां प्रजातन्त्र की व्यवस्था थी।[3] पांडेय जी ने इसी भावना को अवतरित करने के लिए 'राणा-संग्रामसिंह' शीर्षक एक गाथा लिखी है। राणा संग्रामसिंह अपने गुप्तचरों के द्वारा अपने शासन के सम्बन्ध में जनसाधारण का मत संग्रह करते थे; और फिर जन-रुचि के अनुरूप अपनी राजनीति में परिवर्तन कर दिया करते थे। इस प्रकार पांडेय जी ने राणा संग्रामसिंह को एक गणतन्त्रवादी के रूप में प्रस्तुत किया है।[4]

मेवाड़ को भी, रोम की भांति, भाग्य-चक्र की प्रेरणा से दुर्दिन देखने पड़े; किन्तु उस समय भी पुराने वीरों की गाथाएं, जनसाधारण को, साहसिक कार्यों के लिए प्रेरणा प्रदान करती रहीं। मेकॉले ने रोम के दुर्दिन का एक चित्र 'वर्जीनिया' शीर्षक गाथा में प्रस्तुत किया है, जिसमें एक पिता, अपनी पुत्री की सम्मान रक्षा के लिए अपने हाथों से ही उसका वध कर डालता है। पांडेय जी ने, 'कृष्णा कुमारी' शीर्षक गाथा में, इसी प्रकार का एक प्रसंग लिया है। इन दोनों गाथाओं में थोड़ा सा अन्तर भी है। 'वर्जीनिया' के सम्मान की रक्षा के लिए उसके पिता को उसका वध करना पड़ा था; कृष्णा कुमारी ने अपनी तथा अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए स्वयं ही विषपान किया है। कृष्णा कुमारी के पिता भीमसिंह ने, पुरातन गौरव का स्मरण करते हुए, प्रस्तुत परिस्थितियों की ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति पर आंसू बहाए हैं।[5] यह प्रसंग भी 'वर्जीनिया' में वर्णित इसी भाव धारा की पंक्तियों से बहुत मिलता-जुलता है।[6]

पाण्डेय जी की 'मेवाड़ गाथा' का, यह मेकॉले के 'लेज़' से बहुत मिलता-जुलता रूप, वास्तव में पूर्णतः अंग्रेजी कविता के अनुकरण के कारण ही नहीं है। पाण्डेय जी

१—मेकॉले : दि लेज़ ऑफ एन्शेंट रोम', पृ० ४६५-६६

२—लोचन प्रसाद पाण्डेय : 'मेवाड़ गाथा', पृ० ३३

३—मेकॉले : 'दि लेज़ ऑफ एन्शेंट रोम', पृ० २५८-६३

४—लोचन प्रसाद पाण्डेय : 'मेवाड़ गाथा', पृ० ७२

५—वही, पृ० ६५-६६

६—मेकॉले : 'दि लेज़ ऑफ एन्शेंट रोम', 'वर्जीनिया', पृ० १०१-११०

स्वयं काव्य प्रतिभा से सम्पन्न थे, और राजपूतों की वीरता का प्रसंग भी काव्य प्रेरणा का 'अच्छा स्रोत है।'[1] इन्हीं दोनों प्रेरणाओं से इस काव्य रचना में मौलिकता की पर्याप्त रूप में अभिव्यक्ति हुई है। पाण्डेय जी संस्कृत काव्य की परम्परा में पोषित हिन्दी के कवि थे। संस्कृत साहित्य में वीरों के चार प्रकार—शूर वीर, दानवीर, कर्मवीर, और दयावीर स्वीकार किये गये हैं।[2] पाण्डेय जी ने अपने इस ग्रन्थ में इनमें से तीन के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

अंग्रेजी प्रभाव पाण्डेय जी की अन्य काव्य रचनाओं पर भी मिलता है। पहले हम उनके काव्य संकलन 'कविता कुसुम माला' (१९१०) में संकलित उनकी अपनी रचनाओं को लेते हैं। इन काव्य रचनाओं में वे श्रीधर पाठक की भाँति, और कहीं-कहीं उनसे भी अधिक, प्रकृति-प्रेम से ओत-प्रोत दिखाई देते हैं। उनका यह प्रकृति-प्रेम अंग्रेजी के दो कवियों टॉमसन और गोल्डस्मिथ से प्रभावित है। प्रकृति का यथार्थ चित्रण, जिसमें उसके आनन्द-दायक और भयोत्पादक दोनों ही रूप आ जाते हैं, पाण्डेय जी ने टॉमसन से ही सीखा है। गोल्डस्मिथ का प्रभाव ग्रामीण जीवन के मर्मस्पर्शी चित्रण में है।

पाण्डेय जी की प्रकृति संबन्धी काव्य रचनायें 'पल्ली-चित्र', 'वर्षा ऋतु में ग्राम दृश्य', 'वसन्त-स्वागत', 'वर्षा', 'हेमन्त', 'प्रभात', 'मध्याह्न', तथा 'संध्या' हैं। इन काव्य रचनाओं में ग्रामीण जीवन के जो चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें तथा गोल्डस्मिथ की रचनाओं में प्राप्त इसी प्रकार के चित्रों में, पर्याप्त अन्तर है। फिर भी गोल्डस्मिथ का प्रभाव पाण्डेय जी की रचनाओं पर स्पष्ट झलकता है। गोल्डस्मिथ की काव्य रचनाओं में, उस ग्रामीण जीवन के संस्मरण हैं, जब औद्योगीकरण का प्रसार जिसकी सजगता और वेग को विनष्ट नहीं कर पाया था। पाण्डेय जी ने भी उस ग्रामीण जीवन का चित्रण किया है, जिसमें हास्य और विनोद की भावनाएँ तरंगित हो रही थीं। गोल्डस्मिथ ने 'दि डेजर्टेड विलेज' में पहले के ग्रामीण जीवन के सुखद संस्मरण दिये हैं; और प्रस्तुत परिस्थितियों में उसे विच्छिन्न होते हुए देखकर आँसू बहाये हैं। पाण्डेय जी ने ग्रामीण जीवन की केवल मधुर और आनन्दमय धारा का चित्रण किया है। फिर भी दोनों काव्य रचनाओं में कई स्थलों पर बहुत निकट का साम्य है।

१—राजपूतों के वीररसात्मक-कृत्यों में, पुरुषों के साथ स्त्रियों के भी पराक्रम के वर्णन हैं; किन्तु रोम की गाथाओं में केवल पुरुषों के शौर्य के प्रसंग हैं।

२—विद्यापति : 'पुरुष परीक्षा'

पाण्डेय जी की इन प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं पर टॉमसन का प्रभाव, विशेष रूप से उनकी ऋतु-वर्णन सम्बन्धी कविताओं में मिलता है। पाण्डेय जी ने वर्षा, हेमन्त और वसन्त, इन तीन ऋतुओं पर काव्य रचनाएँ लिखी हैं। अपनी 'वर्षा' शीर्षक रचना में उन्होंने, प्रकृति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, तथा यह दिखाया है कि बादलों से बरसती हुई जलधारा ने किस प्रकार, प्रखर ताप से मुक्ति दी है. और इस जगत में जड़ और चेतन दोनों में ही एक नये जीवन की भावना का संचार किया है। वर्षा के प्रभाव से धरती ने तो अपना रूप ही बदल दिया है। 'वसन्त' का वर्णन करते हुए प्रारम्भ में उसका स्वागत किया गया है; और फिर प्रकृति के क्षेत्र में इस ऋतु के द्वारा लाये गये परिवर्तनों का वर्णन है। पाण्डेय जी ने वसन्त कालीन प्राकृतिक शोभा के जो चित्र प्रस्तुत किये हैं, वे कई स्थलों पर टॉमसन की 'स्प्रिंग' शीर्षक काव्य रचना से मिलते हुए हैं।[1] पाण्डेय जी की इन रचनाओं में प्रकृति के आनन्द की भावना जगाने वाले रूप का ही वर्णन है। प्रकृति का दूसरा स्वरूप, जो हमारे हृदय में भय की भावना का संचार करता है, उनकी 'हेमन्त' शीर्षक रचना में प्रकट हुआ है। इस काव्य रचना में उन्होंने यह दिखाया है कि शीत के प्रकोप ने दीन-हीन लोगों के लिये जीवन यापित करना अत्यन्त दुष्कर कर दिया है।[2] टॉमसन की रचनाओं में भी दीन-हीनों के प्रति इसी प्रकार की सम्वेदना और सहानुभूति की भावना देखने को मिलती है। हो सकता है, पाण्डेय जी ने टॉमसन से जहाँ प्रकृति के यथार्थ चित्रण की प्रणाली ग्रहण की थी, उसी के साथ यह सहानुभूति की भावना भी ग्रहण की हो।

पाण्डेय जी के प्रभात, मध्याह्न तथा संध्या के वर्णनों में टॉमसन के साथ वर्ड्सवर्थ का भी कुछ प्रभाव प्रतीत होता है। प्रारम्भ की कुछ पंक्तियां, ग्रे की 'एलेजी' की प्रारम्भिक पंक्तियों से भी कुछ मिलती-जुलती हैं।[3] इन रचनाओं में टॉमसन का प्रभाव प्रकृति के यथार्थ चित्रण[4]; तथा दीन-दुखियो के प्रति सम्वेदना और सहानुभूति की भावना में है।[5] वर्ड्सवर्थ का प्रभाव, उन स्थलोंपर है, जिनमें कवि प्राकृतिक शोभा में

१—'दि कम्प्लीट पोएटिक वर्क्स ऑफ जेम्स टॉमसन', ऑक्सफोर्ड संस्करण (१९०८), 'दि सीजन्स', 'स्प्रिंग', पंक्तियां ८७-८९

२—लोचन प्रसाद पांडेय : 'कविता कुसुम माला', 'हेमन्त', पृ० ८७-८८

३—वही, 'संध्या', पृ० ९२

४—वही, 'प्रभात', पृ० ९४-९५

५—वही, 'मध्याह्न', पृ० ९६

अपने को पूर्णतः खोया हुआ सा पाता है। इस प्रकार का एक स्थल है :

'हुए अस्तंगामी प्रखर कर हो शान्त रवि के।
लगे नाना दृश्य प्रबल हरने चित्त कवि के ।।'[1]

एक स्थान पर कवि ने, वर्ड्सवर्थ के कथन:

'My heart leaps when I behold
A rainbow in the sky.'[2]

की भावना को पूर्णतः प्रतिध्वनित किया है :

'लख कर नभ में बादल रंग विरंग
पुलकित हो उठता है कैसा अंग'[3]

प्रकृति की शोभा में कवि का मन इतना अधिक रम गया था, कि अपनी 'भारत वन्दना' शीर्षक एक देश-भक्ति पूर्ण काव्य रचना में वह, अपनी मातृभूमि की नैसर्गिक शोभा का ही वर्णन करता रहा है।

पांडेय जी की काव्य रचनाओं पर अंग्रेजी प्रभाव कुछ और रूपों में भी मिलता है। उन्होंने सॉनेट एवं अमित्राक्षर छन्द के भी कुछ प्रयोग उपस्थित किये। अंग्रेजी के सॉनेट नामक काव्य रूप का प्रथम प्रयोग, श्रीधर पाठक ने अपने गोल्डस्मिथ के 'दि ट्रेविलर' नामक काव्य रचना के रूपान्तर के समर्पण में प्रस्तुत किया था। पाश्चात्य साहित्य में यह काव्य-रूप प्रारम्भ में संगीतात्मक था; किन्तु अंग्रेजी साहित्य तक आते आते उसकी संगीतात्मकता समाप्त हो गई थी; केवल उसकी अन्त्यानुप्रास की एक विशेष प्रकार की प्रणाली ही शेष रह गई थी, और वह भी कुछ परिवर्तनों के साथ। अभिव्यंजना के इस विधान में, अपने मूल रूप में जो सद्यःभाव एवं नवोन्मेष था, समय के विकास के साथ वह खो गया है; और अब उसमें एकान्त चिन्तन की वृत्ति प्रगट होती है। पाण्डेय जी के सॉनेटों, 'बाल्य-स्मृति और 'श्मशान' में भी, चिन्तन परंपरा को ही अभिव्यक्ति मिली है। अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग भी, पाण्डेय जी के काव्य संग्रह 'माधव मंजरी' (१९१४) की 'पल्ली कवि' शीर्षक रचना में है।

पाण्डेय जी की काव्य रचनाओं का यह अध्ययन उन्हें प्रकृति के कवि के रूप में

१—लोचन प्रसाद पांडेय : 'कविता कुसुम माला', 'प्रभात,' पृ० ९२

२—वही, 'संध्या', पृ० ९५

३—वही, 'भारत वन्दना', पृ० १७-१८

४—लोचन प्रसाद पांडेय : 'माधव मंजरी', 'पल्ली कवि', पृ० ४८-५०।

प्रगट करता है। प्रकृति के जिन पक्षों ने उन्हें विशेष आकृष्ट किया है, उनकी 'पल्ली कवि'[१] शीर्षक रचना से उनका परिचय मिलता है। पांडेय जी के मन में, गोल्डस्मिथ की भाँति, ग्रामीण जीवन के प्रति अगाध प्रेम था; उसकी सहजता और प्रकृति के साथ सामंजस्य उन्हें विशेष प्रिय थे। उनकी रचनाओं में ग्रामीण जीवन की बहुत अधिक दृश्यावलियां प्रस्तुत की गई हैं। पाण्डेय जी की अभिव्यंजना प्रणाली में भी, उनके प्रकृति के प्रति अपरिमित स्नेहभाव की झलक है। अपने इस प्रकृति प्रेम को उन्होंने टॉमसन, गोल्डस्मिथ तथा वर्ड्सवर्थ के अध्ययन से और अधिक सम्पुष्ट किया है। अंग्रेजी के इन कवियों का प्रभाव उनकी रचनाओं में पर्याप्त स्पष्ट है।

'श्रीवर' कृत 'चारण'

'श्रीवर' जी ने अपनी इस कृति को 'एक काल्पनिक कथा-काव्य' कहा है।[२] इस ग्रन्थ के अन्दर के प्रथम पृष्ठ पर रचना, लेखक एवं प्रकाशक के नाम के साथ, शेक्सपियर की निम्नलिखित पंक्तियां उद्धृत हैं :

The poet's eye in a fine frangy rolling
Doth glance from heaven to earth and from earth to heaven
And, as imagination bodies forth,
The forms of things unknown the poet's pen.
Turns them to shape and gives to airy nothing
A local habitation and a name.[३]

कवि ने इन पंक्तियों के मूल भाव को अपनी रचना में पूर्णतः आत्मसात किया है। यद्यपि कवि का कथन है कि उसकी इस रचना के केवल दसवें परिच्छेद में ही पर वाल्टर स्कॉट के 'ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल' का प्रभाव है,[४] तथापि अंग्रेजी के इस

१—लोचन प्रसाद पांडेय : 'माधव मंजरी', 'पल्ली कवि', छन्द सं० ५
२—श्रीवर : 'चारण', मुख पृष्ठ
३—शेक्सपियर : 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम', अंक ५ दृश्य १ पं० १२-१७
४—[illegible]

And, as imagination bodies forth,
The forms of things unknown the poet's pen.

कथा काव्य का संस्पर्श इस काव्य-ग्रंथ के सम्पूर्ण संविधान पर दृष्टिगोचर होता है। कुछ स्थानों पर भाव-साम्य भी है। इसी प्रकार का साम्य अनेक स्थलों पर मेकॉले की रचना 'लेज़ ऑफ एन्शेन्ट रोम' से भी है। प्रारम्भिक अंश पर गोल्डस्मिथ का भी कुछ प्रभाव प्रतीत होता है। किन्तु इन प्रभावों से ओत-पोत होते हुए भी 'चारण' एक मौलिक कथा-काव्य है। कवि जो कुछ पढता है, उसका प्रभाव उसकी अपनी रचनाओं में तो प्रगट होता ही रहता है; जो अनुकर्त्ता होते हैं, उनकी रचनाओं में ग्रहण स्पष्ट दृष्टिगत है। मौलिक प्रतिभा सम्पन्न कवि ग्रहण मे भी आत्मतत्व की प्रतिष्ठा कर देते हैं। 'चारण' इसी प्रकार की मौलिक कृति है।

'श्रीवर' जी के इस कथा काव्य के प्रारम्भ में मंगला चरण नहीं है : यह भारतीय काव्य परम्परा से विद्रोह स्वरूप है। इस काव्य का प्रारम्भ सीधे एक राजपूत युवक के जंगल में भटक जाने के प्रसग से होता है। मार्ग खोजते-खोजते बहुत थक जाने पर उसे एक कुटिया दिखाई देती है। उसके द्वार पर एक प्रकाशमय व्यक्तित्व का वयोवृद्ध व्यक्ति बैठा हुआ है। वह उस नवयुवक को आश्रय देता है, और कंद मूल फल ग्रहण करने के लिए कहता है। गोल्डस्मिथ की रचना 'हरमिट' का प्रारम्भ भी ठीक ऐसे ही प्रसंग से है।

इस काव्य के दूसरे परिच्छेद में, वयोवृद्ध व्यक्ति ने अपने को चारण बताया है। अपने इस परिचय में उसने जो कुछ कहा है,[1] वह स्कॉट द्वारा दिये गये अपने 'मिन्सट्रेल' के परिचय[2] से पर्याप्त मिलता जुलता है। वह वृद्ध व्यक्ति चारण है और एक साधारण-सी झोपड़ी में रहकर पुराने योद्धाओं की कथाएं गाता है : स्कॉट की रचना का वाचक भी ऐसा ही चरित्र है।[3] स्कॉट का मिन्सट्रेल वयोवृद्ध होने के कारण, कथा कहते-कहते बीच २ में थक कर रुक जाता है;[4] चारण भी वार्धक्य के कारण इसी प्रकार रुकता २ अपनी कथा कहता रहा है।[5] चारण ने, चांदनी रात के मधुर मादक वातावरण में अपनी कथा आरम्भ की है। चांदनी रात का यह शब्द-चित्र,[6] स्कॉट की रचना में प्राप्त रात्रि की शोभा के विवरण[7] से मिलता जुलता है।

१—श्रीवर : 'चारण, पृ० ४-५

२—सर वाल्टर स्कॉट : 'दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल', पृ० १-२

३—वही, पृ० ४८।

४—वही, पृ० ८।

५—श्रीवर : 'चारण', पृ० २६-३१

६—वही, पृ० ८।

७—सर वाल्टर स्कॉट : 'दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल, द्वितीय सर्ग, छन्द सं० १

इसी प्रकार आठवें परिच्छेद में प्रेम के सम्बन्ध में प्रगट किए गये मनोभाव[1] भी स्कॉट के इसी विषय पर अभिव्यक्त विचारों[2] के पर्याप्त समान हैं। दशम् परिच्छेद में चारण के निधन पर शोकोदगार प्रकट करते हुए, सम्पूर्ण प्रकृति शोक-विह्वल दिखाई गयी है।[3] स्कॉट ने भी एक स्थल पर इस प्रकार की भावनाएं अभिव्यक्त की है;[4] और उनका प्रभाव 'चारण' के कवि ने इस स्थल के विषय में स्वयं ही स्वीकार किया है।[5] हिन्दी के इस काव्य-ग्रन्थ की स्कॉट की रचना से इतनी अधिक समानता, कवि के अंग्रेजी रचना से पूर्व परिचय के कारण निश्चित रूप से उसके प्रभाव स्वरूप कही जा सकती है।

हिन्दी के इस कथा-काव्य का विषय, लोचन प्रसाद पांडेय की 'मेवाड़ गाथा' की भांति, राजपूतों की शौर्य एवं वीरत्व का वर्णन है; और जिस प्रकार 'मेवाड़ गाथा' पर मेकॉले की रचना, 'लेज़ ऑफ एन्शेंट रोम' का प्रभाव है; चारण पर भी उसका कुछ प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। अत्यधिक साम्य के दो स्थल हैं : एक तो वह, जिसमें कवि ने स्त्रियों द्वारा, जयमल और पत्ता के वीर-कार्यों के गायन की बात कही है;[6] और दूसरा, जहां अमरसिंह के घोड़े की मूर्ति के निर्माण का विवरण है।[7] मेकॉले की 'दि लेज़ ऑफ एन्शेन्ट रोम' का प्रभाव इन दोनों ही स्थलों पर है।

श्रीवर जी ने अपने इस कथा-काव्य की समाप्ति, एक समाधि-लेख से की है। राजपूत नवयुवक ने, चारण के देहावसान के अनन्तर, उसके लिए चिता सजायी है, और उसके शरीर के भस्मीभूत हो जाने पर, उसके फूलों को एक मंजूषा में रखकर, उनके ऊपर एक समाधि का निर्माण कराया है। उसी समाधि पर शिला-लेख है :

"पथिक खड़ा हो क्षणिक यहां पर कर दर्शन निज जन्म सुधार
हुई धन्य यह भूमि सुकवि का शेष हृदय अपने में धार।
इस पावन स्थान बीच चारण की भस्म उपस्थित है
मातृभूमि की सुखद गोद में उसका शेष सुरक्षित है
वह जग को हिन्दू वीरों की पावन कीर्ति सुनाता था।

१—श्रीवर : 'चारण', पृ० २८
२—सर वाल्टर स्कॉट : 'दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल', तृतीय सर्ग, छन्द सं० ११
३—श्रीवर: 'चारण', पृ० ३५
४—सर वाल्टर स्कॉट: 'ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल,'कैन्टो फिफ्थ, स्टेन्जा १और१२
५—श्रीवर: 'चारण', प्राक्कथन
६—वही, पृ० १४
७—वही, पृ० २६

जननी जन्म-भूमि यश गाते अपनी आयु बिताता था।
उसकी नस-नस में व्यापित था धर्म स्वजाति देश अभिमान
निशिवासर गाया करता था जिनका यह कल कीरति गान।
उसका जीवन चन्दन सा था दिव्य परम पर उपकारी
सज्जन गुण की खानि रहा वह कवि कुल मुकुट शोक हारी।
पथिक झुका सिर इस समाधि पर थोड़े फूल चढ़ाता जा
वृद्ध अमर कवि को थोड़ा सा आदर मान दिखाता जा[1]"

पथिक को सम्बोधित यह समाधि-लेख, निश्चित रूप से अंग्रेजी प्रभाव से प्रेरित है; हिन्दी में इस प्रकार का प्रयास पहले नहीं हुआ था। मध्य-युग की समाधियों या मकबरों पर केवल उनके निर्माता, निर्माण-काल एवं जिनकी स्मृति में वे बनवाये गये हैं, उनके नाम ही का उल्लेख है। अंग्रेजी में इस प्रकार की काव्योक्तियों की परम्परा रही है, इसलिए इन पंक्तियों पर अंग्रेजी प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है।

'चारण' के कवि ने एक दो स्थलों पर प्रकृति-चित्रण की, विशेष रूप से भू-खण्ड-चित्रण की विधि का प्रयोग किया है। यह प्रकृति चित्र दृष्टव्य है:

"हुई घूमते उसको सन्ध्या एक तलैटी दिखलायी
सुन्दरता निज जहां प्रकृति ने भली भांति थी दरसायी।
तीन ओर थे दुर्गम पर्वत हरियाली जिन पर छायी
जिनके शिखरों पर किरीट सी छवि पड़ों ने थी पायी।
भांति भांति के रंग बिरंगे खिले फूल छवि पाते थे
लाखों पारिजात भी जिनके सम्मुख शीश झुकाते थे।
वहां बीच में वक्र चाल का झरना झर झर झरता था
× × × ×
आस-पास फल लदे वृक्ष को देख भूख लग आती थी,
ईश्वर की अपार महिमा की याद हृदय को आती थी।"[2]

अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य का भी कुछ प्रभाव 'चारण' पर है। स्वच्छन्दतावाद जीवन को भावना और कल्पना से अनुरंजित करके देखने का दर्शन है। यह जीवन-दर्शन प्रकृति के प्रति स्नेह भाव जगाता है, पुरातन के प्रति अनुरक्त करता है, और आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन देता है। अंग्रेजी काव्य में स्वच्छन्दता-

---

१—श्रीधर: 'चारण', पृ० ३७।
२—वही, पृ० १२

ादी प्रवृत्तियों के अभ्युदय से प्रकृति के प्रति स्नेह भाव की अभिवृद्धि हुई थी, और ोकोत्तर तत्वों के प्रति भी अनुराग सजग हुआ था। अंग्रेजी काव्य के सम्पर्क से, हिन्दी कवियों के मन में प्रकृति स्नेह की भावना पर्याप्त बढ़ी थी; तथा लोकोत्तरता के प्रति ी आकर्षण जगा था। यह हम पहले कह आये है, कि स्कॉट की प्रेरणा से कवि ने ारण के निधन पर सम्पूर्ण प्रकृति को शोक विह्वल दिखाया है। मनुष्य के हर्ष-वेषाद में प्रकृति की यह सहानुभूति अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रमुख वृत्तियों में से है; और इस कथा-काव्य में उसके और भी कई उदाहरण हैं। अपना रिचय देते हुये चारण ने, नवयुवक से कहा है :

"तारों पर जब बीन के मेरे चंचल उंगली पड़ती है
आप पास की कली अधखिली चट से तब खिल पड़ती है।
हो प्रसन्न मेरे रागों से सरिता राग मिलाती है
मधुर समीर पक्षियां होकर मेरी तान सुनाती है।"[१]

कल्पना का यह स्वच्छन्द विहार, उन स्थलों पर और भी दर्शनीय है जहां कवि कॉलरिज की भाँति स्वप्न-द्रष्टा हो उठा है। वयोवृद्ध चारण, यह सुनाने के अनन्तर, कि किस प्रकार कमलावती ने अपने पति की प्राण-रक्षा के लिए, उनके शरीर का विष चूस लिया था, बड़ा श्रमित हो उठा है, और उसकी आंखों में स्नेहाश्रु उमड़ आये हैं। इसी भाव-विह्वल स्थिति में वह स्वप्न-द्रष्टा हो उठा है, और उसे अपनी पत्नी और पुत्री के आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए, अपने को आहुति कर देने की दृश्यावली दिखाई देने लगी है :

"प्रिय गृहणी का चित्र कि जिसने देख मुगल का नगर प्रवेश
किया अग्नि में कूद समर्पण प्राण हृदय में रख देवेश।
उस ज्वाला की धधक हृदय में आज तलक धधका करती
जला रही है हृदय जलाकर राख उसे वह है करती।
देखा उसको भास हुआ मानो कन्या का मुख उज्ज्वल
उसे देख पड़ता उस स्थल पर जहां बहे झरना निर्मल।
साहस द्योतक वही शुभ्र मुख वही नेत्र जो दुर्दिन भी
विचलित हुए न, सिवा प्रेम के रस जिनमें नहीं बहा कभी।
वही ललाट केश वे काले वे ही कोमल कर जिनने
बार एक पकड़ी कटार थी निज सतीत्व रक्षा करने।

१—श्रीधर : 'चारण', पृ० ७

जिसने अपने हाथ रंगे थे बार एक रक्त-द्वारा
दुष्ट मुगल अत्याचारी को जिसने निज कर से मारा।"[1]

स्वप्न की यह दृश्यावली, कॉलरिज के 'दि राइम ऑफ दि एन्शेन्ट मेरीनर' की दृश्यावली से पर्याप्त भिन्न है। वह तो पूर्णतः कल्पना प्रसूत थी, यह यथार्थ है। इस अध्ययन के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है, कि 'चारण' के कवि ने अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रधान प्रवृत्तियों को आत्मसात तो किया है, किन्तु उन्हें अपनी प्रतिभा के अनुरंजन के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है।

जयशंकर प्रसाद

पसाद जी की रचनाओं में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिया और भी अधिक निखर उठी हैं। उन्होंने आत्मानुभूति को अधिक सजगता के साथ अभिव्यक्ति दी है; एवं कल्पना को स्वच्छन्द विहार का अवसर दिया है। प्रकृति उनके लिए इस जगत की कठोरताओं से पलायन का अवलम्ब रही है। पुरातन के प्रति अनुराग भी उनकी रचनाओं में घनीभूत हो उठा है। रहस्यवादी अनुभूतियाँ भी उनमें अधिक प्रगट हुई हैं।

प्रसाद ने अपना कवि जीवन ब्रजभाषा की रचनाओं से प्रारम्भ किया था, किन्तु कुछ ही समय बाद वे खड़ी बोली में लिखने लगे। उनकी आरम्भिक रचनाएं काशी की 'इंदु' पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। पुस्तक रूप मे उनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'प्रेम राज्य' (१९१८) है। इसके पूर्व लिखित उनकी कविताए, अन्य साहित्यिक रूपों के प्रयोगों के साथ 'चित्राधार' (१९१८) नाम से प्रकाशित हुई थां।[2] 'कानन कुसुम' (१९१२) उनका प्रथम काव्य संग्रह था। उनकी अन्य काव्य पुस्तकें, जिन पर हमें यहां विचार करना है: 'प्रेम पथिक' (१९१३), 'महाराणा का महत्व' (१९१४), एवं 'झरना'[3] (१९२७) है। ये सभी रचनाए, सर्व प्रथम 'इन्दु' पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। हम पहले कह आये हैं, कि इस पत्रिका के प्रथम अंक में, स्वच्छन्दवाद का घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ था। हिन्दी कविता में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का समारम्भ, इस पत्रिका से, और प्रसाद की इन रचनाओं से ही हुआ।

१—श्रीधर : 'चारण', पृ० ३२-३३

२—प्रसाद जी के 'चित्राधार' संग्रह में उनकी बीस वर्ष की अवस्था तक रचनायें समृद्धित हैं : प्रसाद जी का जन्म सन् १८८९ में हुआ था, इस प्रकार उसमें सन् १९०९ तक की रचनाएँ हैं।

३—इस संग्रह में प्रसाद जी की सन् १९१४ से १७ तक की रचनाएँ हैं।

प्रसाद जी की प्रथम प्रकाशित काव्य-पुस्तक 'प्रेम-राज्य' की संज्ञा अंग्रेजी, शब्दावली 'किंगडम ऑफ लव' का अनुवाद प्रतीत होती है। इस काव्य ग्रन्थ का कथा सूत्र, अपने बाह्य-विधान में ऐतिहासिक प्रतीत होते हुए भी, काल्पनिक है : दक्षिण में विजय नगर और अहमदाबाद राज्यों की बीच सन् १५६५ में लड़ा गया युद्ध ही, इतिहास की दृष्टि से सत्य है। कहानी साधारण है; केवल अभिव्यंजना के विधान में, स्वच्छन्दतावादी प्रवृतियों का उपयोग ही दर्शनीय है। प्राकृतिक शोभा के वर्णन के साथ इस काव्य-ग्रन्थ का आरम्भ होता है; और उप संहार में विश्व-प्रेम की स्वीकृति है। अभिव्यंजना का स्वरूप भी, इतिवृत्तात्मक नही, वरन् भावात्मक है। इस प्रकार इस रचना के अंतरंग एवं बहिरंग दोनों ही पर स्वच्छन्दतावाद का अनुरंजन है।

प्रसाद जी की 'चित्राधार' में संगृहीत सभी रचनाएँ जो उनकी प्रारम्भिक कृतियां हैं, व्रजभाषा में हैं; किन्तु उनमें नवीन भाव-जगत मुखरित हुआ है। अधिकांश रचनाएँ प्रकृति परक हैं। उनमें, कुछ में तो विभिन्न ऋतुओं के वर्णन हैं, जैसे 'शारदीय शोभा,' 'रसाल-मंजरी', 'वर्षा में नदी कूल', 'नीरद', 'नीरद', 'इन्द्र-धनुष', और 'शरद पूर्णिमा', तथा कुछ में दिवस के विभिन्न प्रहरों की प्राकृतिक शोभा का वर्णन है, जैसे 'प्रभात', 'रजनी', 'चन्द्र', 'प्रभात-कुसुम', 'संध्या-तारा' और चन्दोदय। इस संग्रह की दो रचनाओं 'नीरव-प्रेम' और विस्मृत-प्रेम' में स्नेहभाव की महिमा गायी गई है। 'कल्पना-सुख' शीर्षक में, विषयानुरूप कल्पना के आनन्द का विवरण है।

प्रसाद की प्रारम्भिक कृतियों के इस संकलन में, उनका 'प्रकृति सौन्दर्य' शीर्षक एक निबन्ध भी है। वह सर्वप्रथम, 'इन्दु' की प्रथम कला, प्रथम किरण में प्रकाशित हुआ था : उसमें प्रसाद के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण का निर्वचन है। इस निबन्ध में प्रकृति का मानवी करण करके, उसे सम्बोधित करते हुए प्रसाद जी ने लिखा है कि वर्षा के विभिन्न विभागों में, वह जो दृश्य उपस्थित करती है, उनके लिए वे प्रेरणा-प्रद होते हैं। अन्त में प्रसाद जी का कथन है कि प्रकृति के सुखद एवं भयोत्पादक दोनों ही रूप उनके मन में विस्मय की भावना जगाते हैं। सम्पूर्ण निबन्ध का मूल सूत्र है कि प्रकृति के प्रांगण में जो कुछ भी सुन्दर है, वह उन्हें आत्म-विभोर एवं आह्लादित कर देता है। प्रसाद का यह प्रकृति-दर्शन उनकी रचनाओं के अनुशीलन से और भी स्पष्ट हो जायगा।

प्रसाद जी ने 'चित्राधार' में संगृहीत रचनाओं में, प्रकृति वर्णन में एक तो, भू-खण्ड चित्रण की पद्धति अपनायी है; और दूसरे, प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों को मानवीय चेतना से ओत-प्रोत कर दिया है। भू-खण्ड-चित्रण की पद्धति का उपयोग

'शरद पूर्णिमा'[1] और 'वर्षा में नदी का कूल'[2] शीर्षक रचनाओं में है। आन्तरिक स्पर्श से पुलकित शब्दावली में शरद पूनो की मधुर मादक शोभा का वर्णन मन को सचमुच आनन्द विभोर कर देता है।

'सुपुरब मांहि उग्यो छविधाम।
कला बिखरावत है अभिराम ॥'
अकास विभासत पूरन चन्द।
समीरन डोलत मन्द हि मन्द ॥
न बोलत हैं कछू कोकिल कीर।
सबै चुप साधि रहे धरि धीर ॥
कबौं हिलि जात अहैं द्रुम पात।
समीर जबै तिनमें सरसात ॥
सुधा बरसावत है नभ चन्द।
मनौ प्रकृती हिय धारि आनन्द ॥
सुमोहन मन्त्र सुधारि सराग।
बिखेरत है जग मांहि पराग ॥''[3]

प्रकृति का यह भावन शब्द-मित्र, स्वच्छन्दतावादी साहित्य-दर्शन से स्पंदित है। इसी दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण, प्रकृति प्रसाद जी को मानवीय चेतना से समन्वित प्रतीत हुई है। फिर भी अभी कवि के मन में, प्रकृति के दृश्यमान स्वरूप का सम्मोहन है, इसीलिए वह, इस रचना में फिर तथ्य-परक वर्णन की ओर अग्रसर हो उठा है।

"नदी, धरनी, गिरि, कानन देश।
सुछाजत हैं सबही नव भेश ॥
धरे सुख सों सबही शुभ रूप।
लखात मनोहर और अनूप ॥''[4]

इन पंक्तियों में यथा-तथ्य वर्णन की प्रवृत्ति तो है, किन्तु भाषा का सविधान कवि के मानसिक स्पर्श को लिए हुए है, और यह कवि की स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति के कारण है

भूखंड-चित्रण की पद्धति में ही लिखी गई दूसरी रचना, 'वर्षा ऋतु में नदी कूल'

१—जयशंकर प्रसाद : 'चित्राधार', पृ० १५६
२—वही, पृ० १५०
३—वही, पृ० १५६
४—वही, पृ० १५६

बंगला के त्रिपदी और अंग्रेजी के सॉनेट के सम्मिलित संविधान में है:—

"सघन सुन्दर मेघ मनोहर गगन सोहन हेरि।
धरा पुलकित अति अनन्दित रूप धर्‌यो चहुं फेरि॥
लता पल्लवित राजै कुसुमित मधुकर सो गुंजित।
सुखमय शोभा लखि मन लोभा कानन नव रंजित॥
बिज्जुलि मालिनि नव कदम्बिनि सुन्दर रूप सुधारि।
अमल अपारा नव जलधारा सुधा देत मनु ढारि॥
सुखद शीतल करन हीतल विमल अनिल धीर।
तरंगिनी कूल आइ अनुकूल चलत मेटत पीर॥
तरंग तरल चपल चपल लेत हिलोर अपार।
कूलन सों मिलि करत खिल-खिल तटन विस्तृत धार॥
वृत्ति वेगवति चलत ज्यों अति मनुज तावश होत।
तरंगिनि धारा चलत अपारा चारु कल कल होत॥
कूल तरु-श्रेनी अति सुख देनी सुन्दर रूप बिराजै।
वर्षा तटिनि के पट मनोहर चारु किनारी राजै॥" [1]

वर्षा काल में नदी की शोभा का यह वर्णन भी, स्वच्छन्दतावादी भावना से ओत-प्रोत है; उसी के कारण तो कवि ने वाह्य-दृश्यावली के साथ-साथ, अपने मनोजगत को भी झांकी दी है।

प्रकृति में मानवीय चेतना का संस्कार 'चित्राधार' की 'रसाल मंजरी', 'उद्यान लता', 'प्रभात कुसुम', 'नीरद' एवं 'सन्ध्या तारा' शीर्षक रचनाओं में है। इन कविताओं में मलयानिल, आम्र मंजरी, उद्यान लता, उसके निकट के वृक्ष, प्रभातिक कुसुम, बादल, एव सन्ध्या तारा का मानवीकरण कर दिया गया है। प्रकृति के विभिन्न रूपों को मानव-स्वरूप प्रदान करने की यह प्रवृत्ति, अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों की प्रेरणा से है।[2] इस संग्रह की एक रचना में कवि ने वर्ड्सवर्थ की भाति, मनुष्य

१—जय शंकर प्रसाद : 'चित्राधार', पृ० १५०

२—प्रकृति का मानवीकरण संस्कृत काव्य में भी बहुत स्थलों पर है : कालिदास का मेघदूत इस साहित्यिक प्रवृति का सबसे सुन्दर उदाहरण है। किन्तु यह मानवीकरण मानवीय क्रिया कलापों के प्रकरण में है। अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृति को आलम्बन रूप में ग्रहण कर, मानवीय रूप में देखा गया है। प्रसाद एवं अन्य आधुनिक कवियों का प्रकृति का मानवीकरण भी इसी कोटि का है; इसलिए उसे अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित कहा जा सकता है।

द्वारा प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों के विनाश के प्रयास के प्रति, विक्षोभ प्रकट किया है :

"सरिता सुकूलन में तापसी बने से तरु।
सरल सुभाव खड़े हृदय उदार ते॥
छाया देत काहू कू हृदय जिन तापति है।
तीछन दिवाकर ते दुखित दवारते॥
नवल प्रमोद सों करत हिय मोदमय
सुन्दर सुस्वादु फल देत निज डार ते॥
स्वारथ में मूढ़ नर थोड़े निज लाभ हेतु
तऊ ताहि काटत हैं कठिन कुठार ते॥"[1]

प्रसाद जी की रचनाओं में अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों से अनेक स्थलों पर पर्याप्त साम्य है; किन्तु यह सीधे अंग्रेजी कविता के अध्ययन से आया हुआ नहीं प्रतीत होता। प्रसाद जी की काव्य-भाषा पर, बंगला की आधुनिक काव्य-भाषा का पर्याप्त प्रभाव है। बंगला की आधुनिक कविता, इस समय तक, अंग्रेजी कविता के प्रभाव को ग्रहण कर चुकी थी; इसलिए यह पूर्णतः सम्भव है कि हिन्दी कविता में, अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य का प्रभाव, बंगला के माध्यम से आया हो। बंगला के दो आधुनिक कवियों माइकल मधु सूदन दत्त (१८२४-७३) और रवीन्द्रनाथ ठाकुर (१८६१ १६४१) ने आधुनिक हिन्दी कविता के विकास-क्रम को प्रभावित किया है। माइकल का प्रभाव, मैथिली शरण गुप्त की रचनाओं में है; और रवीन्द्रनाथ का स्वयं प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त आदि पर। रवीन्द्रनाथ स्वयं अंग्रेजी की स्वच्छन्दतावादी धारा के कवियों से प्रभावित थे।[2] उनकी रचनाओं के अनुशीलन से हिन्दी में भी इस साहित्यिक प्रवृत्ति की रचनाओं को बल मिला।

अंग्रेजी साहित्य की स्वच्छन्दतावादी धारा की, प्रकृति के विभिन्न रूपों में मानवीय चेतना की प्रतिष्ठा के अतिरिक्त, कुछ अन्य प्रवृत्तियां भी हैं : कल्पना का मुक्त विहार, आत्मानुभूति की अभिव्यञ्जना पर बल, रहस्यमयता का अनुभव, स्वच्छन्द प्रेम की भावना आदि। प्रसाद के 'चित्राधार' की रचनाओं में इन प्रवृत्तियों को भी अभिव्यक्ति मिली है। 'कल्पना सुख'[3] शीर्षक रचना में कवि ने कल्पना के आनन्द

१—जयशंकर प्रसाद : 'चित्राधार', पृ० १७३

२—रवीन्द्रनाथ की रचनाओं पर, अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रभाव का विश्लेषण, 'कैलकटा रिव्यू' के सन् १६३३ के अंकों में, श्री विनायक सान्याल एवं श्री जयंत कुमार दासगुप्त द्वारा लिखित निबन्धों में है।

३—वही, पृ० १४१-४२

एवं आह्लाद का वर्णन किया है। कीट्स की रचना 'दि रेल्म ऑफ फैन्सी' से वह इतनी मिलती जुलती है कि यह समानता अनायास प्रसूत नहीं प्रतीत होती। आत्मानुभूति को अभिव्यक्त करने की प्रबल लालसा की झलक, 'मानस'[1] शीर्षक रचना में है, जिसमें हृदय के सागर में कल्पना और बुद्धि दोनों को हंसों की भांति विहार करते हुए प्रदर्शित किया गया है। मानस की तरंगें, जिनमें आत्मानुभूति सजग होती है, कवि का कथन है, संख्यातीत एवं अनन्त हैं। प्रकृति के मधुर, मादक वातावरण में, कवि को भावोल्लास का अनुभव होता है : यह भी कवि की स्वानुभूति के प्रति सजगता का परिचायक है। रहस्यात्मक अनुभूतियों का प्रकाशन भी, अनेक स्थलों पर, अधिकांश में, प्रकृति परक रचनाओं में है। प्रभात कुसुम को सम्बोधित करते हुए कवि ने प्रश्न किये हैं : कहो तुमने कौन सा शुभ रूप देखा है जो इतने प्रसन्न हो उठे हो ? कौन सा प्रकाश तुम्हें प्राप्त हुआ, जो तुम में इतना विकास सम्भव हो गया ?[2] इसी प्रकार संध्या तारा को संबोधित करते हुए कवि ने प्रश्न किया है : संध्या के गगन में अमल रतन की भांति झलकते, सुन्दर वर्ण के तुम कौन हो ?[3] स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा की चौथी प्रवृत्ति, स्नेह भाव की अपार महिमा का गायन, 'नीरव प्रेम' शीर्षक कविता में है। इस रचना में उद्दाम शृंगार भावना, रंगीन कल्पना विधान एवं प्रकृति के प्रति प्रबल अनुराग का योग है :

"नवल दम्पति केलि विनोद में,
जब विमोहत हैं नव मोद में।
प्रथम भाषण ज्यों अधरान में,
रहत हैं तब गूँजत प्रान में।
तिमि कहौ तुम हू चुप धीर सों,
विमल नेह कथान गम्भीर सों।
कछु कहौ नहिं पै कहि जात हौ,
कछु लहौ नहिं पै लहि जात हों।
कवि नियोजित सुन्दर कल्पना,
जब धरै प्रतिभा छवि अल्पना।
जलद माल तरंगिनि धार में,

१—जयशंकर प्रसाद : 'चित्राधार', पृ० १४३
२—वही, पृ० १५२
३—वही, पृ० १६०

प्रविसि फूलन में कछार में ।
तरल वीचि निनादन में कढ़ै,
प्रकृति के मधुराक्षर को पढ़ै ।

प्रसाद जी की रचनाओं में इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद की सभी प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति मिली है।

स्वच्छन्दतावादी साहित्य-दर्शन का प्रकृति के प्रति असीम स्नेह, प्रसाद में विशेष रूप से प्रकट हुआ है। प्रकृति के मनोहारी वातावरण में उन्हें वर्ड्सवर्थ की भाँति, उन्हें असीम उल्लास का अनुभव होता है : तभी तो प्रभात सुमन ने अपनी शोभा से एवं अपने पास बहती हुई समीर को सुगन्ध-स्नात करके, उन्हें मुग्ध कर लिया है :

"धरे हिय माँहि असीम अनन्द,
सने सुचि सौरभ सों मकरंद।
समीरन में सुषमा भरि देत,
प्रभातिक फूल हियो हरि लेत।"[२]

इसी प्रकार, वर्षा के रंगीन बादलों से भरे आकाश तथा कुसुमित लताओं से भरे भूखंड ने भी, उनको सम्मोहित कर लिया है।[३] आगे की रचनाओं में उनका प्रकृति के प्रति यह स्नेह-भाव और भी सशक्त होकर अभिव्यक्त हुआ है।

प्रसाद जी के दूसरे काव्य-संग्रह 'कानन-कुसुम' (१९१८) में, अंग्रेजी प्रभाव, सर्वप्रथम सॉनेट की विधा के अनेक प्रयोगों में दृष्टव्य है। इस काव्य विधा की रचनायें 'सरोज', 'रमणी हृदय', 'प्रियतम', 'मोहन', 'नहीं वरते', 'महाकवि तुलसीदास' और 'गौ' हैं। 'मकरंद बिन्दु', स्फुट मुक्तक रचनाओं के संग्रह में भी, एक सॉनेट है। अमित्राक्षर या अतुकान्त छन्द की भी अनेक रचनायें हैं—'प्रथम प्रभात,' 'निशीथ नदी', 'चित्रकूट', 'भारत', 'शिल्प-सौंदर्य', 'वीर बालक', और 'श्री कृष्ण जयन्ती'। अभिव्यञ्जना के ये दोनों विधान, अंग्रेजी प्रभाव से ही गृहीत हैं। अमित्राक्षर छन्द का उपयोग, प्रसाद जी ने अपने एक गीति-नाट्य 'करुणालय' में भी किया था, उसमें इस विधा के बंगला से ग्रहण की बात भी कही थी।

प्रसाद जी का प्रकृति-दर्शन भी इस संग्रह की रचनाओं में परिवर्तित हुआ है। प्रकृति के मनोरम वातावरण में अब वे, और भी अधिक उल्लास का अनुभव करते

१—जयशंकर प्रसाद : 'चित्राधार', पृ० १६६-१६७
२—वही, पृ० १५२
३—वही, पृ० १६०

हैं। वह उनमें नवीन भावनाओं का संचार करती है; एवं उनकी समस्त चेतना को आत्मसात कर लेती है। प्रकृति के एकान्त शोभा-भवन में, कवि को इस संसार के हलचल और कोलाहल से, विश्राम मिलता है, एवं शान्ति की उपलब्धि होती है। इसी जीवन-दर्शन को लेकर, एक स्थल पर कवि ने, श्रान्त पथिक से अपने मन के भार को छोड़ कर, प्रकृति के प्रांगण में विश्राम लेने के लिए कहा है। यह आह्वान ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार वर्डस्वर्थ ने 'दि टेबल्स टर्न्ड' में अपने मित्र से अपनी पुस्तकें छोड़कर, संध्या कालीन शोभा को देखने का आग्रह किया है। वर्डस्वर्थ के लिए प्रकृति विश्व के सभी मनीषियों से कहीं अधिक महान आदर्शों की निर्देशिका रही है : प्रसाद जी ने भी 'सरोज' में प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करने का भाव प्रकट किया है। प्रकृति के प्रांगण मे रहस्यात्मक अनुभूतियों का ग्रहण भी अनेक स्थलो पर है।

स्वच्छन्दतावाद की अन्य प्रवृत्तियों में, अन्तर्जगत के उद्घाटन की भावना, प्रकृति के प्रांगण में होने वाले परिवर्तनों के लिए, मनोवैज्ञानिक उपमानों की अवतारणा में है। आकाश में चन्द्रमा का अवतरण कवि को, मनुष्य के मन में नवीन आशा के अभ्युदय की भाँति प्रतीत होता है।[1] कृष्ण के जन्म के समय चारों ओर फैला हुआ अन्धकार, प्रसाद जी को, कंस के मानसिक उद्वेलन की भाँति प्रतीत हुआ है।[2] स्वच्छन्दतावाद की एक अन्य विशेषता, रूमानी भावना, प्रकृति की विभिन्न दृश्यावलियों के लिए संयोजित रूमानी उपमाओं में दर्शनीय है। पर्वत उपत्यका में तुमुल निनाद के साथ बढ़ती हुई नदी, कवि को घूंघट की आट में हंसती रूपसी की भाँति प्रतीत हुई है।[3] इसी भावना की अभिव्यक्ति 'चित्रकूट' शीर्षक रचना में उस स्थल पर भी है, जहां राम और सीता प्रकृति के मधुस्नात वातावरण में आत्मविभोर होकर एक दूसरे के प्रति अपने स्नेह भाव को प्रकट करने लगे हैं।[4] कवि की कल्पना शक्ति का भी

१—धीरे धीरे नयी आशा से मन में।
क्रीडा करने लगे स्वच्छ स्वछन्द गगन में।
जयशंकर प्रसाद : 'काननकुसुम', पृ० ६५

२—कंस हृदय की दुश्चिन्ता सा जगत में
अंधकार है व्याप्त घोर घन है उठा।
—वही, पृ० १२३

३—स्रोतस्विनी हरियालियों में कर रही कलरव महा।
ज्यों हरे घूंघट ओट में है कामिनी हंसती अहा॥
वही, पृ० ५३

४—वही, पृ० ६६

विकास हुआ है : वर्षा के रंगीन बादलों में उसे अब अनेक आकृतियां दिखाई देने लगी हैं;[१] और वन-थली, परम मनोहर राज भवन की भाँति प्रतीत होने लगी है।[२]

पुरातन के प्रति अनुराग, जो स्वच्छन्दतावाद की प्रधान प्रवृति में से एक है, और जिसे 'चित्राधार' में विशेष अभिव्यक्ति नही मिली थी, इस संग्रह में बड़ी शक्ति के साथ व्यक्त हुआ है। 'रामायण' एवं 'महाभारत' के महान दिनों की स्मृति से, कवि का मन आनन्द विभोर हो उठता है;[३] किन्तु मध्ययुग के व्यापक सांस्कृतिक संहार का स्मरण, विक्षुब्ध कर जाता है।[४] 'शिल्प सौन्दर्य' शीर्षक रचना में प्रसाद जी ने, कीट्स की भाँति सुन्दरता के प्रति अनुराग प्रगट किया है। दिल्ली में प्रवेश के अनन्तर, सूर्यमल, मोती मस्जिद में खड़ा, उसे विनष्ट करने की बात सोचता हुआ, अन्त में यह निर्णय करता है कि वह उसे धराशायी नहीं करेगा, कारण एक सुन्दर वस्तु सदा के लिये विनष्ट हो जायेगी।[५]

प्रसाद जी के कथा-काव्य 'प्रेम-पथिक' (१९१३) पर अंग्रेजी प्रभाव और अधिक स्पष्ट है। यह काव्य रचना पहले ब्रजभाषा (१९०५) और उसके बाद खड़ी बोली (१९०८) में लिखी गई। यह गोल्डस्मिथ की रचना 'हरमिट' के आदर्श पर लिखित है।[६] गोल्डस्मिथ का कथानक है : एक नवयुवक वन प्रान्तर में भटक कर एक तपस्वी के आश्रम में पहुंचता है। तपस्वी का प्रश्न कि वह इतना दुखी क्यों है ? वह नवयुवक अपने को एक दुखिया नारी प्रगट करता है, और बताता है कि अपने प्रेमी एडविन के वियोग में वह बहुत विक्षुब्ध है। उसे आशंका है कि वह दिवंगत हो चुका है। तपस्वी उसकी दुःख-गाथा सुनकर, यह उद्घाटित करता है कि वही एडविन है, और तब दो में प्रतिज्ञा करते हैं कि अब एक साथ ही रहेंगे। प्रसाद ने इस कथा को पूर्णतः भारतीय रूप देने के लिए, उसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिये हैं।

१—जयशंकर प्रसाद : 'कानन कुसुम', पृ० ५२

२—वही, पृ० ९६

३—इस प्रसंग में 'कानन कुसुम' की 'चित्रकूट', 'भरत', 'कुरुक्षेत्र' एवं 'श्री कृष्ण जयन्ती' कविताएँ दृष्टव्य हैं।

४—इस संबंध में दृष्टव्य हैं, 'वीर बालक' और 'शिल्प सौन्दर्य'।

५—जयशंकर प्रसाद : 'कानन कुसुम', पृ० १०९

६—गोल्डस्मिथ के इस ग्रन्थ की प्रेरणा से हिन्दी में कुछ और कथा-काव्य भी लिखे गये : रामचन्द्र शुक्ल का 'शिशिर पथिक' (१९०८) इसी प्रकार की रचना है।

प्रसाद जी के 'प्रेम पथिक' का कथानक है : प्रकृति के सुरम्य प्रांगण में एक सरिता के तट पर एक छोटे से कुटीर में एक तापसी रहती है। उसके यहां एक दिन एक अन्य पथिक आश्रय लेता है। तापसी उस भद्र पथिक से विश्राम करने का आग्रह करने के साथ-साथ अपनी जीवनकथा सुनाने का भी निवेदन करती है। पथिक कुछ विश्राम करने के अनन्तर अपनी कथा आरम्भ करता है : वह अपने पिता के साथ 'आनन्द नगर' में रहता था। पास ही एक सज्जन रहते थे, जिनके एक कन्या थी; और उसे वे बड़े स्नेह से पुतली कहते थे। हम दोनों के पिताओं में घनिष्टता थी; और हम लोग भी साथ २ खेला करते थे। एक बार मेरे पिता बड़े अस्वस्थ हुये और उन्होंने मुझे पुतली के पिता को सौंप दिया। उसके बाद वे एक दिन दिवंगत हो गये। भाग्य की प्रेरणा से फिर हम दोनों साथ-साथ रहने लगे; और साथ-साथ ही प्रकृति के प्रांगण में क्रीड़ा करते हुये बढ़ने लगे। हम दोनों अकसर चान्दनी रात की मधुर शोभा दर्शन करते थे; एवं प्रभात की मादक बेला में फूलों को चुनते थे। इस निरन्तर के सम्पर्क से धीरे २ हमारे मन में प्रणय अंकुरित होने लगा; और एक बार तो मैंने उससे विवाह की भी इच्छा प्रकट कर दी। किन्तु भाग्य का विधान, एक दिन उसका और किसी के साथ सम्बन्ध हो गया; और तभी मैंने घर छोड़ दिया। यह कथा प्रसंग समाप्त होते ही तापसी ने पथिक को 'किशोर' कह कर सम्बोधित किया, और पूछा, कि क्या अब भी वह पुतली की याद करता है ? पथिक ने तत्काल पहचान लिया कि वह तो उसकी बाल-सखी चमेली (पुतली) है; और फिर इसी नाम से उसे पुकारा। चमेली ने तब अपने जीवन का शेष प्रसंग सुनाना आरम्भ किया : उस संबन्ध से, उसकी स्वच्छन्द प्रकृति, पूर्णतः कुंठित हो गई थी। उसे अपने पति की दासी रूप में सेवा करनी होती थी; और फिर भी वह उसे प्यार नहीं करता था। कुछ ही दिनों में उसका निधन हो गया और वह विधवा हो गयी। उसके बाद उसे वैधव्य-यज्ञ में प्रज्वलित होना पड़ा, जिससे एक वयोवृद्ध पुण्यात्मा ने उसका उद्धार किया। उसी पुण्यात्मा ने उसे यह स्थान भी बताया था, जहां वह अब रह रही है। यहां उसकी कथा समाप्त होती है, और उसकी आंखों में आंसू भर आते हैं। किशोर भी उसको शोक विह्वल देखकर बरस पड़ता है। कुछ समय बाद किशोर उस निस्तब्धता को भंग करके गम्भीर स्वर में कहता है : इस संसार के सुख और दुःख तो क्षण-भंगुर हैं, इसलिये हमें अपने को उनके प्रभाव से मुक्त कर लेना चाहिये; तथा 'विश्व प्रेम' के आदर्श को अपनाकर स्वयं को 'विश्वात्मा' को समर्पित कर देना चाहिये। जीवन का यही पथ हमें अमर उल्लास एवं परम शान्ति का अनुभव करा सकता है। तापसी को यह जीवन-दर्शन स्वीकार है; और फिर दोनों के दृग तारक स्थिर दृष्टि से अरुणोदय

देखने लगते हैं।

प्रसाद के 'प्रेम पथिक' की कथा के इस संविधान में स्वच्छन्दतावाद की स्पष्ट झलक है; और अपने इसी स्वरूप में वह, गोल्डस्मिथ की सीधी सरल गति से चलने वाली कथा से भिन्न है। स्वच्छन्दतावादी साहित्य-दर्शन की अभिव्यक्ति, इस काव्य रचना में तीन रूपों में है। एक तो सामाजिक मर्यादा के प्रति विद्रोहात्मक उक्तियों में; दूसरे प्रकृति के प्रांगण में उल्लास के अनुभव; और तीसरे विश्वप्रेम के आदर्श के सन्देश में। सामाजिक मर्यादा के प्रति विद्रोह की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर है। एक, पुतली के अपरिचित व्यक्ति के साथ विवाह के प्रति विक्षोभ में,[१] दूसरे, विवाहिता नारी के दासी रूप चित्रण में;[२] एवं तीसरे, वैधव्य के पीड़ित एवं अभिशप्त जीवन के दिग्दर्शन में।[३]

प्रसाद जी ने, 'प्रेम पथिक' में, प्राकृतिक शोभा के प्रति जिस मनोभाव को प्रकट किया है, उसमें उनका प्रकृति-परक दृष्टि-कोण और विकसित प्रतीत होता है। अब उन्हें केवल किसी भूखण्ड का सौन्दर्य सम्मोहित नहीं कर पाता, वरन् वर्डस्वर्थ की भाँति उन्हें प्रकृति से शिक्षा मिलती है। 'प्रेम पथिक' की चमेली, वर्डस्वर्थ की लूसी ग्रे की भाँति, प्रकृति के स्नेह पूर्ण सम्पोषण में बड़ी हुई है।[४] किशोर ने भी एक स्थान पर, अपने चरित्र निर्माण में, प्रकृति का योग स्वीकार किया है।[५] प्रसाद जी ने प्रकृति को, मानवीय रूप में, मनुष्य के प्रति सम्वेदना से भी समन्वित दिखाया है।[६] प्रकृति के प्रति इस परिवर्तित दृष्टि-कोण ने अभी तक प्रसाद जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आत्मसात नहीं किया था; इसलिए उनकी पहले की प्रकृति-परक दृष्टि भी अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त हो गयी है।

प्रसाद जी के प्रकृति-दर्शन ने, 'प्रेम पथिक' में विश्व-प्रेम का जो व्यापक रूप

१—'पुतली ब्याही जायेगी जिससे वह परिचित कभी नहीं।'
—जयशंकर प्रसाद : 'प्रेम पथिक', पृ० १३

२—फिर भी लक्ष्मी दोनों घर की पत्नी उनकी दासी थी।'
—वही, पृ० १६

३—वही, पृ० २०

४—उस नैसर्गिक सुरभि पूर्ण उस रूपवती का क्या कहना,
जिसे कि प्रकृति मालिनी बन कर अपने हाथ सजाती है।
—वही, पृ० २

५—वही, पृ० १४

६—वही, पृ० २२

ग्रहण कर लिया है, वह कीट्स के सौन्दर्यवादी दृष्टि-कोण से पर्याप्त साम्य रखता है। प्रकृति का रमणीय वातावरण, कीट्स के लिए, इस जगत की कठोर वास्तविकताओं से, शान्तिनिकेतन के रूप में था : प्रसाद ने भी उसे उसी रूप में ग्रहण किया है। किशोर के माध्यम से अपने 'विश्व-प्रेम' के दर्शन की व्याख्या करते हुए उनके शब्द हैं :

"आत्म समर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्व प्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है।
× × ×
क्षण भंगुर सौन्दर्य देख कर रीझो मत, देखो ! देखो !!
उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है।
× × ×
न्यौछावर कर दो उस पर तन मन जीवन, सर्वस्व; नहीं
एक कामना रहे हृदय में, सब उत्सर्ग करो उस पर।"[1]

चमेली इस 'जीवन दर्शन' को सहज रूप में स्वीकार कर लेती है और उसी के प्रवाह में कहती है :

चलो मिलें सौन्दर्य प्रेम निधि में.....
जहां अखंड शान्ति रहती है वहां सदा स्वच्छन्दता रहे।[2]

इसके अनन्तर दोनों आत्म विभोर होकर अरुणोदय देखने लगते हैं। यह जीवन-दर्शन, निश्चित रूप से, प्राकृतिक शोभा की उपासना का दर्शन है।

अन्य कवि

अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से विशेष महत्व के कवियों पर हम विचार कर चुके; अब इस काल के दो कवियों, अयोध्या सिंह उपाध्याय (१८६५-१९४७) और मैथिली शरण गुप्त (१८८६) पर विचार-विमर्ष शेष है, इन कवियों का स्थान काव्य-कला की दृष्टि से तो विशेष महत्व का है। किन्तु अंग्रेजी प्रभाव इनकी रचनाओं में स्पष्ट नहीं है। फिर भी इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा, कि अंग्रेजी प्रभाव की सशक्त धारा ने इन्हें भी आन्दोलित किया है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपनी काव्य रचनाओं में, आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टि-कोण से, पहले कृष्ण लीला, और उसके बाद राम-चरित्र का नवीन संस्करण उपस्थित किया। उनके 'प्रिय प्रवास' (१९१४) के नायक कृष्ण, सूरदास एवं मध्यकालीन अन्य

१—जयशंकर प्रसाद : 'प्रेम पथिक', पृ० २४-२५
२—वही, पृ० २६

भक्त कवियों के लीला पुरुषोत्तम नहीं, वरन् आधुनिक लोक-मंगल की भावना से ओत-प्रोत महापुरुष है। कवि ने इसीलिए उनके जीवन के अनेक लोकोत्तर प्रसंगों को बुद्धि-ग्राह्य बनाकर प्रस्तुत किया है। उपाध्याय जी की राधा भी इसी विचारधारा के अनुरूप, 'रति नागरी' एवं 'विरह विदग्धा' नहीं, वरन् लोक-सेवा में अपनी मनोव्यथा का उन्नयन करने वाली नारी हैं। उपाध्याय जी के प्रकृति के प्रति यथार्थवादी दृष्टि-कोण में भी, अंग्रेजी काव्य की कुछ प्रेरणा सम्भव है।

मैथिली शरण गुप्त ने भी, उपाध्याय जी की भाँति, आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टि-कोण एवं लोक-संग्रह के आदर्श को लेकर, पुरातन एवं मध्यकालीन आख्यानों के पुनर्नवीकरण प्रस्तुत किये है। इस प्रक्रिया के लिए उन्होंने, अंग्रेजी काव्य के सीधे सम्पर्क के स्थान पर, बंगला के आधुनिक काव्य के माध्यम से उसका संस्पर्श ग्रहण किया है। बंगला के आधुनिक कवियों में माइकल मधुसूदन दत्त से ये विशेष प्रभावित है। इस कवि के अध्ययन से ही उन्होंने, जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टि-कोण, पुरातन को नवीन रंगों में अनुरंजित करके देखने की वृत्ति, प्रकृति के प्रति परिवर्तित दर्शन एवं वर्णनात्मकता के प्रति विशेष रुचि ग्रहण की है। बंगला के इस कवि की कृतियों में भी 'मेघनाद वध' से गुप्त जी विशेष प्रभावित है उनके 'जयद्रथ-वध' (१९११) एवं 'साकेत' (१९३२) पर इस महाकाव्य का पर्याप्त प्रभाव है। बंगला का यह महाकाव्य, पश्चिम के कवियों होमर, दान्ते एवं मिल्टन के विशेष प्रभाव से ओत-प्रोत है, और गुप्त जी ने इन प्रभावों को उसके माध्यम से आत्मसात किया है।

निष्कर्ष

हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव का जो अध्ययन हमने अभी किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है, कि इस प्रभाव ने हिन्दी कविता को रीति युग के मुक्त जीवन के अन्तिम दिनों के, राजाश्रित कवियों की प्रदर्शनात्मक एवं प्रत्यधिक परिश्रम साध्य रचनाशैली से मुक्त किया था। हिन्दी कविता के विकास में, अंग्रेजी प्रभाव का अपना योग, तीन रूपों में मिलता है: एक, उसके फलस्वरूप उत्पन्न नवीन वातावरण ने हमारे जीवन दर्शन को अधिक यथार्थवादी, अधिक पार्थिव बना दिया; हिन्दी कविता उसके कारण इतिवृत्तात्मक हो गई एवं उसका रचना विधान सहज हो गया, दूसरे, अंग्रेजी कवियों के सम्पर्क से, स्वदेशानुराग का विकास हुआ, पुरातन, विशेष रूप से, पूर्व के साहसपूर्ण दिनों के प्रति रुचि उत्पन्न हुई, प्रकृति के प्रति स्नेह-भाव जागा, और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला; तीसरे, लोकोत्तरता के स्थान पर लोक-संभव के प्रति आकर्षण बढ़ा। अंग्रेजी प्रभाव का प्रथम संस्पर्श

भारतेन्दु जी एवं उनके युग के अन्य कवियों को मिला, जिसकी प्रेरणा से उन्होंने अपने चारो ओर के वस्तुगत यथार्थ को वाणी देना प्रारम्भ किया। अंग्रेजी कवियों के सम्पर्क का प्रभाव, श्रीधर पाठक की रचनाओं से आरम्भ हुआ। पाठक जी ने अपने प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन में, गोल्डस्मिथ की रचनाओं के अनुवाद प्रस्तुत किये; उसके अनन्तर टॉमसन के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण का प्रभाव आत्मसात किया; और अपने अन्तिम दिनों में बायरन का भी कुछ प्रभाव अपनाया। लोचन प्रसाद पांडेय की कृतियों में अंग्रेजी कविता का प्रभाव कुछ और अभिवर्धित हुआ। प्रारम्भ में उन्होंने 'मेवाड़ गाथा' में, मेकाले की प्राचीन के यशोगान की पद्धति अपनायी; किन्तु आगे चलकर उनका विकास प्रकृति के कवि के रूप में हुआ। पांडेय जी ने प्रकृति के प्रति अपने स्नेह-भाव को, गोल्डस्मिथ, टॉमसन एवं वर्डस्वर्थ के अध्ययन से भी सम्पुष्ट किया। पाँडेय जी के 'प्रवासी' पर, पोप के नीतिपरक जीवन-दर्शन का भी कुछ प्रभाव है। प्रसाद जी की रचनाओं में प्रारम्भ से ही स्वच्छन्दतावादी साहित्य-दर्शन का उपयोग मिलता है। उनकी काव्य रचनाओं पर अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों का भी कुछ संस्पर्श है : उनकी अनेक प्रवृत्तियों को प्रसाद की कृतियों में अभिव्यक्ति मिली है। अंग्रेजी काव्य के सम्पर्क से हिन्दी में कुछ काव्य विधाएं—सम्बोधनगीत (ओड), चतुर्दशपदी (सॉनेट), अमित्राक्षर छन्द (ब्लैंक वर्स), गीति-विधान (लिरिक), शोक-काव्य (एलेजी), समाधि लेख (एपीटैफ) आदि भी आई है। पश्चिम के बुद्धिवादी दृष्टिकोण ने भी हिन्दी कविता को प्रभावित किया है : अयोध्या सिंह उपाध्याय के 'प्रिय प्रवास', में यह प्रभाव दृष्टव्य है: उसमें कृष्ण की अवतारणा दैवी विभूति के रूप में नहीं, वरन् लोक-मंगल की भावना से समन्वित महामानव के रूप में है।

अंग्रेजी प्रभाव ने इस प्रकार कार्य करते हुए, अपने क्रमिक विकास में, हिन्दी कविता के बाह्य स्वरूप एवं अन्तर्धारा को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया है। उसने हिन्दी कविता को वस्तुपरक एवं उसके अभिव्यञ्जना विधान को सरल बना दिया है। इसके अनन्तर उसने आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति, एवं अन्तर-जगत के उद्घाटन को प्रोत्साहन दिया; और स्वच्छन्दतावाद के पथ पर अग्रसर होने की रुचि जगायी। अंग्रेजी काव्य के सम्पर्क के फलस्वरूप ही, हिन्दी कवियों में प्रकृति के प्रति अनुराग की अभिवृद्धि हुई है; और उसे काव्य रचना के स्वतन्त्र विषय का स्थान मिला है। प्रकृति का जीवन पर विशिष्ट प्रभाव के रूप में ग्रहण भी, अंग्रेजी काव्य के सम्पर्क से ही सम्भव हुआ है। अंग्रेजी के कवियों में गोल्डस्मिथ, टॉमसन और वर्ड्सवर्थ ने हिन्दी कविता को विशेष प्रभावित किया है। पोप, मेकाले और बायरन की कुछ काव्य कृतियों की भी हिन्दी कविता पर स्पष्ट छाप है। कविता तो वस्तुतः कवि की अपनी

भावना एवं कल्पना की भाषा है, इसलिए अंग्रेजी कवियों का हिन्दी कविता पर यह प्रभाव अनुकरणात्मक नहीं, वरन् अन्तर-ग्रहण के रूप में है, आत्मसात होकर आया है।

———

: ८ :

हिन्दी नाटक पर अंग्रेजी प्रभाव

साहित्य के विकास-क्रम में दृश्य-काव्य अर्थात् नाटकों का प्रारम्भ श्रव्य या पाठ्य-काव्य के अनेक रूपों के बाद हुआ है। हिन्दी साहित्य में तो श्रव्य-काव्य के पर्याप्त विकास के बाद ही नाटकीय रचनाएं देखने को मिलीं। हिन्दी नाटकों का प्रारम्भ तो वास्तव में आधुनिक काल में अंग्रेजी प्रभाव के आगमन के बाद हुआ है। साहित्य में, नाट्य-रूप के विकास में, विलम्ब का सामान्य कारण तो सम्भवतः नाट्य-कला का एक मिश्र कला होना रहा है : लेखक, अभिनेता, निर्देशक, चित्रकार, संगीतज्ञ और भी न जाने कितनों की प्रतिभा तथा कौशल के संयोग से नाटक प्रस्तुत किया जाता है। काव्य के अन्य रूपों की सृष्टि के लिए इस प्रकार के योग की आवश्यकता नहीं होती, इसीलिए तो उनका विकास पहले हुआ। परन्तु नाटकीय वृत्ति मनुष्य के चरित्र में अन्तर्निहित है; इसीलिए जब काव्य की सृष्टि हो गई, और उसमें कथा-तत्व का भी सूत्रपात हो गया, तो मनुष्य की नाट्य-वृत्ति भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए मार्ग खोजने लगी। आदिम युग में जब काव्य-रूप की सृष्टि हो रही थी, कविता व्यक्ति की नहीं, वरन् समुदाय की वस्तु थी। आदिम कविता का सृजन, अवकाश के क्षणों में, महोत्सवों तथा इसी प्रकार के अवसरों पर, गाने के लिए हुआ था। इसीलिए जब उसमें कथा-तत्व का समावेश हुआ, तो मनुष्य की नाटकीय वृत्ति भी अभिव्यक्त होने का प्रयत्न

करने लगी, और फिर काव्य-रूप में नाटक का विकास आरम्भ हो गया। इसीलिये इस साहित्यिक रूप की अधिकांश प्रारम्भिक कृतियां काव्य-रूप में हैं। गद्य में नाटकीय रचनाओं का विकास और बाद को हुआ।

यह विवेचना हमारे सामने कुछ स्वाभाविक से प्रश्न उपस्थित करती है : हिन्दी साहित्य में नाटकों के प्रारम्भ में एक विस्तृत काल, शताब्दियों का समय क्यों लग गया ? अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व वास्तव में नाटक कही जा सकने वाली रचनाओं का अभाव क्यों है ? अंग्रेजी प्रभाव में कौन सी ऐसी शक्ति थी कि उसने इस साहित्यिक रूप के विकास को सम्भव बना दिया ? तथा इसी प्रकार के कुछ और प्रश्न। हिन्दी नाटको पर अंग्रेजी प्रभाव की व्याख्या करने के पहले इन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है।

हिन्दी में नाटकीय रचनाओं के विलम्ब से प्रारम्भ होने के सम्बन्ध में हम पहले भी विचार कर चुके हैं; इसका सबसे प्रधान कारण हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ के काल में हिन्दी-प्रदेश म मुसलमानी राज्य का स्थापन कहा जाता है। यह सही है कि इस्लाम के प्रवर्तकों ने नाट्य-कला को समाज के लिये हानिकर माना था, और उसे अपने धर्मावलम्बियों के लिए वर्जित कर दिया था;[1] इसीलिए तो अरबी तथा फारसी भाषाओं में नाटक नहीं लिखे गये थ। किन्तु वास्तविकता यह है कि इस्लाम के प्रवेश के बहुत पूर्व जैन तथा बौद्ध धर्मों के नैतिक आदर्शों के प्रचार ने, भारतीय नाट्य परम्परा को शिथिल कर दिया था। राजपूत काल में गृह-युद्धों का जो अविच्छिन्न क्रम चला, उसने इस रस अथवा आनन्दवादी साहित्यिक विधा के निर्माण को पूर्णतः अवरुद्ध सा कर दिया था। इस्लामी राज्य की स्थापना से यह अवरोध और दृढ़ हो गया। मुगल शासकों, अकबर (१५५६–१६०५), जहांगीर (१६०५-१६२७) तथा शाहजहां (१६२७-१६५८) ने संगीत को विशेष प्रोत्साहन दिया; किन्तु नाटकीय रचनाओं के प्रति उनका दृष्टिकोण भी पहले जैसा ही बना रहा। उस युग में राज दरबार ही साहित्य निर्माण के केन्द्र थे; जब देश के शासक ही नाट्य कला के विरुद्ध थे, तो उसका विकास किस प्रकार सम्भव होता।

किन्तु, उस युग का शासन चाहे कितना भी दृढ़ रहा हो, यह भारतीय जनता की

१—डॉ० सैयद अब्दुल लतीफ ने, अपने ग्रन्थ 'दि इन्फ्लुएंस ऑफ इंगलिश लिटरेचर ऑन उर्दू लिटरेचर' (लंदन विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत प्रबन्ध) में, अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व उर्दू साहित्य में नाटकों के अभाव पर विचार करते हुए, इस तथ्य का उल्लेख किया है। पृ० ९७–९८

नाटकीय प्रवृति का पूर्णतः दमन नहीं कर सका। उसकी यह प्रवृत्ति राम-लीला रास-लीला आदि के रूप में प्रकट होती रही, और यदा-कदा इन लीलाभिनयों को लिपि बद्ध करने' का प्रयास भी किया जाता रहा। फिर भी, संस्कृत नाटकों की महान परम्परा, शासकों के विरोधी दृष्टिकोण के कारण तो बाधित हो ही गई। हिन्दी के साहित्यकार, उस समय, संस्कृत साहित्य की शास्त्रीय पद्धतियों का अनुसरण कर रहे थे, उन्होंने जनसाधारण एवं भक्तों के इन सीधे सादे नाटकीय प्रदर्शनों की ओर विशेष रुचि नहीं प्रकट की। इसीलिए अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व ऐसी रचनाएं नहीं के बराबर हैं, जिन्हें वास्तव में नाटक कहा जा सकता है, अथवा जिन में भारतीय नाट्य शास्त्र के सूक्ष्म विधान का अनुसरण है।

संस्कृत साहित्य की नाटकीय परम्परा का हिन्दी में अनुपरण नहीं किया जा सका; इसका एक कारण संस्कृत नाट्य-शास्त्र की जटिलना भी है। सस्कृत नाटक, अपने विकास-क्रम में राजाश्रय ग्रहण करके, अत्यन्त सूक्ष्म शिल्प समन्वित तथा विद्धत्तापूर्ण हो गया था। मुसलमान शासकों ने नाट्य-कला को अपना संरक्षण तो प्रदान किया नहीं, इसलिए राज-सभाओं में आश्रय पाने वाले कवियों ने भी इस दिशा में प्रयोग नहीं किये। सामान्य जनता के पास, साहित्य के इस रूप को प्रोत्साहित करने के लिए न तो अपेक्षित योग्यता ही थी, और न वह इसके विस्तृत रगमंचीय प्रबन्ध की ही व्यवस्था कर सकनी थी। इसीलिए जनसाधारण ने अपने नाटकीय प्रदर्शनों में, सस्कृत नाटकों की जटिल पद्धति का परित्याग कर, सरल विधियों का अनुसरण किया।

अब केवल एक ही प्रश्न पर विचार करना शेष रह गया है : अंग्रेजी प्रभाव किस प्रकार हिन्दी में इस साहित्यिक रूप के विकास को प्रोत्साहन देने में सफल हुआ? भारतवर्ष में अंग्रेजों की विजय, शस्त्रों तथा कूटनीति के बल पर, केवल राजनीतिक विजय ही नहीं थी; वह एक सांस्कृतिक विजय भी थी। आधुनिकता से अत्यन्त ओत-प्रोत एक राष्ट्र ने, एक ऐसे देश पर विजय प्राप्त की थी, जहां के लोग अभी तक मध्ययुग के वातावरण में ही जीवन व्यतीत कर रहे थे। इसलिए इस सशक्त प्रभाव के प्रसार के साथ, जो कुछ मध्ययुगीन था, सभी तिरोहित होने लगा। अंग्रेजी प्रभाव ने पुनरुत्थान तथा नवजागरण के लिये जिस क्रम का सूत्रपात किया था, उसके फलस्वरूप पुरातन साहित्य तथा कला कृतियों के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी, तथा नयी दिशाओं में भी प्रयोग आरम्भ हुए। पुनरुत्थान की भावना ने तो, संस्कृत नाटकों को फिर प्रकाश में ला दिया। बहुत से संस्कृत नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हुआ, और उनका प्रभाव भी हिन्दी नाटककारों ने ग्रहण किया। नवजागरण की भावना ने प्रयोगों को प्रोत्साहित किया; और इस दिशा में अंग्रेजी प्रभाव ने, अंग्रेजी नाटकों के माध्यम से

निश्चित योग प्रदान किया।

अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी नाटक

हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों के विभिन्न विवरणों में, आगे लिखे ग्रंथों का नाटकों के रूप में उल्लेख है : केशवदास कृत 'विज्ञान गीता', हृदयराम कृत 'करुणाभरण', हृदयराम पंजाबी कृत 'हनुमन नाटक', यशवन्तसिंह कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय', नेवाज कवि कृत 'शकुन्तला', देवकृत 'देवमाया प्रपंच', विश्वनाथ कृत 'आनन्द रघुनन्दन', मंजु कृत 'रघुनाथ रूपक', कृष्ण शर्मा साधु कृत 'रामलीला विहार', ब्रजवासी दास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' इत्यादि। इनमें से प्रथम तीन तो विक्रम संवत् की सत्रहवीं शताब्दी, दूसरे तीन, अठारहवीं शताब्दी, तथा शेष उन्नीसवीं शताब्दी की रचनाएं हैं।

इन रचनाओं के प्रथम अवलोकन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि ये केवल नाममात्र के लिए नाटक हैं; इसमें नाटकीय रचनाओं के सामान्य तत्वों – अंक, दृश्य, वार्तालाप आदि का निर्वाह भी नहीं है। इनमें से प्रथम, केशवदास की 'विज्ञान गीता' को सम्भवत: वार्तालाप रूप में लिखित होने के कारण ही नाटक कह दिया गया है। संस्कृत नाटकों की भाँति उसके प्रारम्भ में कोई प्रस्तावना नहीं है; और फिर अंक तथा दृश्यों के स्थान पर, उसका विभाजन प्रकाशों में है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में इक्कीस प्रकाश हैं। कवि ने काम, रति, दम्भ, अहंकार, राजा, रानी, चार्वाक, शान्ति, करुणा आदि की अवतारणा करके, उनकी बातचीत में परम ज्ञान की व्याख्या कराई है। नेवाज कवि का 'शकुन्तलता', कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के आधार पर लिखित कथा-काव्य है; यद्यपि उसमें सर्गों के स्थान पर अंकों की व्यवस्था की गई है। विश्वनाथ कृत 'आनन्दरघुनन्दन' में अवश्य नाटकीय तत्वों का निर्वाह है, किन्तु यह रचना भी संस्कृत नाटकों की परम्परा में न लिखी जाकर, रामलीला के प्रदर्शन के ढंग में लिखी गई है। शेष रचनाएँ भी इसी प्रकार की है।

मुगल शासन के अन्तिम दिनों की नाटकीय रचनाओं के देखने से, यह स्पष्ट हो जाता है, कि मुसलमानों का शासन विशृंखल होने के साथ-साथ, साहित्य के क्षेत्र में नाटकीय रचनाओं को स्थान मिलने लगा था। इधर की खोजों के आधार पर कृष्ण-भक्त कवियों की कुछ बड़ी तथा छोटी नाटकीय रचनाएं भी प्राप्त हुई है जिन में लोक-नाटक से, साहित्यिक नाटक रूप ग्रहण करता हुआ प्रतीत होता है। इसलिए यदि अंग्रेजी प्रभाव का आगमन न भी हुआ होता, तो भी हिन्दी नाटकों का विकास सम्भव हो जाता। किन्तु वस्तु स्थिति के अनुसार, अंग्रेजी प्रभाव ने अपने आगमन के बाद, और संस्कृत नाटकों के प्रभाव को भी साथ लेकर, हिन्दी नाटकों के विकास मे विशेष योग दिया है।

इस सम्बंध में एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख भी आवश्यक है : मैथिली

साहित्य में संस्कृत नाटकों की परम्परा का निर्वाह हुआ है। मिथिला में इस्लामी शासन के प्रवेश के पूर्व ही विद्यापति तथा अन्य कवियों द्वारा, नाटक लिखे जा चुके थे। जब यह प्रदेश इस्लाम के प्रभाव में आ गया, तो मैथिली साहित्यकारों ने, स्थानान्तरित होकर, अपनी नाट्यकला को बनाये रखा। किन्तु हिन्दी में नाटकों के विकास में मैथिली भाषा की नाट्य-परम्परा का कोई योग नहीं है; इसीलिए उनकी विशेष चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं है।

अंग्रेजी प्रभाव की धाराएँ

हिन्दी नाटकों पर अंग्रेजी प्रभाव चार प्रमुख धाराओं में होकर आया है : (१) विभिन्न शिक्षा संस्थाओं के माध्यम एवं स्वतंत्र रूप से हिन्दी लेखकों द्वारा अंग्रेजी नाटकों का अध्ययन; (२) अंग्रेजी नाटकों के हिन्दी रूपान्तर; (३) बंगला नाटकों के रूपान्तर; तथा (४) पारसी थियेटर कम्पनियों द्वारा शेक्सपिअर आदि के नाटकों के हिन्दुस्तानी संस्करण।

हिन्दी-प्रदेश की विभिन्न शिक्षा संस्थाओं में, लेखकों के समयानुक्रम से, अंग्रेजी के अग्रलिखित नाटक पाठ्य-क्रम में स्वीकृत रहे थे : मार्लो कृत 'डॉक्टर फॉस्टस' तथा 'ऐल-केमिस्ट', शेक्सपिअर के लगभग सभी नाटक, बेन जॉनसन के 'एव्री मैन इन हिज़ ह्यूमर,' मिल्टन के 'कोमस' तथा 'सैम्सन एगोनिस्टिस', एडिसन का 'कैटो,' गोल्डस्मिथ का 'शी स्टूप्स टु कांकर' तथा शेरिडन के 'दि राइवल्स' और 'दि स्कूल फॉर स्कैंडल'। इन रचनाओं में मार्लो का 'डॉक्टर फॉस्टस' एक स्वच्छन्दतावादी दुखान्त नाटक है। शेक्सपिअर की रचनाएँ, प्रायः नाटक की सभी कोटियों की—दुखान्तकी, सुखान्तकी, मिश्रान्तकी, ऐतिहासिक और प्रेमाख्यानात्मक हैं। शेक्सपियर ने अपने नाटकों के रूप-विन्यास तथा विषय-वस्तु मे स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण अपनाया है; यद्यपि उसके कुछ नाटक ऐसे भी है, जिनमें उसने, शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण किया है। मिल्टन का 'कोमस' एक विशेष प्रकार की नाटकीय कृति है, जिसे पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र में मॉस्क कहा गया है। इस नाट्य-रूप में संगीत, नृत्य तथा विशिष्ट रंगमंचीय प्रभावों का आयोजन होता है। मिल्टन की दूसरी कृति 'सैम्सन एगोनिस्टिस' शास्त्रीय पद्धति की एक दुःखान्तकी रचना है। बेन जॉनसन की दोनों रचनाएँ हास्य-प्रधान सुखान्तकी है। एडिसन का 'कैटो' देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित शास्त्रीय शैली का दुखान्तकी है। गोल्डस्मिथ और शेरिडन की रचनाएँ आचार-प्रधान सुखान्तकी की कोटि में आती हैं।

अंग्रेजी की इन नाटकीय रचनाओं के विभिन्न प्रकारों को समझने के लिए, सबसे पहले, उन नाट्य-सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है, जिनकी प्रेरणा से ये

लिखी गई थीं। भारतीय नाट्य-शास्त्र रस को नाटक की मूल आत्मा मानता है; किन्तु पश्चिम में अरस्तू ने 'कार्य' को, और आगे चल कर हीगेल ने 'संघर्ष' को नाटक का मूल तत्व कहा है। पश्चिम में प्रारम्भ से ही, सिसेरो के इस कथन के आधार पर, कि 'नाटक जीवन की अनुकृति, व्यवहार का दर्पण तथा यथार्थ का प्रतिबिम्ब है', नाटकीय रचनाएँ, जीवन की वास्तविकता का प्रदर्शन रही हैं। भारतीय नाटककारों ने अब तक, जीवन के आदर्श स्वरूप के चित्रण की भावना को ग्रहण किया था, जिसमें जीवन जैसा है, उसके स्थान पर, जैसा वह होना चाहिए, इस दृष्टिकोण को प्रश्रय दिया गया था। इसीलिए तो संस्कृत नाटकों के विभिन्न प्रकारों का उद्देश्य केवल एक ही, लोकोत्तर आनन्द प्रदान करना है। पाश्चात्य नाटकों के उद्देश्य अलग-अलग हैं : मनोरंजन, समाज सुधार की भावना को उत्पन्न करना, देशभक्ति जगाना इत्यादि।

पाश्चात्य नाटक के, इस मूल तत्व संघर्ष को लेकर ही, विभिन्न नाट्य भेदों की सृष्टि हुई है। दुखान्तकी में सदा ही बाह्य शक्तियों, आंतरिक वृत्तियों अथवा दोनों के बीच, संघर्ष चलता है, सुखान्तकी में भी इसी प्रकार, विभिन्न व्यक्तियों अथवा स्त्री-पुरुषों के बीच, या व्यक्ति और समाज में संघर्ष का चित्रण होता है। दुखान्तकी रचना में इस संघर्ष से अरस्तु के अनुसार, आतंक और करुणा की भावनाएँ जगाकर विरेचन की प्रक्रिया सम्पन्न होनी चाहिए, और सुखान्तकी में इसी प्रेरणा से, हास्य या विनोद की अवतारणा होनी चाहिए।[1]

अंग्रेजी नाटकों में यह संघर्ष का तत्व, तीन रूपों में देखने को मिलता है : दो बाह्य शक्तियों के बीच, जैसे 'किंग लियर' में; बाह्य एवं आन्तरिक शक्तियों के बीच जैसे 'हैमलेट' में; और दो आन्तरिक प्रवृत्तियों के बीच जैसे 'मैकबेथ' में। 'किंग लिअर' में पिता और उसकी दो पुत्रियों के बीच संघर्ष दिखाया गया है। 'हैमलेट' को अपने चचा से संघर्ष करना पड़ा था, जिसने उसके पिता का वध कर डाला था, उसकी माता को मोहाविष्ट कर लिया था, और राज-सिंहासन भी हथिया लिया था। इसके अतिरिक्त उसमें हम अन्तर्द्वन्द्व भी देखते हैं। मैकबेथ में बुद्धि और मन के बीच द्वन्द्व का, अथवा केवल आन्तरिक संघर्ष का चित्रण है। कुछ विचारकों ने तीन अन्य प्रकार के नाटकीय संघर्षों का प्रतिपादन किया है : (१) दो व्यक्तियों अथवा दो बाह्य शक्तियों का संघर्ष, (२) एक व्यक्ति का समाज के साथ संघर्ष; तथा (३) एक ही व्यक्ति में चलने वाला, अन्तर्द्वन्द्व जैसे आत्मबल और महत्वाकांक्षा के बीच का संघर्ष। पहले

१—एलरडाइस निकल : 'दि थिअरी ऑफ ड्रामा', पृ० ६२

हमने जिन तीन नाटकों के उदाहरण दिये हैं, संघर्ष के इन नये प्रकारों के लिए भी, अनुक्रम से उन्हें उपस्थित किया जा सकता है।

संघर्ष के इस सामान्य तत्व को लेकर अंग्रेजी साहित्य में तीन नाट्य सिद्धान्तों का उपयोग मिलता है : शास्त्रीय, स्वच्छन्दतावादी तथा यथार्थवादी। यथार्थवादी नाटकों को पश्चिम में, समस्या नाटक की संज्ञा दी गई है, क्योंकि इनमें किसी न किसी सामाजिक समस्या पर विचार-विमर्ष होता है। शास्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित नाटकों में, मिल्टन के 'सैम्सन एगोनिस्टिस' तथा एडिसन के 'कैटो' के नाम लिये जा सकते हैं, जिनमें स्थान, समय और क्रिया के संकलनों का निर्वाह है। शेक्सपियर के नाटक स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त के सबसे सुन्दर उदाहरण हैं; उनमें शास्त्रीय सिद्धान्तों की अवहेलना देखने को मिलती है। यथार्थवादी नाटकीय दृष्टिकोण का उपयोग बेन जॉनसन, गोल्डस्मिथ तथा शेरिडन की रचनाओं में किया गया है।

अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद

हिन्दी-प्रदेश की विभिन्न शिक्षा संस्थाओं के पाठ्य-क्रम में स्वीकृत अंग्रेजी नाटकों में से कुछ हिन्दी में रूपान्तरित भी हुए। हिन्दी में अनुवादित होने वाला सर्व प्रथम अंग्रेजी नाटक, एडिसन का 'केटो' था, जिसे अलीगढ़ के एक वकील तथा 'भारतबन्धु' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक श्री तोता राम जी ने सन् १८७६ में रूपान्तरित किया था। यह शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद है; और उसका नाम 'केटो कृतान्त' रख दिया गया है। इस संज्ञा का अर्थ केटो का अन्त है; और इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि अनुवादक इस रचना के प्रति उसके दुःखान्तकी होने के कारण ही आकर्षित हुआ था। अपने इस अनुवाद की भूमिका में लेखक ने लिखा है कि उसने इस का रूपान्तर संस्कृत में भी किया था; किन्तु उसकी कोई प्रति प्राप्त नहीं है।

इसके अनन्तर शेक्सपियर की नाटकीय रचनाएँ हिन्दी में अनुवादित हुईं। सर्व प्रथम मुंशी इमादाद अली ने 'दि कॉमेडी ऑफ एरर्स' का रूपान्तर 'भ्रम जालक' (१८७६) प्रकाशित किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी शेक्सपियर के एक नाटक 'दि मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का रूपान्तर 'दुर्लभ बंधु' नाम से प्रस्तुत किया। इस अनुवाद का एक दृश्य उन्होंने अपनी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में भी प्रकाशित किया था। शेक्सपियर की रचनाओं का नियमित तथा व्यवस्थित रूप से रूपान्तर, लाला सीताराम ने सन् १८४५ में प्रारम्भ किया; और सन् १९१५ तक उन्होंने, ग्यारह नाटकों के अनुवाद उपस्थित किये। इन्होंने भी सर्व प्रथम शेक्सपियर के 'दि कॉमेडी ऑफ एरर्स' का रूपांतर 'भूल भुलैयाँ' प्रस्तुत किया। इसके बाद उन्होंने 'मच एडो एबाउट नथिंग' को 'मनमोहन का जाल', 'दि टेम्पेस्ट' को 'जंगल में मंगल', 'रोमिओ ऐंड जूलियट'

को 'प्रेम पूर्णिमा', 'एज यू लाइक इट' को 'अपनी अपनी रुचि' संज्ञाएँ देकर प्रकाशित किया। 'हेमलेट', 'किंग लिअर', 'ओथेलो', 'जूलियस सीजर' तथा 'सिम्बेलीन' के अनुवाद, उन्होंने मूल संज्ञाओं में ही प्रकाशित किये। लाला जी के इन अनुवादों के अतिरिक्त शेक्सपियर के नाटकों के कुछ और रूपांतर भी प्रकाशित हुए : पुरोहित, गोपीनाथ ने 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट' को 'प्रेम लीला' (१८९९), 'एज यू लाइक इट' को 'मनभावन' (१९१६) के रूप में प्रस्तुत किया। 'ओथेलो' का एक हिन्दी रूपान्तर उसकी मूल संज्ञा में, गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल ने १९१६ में प्रस्तुत किया। इन समस्त अनुवादों में लाला सीताराम के अनुवाद सर्वोत्तम है। उनमें रचना के मूल भाव को बनाये रखने का प्रयत्न किया गया है। लाला जी में काव्य प्रतिभा का अभाव था, और यही उनके अनुवादों की सबसे बड़ी कमी है।

अंग्रेजी से कुछ और नाटक भी हिन्दी में अनुवादित हुए थे, जैसे फ्रांस के प्रसिद्ध हास्य तथा व्यंगपूर्ण नाटककार मोलियर की रचनाएँ। सर्वप्रथम लल्ली प्रसाद ने मोलियर के एक नाटक का रूपान्तर 'ठोक पीट कर वैद्यराज' (१९१२) नाम से किया था। इसके बाद जी० पी० श्रीवास्तव ने मोलियर के कई नाटकों के रूपांन्तर किये— 'मार मार कर हकीम', 'आंखों में धूल', 'हवाई डाक्टर' तथा 'नाक में दम'। ये सभी अनुवाद पहले 'इन्दु' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुये थे।

बंगला से अनुवाद

हिन्दी में बंगला से अनुवादित नाटकों की संख्या बहुत अधिक है; और उनके माध्यम से हिन्दी नाटकों पर अंग्रेजी प्रभाव भी विशेष रूप से आया है। भारतेन्दु की सबसे पहली नाटकीय रचना 'विद्यासुन्दर', बंगला की एक इसी नाम की यतीन्द्र मोहन ठाकुर की रचना से गृहीत है। इस रचना की बाहरी रूप-रेखा पर, अंग्रेजी प्रभाव निश्चित रूप से स्वीकार किया जा सकता है। उसमें संस्कृत नाटकों के ढंग की प्रस्तावना नहीं है; और न भरत-वाक्य आदि की ही व्यवस्था है। किन्तु इस नाटक की प्रणय-गाथा और उसका स्वरूप-विधान संस्कृत नाटकों की पद्धति में है।

बंगला के प्रमुख नाटककार, जिनकी रचनाएँ हिन्दी मे अनुवादित हुईं, माइकल मधुसूदन दत्त द्विजेन्द्र लाल राय, रवीन्द्र नाथ ठाकुर तथा काशीप्रसाद विद्याविनोद हैं। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की एक नाटकीय रचना 'विधवा-विवाह' तथा रामगोपाल विद्यान्त के 'रामाभिषेक' नाटक के भी हिन्दी रूपान्तर हुए थे। इनमें से प्रथम, जैसा कि उसके नाम से ही प्रकट है, समाज सुधार की भावना से लिखित रचना है, और दूसरी पश्चिम के दुखांतकी नाटकों की शैली में है। माइकल मधुसूदन दत्त की तीन नाटकीय रचनाएं हिन्दी में अनुवादित हुई, 'कृष्णाकुमारी' (१८८६) पद्मावती'

(१८८८) तथा 'वीरनारी' (१८८९)। इन तीनों रचनाओं में पश्चिम की शास्त्रीय तथा स्वच्छन्दतावादी शैलियों का अपूर्व संयोग है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नाटकीय रचनाओं में सर्वप्रथम 'चित्रांगदा' का हिन्दी रूपान्तर देखने को मिला। गोपाल राम गहमरी ने, इस काव्य-रूपक को, पद्य में ही रूपांन्तरित किया था। काव्य प्रतिभा के अभाव के कारण, उनका यह अनुवाद विशेष सफल नहीं रहा था। बंगला से अनुवादित होने वाले नाटकों में सबसे अधिक संख्या द्विजेन्द्रलाल राय की रचनाओं की है।

द्विजेन्द्र लाल राय के नाटकों के हिन्दी रूपांतर का कार्य सन् १९१६ में नाथूराम प्रेमी ने प्रारम्भ किया था; और सन् १९२० तक उन्होंने उनके तेरह नाटकों का अनुवाद कर डाला था। रायबाबू की रचनाएं लगभग सभी नाट्य-रूपों में हैं : कुछ ऐतिहासिक नाटक हैं, कुछ पौराणिक आख्यानों को लेकर लिखी गई हैं, कुछ प्रहसन हैं, और कुछ सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं। समयानुक्रम से उनके हिन्दी में अनुवादित नाटक हैं : 'दुर्गादास' (१९१६), 'मेवाड़ पतन' (१९१७), 'शाहजहां' (१९१७), 'नूरजहां' (१९१८), 'ताराबाई' (१९१८), 'भीष्म' (१९१८), 'चन्द्रगुप्त' (१९१८), 'सीता' (१९१८), 'मूर्ख मंडली' (१९१८), 'भारत रमणी' (१९१९), 'पाषाणी (१९२०), तथा 'सिंहल विजय' (१९२०)। इन रचनाओं में शेक्सपियर की स्वच्छन्दतावादी नाट्य शैली का अनुसरण है; तथा कथोपकथनों पर स्वच्छन्दतावाद के पुनर्जागरण के कवियों—वर्डस्वर्थ, शेली आदि का भी कुछ प्रभाव है। संस्कृत नाटकों की शास्त्रीय पद्धति की, इनमे पूर्णतः उपेक्षा की गयी है। क्षीरोद प्रसाद के भी दो नाटक 'खाजहां' और 'चांदबीबी' अनुवादित हुए थे। ये दोनों रचनाएं भी द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक नाटकों की शैली में हैं; किन्तु इनमें ऐतिहासिक सत्य के निर्वाह का अधिक प्रयत्न किया गया है।

बंगला से अनुवादित इन नाटकीय रचनाओं ने, हिन्दी नाटकों के विकास में, कई प्रकार से योग दिया है। सबसे पहले एक पड़ोसी भाषा की नाटकीय रचनाओं के विकास को देखकर हिन्दी लेखकों को इस दिशा में प्रयत्न करने के लिए प्रेरणा मिली। बंगला भाषा में नाटकों के विकास को विशेष प्रोत्साहन, अंग्रेजी प्रभाव से प्राप्त हुआ था; इसलिये प्रकारान्तर से हिन्दी नाटकों का विकास भी इस प्रभाव से प्रोत्साहित स्वीकार किया जा सकता है। बंगला रंगमंच की स्थापना तथा विकास में, अंग्रेजी प्रभाव का विशेष योग रहा था; और बंगला भाषा से अनुवादित एक नाटक में यह उल्लेख है, कि हिन्दी-प्रदेश में, हिन्दी रंगमंच की स्थापना का प्रयत्न, बंगाल से आकर यहाँ बस गये लोगों ने भी किया था। अंग्रेजी साहित्य के विभिन्न नाट्य भेदों का परिचय प्राप्त कर के, तथा बंगला साहित्य के सम्पर्क से यह जानकर कि भारतीय

साहित्य में उन्हें ग्रहण किया जा सकता है, बंगला से अनुवादित इन नाटकों ने, हिन्दी नाटकों के लिए, अंग्रेजी प्रभाव के ग्रहण का कार्य और सुगम बना दिया।

पारसी रंगमंच

हिन्दी-प्रदेश में नाटकीय प्रदर्शनों के प्रति रुचि उत्पन्न करने का कार्य पारसी थियेटर कम्पनियों के नाटकों द्वारा सम्पन्न हुआ। इन कम्पनियों की स्थापना सर्व प्रथम बम्बई में हुई थी; और इनके द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं में शेक्सपियर की, तथा अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं की नाटकीय रचनाओं के प्रदर्शन प्रस्तुत किये जाते थे। ये नाटक कम्पनियाँ, देश के विभिन्न भागों में घूमती रहती थी; और जिस प्रदेश में पहुंचती थां, उसी की भाषा में अपने नाटक प्रस्तुत करती थीं। इसी प्रकार घूमती फिरती कुछ नाटक कम्पनियाँ, हिन्दी-प्रदेश में भी आई थीं; और उन्होंने हिन्दुस्तानी या उर्दू में, क्योंकि उसे ही उन दिनों इस क्षेत्र की सामान्य भाषा समझा जाता था, बहुत से नाटक प्रस्तुत किये थे। इन नाट्य प्रदर्शनों की भाषा कुछ भी रही हो, इतना निश्चित रूप से स्वीकार किया जा सकता है, कि इनके द्वारा हिन्दी नाटकों के विकास को विशेष प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिला।

हिन्दुस्तानी भाषा में नाटकीय रचनाएँ प्रस्तुत करने वाली पारसी थियेटर कम्पनियों में, 'पारसी एलफ्रेड ड्रामेटिक कम्पनी', 'बाम्बे पारसी कम्पनी', 'इम्प्रेस थिएट्रिकल कम्पनी', 'न्यू पारसी विक्टोरिया कम्पनी' इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं। इन कम्पनियों द्वारा पाश्चात्य साहित्य में प्रचलित लगभग सभी प्रकार के नाट्य-रूप अभिनीत हुए। शेक्सपियर के नाटक तो इन थियेटर कम्पनियों को विशेष पसंद थे, इसीलिए उसके तो लगभग सभी नाटकों को इन्होंने अपने रंगमंच पर ग्रहण किया था। पारसी रंगमंच पर गृहीत शेक्सपियर के सुखांत नाटक हैं : 'मुगदे शक' ('दि विंटर्स टेल', १८९५), जुल्मे नाहक' ('सिम्बेलीन',१८९५), 'दिल फरोश' ('दि मर्चेंट ऑफ वेनिस,' १९००), 'हुस्नारा' ('दि मेजर फॉर मेज़र', १९००), 'भूल भुलैया' ('ट्वेल्थ नाईट', १९०५) तथा 'गोरख धन्धा' ('ए कॉमेडी ऑफ एरर्स', १९१२)। 'सिम्बेलीन' तथा 'दि मेजर फॉर मेजर' के एक-एक रूपान्तर और हुए थे, जिनकी संज्ञाएं थीं, 'मीठा जहर' तथा 'शहीदे नाज़'। इन गृहीत रूपों में 'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस' का रूपांतर सबसे अधिक सफल कहा जाता है।[1] इन गृहीत रूपों का मूल्यांकन करते हुए यह कहा गया है, कि अनुवाद कर्त्ता ने अत्यधिक स्वच्छन्दता से कार्य किया है। उसे अंग्रेजी का ज्ञान तो नहीं के बराबर था। कहीं से उसने शेक्सपियर के नाटकों की कहानियां सुन लीं थीं, या अपनी ही भाषा में उन्हें

१—आर० के० याज्ञिक : 'दि इंडियन थियेटर', पृ० १५०

पढ़ कर, उनके कुछ प्रसगों को लेकर, अपनी ओर से नाटक लिख डाले थे। शेक्सपियर के विभिन्न पात्रों के चरित्रों की सूक्ष्म प्रवृत्तियाँ, इन नाटकों में बिल्कुल ही नहीं आने पाई हैं; सुखान्त नाटकों को ग्रहण करते हुए. जिनमें स्वयं ही हास्य के प्रसंग होते हैं, अलग से भी प्रहसन जोड़ दिये गये हैं। इन वेढंगे रूपांतरों का किसी सिद्धांन्त के आधार पर अध्ययन सम्भव ही नही है।[1]

शेक्सपियर के दुखान्तकी नाटकों में सबसे पहले 'रोमिओ ऐंड जूलियट' को 'बज्मे फ़ानी' (१८९०) के रूप में, पारसी रंगमंच पर ग्रहण किया गया। इसके अनन्तर गृहीत दुखान्त नाटक, 'खूने नाइक' ('हेमलेट', १८९८) 'शहीदे वफ़ा' ('ओथेलो,' १८९८), 'जनूने वफा' ('टाइटस एड्रोनियस' १९००), 'हार जीत' ('किंग लियर', १९०२) तथा 'काली नागिन' ('एन्टोनी ऐन्ड क्लेओपेट्रा', १९०६) थे। इनमें से 'ओथेलो' और 'एन्टोनी ऐंड क्लेओपेट्रा' के एक एक रूपान्तर और हुए थे : 'सफेद खून', तथा 'जान मुरीद'। 'रिचर्ड थर्ड' तथा 'किंग जॉन', दोनों के कथानकों से थोड़ा थोड़ा लेकर, एक और नाटक पारसी रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया था, 'सैदे हवस'। शेक्सपियर के दुखान्तकी नाटकों के ये सभी गृहीत रूप असफल हैं, और यह इसलिये है, क्योंकि ग्रहण-कर्त्ताओं ने शेक्सपीयर की शैली की सभी विशेषताओं का परित्याग कर दिया है। संवादों का सौन्दर्य तो पूर्णतः विनष्ट हो गया है। ग्रहणकर्त्ता न तो जीवन के व्यापक स्वरूप को देख पाये हैं, और न महान् चरित्रों में विरोधी प्रवृत्तियां तथा अन्तर्द्वन्द्व। चरित्र-चित्रण में उनका प्रयत्न, संश्लिष्ट पात्रों की सृष्टि के स्थान पर, वर्गीकृत चरित्रों के निर्माण की ओर रहा है।[2] प्रत्येक नाटक में जो कई कई भयंकर रोमांचकारी दृश्यों की अवतारणा कर दी गई है, वे आतंकित करने के स्थान पर हंसाते हैं।[3] इसीलिये इन रचनाओं का साहित्यिक मूल्य विशेष नहीं है।

शेक्सपियर की इन रचनाओं के अतिरिक्त पारसी रंगमंच पर कुछ अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं के नाटक भी प्रस्तुत किये गये थे। फ्रांस के प्रसिद्ध हास्य तथा व्यंग्य पूर्ण नाटककार मोलियर की रचनाएँ भी पारसी कम्पनियो द्वारा विशेष रूप से ग्रहण की गई।[4] किन्तु न जाने क्यों, हिन्दुस्तानी भाषा के रंगमंच पर उन्हें स्थान नहीं मिला। हिन्दुस्तानी भाषा के नाटककारों ने तो रेनाल्ड् के सस्ती वृत्ति के उपन्यासों से सबसे अधिक सामग्री ग्रहण की। उसमें उन्हें ऐसे रोमांचकारी कथानक प्राप्त हुए

१—आर०के० याज्ञिकः 'दि इंडियन थियेटर', पृ० १५०-५१
२—वही, पृ० १८१
३—वही, पृ० १८१
४—वही, पृ० १८५

जिनमें कामुकता, हत्या, अस्वाभाविक अपराध, रहस्य, षडयंत्र आदि का प्राधान्य था। प्रेक्षकों की निम्न-वृत्तियों के पोषण के लिए, लेखक इधर उधर से भी प्रसंग जोड़ दिया करते थे।[1] इसी प्रकार इन लेखकों ने, हचिन्सन की 'हिस्ट्री ऑफ आल नेशन्स' से कई रोमांचकारी प्रसंगों को लेकर, नाटक लिख डाले थे।[2] सोहराब-रुस्तम तथा 'एनक आर्डन' की कथाओं ने भी पारसी रंगमंच पर स्थान पाया था।[3]

शेक्सपियर के अतिरिक्त अंग्रेजी के अन्य नाटककारों की रचनाएँ भी, जो पारसी रंगमंच पर अपनाई गईं, सभी नाट्य-रूपों के अन्तर्गत आती हैं। सुखान्तकी नाटकों में डब्लू०टी० मानरीव की 'दि ज्युएस' के दो रूपान्तर हुए थे: 'करिश्मए कुदरत उर्फ अपनी या परायी' तथा 'यहूदी की लड़की'।[4] लॉर्ड लिटन की 'दि लेडी ऑफ लियॉन्स' का रूपान्तर 'धूपछाँव' किया गया, तथा एच०ए० जोन्स के 'दि सिलवर किंग' का रूपान्तर मूल नाम से ही हुआ था। दुखान्तकी नाटकों में ब्यूमॉन्ट और फ्लेचर की एक रचना का अनुवाद 'ज़ंजीरे गौहर', मेसिन्जर और डेकर के 'दि वरजिन मार्टयर' का 'हुरे अरब' तथा शेरिडन के 'पिनेरों' का 'असीरे हिर्स' किया गया था। फ्रांस के प्रसिद्ध उपन्यासकार एलेकज़ेण्डर डयूमा की एक रचना 'दि टॉवर ऑफ नाइल' को भी पारसी-रंगमंच पर 'खूने जिगर' संज्ञा देकर ग्रहण किया गया था। इन रचनाओं को, ग्रहण-कर्ताओं ने अपनी ओर से सुखान्त बना दिया है, जो बड़ा अस्वाभाविक लगता है। कामुकता, हत्या, रहस्य, अपराध आदि के तत्वों को पूर्णतः बना रहने दिया है। इन रचनाओं को देखकर ऐसा लगता है कि पारसी रंगमंच के नाटककारों ने हत्या, प्रतिशोध, तथा भयानकता को ही दुखान्तकी नाटकों के मूल तत्व समझ रखा था; और इसलिए उन्होंने ऊहात्मक शैली में एक के बाद दूसरे भयोत्पादक दृश्यों की अवतारणा की है।[5]

पारसी रंगमंच के इन नाटकों का हिन्दी नाटकों के विकास में विशेष योग रहा है। इनसे प्रेरणा लेकर हिन्दी में नाटकों का विकास प्रारम्भ हुआ। पाश्चात्य नाटकों में मूल तत्व सघर्ष का परिचय, हिन्दी लेखकों को इन पारसी नाटकों में उसके ग्रहण से भी हुआ था। किन्तु ये नाटक साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत निम्नकोटि के थे;

१—आर०के० याज्ञिकः 'दि इंडियन थियेटर', पृ० १८५

२—वही, पृ० १८४

३—वही, पृ० १८४

४—वही, पृ० २१५-१६

५—वही, पृ० २१६

इसलिए उन्होंने हिन्दी रंगमंच के विकास को बाधित भी किया। इन नाटकों में जीवन का जिस हल्केपन के साथ चित्रण किया गया है, उसकी प्रतिक्रिया को लेकर भी कुछ लेखकों ने हिन्दी में अच्छे नाटक लिखे।

हिन्दी नाटकों पर अंग्रेजी प्रभाव ने, जिन धाराओं में होकर कार्य किया है, उन्हें देखने के अनन्तर, अब अलग अलग नाटककारों पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना की जा सकती है। यह प्रभाव नाट्य-रूप, विषय-वस्तु तथा रचना-शैली तीनों पर ही देखा जा सकता है। सबसे पहले हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की नाटकीय रचनाओं को लेते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हिन्दी नाटकों पर अंग्रेजी प्रभाव का प्रारम्भ, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं से होता है। भारतेन्दु जी ने संस्कृत नाट्य-शास्त्र तथा पश्चिम के नाट्य-सिद्धान्तों का अच्छा अध्ययन किया था। अपने 'नाटक' शीर्षक विस्तृत निबन्ध में उन्होंने, भारत तथा पश्चिम के नाट्य-सिद्धांतों की विवेचना की है, और उसके बाद दोनों के नाटकों का इतिहास दिया है। इस सम्बन्ध में उनकी सन् १८६५ की बंगाल यात्रा विशेष महत्व-पूर्ण है। इस यात्रा में ही उन्होंने अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से बंगला नाटक के विकासोन्मुख रूप से परिचय प्राप्त किया था[१] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पहला नाटक 'विद्यासुन्दर', एक बंगला नाटक का ग्रहण है; इसलिये यह कहा जा सकता है, कि उन्हें बंगला नाटकों के सम्पर्क से ही, हिन्दी में नाटक लिखने की प्रेरणा मिली थी।

इस प्रकार, बंगला साहित्य के माध्यम से, प्रकारान्तर से, अंग्रेजी प्रभाव ग्रहण करने के साथ-साथ, अंग्रेजी साहित्य के सीधे सम्पर्क से भी, उन्होंने कुछ प्रभाव ग्रहण किया था। अपने एक मित्र बालेश्वर प्रसाद के अनुरोध से उन्होंने, शेक्सपीयर के 'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस' का रूपान्तर 'दुर्लभ बन्धु' (१८८०) किया था। उनके इन मित्र ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० किया था; इसलिए वे सम्भवतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अंग्रेजी नाटकों के अध्ययन में सहायक भी रहे होंगे। यह शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद है, किन्तु स्थान और व्यक्तियों के नाम का, पाठकों की दृष्टि से, भारतीय-करण कर दिया गया है। इसी प्रकार एन्टोनियो, सलरिनो तथा सोलेरिनो, अनन्त, सरल और सलोने हो गये हैं; पोर्शिया और नेरिसा, पुरश्री और नरश्री हो गई हैं; तथा वेनिस, वंशनगर हो गया है। इस परिवर्तन के होते हुये भी, इस अनुवाद में मूल नाटक की भावना सुरक्षित रही है।

१--श्यामसुन्दर दास : 'भारतेन्दु नाटकावली', प्रस्तावना, पृ० १८

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रथम नाटकीय रचना, 'विद्यासुन्दर' के बाह्य-रूप से ही यह प्रकट हो जाता है, कि लेखक ने अंग्रेजी प्रभाव को ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया है। इस रचना के प्रारम्भ में, संस्कृत नाटकों के ढंग की कोई प्रस्तावना नहीं है, और अंकों तथा दृश्यों के लिए, केवल अंकों और गर्भांकों की व्यवस्था है। विष्कम्भक, प्रवेशक आदि सब छोड़ दिये गये हैं। इस नाटक में केवल तीन अंक और दस दृश्य हैं, फिर भी इसे नाटक कहा गया है। यदि संस्कृत नाट्य-शास्त्र का अनुसरण किया गया होता तो नाटक संज्ञा प्राप्त करने के लिए, इसमें पांच या अधिक अंकों की अवतारणा की गई होती। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अंग्रेजी नाटक के बाह्य-रूप को, निरन्तर परिवर्तित होने वाले दृश्यों के रूप में समझा था, जिसमें एक-एक अंक में कई-कई दृश्यों की व्यवस्था होती है।[1] अपने इस नाटक में उन्होंने इसी पद्धति को ग्रहण किया है। नाटक की समाप्ति पर कोई भरत-वाक्य भी नहीं है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अन्य नाटक, जिनमें अंग्रेजी नाटकों की बाहरी रूप-रेखा को ग्रहण किया गया है, 'भारत जननी' (१८७७) तथा 'नील देवी' (१८८१) हैं। इनमें से पहली रचना को उन्होंने 'ऑपरा' कहा है और दूसरी को 'गीति-रूपक'; यद्यपि काव्य और संगीत की प्रधानता के कारण दोनों ही ऑपरा हैं, गीति-रूपक तो उसी की हिन्दी संज्ञा मात्र है। 'भारत जननी' के प्रारम्भ में लेखक, संस्कृत नाटकों के सूत्रधार को नहीं छोड़ सका है, किन्तु इसने जो कुछ कहा है, उसमें अंग्रेजी प्रभाव से उत्पन्न नवीन भावना अभिव्यक्त हुई है। उसने कहा है :

"जगत पिता जग जीवन जागो मंगल मुख दरसाओ।
तुव सोये सबहीं मनु सोये तिन कहं जागि जगाओ॥
अब बिनु जागे काज सरत नहिं आलस दूरि बहाओ।
हे भारत भुवनाथ भूमि निज बूड़त आनि बचाओ॥

भारत भूमि और भारत सन्तान की दुर्दशा दिखानी ही इस 'भारत जननी' की इति कर्तव्यता है और आज जो यह आर्य वंश का समाज यह खेल देखने को प्रस्तुत है, उसमें से एक मनुष्य भी यदि इस भारत भूमि को सुधारने में एक दिन भी यत्न करे तो हमारा परिश्रम सफल है।"[2]

संस्कृत नाटकों के प्रभाव में लिखी गई रचना में इस प्रकार की भावधारा का मिलना असम्भव था। दूसरे नाटक 'नीलदेवी' में सूत्रधार की भी अवतारणा नहीं है। उसमें

१—श्यामसुन्दर दास : 'भारतेन्दु नाटमावली,' परिशिष्ट, पृ० ७९५

२—ब्रजरत्न दास : 'भारतेन्दु नाटकावली', द्वितीय भाग, 'भारत जननी' पृ० २२७

प्रारम्भ में तीन अप्सराएं प्रस्तुत की गई हैं, जो रानी की यश-गाथा गाती हैं। इस प्रकार का प्रारम्भ पारसी रंगमंच के किसी नाटक से गृहीत प्रतीत होता है। भारतेन्दु जी का एक और नाटक 'सती प्रताप' जो अपूर्ण है, इन्हीं रचनाओं की शैली में ऑपरा के रूप में है: इस रचना में भी काव्य एवं संगीत की प्रधानता है, और इसे भी लेखक ने गीति-रूपक कहा है।

भारतेन्दु जी की कुछ और नाटकीय रचनाओं का बाह्य-रूप अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित है। 'भारत दुर्दशा' के प्रारम्भ में भी, यद्यपि लेखक ने उसे नाट्य-रासक या लास्य-रूपक कहा है, संस्कृत नाटकों के ढंग की प्रस्तावना नहीं है। नाटक का प्रारम्भ दो पंक्तियों के मंगलाचरण से हुआ है और उसके बाद एक योगी अथवा संन्यासी ने कुछ पंक्तियां गाई हैं, जिनमें देश-भक्ति की भावना अभिव्यक्त हुई है। इस प्रकार का प्रारम्भ भी सम्भवतः लेखक ने किसी पारसी या बंगला नाटक से लिया है। इस नाटक में गर्भांक नहीं हैं, केवल दृश्यों[1] की योजना है। अन्त में भरत-वाक्य भी नहीं है। 'अंधेर नगरी' के प्रारम्भ में भी कोई प्रस्तावना नहीं है और न मंगलाचरण ही है। इस नाटक का प्रारम्भ सीधे मुख्य पात्रों के प्रवेश से होता है और अंत में भरत-वाक्य की भी कोई व्यवस्था नहीं है।

भारतेन्दु जी ने अपने 'नाटक' शीर्षक निबन्ध में, नये नाटकों के उद्देश्य के संबंध में विवेचना करते हुए, समाज-संस्कार तथा देशवत्सलता की भावनाओं का उल्लेख किया है।[2] हिन्दी नाटककारों के लिए ये नये विषय थे; और इनके लिए सामग्री भी नई ही अपेक्षित थी। समाज-सस्कार के विषय को अपनाने से, सामयिक सामाजिक जीवन से भी लेखक सामग्री लेने लगे। देशभक्ति की भावना भी, इतिहास के पृष्ठों तथा सामयिक जीवन दोनों से ही, अपनी अभिव्यक्ति के लिए सामग्री ग्रहण कर सकती थी। भारतेन्दु जी ने अपनी नाटकीय रचनाओं में इन दोनों ही भावनाओं को अभिव्यक्त किया है।

समाज-संस्कार की भावना भारतेन्दु जी के दो नाटकों में प्रकट हुई है: 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति' (१८७३) तथा 'अंधेर नगरी' (१८८४) में। इनमें से पहले में उन्होंने हिन्दुओं की मांसाहार वृत्ति पर व्यंग किया है; और दूसरे में, सामन्तों के जीवन में उत्पन्न ह्रासोन्मुख वृत्तियों पर प्रकाश डाला है। अपने अपूर्ण नाटक 'प्रेम योगिनी' के तीन अंकों में, जो एक दूसरे से पूर्णतः असम्बन्धित हैं, उन्होंने अपने नगर, काशी अथवा बनारस के जीवन की सामाजिक विकृतियों का उद्घाटन

१ यह 'दृश्य' शब्द बंगला नाटकों से ग्रहण किया गया है।

२—श्यामसुन्दर दास: 'भारतेन्दु नाटकावली', परिशिष्ट, पृ० ७९७

किया है। इन तीनों रचनाओं में जीवन का यथार्थवादी दृष्टिकोण से चित्रण है; तथा इनमें समाज सुधार की भावना भी अभिव्यक्त हुई है। लेखक की यह कामना रही है कि ये सामाजिक विकृतियां किसी प्रकार भी दूर हो जाएं।

भारतेन्दु जी ने इस भावना को कितना आत्मसात कर लिया था, यह 'नीलदेवी' के समर्पण की इन पंक्तियों से भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है :

"जिस भांति अंग्रेज स्त्रियां सावधान होती हैं, पढ़ी लिखी होती हैं, घर का काम काज संभालती है, अपने सन्तान गण को शिक्षा देती हैं, अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति विपत्ति समझती हैं, उसमें सहायता देती है और अपने समुन्नत जीवन को व्यर्थ गार्हस्थ्य और कलह में नहीं खोतीं, उसी भांति हमारी गृह देवता भी वर्तमान हीनावस्था का उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें यही लालसा है।"[1]

आगे उन्होंने कहा है कि भारतीय नारी की प्रगति को सामाजिक परम्परा के अन्ध-विश्वासों ने बाधित कर रखा है। भारतीय नारी प्राचीन युग में महान थी, और आज भी वह महान हो सकती है, यदि वह बीते हुए युगों की 'नीलदेवी' जैसी महान नारियों के पदचिह्नों पर चले।

देशभक्ति की भावना भारतेन्दु जी के तीन नाटकों 'भारत जननी' (१८७७) 'भारत दुर्दशा' (१८८०) तथा 'नील देवी' में अभिव्यक्त हुई है। 'भारत जननी' में प्रारम्भ में भारत माता सोई हुई दिखाई गयी है, उसके चारों ओर उसकी सन्तानें भी सोई हुई पड़ी हैं। इसके अनन्तर भारत सरस्वती, भारत दुर्गा, तथा भारत लक्ष्मी आती है : और भारत के पुरातन वैभव पर आंसू बहाकर चली जाती हैं। भारत माता जागती है, और अपनी सन्तानों को भी जगाने का प्रयत्न करती है। वह उनसे संगठित होकर, प्रगति के पथ पर बढ़ने के लिए कहती है। किन्तु सन्तानें अपनी असमर्थता प्रकट करती हैं। अन्त में धर्म का प्रवेश होता है। वह भारत जननी में आत्म विश्वास की भावना जगाता है। इस उद्‌बोधन से उसका आत्मबल सजग होता है। अपनी संतानों से भी वह धर्म धारण करके, संगठित होकर, प्रगति के पथ पर अग्रसर होने के लिए कहती है। दूसरे नाटक 'भारत दुर्दशा' में लेखक ने भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में उत्पन्न विकृतियों के प्रति अपने हृदय की शोक-भावना को अभिव्यक्त किया है। अपने तीसरे नाटक 'नील देवी' में लेखक ने, इस भावना को प्रकट किया है, कि यदि हमारे उद्धार की आशा नहीं है तो हमें आत्म-बलिदान कर देना चाहिए।

१—ब्रजरत्न दास : 'भारतेन्दु नाटकावली', प्रथम भाग, पृ० ५०३-४

भारतेन्दु जी की नाटकीय रचनाओं के विषय निरूपण में, अंग्रेजी प्रभाव, 'भारत दुर्दशा' तथा 'नील देवी' में है। संस्कृत नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक सुखान्त होना चाहिए, और इस उद्देश्य के निर्वाह के लिए कथा-वस्तु का विकास इस प्रकार का होना चाहिये कि नाटक की समाप्ति सुख अथवा आनन्द की भावना से हो। किन्तु भारतेन्दु जी के ये दोनों नाटक दुःखान्तकी हैं : 'भारत दुर्दशा' में भारत भाग्य को भारत के भविष्य के प्रति निराश होकर अन्त में आत्महत्या करते दिखाया गया है, और 'नील देवी' में, जिसे उन्होंने स्वयं ही दुःखान्त कहा है, परिस्थितियों की प्रेरणा से, नायक तथा नायिका दोनों की ही मृत्यु हो गयी है। पाश्चात्य नाट्य-सिद्धान्त के अनुसार ये दोनों ही वास्तविक दुःखान्तकी रचनाऐं नहीं है; कारण, लेखक ने भय और करुणा की भावनाएँ तो जगाई हैं, किन्तु उनके भली प्रकार विरेचन का प्रयास नहीं किया है। भारतेन्दु जी वस्तुतः उसी रचना को दुःखान्तकी समझते थे, जिसमें प्रधान चरित्र या चरित्रों का निधन दिखा दिया जाय; और उनकी इसी धारणा के अनुसार उनकी ये दोनों रचनाएं दुःखान्तकी हैं।

भारतेन्दु जी के प्रतीकवादी नाटकों 'भारत जननी' और 'भारत दुर्दशा' पर अंग्रेजी प्रभाव एक और रूप में भी है : इन दोनो रचनाओं पर अंग्रेजी साहित्य के प्रारम्भिक दिनों के आचारांकियों (Moralities) की भी छाया है। यह प्रभाव बंगला नाटकों के माध्यम से आया हुआ कहा जा सकता है : भारतेन्दु जी की पहली प्रतीकवादी रचना एक बंगला नाटक का ग्रहण है। बंगला में सर्व प्रथम संस्कृत के प्रतीकवादी नाटकों एवं अंग्रेजी के आचारांकियों के प्रभाव को लेकर आधुनिक राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत नाटकीय रचनाएं प्रस्तुत की गईं थीं। भारतेन्दु जी की 'भारत जननी' ऐसी ही एक रचना का ग्रहण है। 'भारत दुर्दशा' में उन्होंने इसी दिशा में अपना एक मौलिक प्रयोग प्रस्तुत किया है। भारतेन्दु जी के इस प्रतीकवादी नाटक पर मिल्टन के 'पॅरेडाइज लॉस्ट' की भी हल्की सी छाया है। भारतेन्दु जी की पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में अंग्रेजी के इस महाकाव्य के प्रारम्भिक अंश से प्रेरित दो निबन्ध प्रकाशित हुए थे : 'कलिराज की सभा' एवं 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न'। भारतेन्दु जी की 'भारत दुर्दशा' के, जीवन के असद पक्ष को प्रकट करने वाले, सत्यनाश फौजदार, अंधकार आदि चरित्रों के परिचय एवं संवादों में, इन दोनों निबन्धों की छाया है। भारतेन्दु जी की 'चन्द्रावली नाटिका' वैसे तो भक्ति एवं रीति कालों की मिली-जुली प्रवृत्तियों को लेकर लिखित है; किन्तु उसमें वनदेवी, वर्षा एवं संध्या का मानवीकरण, शेक्सपीयर के 'दि मिड् समर नाइट्स ड्रीम' के अप्सराओं के जगत का स्मरण दिलाता है।

भारतेन्दु जी की नाटकीय रचनाओं पर अंग्रेजी प्रभाव की इस विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि उन पर यह प्रभाव बहुत निश्चित और स्पष्ट नही है। इस अस्पष्टता का कारण यह है, कि भारतेन्दु जी ने यह प्रभाव, अंग्रेजी साहित्य के सीधे सम्पर्क से बहुत अधिक न लेकर, बंगला के माध्यम से ग्रहण किया था। इस प्रकार जो कुछ अंग्रेजी प्रभाव उनकी रचनाओं पर आया है, वह भारतीय रूप ग्रहण कर लेने के कारण बहुत प्रबल नहीं है; इसीलिये यह नहीं कहा जा सका है कि उनकी इस रचना पर अंग्रेजी के इस नाटक या लेखक का प्रभाव है। भारतेन्दु जी के नाटकों पर जो कुछ अंग्रेजी प्रभाव है, वह अंग्रेजी के साहित्य-दर्शन एवं अंग्रेजों के साथ आयी हुई नई विचारधारा का है; और वह भी अंग्रेजी साहित्य के सीधे सम्पर्क से उतना नहीं, वरन् प्रकारान्तर से बंगला के माध्यम से आया हुआ है।

श्रीनिवास दास

हिन्दी नाटकों पर अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से श्रीनिवास दास की रचनाओं का विशेष महत्व है। श्रीनिवास दास जी (१८५७-८७) दिल्ली के अच्छे व्यापारी थे; किन्तु अपने व्यवसाय के बीच भी वे अपनी साहित्यिक प्रतिभा के लिए समय निकाल लेते थे। उन्होंने हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषाओं एवं उनके साहित्यों का, भली प्रकार अध्ययन किया था। उनके अंग्रेजी साहित्य के विस्तृत अध्ययन का परिचय उनके 'परीक्षा गुरु' (१८८२) उपन्यास की भूमिका से मिलता है। श्रीनिवास दास जी ने उसमें अंग्रेजी के उन अनेक लेखकों एवं रचनाओं का उल्लेख किया है, जिनसे उन्होंने अपनी इस कृति के निर्माण में सहायता ली है। उनके नाटकों के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है, कि शेक्सपियर के नाटको का भी उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था।

श्रीनिवास दास जी के 'रणधीर और प्रेम मोहिनी' नाटक पर अंग्रेजी प्रभाव सब से अधिक स्पष्ट है। शेक्सपियर के दुःखान्तकी 'रोमियो ऐण्ड जूलियट' से उसका कथानक बहुत कुछ मिलता जुलता है। रोमियो ऐण्ड जुलियट की कहानी है : वरोना के दो प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध परिवारो में परस्पर वैमनस्य है। उनमें से एक परिवार का एक नवयुवक, दूसरे परिवार की एक कुमारी के प्रति आकृष्ट हो जाता है। वह भी उसके प्रति अनुरक्त हो उठती है। किन्तु दोनों परिवारों की पारस्परिक शत्रुता के कारण, उनके इस प्रणय का अन्त अत्यधिक करुण, दोनों की मृत्यु में, होता है। अपनी शत्रुता के इस भयंकर परिणाम को देखकर दोनों परिवार अपना वैमनस्य समाप्त कर देते हैं। 'रणधीर और प्रेममोहिनी' की कथा भी बिलकुल यही है : श्री निवास दास जी ने केवल वातावरण भारतीय कर दिया है; तथा और भी कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन कर

दिये हैं । कथा का मूल-सूत्र, दो परिवारों का वैमनस्य, उनमें से एक के पुत्र का, दूसरे की पुत्रीसे प्रेम, उनका दुःखमय अंत तथा फिर दोनों परिवारों में मेल, यह सब समान है। अन्त में दोनों की मूर्तियों का निर्माण भी कराया गया है। यह सादृश्य अकस्मात उत्पन्न नहीं हुआ, वरन् निश्चित रूप से शेक्सपियर की रचना विशेष के प्रभाव के कारण है।

श्री निवास दास जी के इस नाटक पर 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट' का कुछ और भी प्रभाव है। प्रेममोहिनी का स्वप्न में श्वेत हंस देखने का प्रसंग[1] 'रोमियो ऐण्ड जूलियट' की निम्नलिखित पंक्तियों पर आधारित प्रतीत होता है :

" 'Tis almost morning ; I would have thee gone,
And get no further than a wanton's bird ;
Who let's it hop a little from her hand,
Like a poor prisoner in his twisted of gyves
And with a silk thread plucks it back again,
So loving—jealous of his liberty"[2]

श्रीनिवास दास जी ने इस भाव का प्रतीकवादी शैली में प्रयोग किया है। प्रेममोहिनी स्वप्न में एक हंस देखती है। वह हंस रणधीर का प्रतीक है, किन्तु आगे चलकर वह रणधीर को खो देगी इसलिए हंस अदृश्य हो जाता है; और वह उसके लिए रोती रह जाती है।[3]

इस हिन्दी नाटक के तृतीय अंक का पंचम दृश्य भी 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट' के इसी अंक के, इसी दृश्य से, मिलता हुआ है। प्रातः काल सन्निकट होने के कारण रोमिओ जूलियट से विदा लेना चाहता है, किन्तु वह किसी प्रकार उसे रोकना चाहती है, इसलिए कहती है :

"Will thou be gone ? It is not yet near day
It was the nightingale, and not the lark,
That pierced the fearful hollow of thine ear,
Nightly she sings on yon pomegranate tree,
Believe me, love, it was the nightingale."[4]

१—श्रीनिवास दासः 'रणधीर और प्रेममोहिनी' पृ० ३४-३५

२—शेक्सपियर : 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट', अंक दो, दृश्य दो, पंक्तियां १७७-८२

३—श्रीनिवास दास : 'रणधीर और प्रेममोहनी' पृ० ३४-३५

४—शेक्सपियर : 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट', अंक तीन, दृश्य पांच, पं० १-५

प्रभात, वास्तव में हो गया है, इसलिए रोमिओ समझाता हुआ कहता है :

' "It was the lark the herald of the morn,
No nightingale, look, love, what invious streaks
Do lace the severing clouds in yonder east ;
Night's candles are burnt out, and jocund day
Stands tiptoe on the misty mountain tops,
I must be gone and live or stay and die.[1]

जूलियट अब भी प्रभात होना स्वीकार नहीं करती है :

"Yon light is not daylight, I know it ?
It is some meteor that the sun exhales,
To be, to thee, this night a torch-bearer
And light thee on thy way to Mantua :
Therefore stay yet, thou need'st not be gone."[2]

रणधीर भी जब प्रभात को सन्निकट देखकर,प्रेममोहिनी से विदा लेने लगता है, तो वह इसी प्रकार की उक्तियों से उसे रोकने का प्रयत्न करती है :

"रणधीर : हे प्रिये देखो, सूर्योदय का समय हो गया, दीपक की ज्योति मद पड़ गई, हार के मोती शीतल हो गए, पक्षी चहचहाने लगे और कमल के चिकने चिकने पत्रों से ओस की बूंद मोतियों की लड़ी के समान ढलकने लगी। अब तुम आज्ञा दो तो मैं भी जाकर स्नान करूं।

प्रेममोहिनी : ना प्राण प्यारे, अभी सूर्योदय का समय नहीं हुआ, आपके तेज से दीपक की ज्योति मन्द पड़ गई और पुष्पों की शीतलता से मोती ठंडे हो गए। पक्षी नहीं चहचहाते, रात्रि के कारण मीठे मीठे स्वरों से कोयल बोलती है। कमल के पत्रों पर ओस की बूंद नहीं ढलकती, मेरे कपोलों पर आंसू ढल आये हैं।"[3]

इस नाटक के अन्तिम दृश्य के, प्रथम अंक में मालती ने, रोमिओ के एक स्थान पर कहे हुए शब्दों की, आवृत्ति की है। जब जूलियट रोमिओ से कहती है, कि उसे सावधान रहना चाहिए, नहीं तो उसके परिवार के लोग उसका वध करवा देंगे; तो वह कहता है :

A lack, there is more peril in thine eye
Than twenty of their swords".[4]

१—शेक्सपियर : 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट' अंक तीन, दृश्य पांच, पं० १-५

२—वही, पं १३-१६

३—श्रीनिवास दास: 'रणधीर और प्रेममोहिनी' पृ० १००

४—शेक्सपियर : 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट', अंक तीन, दृश्य पांच, पं० ७१-७२

जब प्रेममोहिनी को देखते ही घायल रणधीर का देहान्त हो जाता है, तब मालती प्रेममोहिनी से कहती है :

"राजकुमार के लिए वैरी के बाणों से तुम्हारे नेत्र अधिक पैने निकले"[१] यह रोमिओ के कथन का हिन्दी रूपान्तर मात्र है।

इतनी समानता को लेकर यह हिन्दी नाटक, अंग्रेजी के नाटक की भांति, भाग्यचक्र और वाह्य- परिस्थितियों का दुखान्तकी है। पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान निकल ने, अपने ग्रन्थ 'ब्रिटिश ड्रामा' में शेक्सपियर की इस रचना की विवेचना करते हुए लिखा है :

"The tragedy of 'Romeo and Juliet' might, after all have been a comedy. Mercutio did not need to die, little lies between the two lovers and a healthy existence."[२]

इसी प्रकार, रणधीर के पिता के विलम्ब से पहुंचने की क्या आवश्यकता थी; और यदि वे समय पर पहुँच गये होते तो दोनों प्रेमी जीवित रहकर सुखमय जीवन व्यतीत करते। किन्तु रोमिओ और जुलियट की भाँति भाग्यचक्र से ग्रस्त होकर इन दोनों प्रेमियों का अन्त भी दुःखमय हुआ है।

श्रीनिवास दास जी के इस नाटक पर शेक्सपियर का प्रभाव एक स्थान पर और मिलता है। प्रेममोहिनी के पिता से बातचीत करते हुए रणधीर कहता है :

"जैसे आपके ऊंचे ऊंचे महलों पर सूर्य की धूप पड़ती है, वैसे ही हमारी गरीब की झोपड़ी में भी सूर्य भगवान प्रकाश करते हैं। जैसे आपके कलशदार महलों पर घनघोर घटा जल बरसाती है, वैसे ही हमारी गरीब की झोपड़ी को भी अपार दया से सूखा नहीं रखती।"[३]

शेक्सपियर के एक नाटक 'दि विंटर्स टेल' में पॉडिटा ने जो कुछ कहा है, यह उसी की प्रतिध्वनि है :

"The self same sun that shines upon his court. Hides not his visage from our cottage but, Looks on alike."[४]

जिन परिस्थितियों में ये दोनों कथन प्रस्तुत किये गये हैं, वे भी बहुत मिलती जुलती हैं।

१—श्रीनिवास दास : 'रणधीर और प्रेममोहिनी', पृ० १२८

२—एलरडाइस निकल : 'ब्रिटिश ड्रामा', पृ० १७१

३—श्रीनिवास दास : 'रणधीर और प्रेममोहिनी', पृ० ८०-८१

४—शेक्सपियर : 'दि विंटर्स टेल', अंक चार, दृश्य तीन, पं० ४५५-५७

श्रीनिवास दास जी के एक अन्य नाटक 'संयोगिता स्वयंवर' (१८८६) पर भी अंग्रेजी प्रभाव है। इस नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना है, और अन्त में भरत वाक्य। आरम्भ में मंगलाचरण सम्बन्धी भी कुछ पंक्तियां है। इस प्रकार यह नाटक अपने बाह्य-रूप में तो पूर्णतः भारतीय है; किन्तु इसमें प्रेम भावना का विकास जिस प्रकार दिखाया गया है, उस पर, अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट है। इसके साथ-साथ इस नाटक के अन्तिम दो अंकों पर शेक्सपियर के 'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस' की स्पष्ट छाप है।

श्रीनिवास दास जी की इस रचना 'संयोगिता स्वयंवर' पर शेक्सपियर के स्वच्छन्दतावादी नाटकों का भी प्रभाव है। पृथ्वीराज को एक बार संयोगिता का रंगमंच पर आलिंगन करते हुए दिखाया गया है।[१] इसी प्रकार एक दूसरे दृश्य में संयोगिता पृथ्वीराज की गोद में लेटी हुई प्रदर्शित की गई है।[२] संस्कृत नाट्य-शास्त्र में इस प्रकार के दृश्य वर्जित हैं, इसलिए लेखक ने काम-क्रीड़ा का यह चित्रण शेक्सपियर के नाटकों से ग्रहण किया होगा। इस नाटक के एक पात्र द्वारा विवाह के सम्बन्ध में प्रकट किये गए इस विचार में भी अंग्रेजी प्रभाव द्रष्टव्य है :

"निसन्देह विवाह का विषय ऐसा कठिन है कि इसमें जन्म भर के लिए एक मनुष्य के प्रारब्ध के संग दूसरे की प्रारब्ध जोड़ दी जाती है, इस कारण कन्या की अनुमति बिना सम्बन्ध करने से बड़ा अनर्थ हो जाता है।[३]

शेक्सपियर के 'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस' का प्रभाव संयोगिता स्वयंवर के उत्तरार्ध में है। संयोगिता, पोर्शिया की भांति पुरुष का वेश ग्रहण करके अपने प्रियतम की रक्षा करती है। इसी प्रकार, संयोगिता का पृथ्वीराज के साथ भागने का प्रसंग, शाइलॉक की पुत्री जेसिका के अपने प्रेमी के साथ भागने के प्रसंग के सदृश है। मुद्रिका का प्रसंग भी लेखक ने शेक्सपियर के नाटक से ले लिया है, किन्तु उसे प्रस्तुत अपने ढंग से किया है।

श्रीनिवास दास जी ने दो और नाटक लिखे थे : 'तप्ता संवरण' (१८७३) तथा 'प्रह्लाद चरित्र' (१८८८); किन्तु उन पर अंग्रेजी प्रभाव बिल्कुल ही नहीं है। अपने 'रणधीर और प्रेममोहिनी' नाटक में अंग्रेजी प्रभाव को ग्रहण करके श्रीनिवास दास जी ने, दुखान्तकी नाटक के स्वरूप को हिन्दी साहित्य में स्पष्ट किया था। इसके अतिरिक्त, अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत अपने नाटकों में उन्होंने, संस्कृत नाट्य-शास्त्र के रस को छोड़कर, पाश्चात्य नाटक के मूलाधार संघर्ष को अपनाया है। इसीलिए

१—श्रीनिवास दास : 'संयोगिता स्वयंवर', पृ० ५३
२—वही, पृ० ७७
३—वही, पृ० ९१-९२

उनकी कथावस्तु का विकास-क्रम—प्रारम्भ, प्रयत्न प्राप्त्याशा आदि अवस्थाओं में नहीं, संघर्ष के आरम्भ, विकास एवं उपसहार के विधान में हुआ है।

केशव राम भट्ट

अंग्रेजी के सुखान्त नाटकों, विशेष रूप से आचार-प्रधान सुखान्तकियों (Commedy of manners) ने भी, हिन्दी नाटक को प्रभावित किया है। केशवराम भट्ट ने हिन्दी में दो आचार-प्रधान सुखान्तकी प्रस्तुत किये थे : 'सज्जाद सुम्बुल' (१८७७) तथा 'शमशाद सौसन (१८८०)। किन्तु ये दोनों नाटक, बंगला की दो नाटकीय रचनाओं 'शरत सरोजनी' तथा 'सुरेन्द्र विनोदिनी' पर आधारित हैं। इस प्रकार इनकी नवीन शैली सीधे अंग्रेजी से न ग्रहण की जाकर, प्रकारान्तर से बंगला साहित्य से आई हुई कही जा सकती है।

अंग्रेजी साहित्य में सुखान्तकी संज्ञा, उस नाटकीय रचना को दी गई है जिसमें सुख में समाप्त होने वाले कथानक को, हलकी विनोद पूर्ण शैली में प्रस्तुत किया जाता है।[1] आचार-प्रधान सुखान्तकी संज्ञा, सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की नाटकीय रचनाओं को, जिनमें ईथरेज, विचरली कांग्रीय आदि की कृतियां आती हैं, दी गई है। अठारहवीं शताब्दी में शेरिडन और गोल्डस्मिथ ने इस नाट्य परम्परा को पुनर्जीवित किया था। इन नाटककारों की रचनाओं में चरित्रों की सामाजिक दुर्बलताओं का उद्घाटन किया गया है, कथावस्तु तथा परिस्थितियों का विनोदपूर्ण चित्रण नहीं है।[2] हिन्दी के इन दोनों नाटकों में इसी साहित्यिक शैली का अनुसरण किया गया है।

अंग्रेजी के सुखान्त नाटक की इस प्रवृत्ति को 'सज्जाद-सुम्बुल' में, भारतीय तथा अंग्रेजी सभ्यता तथा संस्कृतियों के संघर्ष में अभिव्यक्त किया गया है। जीवन के जिस रूप का चित्रण इस नाटक में है, वह अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत है। प्रथम पृष्ठ में ही 'साइंटिफिक एसोसियेशन' नाम की संस्था का उल्लेख है,[3] जिसमें 'मनुष्य बन्दर की सन्तान है', जैसे विषयों पर विचार-विमर्ष होता है।[4] इस संस्था की एक बैठक में, फ्रांसीसी दार्शनिक ऑगस्त काम्ते का भी, वादविवाद के बीच, उल्लेख आया है।[5] इस नाटक के दो स्त्री चरित्र, सुम्बुल और गुलशन भी सुशिक्षित हैं। यह सब अंग्रेजी प्रभाव ही है, किन्तु अंग्रेजी विचारों और संस्कृति का प्रभाव है। नवयुग की इन नवीन भावनाओं के साथ भारतवर्ष के पुरातन विचारों और रूढ़ियों का संघर्ष दिखाया गया

१—'दि कॉन्साइज़ ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ इंगलिश लिट्रेचर', पृ० ६६

२—वही, पृ० १००-१०१

३—केशवराम भट्ट : 'सज्जाद सुम्बुल', पृ० १

४—वही, पृ० १

५—वही, पृ० ५६

है। नाटककार ने मध्यम मार्ग ग्रहण किया है। उसने दोनों के ही अतिवाद का मजाक उड़ाया है। वैज्ञानिक हेमचन्द्र, जो कि डार्विन के सिद्धान्त मनुष्य बन्दर की सन्तान है, का अनुयायी है, अपने इस विचार के पीछे पागल दिखाया गया है। जब कभी भी उसे किसी से बातचीत करने का अवसर मिलता है, वह घुमा फिराकर डार्विन के सिद्धान्त को ले आता है, और यह लोगों को भला नहीं प्रतीत होता। कभी कभी तो लोग उसका मजाक बनाने के लिए उससे यही प्रसंग छेड़ देते हैं। वह बंगाली है, इसलिए उसके हिन्दी उच्चारण से भी मनोरञ्जन होता है। हेमचन्द्र काफी पढ़ा लिखा है; और आवश्यकता पड़ने पर तर्क-शास्त्र के सिद्धान्तों का भी उल्लेख कर सकता है।[1] किन्तु डार्विन के सिद्धान्त को अनावश्यक महत्व देकर, औरों को अपनी विचारधारा के प्रति अनुरक्त करने के स्थान पर, उनका मनोरंजन मात्र करता है।

इस नाटक का एक और चरित्र, सज्जाद, अपनी गम्भीरता से लोगों को हंसाता रहता है। एक बार वह 'सांइटिफिक एसोसिएशन' की एक बैठक में, एक निबन्ध पढ़ता है, जिसका विषय है—सब बुराइयों की जड़ इश्क है। अपने इस निबन्ध में, यह कहकर, कि वैज्ञानिक पद्धति के अनुसरण से बिना विवाह के भी सन्तान होना सम्भव है, वह अच्छा मनोरंजन करता है। आगे चलकर वह, उस समय फिर हमारी हंसी का आलम्बन बनता है, जब वह स्वयं अनंग के बाण से घायल होता है और उसका मित्र अब्बास उसी निबन्ध को निकाल लाता है, तथा उसके कुछ विशिष्ट अंश पढ़ कर सुनाता है। इसी प्रकार कुछ और चरित्रों की दुर्बलताओं का भी चित्रण करके उन्हें हंसी का पात्र बनाया गया है।

भारतीय तथा अंग्रेजी सभ्यता एवं संस्कृतियों के संघर्ष का चित्रण करते हुए, लेखक ने मध्यम-मार्ग का अनुसरण किया है। पश्चिमी संस्कृति के अतिवाद पर लेखक ने कितना तीव्र व्यंग्य किया है, यह तो देखा जा चुका; भारतीय संस्कृति के अतिवाद पर भी उसने तीव्र कशाघात किये हैं। मध्य युग की सामन्तवादी व्यवस्था ने नारी को पुरुष की काम वासना की तृप्ति का साधन मात्र समझा था। वह स्वयं भी अपने को पुरुष की दासी समझने लगी थी।[2] इन विकृत विचारों के विरोध में सुम्बुल का चरित्र प्रस्तुत किया गया है, वह सुशिक्षित है और सज्जाद जैसे उदात्त चरित्र के व्यक्ति की प्राण रक्षा करने की भी क्षमता रखती है। यदि वह न होती तो सज्जाद को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता। इस प्रसंग की अवतारणा करके, लेखक

१—केशवराम भट्ट : 'सज्जाद सम्बुल', पृ० १२

२—केशवराम भट्ट के इस नाटक की नासीमन अपने को पुरुष का गुलाम समझती है।

ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है, कि पाश्चात्य सभ्यता में कुछ अच्छाइयां भी हैं, जो किसी भी व्यक्ति के चरित्र को उन्नत बना सकती हैं। उसके इस सद् पक्ष को हमें, भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति में ग्रहण करना चाहिए।

केशवराम भट्ट जी के इस नाटक पर गोल्डस्मिथ के प्रसिद्ध उपन्यास 'दि विकार ऑफ वेकफील्ड' का भी कुछ प्रभाव प्रतीत होता है। यह विचार कि नारी के अपहरण जैसे कुत्सित कर्म को भी, साहित्यिक रचना में स्थान दिया जा सकता है, लेखक ने इस उपन्यास से ही ग्रहण किया होगा। यह विचार भी कि भाग्य का विधान अन्त में सब कुछ ठीक कर देता है, गोल्डस्मिथ के इस उपन्यास से गृहीत प्रतीत होता है। अंग्रेजी उपन्यास में विकार की एक लड़की फुसलाकर भगा ले जायी गई है; दूसरी का अपहरण हो गया है; और वह स्वयं कर्ज के कारण क़ैद हो गया है। किन्तु सौभाग्य से सब ठीक हो जाता है। वह क़ैद से मुक्त होता है; उसकी बेटियां उसे फिर मिल जाती हैं; और विवाह के अनन्तर वे सुख का जीवन व्यतीत करने लगती हैं। इसी प्रकार हिन्दी नाटक में सज्जाद की बहन का अपहरण हो जाता है, वह स्वयं क़ैद कर लिया जाता है, और जिस लड़की से वह प्रेम करता था वह उसे छोड़कर चली जाती है, तथा उसके देहान्त का समाचार आता है। किन्तु भाग्य की प्रेरणा से अंत में सब ठीक हो जाता है।

केशवराम भट्ट का दूसरा नाटक 'शमशाद सौसन' भी अंग्रेजी ढंग का आचार-प्रधान सुखान्तकी है। इस नाटक की कथा-वस्तु तथा रचना-शैली भी पहले नाटक से मिलती जुलती है। इन दोनों नाटकों का बाह्य-रूप भी, अंग्रेजी से ग्रहण किया गया है; क्योंकि इनमें केवल अंकों और दृश्यों की ही योजना है, प्रस्तावना, भरतवाक्य आदि नहीं हैं। इस प्रकार केशवराम भट्ट ने बंगला के माध्यम से अंग्रेजी प्रभाव को अपनाकर, हिन्दी साहित्य को अंग्रेजी ढंग के आचार-प्रधान सुखान्तकी नाटक प्रदान किये हैं, और यह उनका महत्वपूर्ण योग है।

जी० पी० श्रीवास्तव

शेक्सपियर की नाटकीय रचनाओं तथा इन आचार-प्रधान सुखान्तकियों के साथ, फ्रांस के प्रसिद्ध हास्य लेखक मोलियर (१६२२-७३) का प्रभाव भी हिन्दी नाटकों पर मिलता है। हिन्दी के नाटककारों ने इस फ्रांसीसी लेखक की रचनाएँ अंग्रेजी में पढ़ी थीं;[१] इसलिए अंग्रेजी प्रभाव के साथ, उसके प्रभाव का भी विवेचन किया जा रहा

१—मोलियर के प्रभाव से सबसे अधिक ओत-प्रोत, जी० पी० श्रीवास्तव ने, पश्चिम के इस नाटककार के सर्व प्रथम ग्रहण के परिचय में स्पष्ट स्वीकार किया है—"इस नाटक का अनुवाद मैंने फील्डिंग 'के मॉक डाक्टर' के आधार पर किया है।"

है। हिन्दी नाटक पर मोलियर का प्रभाव; सर्व प्रथम उसकी रचनाओं के स्वतन्त्र रूपान्तरों में देखने को मिला। मोलियर का हिन्दी में सर्व प्रथम रूपान्तरित नाटक 'ल मेकिन माल्ग्रे लेरी' था, जिसे हिन्दी में 'मार मार कर हकीम' (१९११) संज्ञा दी गई थी। जी० पी० श्रीवास्तव ने, अपने इस रूपान्तर को, भारतीय वातावरण प्रदान कर दिया था। इसके बाद लल्ली प्रसाद पांडेय ने इसी रचना का रूपान्तर 'ठोक पीटकर वैद्यराज' (१९१६) उपस्थित किया। जी० पी० श्रीवास्तव ने आगे चलकर मोलियर की कुछ और रचनाओं का रूपान्तर किया : 'लामॉर मेडिसां' का 'आँखों में धूल' (१९१२), 'ला मेडिसां वलां' का 'हवाई डाक्टर' (१९१४) तथा 'ल मारिज फोर्स' का 'नाक में दम' (१९१६)। मोलियर के दो प्रहसनों 'जार्ज दाँदाँ' अथवा 'ल मारी कान्फादूँ' तथा 'ला जेल्युसी दु बारबाई' को मिलाकर, जी० पी० श्रीवास्तव ने एक और प्रहसन 'जवानी बनाम बुढ़ापा' या 'मियाँ की जूती मियाँ के सर' लिखा था।

मोलियर की ये सभी नाटकीय रचनाएँ, जो हिन्दी में अनुवादित हुईं, षडयंत्र-प्रधान सुखान्तकियों की कोटि में आती हैं। नाटककार ने इनमें उन व्यक्तियों पर व्यंग किया है, तथा उनका मजाक बनाया है, जो वयोवृद्ध होने पर भी छोटी अवस्था की कुमारियों का पाणिग्रहण करना चाहते हैं। नवयुवकों को इन वयोवृद्धों पर व्यंग्य करते तथा मजाक बनाते हुए और षडयन्त्र करके कुमारियों का स्वयं पाणिग्रहण करते हुए दिखाया गया है। एक नाटक में वृद्धावस्था के विवाह के दुष्परिणाम का चित्रण है। इस प्रकार के कथानक भारतीय सामाजिक जीवन धारा से पूर्णतः साम्य रखते थे, इसलिए इन रचनाओं के हिन्दी रूपान्तरों को पाठकों ने बड़ी रुचि से अपनाया। नाटककारों ने भी इनसे पथ-निर्देश ग्रहण किया।

इस दिशा में सर्व प्रथम प्रयास स्वयं जी० पी० श्रीवास्तव ने किया। मोलियर की भाँति उन्होंने भी, अपने देश के सामाजिक जीवन को लेकर, उसका व्यगांत्मक चित्रण करते हुए, सामाजिक विकृतियों को दूर करने का प्रयत्न किया। अपने नाटक 'उलट फेर' (१९१८) में उन्होंने प्रचलित न्याय व्यवस्था की विकृतियों का उद्घाटन करते हुए, यह दिखाने का प्रयत्न किया है, वह अपराधों को रोकने के स्थान पर, उन्हें प्रोत्साहित करती है। मनुष्य के भविष्य पर, मोलियर के समान, श्रीवास्तव जी का भी अदम्य विश्वास है; और इसीलिए उन्होंने इस समस्या से मुक्ति का एक मार्ग बताया है। उनका कहना है कि अगर भारतवर्ष में औद्योगीकरण का प्रसार हो जाये, तो हमारे देश के साधारण जन को भी, जो निर्धनता के कारण अपराध करता है, उचित रूप से जीवन यापन का साधन प्राप्त हो जायगा। उनके अन्य नाटकों 'दुमदार

आदमी' (१९१९) और 'मर्दानी औरत' (१९२०) में भी सामाजिक विकृतियों के हास्यपूर्ण चित्रण के साथ, यही समाज-संस्कार की भावना अभिव्यक्त हुई है।

अन्य नाटककार

अन्य नाटककारों में केवल प्रताप नारायण मिश्र (१८८६-९४), राधाकृष्ण दास (१८६५-१९०७), बद्रीनाथ भट्ट तथा जयशंकर प्रसाद (१८२९-१९३७) उल्लेखनीय हैं। प्रताप नारायण मिश्र ने अपने 'कलिकौतुक रूपक' (१८९०) में संस्कृत नाटक की बाह्य रूप-रेखा का पूर्णतः परित्याग कर, अंग्रेजी प्रभाव को, समाज सुधार की भावना के रूप में ग्रहण किया है। राधाकृष्ण दास ने चार नाटक 'दुःखिनी बाला' (१८८०) 'धर्मालाप' (१८८५), 'राजस्थान केसरी' या 'महाराणा प्रताप सिंह' (१८९८) तथा 'महारानी पद्मावती' लिखे थे। इनमें से पहला 'बाल विवाह' के विरुद्ध है; दूसरी रचना नाटक नहीं वरन् वार्तालाप मात्र है; और अंतिम दोनों रचनाएँ ऐतिहासिक नाटक है। इन अंत के दो नाटकों के पात्र यदा-कदा शेक्सपियर के चरित्रों की शैली में बोलते हैं; किन्तु इन चरित्रों में वर्णगत भावना है, शेक्सपियर के चरित्रों की भांति वैयक्तिकता नहीं।

बद्रीनाथ भट्ट की नाटकीय रचनाएं 'कुरुवन दहन' (१९१२) 'चुंगी की उम्मीदवारी' (१९१४) तथा 'चन्द्रगुप्त' (१९१५) हैं। इनमें अंग्रेजी प्रभाव विशेष रूप से 'चन्द्रगुप्त' पर देखने को मिलता है। इस नाटक के प्रारम्भ में महेन्द्र नाम का एक यूनानी व्यवसायी, अपने सामान से भरे जहाजों के डूबने की चर्चा करता है। इस प्रसंग से सम्बन्धित संवाद निश्चित रूप से शेक्सपियर के 'दि मर्चेन्ट ऑफ् वेनिस' से लिए गये है। महेन्द्र और रणधीर की मित्रता, बिल्कुल उसी प्रकार की है, जैसी अन्तोनिओ और बसैनियो की थी। अन्तोनियो जिस प्रकार अपने मित्र की प्राण रक्षा के लिए, अपने प्राणों को भी होम करने को तत्पर दिखाया गया है, उसी प्रकार महेन्द्र भी रणधीर की जीवन-रक्षा के लिए तत्पर है। इस नाटक के संवादों की शैली पर भी कहीं २ शेक्सपियर का प्रभाव है।

जयशंकरप्रसाद (१८८९-१९३७) के नाटकों पर प्रारम्भ से ही अंग्रेजी प्रभाव दिखाई देता है। प्रसाद जी की प्रारम्भिक नाटकीय रचना 'प्रायश्चित' में जयचन्द की उन्माद की स्थिति का चित्रण, शेक्सपियर के 'किंग लियर' की इस प्रकार की मनःस्थिति के चित्रण से मिलता हुआ है। जयचन्द ने उन्माद की अवस्था में रंगमंच पर ही आत्महत्या कर ली है : यह प्रसंग स्पष्ट रूप से अंग्रेजी प्रभाव से गृहीत है। 'करुणालय' (१९१४) अंग्रेजी के गीति-नाट्य की शैली में लिखित है। प्रसाद जी

की यह रचना अमित्राक्षर छन्द में है, और यह स्वयं लेखक के अनुसार, बंगला के माध्यम से अंग्रेजी प्रभाव को लेकर है। 'राज्यश्री' (१९१५) का वाह्य-रूप यद्यपि संस्कृत नाटकों जैसा है; किन्तु उसमें द्वन्द्व (Duel) तथा युद्ध के दृश्यों की जो अवतारणा है, वह पाश्चात्य नाटक के मूल तत्व संघर्ष को लेकर है। उसकी गीत योजना भी शेक्सपियर के स्वच्छन्दतावादी नाटकों की शैली में है।

निष्कर्ष

हिन्दी नाटक पर अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न प्रवृत्तियाँ, इस विवेचना से, स्पष्ट हो जाती हैं। अंग्रेजी प्रभाव ने हिन्दी नाटक का ऐसा बाह्य-रूप प्रदान किया, जिसमें संस्कृत नाटकों के ढंग की जटिलता नहीं थी; इसलिए उसका सरलता से प्रयोग किया जा सकता था। अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप ही, हिन्दी नाटक संस्कृत नाट्य-शास्त्र की प्रस्तावना नान्दी, अर्थोपक्षेपक—विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकमुख और अंकावतार—आदि जटिलताओं से मुक्त हो सका है; और नाटक की रचना करना सरल हो गया है। अंग्रेजी प्रभाव की इस प्रवृत्ति से, हिन्दी में नाटकीय रचनाओं के विकास को विशेष प्रेरणा मिली। अंग्रेजी नाटकों के अध्ययन ने हिन्दी नाटककारों के जीवन के दृष्टिकोण को और व्यापक बनाया तथा विषय-वस्तु के क्षेत्र को भी विस्तृत किया। वह अब जीवन को, उसकी पूर्णता के साथ, प्रेरणाप्रद तथा निश्चेष्ट करने वाले दोनों स्वरूपों को देख सकता था। उसकी रचना-शैली में भी इस प्रभाव ने एक परिवर्तन के क्रम का सूत्रपात किया। वह अब दुखान्तकी तथा आचार-प्रधान एवं षडयंत्र-प्रधान सुखान्तकी रचनाएँ लिख सकता था।

पारसी थियेटर कम्पनियों का प्रभाव भी, अंग्रेजी प्रभाव का ही एक प्रकार रहा है, उसने हिन्दी नाटक को प्रोत्साहन देने के स्थान पर उसके विकास को अवरुद्ध करने का प्रयत्न किया था। पारसी रंगमंच पर प्रस्तुत किये गये अधिकांश नाटक अश्लील थे, इसलिये वे दर्शकों की रुचि को विकृत तथा नाट्य-कला को अभद्र बनाते थे। यही कारण है कि पारसी रंगमंच, शेक्सपियर तथा अन्य महान् नाट्यकारों की रचनाओं को अपना कर भी, साहित्यिक महत्व की नाटकीय रचनाएँ नहीं प्रस्तुत कर सका। शेक्सपीयर के नाटकों की समस्त साहित्यिक विशेषताएँ पारसी रंगमंच पर खो गई थीं। इस रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाने वाले मौलिक नाटकों का भी साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व नहीं है।

पारसी रंगमंच की इन विकृत रुचि की रचनाओं के ही कारण, हिन्दी लेखक, नाटकीय रचनाएँ लिखने की ओर विशेष प्रवृत नहीं हुए; फिर भी जो नाटकीय रचनाएँ प्राप्त हैं, उन पर अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट है। हिन्दी नाटककारों ने कभी शेक्स-

पियर के प्रभाव को लेकर, जीवन के महान सत्यों को अभिव्यक्त किया है; कभी गोल्डस्मिथ और शेरिडन से प्रभावित होकर, अपने समय की सामाजिक विकृतियों का उद्‌घाटन किया है; तथा कभी फ्रांस के प्रसिद्ध हास्य-लखक मोलियर से प्रेरणा लेकर, जटिल सामाजिक समस्याओं को, व्यंग और हास्य के पैने अस्त्रों से सुलझाने का प्रयास किया है।

: ६ :

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव

कथा-कहानी कहने-सुनने की प्रवृत्ति मनुष्य में आदिम काल से, भाषा का उद्भव हो जाने के अनन्तर, रही है; किन्तु उपन्यास की साहित्यिक विधा का अभ्युदय, प्रायः सभी देशों के साहित्यों में बहुत बाद को हुआ है। उपन्यास की विधा के इस विलम्ब से प्रारम्भ होने का कारण, उसके रचना विधान की जटिलता है। उपन्यास, जीवन अथवा जगत की कुछ घटनाओं का साधारण विवरण मात्र ही नहीं, वरन् उसके व्यापक स्वरूप, उसकी समस्त सूक्ष्मताओं एवं जटिलताओं का वर्णन है। जीवन की चिर-प्रवहमान धारा का यह व्यापक एवं सूक्ष्म चित्रण, मनुष्य एवं उसके चारों ओर के जगत के भली प्रकार अनुशीलन की अपेक्षा रखता है। इस सम्यक अनुशीलन के लिए, जीवन की वास्तविकताओं के प्रति समुचित अनुराग आवश्यक है, और मनुष्य में इस अनुराग का जागरण आधुनिक काल में ही हो सका है। जीवन के व्यापक प्रवाह के, उसकी समस्त सूक्ष्मताओं के साथ चित्रण के लिए, भाषा भी पर्याप्त विकसित अपेक्षित होती है। साहित्य में उपन्यास की विधा के विलम्ब से प्रारम्भ के यही कुछ कारण रहे हैं; और इन्हीं तथा इसी प्रकार के कुछ अन्य कारणों से, हिन्दी में भी इस साहित्यिक रूप का विकास विलम्ब से हुआ है।

हिन्दी में इस साहित्यिक विधा का विकास, विशेष रूप से अंग्रेजी प्रभाव के युग

में ही सम्भव हुआ है। इसके पूर्व भी कुछ प्रयोग हुये थे, किन्तु उस समय हिन्दी में पद्य रूप की प्रधानता थी, इसलिये गद्य की इस साहित्यिक विधा का सूत्रपात नहीं हो सका।[1] उस समय तक उपन्यास की रचना के लिए अपेक्षित, आवश्यक सामाजिक पृष्ठ-भूमि, मानसिक चेतना एवं भाषा-शैली का भी विकास नहीं हुआ था। हिन्दी-प्रदेश के लोगों में, जीवन की वास्तविकताओं के प्रति, रुचि नहीं उत्पन्न हुई थी; और हिन्दी भाषा ने भी, जीवन को उसकी समस्त व्यापकता एवं सूक्ष्मताओं के वर्णन करने की शक्ति नहीं अर्जित की थी। इन अभावों के होते हुए, इस साहित्यिक विधा का विकास किस प्रकार होता भी।

अंग्रेजी प्रभाव के आगमन से, हिन्दी-प्रदेश में एक नवीन-युग, आधुनिक काल का सूत्रपात हुआ था। आधुनिक प्रवृत्तियों के जागरण के साथ, जनसाधारण की जीवन की यथार्थताओं के प्रति चेतना सजग होने लगी। अब तक लोग सम्पन्न तथा धन-धान्य से पूर्ण रहे थे, इसलिये उनके पास चिन्तन तथा अपनी रचनाओं को अलंकृत करने के लिये पर्याप्त समय रहा था। किन्तु अंग्रेजी साम्राज्यवाद की शोषण की नीति के फलस्वरूप, जो अंग्रेजी प्रभाव के साथ आई थी, लोगों को जीवन की कठोर वास्तविकताओं पर विचार करना आवश्यक हो गया। सात समुद्र पार से आये हुए अंग्रेजों को, तथा उनके ज्ञान-विज्ञान को देखकर, यहां के लोगों की दृष्टि का विस्तार हुआ; अपने देश एवं संसार के सम्बन्ध में भी उनकी धारणाएँ और स्पष्ट हुई। मुद्रण कला के प्रचार तथा उसके साथ पश्चिम की नई विचार पद्धति तथा वैज्ञानिकता के प्रसार ने, हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति को बढ़ाया। इस प्रकार उपन्यास के विकास के लिए सभी आवश्यक तत्व जब एकत्र हो गये तो इस साहित्यिक रूप का विकास प्रारम्भ हुआ।

कथा-वार्ता की प्रवृत्ति मनुष्य में आदिम युग से ही देखने को मिलती है, इसलिये अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व भी हमें भारतीय भाषाओं में उपन्यास अथवा विस्तृत आख्यान लिखने के प्रयत्न मिल जाते हैं। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' का संसार के उपन्यास साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। 'कथा-सरित-सागर' के वे प्रकरण, जो वत्सराज उदयन के जीवन से सम्बन्धित है, स्वतन्त्र रूप से एक उपन्यास का रूप

१—डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने 'हिन्दी पुस्तक साहित्य', में, जायसी के 'पद्मावत' एवं अन्य सूफी कवियों की रचनाओं को, उपन्यास कोटि में रक्खा है; किन्तु पद्य-बद्ध रूप में, जीवन का भावना और कल्पना से अनुरंजित चित्रण प्रस्तुत करने के कारण, उन्हें कथा-काव्य ही कहना चाहिए।

ग्रहण कर सकते हैं। केवल संस्कृत में ही नहीं, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में भी इस प्रकार के प्रयोग हुए थे। मध्य युग में, इस्लामी सभ्यता के प्रवेश के अनन्तर, हिन्दी-प्रदेश के लोग फारसी के आख्यानों से भी परिचित हो गये थे। उस युग में, हिन्दी साहित्य में, गद्य-रूप में आख्यान नहीं लिखे जाते थे; इसलिये इस प्रदेश के जनसाधारण, जिनके पास कथा-वार्ता का अनन्त भंडार था, अपनी सांझ तथा रात की बैठकों में, उनके कहने-सुनने का आनन्द लेते रहे होंगे। यह विश्वास कि कहानियाँ दिन में नहीं कही जानी चाहिएँ, इस विचार की पुष्टि करता है। किन्तु हिन्दी उपन्यास का विकास, इन कथा-वार्ताओं से नहीं हुआ है।

अंग्रेजी के उपन्यास साहित्य ने, मूल प्रेरणा तथा उसके बाद विकास में भी विशेष योग प्रदान किया है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ हो जाने के बाद, संस्कृत के कथा साहित्य, भारतीय जन-कथाओं तथा फारसी के आख्यानों ने भी उसके विकास में योग दिया है।

हिन्दी उपन्यास के विकास में अंग्रेजी प्रभाव का योग प्रस्तुत अध्ययन का विषय है; किन्तु इस प्रभाव की देन को, पूर्णतः स्पष्ट करने के लिए, यह आवश्यक है कि अन्य प्रभावों की मुख्य वृत्तियों की भी विवेचना की जाय। इसलिये अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख धाराओं की विवेचना के अनन्तर, अन्य प्रभावों की विवृत्ति की जायगी; और उसके बाद हिन्दी के उपन्यासकारों पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन होगा। इस प्रभाव की समष्टि रूप से विवेचना, निष्कर्ष के अंश में प्रस्तुत की जायगी।

(१) अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख धाराएं

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव कई धाराओं में होकर आया है: (क) विभिन्न पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत अंग्रेजी उपन्यासों का अध्ययन; (ख) अंग्रेजी उपन्यासों के हिन्दी रूपान्तर; तथा (ग) बंगला उपन्यासों के रूपान्तर। हिन्दी उपन्यास पर बँगला उपन्यास का प्रभाव भी, प्रकारांतर से अंग्रेजी प्रभाव ही है; क्योंकि बंगला उपन्यास भी अंग्रेजी प्रभाव की ही सृष्टि है।

हिन्दी-प्रदेश के विभिन्न पाठ्य-क्रमों में, अंग्रेजी के निम्नलिखित उपन्यास, समय-समय पर स्वीकृत हुए थे: डैनियल डेफ़ो (१६६०-१७३१) का 'रॉबिन्सन क्रूसो' (१७१९) जेन ऑस्टिन (१७७५-१८१७) का 'प्राइड ऐंड प्रेज्युडिस' (१८१३), सर वाल्टर स्कॉट (१७७१-१८३२) के 'आइवन हो' (१८२०) तथा 'केनिलवर्थ' (१८२१), चार्ल्स डिकेन्स (१८१२-७०) का 'ए टेल ऑफ टू सिटीज़' (१८५९), विलियम मेकपीस थैकरे (१८११-६३) के 'वैनिटी फेअर' (१८४७-४८), 'हेनरी एस्मॉन्ड' (१८५२) तथा 'दि न्यूकम्स' (१८५३-५५), जॉर्ज इलियट (१८१९-८०) के 'आदम

वेदे' (१८५९), 'साइलस मार्नर' (१८६९), 'रोमोला' (१८६३), तथा 'मिडिल मार्च' (१८७१-२), चार्ल्स रीड (१८१४-८४) का 'दि क्लाएस्टर ऐंड दि हर्थ' (१८६१) तथा टॉमस ह्यजेज़ (१८२२-९६) का 'टॉम ब्राउन्स स्कूल डेज़' (१८५७)।

इन उपन्यासकारों तथा उनकी रचनाओं के प्रभाव के विश्लेषण के लिए पहले इनका अपना अध्ययन अपेक्षित है। डैनियल डेफो का 'दि लाइफ ऐंड स्ट्रेंज सरप्राइजिंग ऐडवेन्चर्स ऑफ रॉबिन्सन क्रूसो', जैसा उसकी संज्ञा से ही प्रतीत होता है, एक साहसिकता पूर्ण कृत्यों का उपन्यास है। लेखक ने अपनी इस रचना में जहाज दुर्घटना के अनन्तर, एक निर्जन टापू में क्रूसो के जीवन-यापन के प्रयत्नों का वर्णन किया है। उसने वहां अपने लिए एक मकान बनाया, कुछ बकरियां पालीं और एक नाव बनायी। कुछ वर्षों बाद एक अंग्रेजी जहाज उसका उद्धार करता है। जेन ऑस्टिन ने अपने उपन्यास 'प्राइड ऐंड प्रेज्युडिस' में, अपने युग के अंग्रेजी सामाजिक जीवन का चित्रण किया है; तथा यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि हमें अहंकार तथा पूर्वाग्रह की वृत्तियों से बचना चाहिये, क्योंकि ये दो सच्चे प्रेमियों को भी विलग कर देती हैं। स्कॉट ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में, जिस युग को उन्होंने लिया है, उसकी जीवन धारा का चित्रोपम वर्णन किया है। 'आइवन हो' में धर्मयुद्धों के इतिवृत्त के अतिरिक्त सैक्सनों और नारमनों के पारस्परिक वैमनस्य तथा संघर्ष का वर्णन है। 'केनिलवर्थ' में एलिजाबेथ के युग के सामन्ती जीवन का चित्रण है। चार्ल्स डिकेन्स ने 'ए टेल ऑफ टू सिटीज़' में, जो कार्लायल के 'फ्रेंच रिवोल्यूशन' पर आधारित है, दो शहरों, लन्दन तथा क्रान्ति के दिनों में पेरिस के जीवन का चित्रण है। थैकरे ने अपनी कृतियों 'वैनिटी फेयर' तथा 'दि न्यूकम्स' में अपने युग के सामाजिक जीवन को प्रस्तुत किया है; और 'हेनरी एस्मॉन्ड' नामक ऐतिहासिक उपन्यास में, अट्ठारहवीं शताब्दी के सामजिक जीवन का चित्रण है। थैकरे की भान्ति जॉर्ज इलियट ने भी अपनी कृतियों में सामाजिक तथा ऐतिहासिक दोनों प्रकार के कथानकों को ग्रहण किया है। 'आदम बेदे' तथा 'साइलस मार्नर' में इंग्लैंड के ग्रामीण जीवन का बड़ा यथार्थ और विशद चित्रण है। इसके अनन्तर लेखिका ने एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा—'रोमोला' जिसमें उसने पुनरुत्थान के युग की इटली का सुन्दर चित्रण किया है। 'मिडिल मार्च' में उसने फिर सामाजिक जीवन को लेकर कई परिवारों के जीवन का चित्रण किया है। चार्ल्स रीड ने अपने 'दि क्लॉएस्टर ऐंड दि हर्थ' में एक ऐतिहासिक कथानक लिया है। इरैसमस के माता पिता को, उसके जन्म के पूर्व जो कष्ट भोगने पड़े थे, उनका विवरण दिया है। टॉमस ह्यूजेज़ ने अपने 'टॉम

ब्राउन्स स्कूल डेज' में अपने समय के स्कूलों के जीवन का वर्णन किया है ।

इन उपन्यासकारों ने उपन्यास कला के विकास में जो कुछ योग दिया उसे भी देखना चाहिए। इस विवेचना से उनकी अपनी साहित्यिक विशेषताएं भी प्रगट हो जायेंगी। डेफ़ो अपनी रचना 'रॉबिन्सन क्रूसो' में, एक सूक्ष्म निरीक्षक के रूप में प्रगट होता है, साथ ही उसमें उसकी यथार्थ और विशद चित्रण की प्रतिभा भी देखने को मिलती है। उसमें मध्यम वर्ग की जीवन धारा का बड़ा विस्तृत चित्रण है; किन्तु उसका प्रधान चरित्र, रॉबिन्सन क्रूसो, एक साहसिक नवयुवक तथा व्यक्ति के रूप में नहीं, वरन् किन्हीं सामाजिक प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु जेन ऑस्टिन के चरित्रों का अपना अलग २ व्यक्तित्व है : उसकी रचनाओं में चरित्रों की संख्या बहुत अधिक है, फिर भी उनमें से कोई, दूसरे की प्रतिकृति नहीं है। उसके उपन्यास 'प्राइड ऐंड प्रेज्युडिस' में, श्रीमती बेनेट की पांचों पुत्रियों के अपने पृथक २ चरित्र है। जेन ऑस्टिन के कुछ चरित्र, अपने संश्लिष्ट चित्रण के कारण, हमारे स्मृति-पट पर अपना स्थान बना सकने में समर्थ होते हैं : श्रीमती बेनेट, वैवाहिक संबंधों को स्थिर करने में विशेष कौशल से सम्पन्न हैं, और उनके चरित्र की यह रूपरेखा हमारे मनःपटल पर अंकित हो जाती है।

सर वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों के साथ, अंग्रेजी कथा साहित्य बिलकुल एक नयी दिशा ग्रहण करता है। उसके सभी उपन्यासों के कथानक, इतिहास से लिये गये है। प्रारम्भ में स्कॉट ने, पद्य-रूप में साहसिक प्रेम कथाएं लिखी थीं। उसके गद्य आख्यानों में भी इसी प्रकार की कथाओं को प्रस्तुत किया गया है। अंग्रेजी के इस उपन्यासकार का, इतिहास का अनुशीलन बहुत अच्छा था, इसीलिए, जिस युग की कथा को उसने लिया है, उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को भी भली प्रकार उपस्थित कर दिया है। जीवन के सामान्य स्वरूप का भी उसको सम्यक परिज्ञान था, इसीलिए अतीत काल के चरित्रों में वह सजीवता की अवतारणा में सफल हुआ है। स्वच्छन्दतावादी कवि के रूप मे प्राकृतिक शोभा के प्रति भी वह विशेष अनुरक्त था, अपने उपन्यासो में भी उसने स्थान स्थान पर प्रकृति के मर्मस्पर्शी चित्र दिये है।

चार्ल्स डिकेन्स, अंग्रेजी का सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यासकार है, किन्तु उसकी रचनाएं हिन्दी-प्रदेश में थोड़ी ही पढ़ी गई थीं। उसके उपन्यासों में केवल एक, 'ए टेल ऑफ टू सिटीज़' ही, जिसमें फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय पेरिस और लन्दन के जीवन का चित्रण है, पाठ्य-क्रम में स्वीकृत रहा था। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, और इसमें लेखक की वर्णन क्षमता, तथा चरित्र-चित्रण में मानवतावादी दृष्टि, पर्याप्त रूप में प्रकट हुई हैं। डिकेन्स की उपन्यासकार के रूप में सबसे बड़ी विशेषता, किसी न

किसी सामाजिक उद्देश्य का निर्वाह रही है। उनकी इस रचना का भी एक सामाजिक उद्देश्य है, सामन्त वर्ग के नृशंसता पूर्ण आचरण के प्रति तीव्र आक्रोश की भावना जगाना।

किसी विशिष्ट सामाजिक उद्देश्य को लेकर लिखने की यह प्रवृत्ति, थैकरे की रचनाओं में भी है। डिकेन्स का समकालीन होने के कारण, थैकरे की कुछ प्रवृत्तियां उसमें मिलती जुलती हैं। किन्तु इन दोनों उपन्यासकारों का अपना अलग २ सामाजिक परिवेश था, इसलिए दोनों की अपना पृथक २ मानसिक दृष्टि भी थी। डिकेन्स का जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण रहा था, इसलिए उसका अनुभव का क्षेत्र बड़ा व्यापक था। उसने अपने राष्ट्रीय जीवन की दुर्बलताओं को भली प्रकार समझा था, और अपनी सशक्त लेखनी से उन्हें दूर करने का भी प्रयास किया था। थैकरे की जीवन धारा, अपेक्षाकृत शान्त वातावरण में प्रवाहित होती रही थी; इसलिए उसने सामाजिक परम्पराओं को ही ग्रहण किया था, और सामाजिक विकृतियों पर कटाक्ष किया था। किन्तु उसका निरीक्षण अधिक गहरा है, इसलिए उसकी रचनाओं में जीवन का अधिक यथार्थ चित्रण है। यह यथार्थ चित्रण की प्रवृत्ति उसके ऐतिहासिक उपन्यास 'हेनरी एस्मॉन्ड' में भी दर्शनीय है। डिकेन्स की अपेक्षा थैकरे का कलाकार भी अधिक सजग था; इसीलिए उसने अपनी रचनाओं के शिल्प-विधान में विशेष रुचि ली है। उसका चरित्र-चित्रण भी, विभिन्न चरित्रों की दुर्बलताओं एवं सबलताओं, दोनों के ही, उद्घाटन के कारण, अधिक स्वाभाविक है।

डिकेन्स के एक और समसामयिक, चार्ल्स रीड का भी हिन्दी-प्रदेश में अध्ययन हुआ था। इस लेखक के ऐतिहासिक उपन्यास, 'दि क्लाएस्टर एंड दि हर्थ' में, यूरोप में सुधार आन्दोलन के दिनों के एक विशिष्ट ऐतिहासिक व्यक्तित्व, इरैसमस के चरित्र निर्माण में कार्य करने वाले विभिन्न प्रभावों का वर्णन है। इस उपन्यास की रचना के लिए उसने स्वयं इरैसमस की रचनाओं से सामग्री एकत्र की थी। चार्ल्स रीड की यह प्रमुख विशेषता थी, कि वह अपनी रचनाओं के लिए बड़े प्रयत्न से सामग्री एकत्र करके, उसके प्रति सत्यनिष्ठ भी रहता था। इसी प्रवृत्ति के कारण चार्ल्स रीड को अभिलेखन के आदर्श का अनुयायी कहा गया है। डिकेन्स और थैकरे की तुलना में उसने जीवन का अधिक यथार्थ चित्रण किया है। सामाजिक उद्देश्य को भी उसने अधिक स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। चार्ल्स रीड वस्तुतः उपदेशक था, इस लिए उसने सामाजिक अनाचारों को अनावृत्त मात्र ही नहीं किया, वरन् उनका उपचार भी बताया है। मानव जीवन का नाटकीय संविधान भी उसकी रचनाओं में अधिक स्पष्ट है।

अंग्रेजी उपन्यास की इस यथार्थवादी परम्परा में, जॉर्ज इलियट ने दार्शनिकता की संयोजना की। उसके उपन्यासों 'आदम बेदे' और 'साइलस मार्जर' में, इंग्लैंड के ग्रामीण जीवन का बड़ा स्वाभाविक चित्रण है, किन्तु इन उपन्यासों की रचना इस दृष्टि से नहीं, वरन् चिन्तनशील चरित्रों की अवतारणा के लिए है। जार्ज इलियट ने इसी उद्देश्य को दृष्टि में रख कर अपने चरित्रों के जीवन की घटनावली प्रस्तुत करने से अधिक, उनके मनोविज्ञान को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक उपन्यास 'रोमोला' में भी विभिन्न चरित्रों के मनोविज्ञान के स्पष्ट करने पर विशेष बल है। अंग्रेजी उपन्यास के विकास में, जॉर्ज इलियट का योग इस प्रकार मनोवैज्ञानिक कथाओं की अवतारणा एवं चिन्तनशील चरित्रों की सृष्टि रहा है। जॉर्ज इलियट ने अपने प्रारम्भिक रचना काल में, स्ट्रॉस के ईसा मसीह के जीवन-वृत्त एवं फेवरबाख के 'इसेंस ऑफ क्रिस्चैनिटी' का भी जर्मन भाषा से अनुवाद किया था; इसलिए उसकी रचनाओं में नैतिकता का स्वर भी बड़ा सशक्त था।

अंग्रेजी के जितने उपन्यासकार हिन्दी-प्रदेश में पढ़े गये उनमें सामाजिक उद्देश्य का सबसे अधिक स्पष्ट कथन, टॉमस ह्यूजेज के 'टॉम ब्रॉडन्स स्कूल डेज' में है। उसमें इंग्लैंड के तत्कालीन विद्यालयों की जीवन धारा का, उनकी समस्त दुर्बलताओं के साथ चित्रण है; और यह उनके प्रति अधिकारियों एवं जनसाधारण का ध्यान आकर्षित करके, उन्हें दूर करने की प्रेरणा प्रदान करने के उद्देश्य से है। अंग्रेजी के प्रचारात्मक उपन्यासों में इसका विशिष्ट स्थान है, और हिन्दी के उपन्यासकारों ने उससे इस कोटि की रचनाओं के निर्माण का विधान ग्रहण किया होगा।

हिन्दी-प्रदेश में पढ़े गये अंग्रेजी के उपन्यासकारों एवं उनकी रचनाओं का यह अध्ययन, यह स्पष्ट कर देता है, कि अंग्रेजी में इस साहित्यिक विधा के सभी प्रकार साहसिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, चरित्र-प्रधान एवं प्रचारात्मक उपन्यास, हिन्दी-प्रदेश के लोगों के सामने आ गये थे। अंग्रेजी उपन्यास का एक विशिष्ट प्रकार जासूसी रचनाएँ मात्र ही शेष रह गयी थीं; और बंगला से अनूदित रचनाओं के माध्यम से उनसे भी परिचय हो गया था। अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास विल्की कॉलिन्स के 'दि वमन इन ह्वाइट' का भी 'शुक्ल वसना सुन्दरी' (१९१६) के नाम से अनुवाद हुआ था। अंग्रेजी के ऐतिहासिक उपन्यासों से प्रथम परिचय, स्कॉट की रचनाओं के माध्यम से हुआ था; थैकरे, रीड और जॉर्ज इलियट की रचनाओं से वह और घनिष्ठ हो गया था। डैनियल डेफो से लेकर, ह्यजेज तक अंग्रेजी उपन्यास कला के विकास की रूप-रेखा भी इन रचनाओं के अध्ययन से स्पष्ट

हो गयी थी, अंग्रेजी उपन्यास के प्रवृत्तिगत विकास को भी इस अध्ययन ने भली प्रकार स्पष्ट कर दिया था।

अंग्रेजी उपन्यासों के अनुवाद

अंग्रेजी उपन्यासों के हिन्दी अनुवाद का क्रम भी अंग्रेजों की प्रेरणा से ही आरम्भ हुआ। सर्व प्रथम डैनियल डेफो का 'रॉबिन्सन क्रूसो', 'राबिन्सन क्रूसो का इतिहास' (१८६०) के रूप में अनुवादित हुआ। डॉ० ई० जे० लाजर्स के आदेश पर काशी पाठशाला के पं० बद्रीलाल ने उसका अनुवाद किया था; और जन - शिक्षा समिति के निर्देशक, हेनरी स्टुअर्ट रीड के आदेश से उसका प्रकाशन हुआ था। यह अनुवाद एक बंगला रूपान्तर के आधार पर, सरल हिन्दी में है। कुछ समय बाद, संस्कृत गर्भित हिन्दी में भी इसके दो रूपान्तर, द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी एवं जनार्दन झा ने प्रकाशित किये। इन दोनों अनुवादों का प्रकाशन सन् १९१३ में हुआ था; और इनमें से एक में 'फ्राइडे' नामक चरित्र का भी हिन्दी रूपांतर 'शुक्रवार' कर दिया गया था। इन सभी अनुवादों की मूल प्रेरणा, जैसा कि इनके अनुवादकों ने स्वयं अपने अपने प्राक्कथनों में स्वीकार किया है, इस उपन्यास का साहसिक आख्यान है।

अंग्रेजी की प्रसिद्ध प्रतीकवादी रचना, जॉन बनियन (१६२८-८८) की 'दि पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' (१६७८) का इसके अनन्तर अनुवाद हुआ। एक ईसाई प्रचारक ने इसका अनुवाद 'यात्रा स्वप्नोदय' (१८६५) के रूप में प्रस्तुत किया। यह अनुवाद संस्कृत गर्भित हिन्दी में है; और अनुवादक ने मूल के अक्षरशः निर्वाह का प्रयास किया है।

अंग्रेजों की प्रेरणा एंव स्वयं उनके प्रयास द्वारा प्रस्तुत इन दो अनुवादों के अनन्तर, बंगला एवं अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं से इस साहित्यिक विधा के रूपान्तर होने लगे। अंग्रेजी से अनुवाद का क्रम, १९०१ में प्रकाशित जॉर्ज डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड के 'फाउस्ट' के हरिकृष्ण जौहर द्वारा प्रस्तुत, 'नर पिशाच' रूपान्तर से पुनः प्रारम्भ हुआ। 'यात्रा स्वप्नोदय' एवं 'नर पिशाच' के प्रकाशन के बीच के काल में, अंग्रेजी के तीन अनुवादों का उल्लेख मिलता है : रामकृष्ण वर्मा ने मूल डच के एक अंग्रेजी रूपान्तर का 'अकबर' (१८९१) उपस्थित किया।[1] केशव राम भट्ट ने डॉ० जॉनसन के 'रैसलस' का मूल संज्ञा के साथ अनुवाद किया; और अयोध्या सिंह उपाध्याय ने अज्ञात नाम के एक अंग्रेजी उपन्यास का अनुवाद 'बेनिस का बांका' प्रकाशित किया।[2]

१—इस अनुवाद का उल्लेख, 'मिश्र बन्धु विनोद', भाग ४, पृ०१२१५ में है।

२—यह अनुवाद सर्व प्रथम अरबी, फारसी मिश्रित भाषा में 'काशी पत्रिका' में प्रकाशित

अंग्रेजी से अनुवादित उपन्यासों में रेनाल्ड की रचनाएं सबसे अधिक हैं। हरि कृष्ण जौहर ने, 'फाउस्ट' के अनुवाद 'नर पिशाच' (१८९१)से, इस क्रम को आरम्भ किया था। रेनाल्ड के तदनन्तर अनुवादित उपन्यास है : 'राई हाउस प्लॉट' का 'सत्यवीर' (१९२१) तथा 'सच्चा बहादुर' (१९०.), 'जोजेफ विलमट' मूल संज्ञा के साथ (१९०५), 'लैला दि स्टार ऑफ मिसरेलिआ' का 'प्रवीण पथिक' (१९११), 'मिस्ट्रीज़ ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन' का 'लन्दन रहस्य' (१९१३-१५) तथा 'दि ब्रॉन्ज़ स्टेच्यू' का 'पीतल की मूर्ति' (१९७३)। अंग्रेजी के इस उपन्यासकार की कुछ और रचनाएँ भी हिन्दी में अनुवादित हुई थीं: 'अनग तरग' (१९०८), 'दुर्जन' (१९०८), 'दि यंग फिशर मैन' का 'किले की रानी' (?), 'रॉबर्ट मैकेयर' का मूल संज्ञा में (?) एवं 'रहस्य भेद' (१९१३)।

अंग्रजी साहित्य के इतिहासो में रनाल्ड एवं उसके उपन्यासों की कोई चर्चा नहीं है। इस उपेक्षा का कारण सम्भवत: यह रहा है कि इस उपन्यासकार ने अपनी 'राई हाउस प्लॉट' एवं 'मिस्ट्रीज ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन' रचनाओं में, इंग्लैंड के राज परिवार, एवं कुछ राजाओं के भी विलास पूर्ण जीवन का उद्‌घाटन किया है। रेनाल्ड के 'फाउस्ट' एवं 'दि ब्रॉन्ज स्टेच्यू' में, धार्मिक सुधार आन्दोलन के पूर्व के इटली और जर्मनी के, ईसाई धर्माधीशों के पापाचारों के वर्णन है। अंग्रेजी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में, इस उपन्यासकार के अनुल्लेख के कुछ भी कारण रहे हों, हिन्दी-प्रदेश एवं बंगाल में[1] तो यह अंग्रेजी का सर्वाधिक लोक-प्रिय उपन्यासकार रहा है; और बंगला तथा हिन्दी के उपन्यासों पर इसका पर्याप्त प्रभाव भी है।

अंग्रेजी से अनुवादित अन्य उपन्यास है, राइडर एच० हैगर्ड (१८५६-१९२७) के 'शी' का 'श्री या 'अवश्य माननीया' (१९०२), विलियम विल्की कॉलिन्स (१८२४-८९) के 'दि वमन इन ह्वाइट' का 'शुक्लवसना सुन्दरी' (१९१६), हेरियट बीचर स्टो के 'अंकिल टॉम्स कैबिन' का 'टाम काका की कुटिया' (१९१६) और जॉर्ज इलियट के 'माइलस मार्नर' का 'सुखदास' (१९२९)। राइडर हैगर्ड ने अपने उपन्यास में साहसिकता के साथ प्रेमाख्यान को जोड़ दिया है। विल्की कॉलिन्स की रचना जासूसी उपन्यास है। हैरियट बीचर स्टो की रचना प्रचारात्मक है : वह अमरीका में

हुआ था; उपाध्याय जी ने इसके बाद, उसकी भाषा को संस्कृत गर्भित बनाकर पुस्तकाकार प्रकाशित किया।

१—डॉ० प्रियरंजन 'सेन: वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली नॉवेल', जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३३, पृ० ३९

प्रचलित दास-प्रथा के प्रति विरोध की भावना जगाने के लिए लिखी गयी थी। जॉर्ज इलियट ने अपने 'साइलस मार्नर' में इंग्लैंड के ग्रामीण वातावरण में एक चिन्तन-शील चरित्र का शब्द-चित्र प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द्र जी ने इस रचना को पूर्णतः भारतीय वातावरण प्रदान करके उपस्थित किया था।

अंग्रेजी के माध्यम से कुछ फ्रांसीसी उपन्यास भी हिन्दी में अनुवादित हुए थे। सर्व प्रथम जैनेन्द्र किशोर ने, पॉल दे कॉक के 'दि वैम्पाएर' को 'चुड़ैल' (१६०२) के रूप में प्रस्तुत किया। इसके अनन्तर एलेक्जेन्डर ड्यूमा का 'दि काउन्ट ऑफ मॉन्ट क्रेस्टो' का अनुवाद चुन्नीलाल खत्री ने 'मोतियों का खजाना' (१६१४) प्रकाशित किया। फ्रांस के प्रसिद्ध वैज्ञानिक कथाकार जूल वर्न के अनेक काल्पनिक यात्रा-विवरण भी हिन्दी में अनुवादित हुए। जयराम दास गुप्त ने 'जर्नी टु मून' का एक संक्षिप्त अनुवाद 'चन्द्रलोक की यात्रा' (१६०७) प्रस्तुत किया; और इसके तीन वर्ष बाद, इसका एक पूर्ण रूपान्तर, मराठी के एक अनुवाद का आधार लेकर प्रकाशित हुआ। गिरिजा कुमार घोष ने 'ए जर्नी इन्टू इन्टीरियर ऑफ दि अर्थ' का एक स्वच्छन्द अनुवाद 'रसातल यात्रा' (१६१२) किया। इसी रचना का एक और अनुवाद, कुछ समय बाद 'भूगर्भ की सैर' (१६१८) प्रकाशित हुआ; यह अविकल अनुवाद था। 'ए जर्नी बाई बैलून' का भी अनुवाद 'बैलून विहार' (१६१८) किया गया। फ्रांस के इन वैज्ञानिक यात्रा विवरणों के साथ, अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध व्यंगात्मक यात्रा। विवरण जोनेथन स्विफ्ट के 'गूलिवर्स ट्रेविल्स' का भी एक अनुवाद 'विचित्र भ्रमण' (१६१८) प्रकाशित हुआ।

अंग्रेजी से अनुवादित उपन्यासों के इस अध्ययन के आधार पर, यह कहा जा सकता है, कि अंग्रेजी उपन्यासों के तीन प्रकार—साहसिक आख्यान, रहस्योद्घाटक रचनाएं एवं प्रचारात्मक कृतियां—हिन्दी-प्रदेश में विशेष प्रचलित हुए थे; और इनमें रेनाल्ड की रहस्योद्घाटक रचनाएं सर्वाधिक लोकप्रिय हुई थीं। अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों में केवल विल्की कॉलिन्स की एक रचना 'दि वमन इन ह्वाइट' का ही अनुवाद हुआ था। गोपाल राम गहमरी ने कुछ और अंग्रेजी जासूसी उपन्यासों के अनुवाद किये थे;[१] किन्तु हिन्दी मे इस कोटि की रचनाएं, अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा के स्थान पर, बंगला के अनुकरण में लिखी गई हैं। बंगला ने इस प्रकार की रचनाओं के लिए, सीधे अंग्रेजी से ही प्रेरणा ग्रहण की है।

१—गोपाल राम गहमरी के अंग्रेजी से अनुवादित उपन्यासों पर, उनकी मौलिक रचना का अध्ययन करते हुए, विचार किया जायगा।

बंगला उपन्यासों के अनुवाद

हिन्दी में बंगला से अनुवादित उपन्यासों की संख्या, अंग्रेजी से अधिक रही है। सर्व प्रथम बंकिमचन्द्र की रचनाएं अनुवादित हुईं; उसके बाद रमेश चन्द्र दत्त तथा पंचकौड़ी दे के उपन्यास रूपांतरित हुए। बंकिमचन्द्र की रचनाओं में सबसे पहले 'दुर्गेश-नन्दिनी' का अनुवाद सन् १८८२ में गदाधरसिंह ने प्रकाशित किया। उसके बाद तो बंगला के इस उपन्यासकार के अनुवादों का क्रम चल पड़ा : 'राधारानी' (१८८३), 'युगुलां गुरीय' (१८९४), 'राजसिंह' (१८९४), 'कृष्णकान्त का दानपत्र' (१८९८) 'देवी चौधरानी' (१८९९), 'कपाल कुंडला' (१९०१), 'चन्द्रशेखर' (१९०५), 'इन्दिरा' (१९०८), 'विष वृक्ष' (१९१५) और 'मृणालिनी' (१९१८)।[1] रमेश चन्द्र दत्त के हिन्दी अनुवादित उपन्यास हैं : 'बंग विजेता' (१८९६), 'माधवी कंकण' (१९०२) 'संसार' (१९१०), 'समाज' (१९१२) 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' (१८९३) और 'राजपूत जीवन संध्या' (१९१३)। बंगला से अनुवादित जासूसी उपन्यास, अधिकांश में, पंचकौड़ी दे के रहे है। उसकी रचनाओं के अनुवादों का क्रम है : 'जीवन मृत रहस्य' (१९०४), 'गोविन्द राम' (१९०५), 'आंखों देखी घटना' (१९१२) 'जासूसी चक्कर' (१९१२), 'नीलवसना सुन्दरी' (१९१३), 'मनोरमा' (१९१७) 'भीषण भूल' (१९१७) और 'घटना चक्र' (१९१८)। गोपाल राम गहमरी ने, प्रियनाथ मुकर्जी के 'दारोगार दफ्तर' के आदर्श पर हिन्दी में 'जासूस' पत्रिका प्रकाशित की थी; किन्तु बंगला के इस जासूसी कथाकार की हिन्दी में अनुवादित सभी रचनाएँ, कहानी विधा की है; इसलिए उन पर अगले प्रकरण में, हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण करते हुए विचार किया जायगा।

बंगला के ये सभी उपन्यासकार, जिनके अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित हुए, अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत हैं। बंकिमचन्द्र की रचनाओं पर यह प्रभाव सबसे अधिक स्पष्ट है। सन् १८९४ में ही बंगला के एक आलोचक ने, बंकिम के विषय में यह स्वीकार किया था, कि उनके उपन्यास अपनी अभिरुचि, कथावस्तु के विधान, चरित्र की संयोजना में, कभी २ त्रुटि की सीमा तक, अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित है।[2] रमेश

१—प्रत्येक रचना के साथ कोष्ठकों में दिया हुआ वर्ष, प्रथम अनुवाद का है; और ये सभी उपन्यास अनेक बार अनुवादित हुए हैं।

२—एन० एन० सेन ने 'इन्डियन मिरर' के १६ अप्रैल, १८९४ के अंक में यह विचार प्रकट किया था। उनके शब्द थे :

"His novels are English in taste,in the construction of the plot, in the setting of character, some times to a fault."

चन्द्र दत्त ने, सर वाल्टर स्कॉट की भांति, अपने उपन्यासों के प्रत्येक प्रकरण के आरम्भ में, शेक्सपियर से लेकर टेनिसन तक, अंग्रेजी साहित्यकारों के सूत्र-वाक्य दिये हैं। सर वाल्टर स्कॉट के ऐतिहासिक उपन्यासों का रचना-कौशल भी उन्होंने ग्रहण किया है। पंचकौड़ी दे के संबन्ध में तो बंगला आलोचकों का कथन है, कि उपने अंग्रेजी की जासूसी रचनाओं के अनुवाद या ग्रहण उपस्थित किये है।[1]

इस अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते है, कि बंगला के ये सभी उपन्यास-कार, जो हिन्दी-प्रदेश में पढ़े गये, अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित हैं। प्रियरञ्जन सेन ने अपने, बंगला उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव के अध्ययन में, बंकिमचन्द्र के सभी उपन्यासों पर अंग्रेजी प्रभाव स्वीकार किया है। उनका कथन है कि स्कॉट, लिटन और विल्की कॉलिन्स ने बंकिम को विशेष रूप से प्रभावित किया है। रेनाल्ड का प्रभाव भी बंकिम की रचनाओं में दर्शनीय है। डॉ० सेन ने, रेनाल्ड को, बंकिम के युग में, अंग्रेजी उपन्यासकारों मे सर्वाधिक प्रसिद्ध कहा है;[2] किन्तु स्वयं बंकिम की रच-नाओं पर उसके प्रभाव का विश्लेषण नहीं किया। बंकिम की रचनाओं में 'दुर्गेश नन्दिनी' 'देवी चौधरानी' और 'कृष्णकान्त का दान-पत्र' पर रेनाल्ड का प्रभाव बहुत है। 'दुर्गेश नन्दिनी' का प्रथम अध्याय तो पूर्णतः रेनाल्ड की 'दि ब्रॉन्ज स्टेचू' के प्रारम्भिक अंश पर आधारित प्रतीत होता है।

बंगला के अन्य उपन्यासकारों ने भी रेनाल्ड के प्रभाव को ग्रहण किणा है; रेनाल्ड को उन दिनों अंग्रेजी का सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वाधिक अनुकरणीय उपन्यासकार स्वीकार किया जाता था।[3] अंग्रेजी के अन्य उपन्यासकार भी बंगाल में पढ़े गये थे; किन्तु रेनाल्ड को उनमें सर्वश्रेष्ठ माना गया था। रेनाल्ड के एक बंगला अनुवादक ने लिखा था :

"Lord Lytton has written novels to teach psychology, Haggard to show glory of the supernatural, Scott to remove the sorrow that runs through the heart of the country, Marryat to give moral

---

डॉ० प्रियरञ्जन सेन ने, कलकत्ता विश्वविद्यालय के जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स, १९३३, में प्रकाशित अपने निबन्ध 'वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली नॉवेल' में पृ० ३३ पर ये पंक्तियां उद्धृत की हैं।

१—प्रियरंजन सेन : 'वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली नॉवेल,' जर्नल ऑफ दि डिपार्ट-मेंट ऑफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३३, पृ० ४०

२—वही, पृ० ४०

३—वही, पृ० ३८

instructions; Zola to bid farewell to the old and make room for the new; Hugo to teach politics; Dumas to give instruction in law; Dickens for purpose of removing poverty; Rozebery for teaching science; and Reynolds to give training in sociology, the logy of all logies. without which not one of these sciences can stand."[1]

बंगला के इस लेखक ने, रेनाल्ड का महत्व, भाषा के माधुर्य, घटनाओं की विविधता एवं चरित्रांकन की दृष्टि से भी घोषित किया था।[2]

बंगला उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण करते हुए, यह कह देना भ आवश्यक प्रतीत होता है, कि बंगला के उपन्यासकारों ने, अंग्रेजी के उपन्यासकारों का केवल अनुकरण मात्र ही नहीं किया था। वे स्वयं मौलिक प्रतिभा से सम्पन्न थे; और अपनी रचनाओं में उन्होंने उसको पर्याप्त अभिव्यक्ति दी थी। स्वयं बंकिमचन्द्र, जिन्हें चिन्तन पद्धति और अभिव्यञ्जना प्रणाली, दोनों ही दृष्टियों से आंग्ल कहा गया है,[3] अंग्रेज उपन्यासकारों के अन्ध-अनुकरण-कर्त्ता नहीं रहे थे। भारतीय साहित्य की आदर्शवादी परंपरा का उन्होंनें सदा अनुसरण किया था; और उनकी यही प्रवृति उन्हें अंग्रेजी के उपन्यासकारों से पृथक करती है। उन्होंने भारतीय जीवन-धारा का भी सम्यक अनुशीलन किया था; और उसे अपनी रचनाओं में बड़ी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया था। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बंगला के उपन्यासकारों पर अंग्रेजी प्रभाव पर्याप्त है; और उन्होंने हिन्दी उपन्यासकारों को अपनी मौलिक प्रवृतियों के साथ, अंग्रेजी प्रभाव भी बहुत अधिक प्रदान किया है।

अन्य प्रभाव

संस्कृत में, गद्य के संविधान में ऐसे अनेक आख्यान हैं, जिन्हें उपन्यास कहा जा सकता है। इन गद्य-काव्यों के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए; और उनके आदर्श पर भी कुछ प्रयोग हुए। सर्व प्रथम बाणभट्ट की 'कादम्बरी' को गदाधरसिंह ने, बंगला के एक संस्करण के आधार पर अनुवादित किया। काशीनाथ शर्मा ने संस्कृत की पद्य-बद्ध रचना पूर्वाचार्य की 'चतुर सखी' को गद्य रूप में अनुवादित किया (१८९०)। बिहारीलाल चौबे ने दंडी के 'दशकुमार चरित' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया (१८९२)। प्यारेलाल दीक्षित ने बाणभट्ट के 'हर्ष चरित' का हिन्दी अनुवाद किया

१—प्रियरञ्जन सेन : 'वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली नावेल,' जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३३, पृ० ३८

२—वही, पृ० ३८

३—वही, पृ० ३३

(१९१४)। संस्कृत से अनुवादित इन रचनाओं के अतिरिक्त, संस्कृत साहित्य का आधार लेकर भी कुछ उपन्यास लिखे गये। इस प्रकार की कुछ रचनाएँ हैं : 'राजा दुष्यन्त और शकुन्तला' (१८९०), 'सावित्री सत्यवान' (१८९७), 'नल चरितामृत' (१८९७) तथा अन्य। संस्कृत के कथा साहित्य के आदर्श पर, हिन्दी में लिखित सर्व प्रथम रचना, ठाकुर जगमोहनसिंह की 'श्यामा स्वप्न' (१८८८) है। इसके अनन्तर किशोरीलाल गोस्वामी ने 'प्रणयिनी परिणय' (१८९०) में, संस्कृत के कथा साहित्य के आदर्श पर एक प्रयोग उपस्थित किया।[1] ब्रजनन्दन सहाय के उपन्यास 'राधा कान्त' (१९१२) और 'सौन्दर्योपासक' (१९१९) भी संस्कृत के आदर्श पर लिखित है। इस स्थल पर ही यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है, कि इन रचनाओं में संस्कृत की औपन्यासिक पद्धति का अनुसरण केवल भाषा-संयोजन एवं रचना-विधान तक ही सीमित है। इन सभी रचनाओं की कथाएं, आधुनिक जीवन धारा से ग्रहण की गई हैं। ठाकुर जगमोहनसिंह के 'श्यामा स्वप्न' पर तो कुछ अंग्रेजी प्रभाव भी है, जिसकी यथा स्थान चर्चा की जायगी। संस्कृत के कथा साहित्य की रचना-प्रणाली का अनुसरण, आधुनिक काल में विशेष नहीं हुआ, इसके कारण स्वयं उस रचना-विधान में अन्तर्निहित है। संस्कृत के कथा साहित्य में लोकोत्तर अथवा काल्पनिक चरित्रों की अवतारणा की गई थी। उसके अनेक चरित्र लोकोत्तर शक्तियों से सम्पन्न है; इसलिए आज का सामान्य व्यक्ति, जो मनुष्य को मनुष्य रूप में ग्रहण करने लगा है, उनके प्रति विशेष रुचि नहीं अनुभव करता है। संस्कृत की अलंकारिक भाषा एवं विशेष प्रयत्न-

---

१—किशोरी लाल गोस्वामी ने अपनी इस रचना 'प्रणयिनी परिणय' (१८९०) के प्राक्कथन के पृष्ठ १-२ में इस तथ्य को स्वयं स्वीकार किया है :

"किसी २ महाशय का यह कथन है कि उपन्यास पूर्व समय में यहां प्रचलित नहीं था वरन् अंग्रेजों की देखा देखी लोगों ने Novel के स्थान में उपन्यास कल्पना कर लिया है किन्तु उपन्यास उप › नी० उपसर्ग पूर्वक आस धातु इन शब्दों से बना है यथा उप समीप नी न्यास आस रखना अर्थात् इसकी रचना उत्तरोत्तर आश्चर्य जनक एवं कुछ छिपी हुई कथा क्रमशः समाप्त में स्फुटित हो और अमरकार भी 'उपन्यास्तु वाङ्मुखम' अर्थात् वाङ्मुखौ वाचा यह अर्थ उपन्यास के तात्पर्थ से ही घटता है, इत्यादि प्रमाणों से उपन्यास भी भारतवर्ष में प्राचीनकाल से प्रचलित हैं और 'दशकुमार चरित' 'वासव दत्ता', 'कादम्बरी' आदि उपन्यास इसकी प्राचीनता में जाज्वल्यमान प्रमाण हैं।

"...नागरी भाषा में इसका पूरा अभाव है। सुतरां...इस उपन्यास का प्रादुर्भाव भया है।"

साध्य रचना, शैली भी, आधुनिक युग की यथार्थवादी प्रवृत्तियों के कारण ग्राह्य नहीं रही है।

आधुनिक काल में संस्कृत के साथ, अरबी और फारसी के कथा साहित्य के प्रति भी जनसाधारण की थोड़ी-बहुत रुचि रही है। फारसी के कथा साहित्य का प्रभाव, कुछ समय तक तो हिन्दी उपन्यासों पर छा गया था; किन्तु कालान्तर में, उसमें यथार्थता के अभाव और लोकोत्तर तत्वों के प्रभुत्व के कारण, उस प्रभाव को छोड़ दिया गया। फारसी के प्रसिद्ध आख्यान 'हातिमताई' का अनुवाद, सन् १८६८ में ही हो गया था। अमीर खुसरो का 'चहार दरवेश' भी श्रीधर भट्ट द्वारा सन् १८७४ में अनुवादित होकर प्रकाशित हुआ। फारसी के कथा साहित्य के आदर्श पर लिखित कुछ उर्दू रचनाओं के भी अनुवाद हुए। मुहम्मद हुसेन आजाद के 'फिसानए अजायब' के दो तीन अनुवाद प्रकाशित हुए।[1] काजी अजीजुद्दीन अहमद की भी कई रचनाएँ, उर्दू से अनुवादित हुईं, 'पुलिस वृतान्त माला' (१८९०), 'अमला वृत्तान्त माला' (१८९४), 'ठग वृत्तान्त माला' (१८९५), और 'ससार दर्पण' (१८९८)।[2] ये सभी रचनाएं यद्यपि यथार्थवादी पद्धति पर लिखित है, तथापि उनमें, एक विस्तृत कथा-सूत्र के स्थान पर, अनेक कथाओं की माला का संयोजन होने के कारण, उन्हें उपन्यास कहना उपयुक्त नही है। इनका प्रभाव हिन्दी उपन्यास पर नहीं, कहानियों पर, विशेष रूप से जासूसी कथाओं पर है।

फारसी की दो प्रसिद्ध कथात्मक कृतियां 'बोस्तान-ए-ख्याल' और 'दास्तान-ए अमीर हमजा', हिन्दी उपन्यास पर अपनी निश्चित छाप छोड़ गयी है। देवकी नन्दन खत्री की रचनाओं 'चन्द्रकान्ता', 'चन्द्रकान्ता सन्तति', 'भूतनाथ' आदि पर इनका स्पष्ट प्रभाव है। देवकी नन्दन खत्री के इन प्रयोगों के अनन्तर तो, हिन्दी में इस प्रकार के कथा साहित्य की बाढ़ सी आ गई थी। हिन्दी उपन्यास में तिलिस्म का तत्व, पूर्णतः फारसी के इन आख्यानों के प्रभाव से आया हुआ स्वीकार किया जाता है; किन्तु उसका कुछ अंश भारतीय कथा-साहित्य की परम्परा से भी गृहीत है। फारसी के तिलिस्मी साहित्य का प्रभाव, सीधे सम्पर्क से आने के साथ-साथ, प्रकारान्तर से कुछ अंग्रेजी के माध्यम से भी आया है। रेनाल्ड की रचनाओं में तिलिस्म की योजना व्यापक रूप में है; यद्यपि वह फारसी के कथा साहित्य से ही गृहीत है। फारसी के

१—उर्दू के इन उपन्यासों में प्रथम का अनुवाद श्रीनाथ लाहा ने सन् १८८२, द्वितीय का रामरत्न वाजपेयी ने सन् १८९२, और तृतीय महादेव शर्मा ने सन् १९०७ में प्रस्तुत किये।

२—ये सभी अनुवाद रामकृष्ण वर्मा ने प्रस्तुत किये थे।

इस तिलस्मी साहित्य का प्रभाव भी, सीधे सम्पर्क तथा प्रकारान्तर, दो प्रकार से प्रवाहित होते हुए भी, लोकोत्तरता से अनुप्राणित होने के कारण, संस्कृत कथा कृतियों के प्रभाव की भांति, थोड़े दिनो मे ही छोड़ दिया गया ।

प्रथम प्रयोग एवं ग्रहण

अंग्रेजी के उपन्यास साहित्य का प्रभाव, प्रारम्भ में, इसी प्रभाव की छाया मे पल्लवित हुए , बंगला एवं अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्रयोगों के अनुकरण में देखने को मिला । इस साहित्यिक विधा का प्रथम प्रयोग, मराठी की एक रचना पर आधारित, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'पूर्णप्रकाश एवं चन्द्रप्रभा' है । कुछ विद्वान इस अनुवाद को स्वयं भारतेन्दु कृत नही, वरन् संशोधित मानते है । यही उनके, बंकिम चन्द्र के उपन्यास, 'राजसिंह' के अनुवाद के विषय में कहा जाता है । भारतेन्दु जी के परामर्श से बंगला के कुछ और उपन्यास, बंकिमचन्द्र कृत 'दुर्गेश नन्दिनी' (१८८२) और स्वर्ण कुमारी देवी कृत 'दीप निर्वाण' हिन्दी में अनुवादित हुए । किशोरी लाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) एवं गोपाल राम गहमरी (१८५०-१९४२) ने भी, जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को अपनी रचनाओं के माध्यम से सबसे अधिक अंग्रेजी प्रभाव प्रदान किया है,[1] बंगला उपन्यासों के ग्रहण से ही अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया था । श्रीनिवास दास (१८५०-९७) ने अपने 'परीक्षा गुरु' (१८८२) में, अंग्रेजी उपन्यासों के आदर्श का प्रथम प्रयोग प्रस्तुत किया । इसके अनन्तर पुरोहित गोपीनाथ का एक अंग्रेजी उपन्यास का ग्रहण 'वीरेन्द्र' (१८९९) प्रकाशित हुआ । पुरुषोत्तम दास टंडन ने भी शेक्सपियर के नाटक 'पेरीक्लीज' को 'भाग्य का फेर या प्यारे कृष्ण की कहानी' (१९००) नाम देकर उपन्यास रूप में प्रस्तुत किया था । यह ग्रहण सर्व प्रथम 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित हुआ था । उसमें, जैसा कि उसकी संज्ञा से ही स्पष्ट है, चरित्रों, स्थानों आदि का भारतीयकरण कर दिया गया था । शेक्सपियर के प्रसिद्ध दुखान्तकी 'ओथेलो' को बंगला में उपन्यास रूप मे ग्रहण किया गया था; गदाधर सिंह ने उस ग्रहण को हिन्दी में अनुवादित किया (१८९४) ।

अंग्रेजी के साहसिक उपन्यास डैनियल डेफ़ो के 'रॉबिन्सन क्रूसो' को भी 'समुद्र में गिरीन्द्र' (१८९४) के रूप में ग्रहण किया गया । उसकी कथा है : गिरीन्द्र, जिसके पिता ने लन्दन में अपना व्यवसाय स्थापित कर लिया है, एक बार समुद्र के किनारे पहुंच जाता है और कौतूहल वश एक नाव में बैठकर चल देता है; और फिर एक

१—यह कथन प्रस्तुत अध्ययन की कालावधि, सन् १८७० से १९२० तक के हिन्दी उपन्यासकारों को ही दृष्टि में रखकर है ।

जहाज में उठा लिए जाने पर, एक द्वीप में पहुँच कर, राबिन्सन क्रूसो जैसे अनेक अनुभव प्राप्त करता है। अंग्रेजी तथा हिन्दी के इन साहसिक उपन्यासों की कथाओं में, अन्तर केवल इतना है, कि रॉबिन्सन क्रूसो तो एक अज्ञात द्वीप में अकेला छूट गया है; किन्तु गिरीन्द्र के साथ, इसी प्रकार की घटना होने पर, जहाज का कप्तान उसका एक पुत्र और एक पुत्री भी है। इस विभेद के कारण कथाओं का विकास-क्रम भी अलग २ है।

श्रीनिवास दास

अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासकारों में सर्व प्रथम श्रीनिवास दास (१८५०-८७) का नाम आता है। यद्यपि उन्होंने केवल एक ही उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (१८८२) की रचना की थी, तथापि अंग्रेजी की औपन्यासिक शैली में प्रथम प्रयोग होने के कारण उसका विशेष महत्व है। श्रीनिवास दास जी ने अपनी इस रचना के प्राक्कथन में भी यह संकेत दिया है कि वे अंग्रेजी से प्रेरणा लेकर हिन्दी में एक नई कथा शैली का प्रयोग उपस्थित कर रहे है। उनका कथन है कि अब तक हमारे देश में जो कथाएँ लिखी गई थी, उनमें राजा, रानियो, राजकुमारी तथा राजकुमारियों के वर्णन थे; और कथाकार प्रारम्भ मे ही इनका परिचय देकर अपना आख्यान प्रारम्भ कर देता था। परन्तु वे अपनी कथा को दिल्ली के बाजार की एक अंग्रेजी दूकान के वर्णन से आरम्भ कर रहे है; विभिन्न चरित्रों का परिचय, सवादों के सहारे, कथा विकसित होने के साथ-साथ मिलता जाएगा।[1] इसके बाद उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि इस उपन्यास की रचना में उन्होंने लॉर्ड बेकन, गोल्डस्मिथ, विलियम काउपर आदि की रचनाओं तथा एडिसन के 'स्पेक्टेटर' से सहायता ली है।[2]

सर वाल्टर स्कॉट की रचनाओं की भाँति, श्रीनिवासदास जी ने, अपने इस उपन्यास के प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में, सूत्र-वाक्य भी दिये है; और उनमें से कुछ अंग्रेजी साहित्यकारों के भी है। प्रथम अध्याय के प्रारम्भ में लॉर्ड चेस्टरफील्ड का एक सूत्र-वाक्य है।[3] तेइसवें अध्याय के प्रारम्भ में एलेक्जेंडर पोप की एक पंक्ति उद्धृत की गई

१—श्रीनिवास दास 'परीक्षा गुरु', निवेदन, पृ० १—२

२—वही, पृ० ४

३—लॉर्ड चेस्टरफील्ड के सूत्र-वाक्य का हिन्दी रूपान्तर है: "चतुर मनुष्य को जितने खर्च में अच्छी प्रतिष्ठा अथवा धन मिल सकता है, मूर्ख को उसके अधिक खर्च पर भी कुछ नहीं मिलता।" 'परीक्षा गुरु' पृ० १

है ।[1] इस उपन्यास के दो चरित्रों, मदनमोहन और मास्टर शंभूदयाल ने अनेक स्थलों पर प्रसंगानुसार अंग्रेजी के उद्धरण उपस्थित किये हैं । कुछ अन्य चरित्रों ने भी एक दो स्थलों पर अंग्रेजी साहित्यकारों के सूत्र वाक्यों को अवतरित किया है । प्रथम अध्याय में ही, अंग्रेजी दुकान के स्वामी मि० ब्राइट ने लॉर्ड बेकन का एक कथन अवतरित किया है ।[2] द्वितीय अध्याय में मास्टर शंभूदयाल ने शेक्सपीयर की 'दि मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' में, पोर्शिया की करुणा के सम्बन्ध में कही हुई प्रसिद्ध पंक्तियाँ, उद्धृत की हैं ।[3] मास्टर शंभूदयाल इस उपन्यास के नायक मदनमोहन के अध्यापक रहे थे । मदनमोहन के वयस्क हो जानेके बाद भी उन्होने, उसके यहाँ आना जाना जारी रक्खा है । समय समय पर उन्होंने मदनमोहन को शेक्सपियर के कुछ नाटकों 'कॉमेडी ऑफ एरर्स', 'ट्वेल्थ नाइट', 'मच एडो एबाउट नथिंग', बेन जॉन्सन कृत 'एव्री मैन इन हिज ह्यमर', स्विफ्ट कृत 'ड्रेपर्स लेटर,' 'गुलीवर्स ट्रेविल्स,' टेल्स ऑफ दि टब,' आदि की कथाएँ सुनाई है ।[4]

श्रीनिवास दास जी के इस उपन्यास का दूसरा चरित्र, जिसने अंग्रेजी साहित्यकारों के अनेक उद्धरण उपस्थित किये हैं, व्रज किशोर है । इस चरित्र का अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन बहुत गहरा है, इसलिए उसे अनेक स्थलों पर अवसर के अनुकूल उद्धरण प्रस्तुत करते हुए उपस्थित किया गया है । मदनमोहन को चापलूसी से घिरा हुआ देखकर, वह काउपर के 'टेबुल टॉक' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर उठा है[5] जब वह चाहता है, कि मदनमोहन हरकिशोर को क्षमा करदे, तो वह अपने मन्तव्य के समर्थन के लिए पोप का एक वाक्य उद्धृत करता है ।[6] मदनमोहन को चारों ओर से दुर्भाग्य से घिरा हुआ देखकर, उसे बायरन की कुछ पंक्तियाँ स्मरण हो आई हैं ।[7] विषम परिस्थितियों में मदनमोहन के मन में ईश्वर की अनुकम्पा के प्रति विश्वास एवं जीवन

१—पोप का सूत्र-वाक्य है: "एक प्रामाणिक मनुष्य परमेश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना है ।" वही, पृ०१६६

२—बेकन का वाक्य है: "केवल विचार ही विचार में मकड़ी के जाल मत बनाओ आप परीक्षा करके हर एक पदार्थ का स्वभाव जानो ।" वही, पृ० ३

३—वही, पृ० ११

४—श्रीनिवास दास: 'परीक्षा गुरु,' पृ० ६३

५—वही, पृ० १३६—३७

६—पोप की पंक्ति है: "भूल करना मनुष्य का स्वभाव है परन्तु उसको क्षमा करना ईश्वर का गुण है ।" वही, पृ० १२८

७—वही, पृ० १९५—९७

के प्रति आशावादी दृष्टिकोण को जगाने के लिए उसने परनेल के एक कथा-काव्य की कथावस्तु को प्रस्तुत किया है।[१] ब्रजकिशोर बहुत नीति-निष्ठ है, और समय समय पर, अपने सम्पर्क के लोगों मे, नैतिकता की भावना जगाने के लिए, यूनान एवं इग्लैंड के इतिहासों से अनेक प्रसंग अवतरित करता है। ब्रजकिशोर को यूरोपीय साहित्य का भी कुछ ज्ञान है, और उसी के आधार पर उसने, इटली के कवि पेट्रार्क[२] और जर्मनी के साहित्यकार लेसिंग के[३] जीवन के कुछ प्रसंग प्रस्तुत किये हैं।

श्रीनिवासदास जी ने 'परीक्षा गुरु' में, अपने इन चरित्रों को, अंग्रेजी के साहित्यकारों से उद्धरण देते हुए दिखाने के साथ-साथ, अंग्रेजी साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करते हुए भी प्रदर्शित किया है। मदनमोहन ने अपने मित्र हरदयाल से, एक स्थान पर कहा है, कि उसके निकट के कुछ लोग उसके सच्चे मित्र नहीं, वरन् उसके धन के मित्र हैं; किन्तु वह उनका विश्वास नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि शेक्सपियर के ऑथेलो ने ऐसे ही व्यक्तियों की बातों को सुनकर अपने को पूर्णत: विनष्ट कर डाला था।[४] स्वयं लेखक ने, अपने एक पात्र चुन्नी लाल के चरित्र का विश्लेषण करते हुए, उसे इयागो का अवतार कहा है।[५]

श्रीनिवास दास का यह उपन्यास इस प्रकार, अपनी अभिव्यंजना प्रणाली, संवाद-योजना एवं चरित्र-चित्रण के विधान में अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत है। भारतीय कथा साहित्य का नीतिपरक दृष्टिकोण भी इस रचना में पर्याप्त से कुछ अधिक ही है। अधिकांश में हम ब्रजकिशोर के नैतिक उपदेश ही देखते, है। उपदेशात्मकता की इस बाढ़ के लिए, अंग्रेजी के उपन्यासकार गोल्डस्मिथ की कुछ प्रेरणा भी रही है। उन्होंने स्वय अपने प्रारम्भिक निवेदन में अंग्रेजी के इस लेखक का प्रभाव स्वीकार किया है।[६]

किशोरीलाल गोस्वामी

श्रीनिवास दास जी के बाद, अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से, किशोरीलाल गोस्वामी की रचनाएँ आती हैं। गोस्वामी जी ने पहले, 'प्रणयिनी परिणय' में सस्कृत कथा

१—श्रीनिवास दास : 'परीक्षा गुरु', पृ० २९४—९६
२—वही, पृ० २९८—९९
३—वही, पृ० ९
४—वही, पृ० २२
५—वही, पृ० ६१
६—वही, निवेदन, पृ० ४

साहित्य की शैली का अनुसरण किया। इसके अनन्तर उन्होंने बंगला उपन्यासों का अनुवाद प्रारम्भ किया। गोस्वामी जी के अनूदित बगला उपन्यास 'प्रेममयी' (१८९०), 'लावण्यमयी' (१८९१), 'सुख शर्वरी' (१८९१), 'हृदय हारिणी' (१८९१) और 'याकूती तख्ती' या 'यमज सहोदरा' (१९०६) हैं। ये सभी उपन्यास अपने मूल रूप में दुखान्तकी थे; किन्तु गोस्वामी जी ने सभी को सुखान्त बना दिया है। गोस्वामी जी ने बंकिमचन्द्र के उपन्यासों को भी पढ़ा था; उनके दो उपन्यासों 'पुनर्जन्म' (१९०७) 'अंगूठी का नगीना' (१९१८) में बँगला के इस उपन्यासकार का स्पष्ट प्रभाव है। प्रथम उपन्यास में बंकिमचन्द्र के 'कृष्णकान्त का दान पात्र' की कथा को सुखान्तकी बना दिया गया है। 'अँगूठी का नगीना' की लक्ष्मी का चरित्र, 'देवी चौधरानी' की प्रफुल्ल के चरित्र से, बहुत मिलता जुलता है, केवल वह देवी चौधरानी नहीं बनी है।

गोस्वामी जी का प्रथम उपन्यास 'प्रणयिनी परिणय' (१८८८), अभी हम जैसा कह आए हैं, संस्कृत कथा साहित्य के आदर्श पर लिखित है। इसके अनन्तर उन्होंने 'त्रिवेणी' (१८८९) की रचना की। उनकी यह कृति वस्तुतः भक्ति-भावना पर, उपन्यास के संविधान का अतिक्रमण करते हुए, एक विस्तृत प्रवचन है। इन दो मौलिक प्रयोगो के अनन्तर, उन्होंने बंगला उपन्यासों से अनुवादों क्रम चलाया। संस्कृत कथा साहित्य का प्रभाव, उनकी एक बात की मौलिक रचना 'लाल कुँवर' या 'शाही रंग महल' (१९१३) पर भी है। 'कथा सरित सागर' के दूसरे लम्बक 'कथामुख' की कथा का, इसके ऊपर निश्चित प्रभाव है। इस उपन्यास में मुगलवंश के अन्तिम शासकों के विलासपूर्ण जीवन का चित्रण है। गोस्वामी जी ने इस प्रकार के चित्रण के लिए, रेनाल्ड के प्रसिद्ध उपन्यास 'मिस्ट्रीज ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन' से भी प्रेरणा ग्रहण की है।

किशोरीलाल गोस्वामी के मौलिक उपन्यासों का क्रम, यदि प्रारम्भिक प्रयोगों को छोड़ दिया जाय तो, सं० १९०१ में, 'कुसुम कुमारी' के प्रकाशन से आरम्भ होता है। उनकी रचनाओं पर अंग्रेजी प्रभाव भी सर्व प्रथम इसी रचना में देखने को मिलता है। रेनाल्ड की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद भी इसी वर्ष प्रारम्भ हुए; और गोस्वामी जी की रचनाओं पर उनका प्रभाव, इसी समय से प्रारम्भ हुआ। गोस्वामी जी की रचनाओं पर रेनाल्ड का प्रभाव थोड़ा बहुत बंगला के माध्यम से भी आया है। बंगला के उपन्यासकारों ने भी, रेनाल्ड को उन दिनों अंग्रेजी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार घोषित किया था; और १८७० से ही उसकी रचनाओं के अनुवाद प्रारम्भ कर दिये थे। बंकिमचन्द्र के उपन्यासों पर भी हम रेनाल्ड का पर्याप्त प्रभाव देखते हैं।

गोस्वामी जी ने भी बंगला उपन्यासों के माध्यम से उसका कुछ प्रभाव ग्रहण किया है। रेनाल्ड का प्रभाव उनकी रचनाओं में उनके अपने अध्ययन से भी आया है।

गोस्वामी जी की मौलिक रचनाओं को हम तीन कोटियों में विभक्त कर सकते हैं :

१—सामयिक जीवन से सम्बन्धित रचनाएँ : 'कुसुम कुमारी' (१९०१), 'लीलावती' (१९०१), 'चपला' (१९०३—४), 'माधवी माधव या मदन मोहिनी' (१९०९ - १०) और 'अंगूठी का नगीना' (१९१८);

२—ऐतिहासिक व्यक्तियों को लेकर लिखित तिलिस्मी उपन्यास, 'राजकुमारी' (१९०२) 'कटे मूड़ की दो दो बातें' (१९०५), 'मल्लिकादेवी या बंग सरोजिनी (१९०५), 'तरुण तपस्विनी या कुटीर वासिनी' (१९०६), 'लखनऊ की कब्र' (१९०९), 'सोना और सुगन्ध या पन्ना बाई' (१९१०—१२) और 'रजिया बेगम' (१९१५);

और ३— ऐतिहासिक उपन्यास : 'तारा' (१९०२) और 'चित्तौड़ की राख या महारानी पद्मिनी।'

अंग्रेजी प्रभाव इन तीन कोटियों में से, प्रथम दो की रचनाओं में विशेष रूप से दर्शनीय है, और तृतीय कोटि की रचनाओं में ऐतिहासिक घटनाओं का लोक प्रचलित विवरण मात्र है। मूल रूप से अरबी तथा फारसी साहित्य में विकसित तिलिस्म का तत्व गोस्वामी जी की सभी रचनाओं में है। उन्होंने उसे मूल स्रोत के साथ-साथ रेनाल्ड की रचनाओं के माध्यम से भी ग्रहण किया है।

गोस्वामी जी के सामयिक जीवन से सम्बन्धित उपन्यासों में, अंग्रेजी प्रभाव 'कुसुम कुमारी' (१९०१) से ही मिलने लगता है। इस उपन्यास के कुसुम कुमारी और भैरवसिंह के चरित्रों पर पड़ा रहस्यमय आवरण, रेनाल्ड के रहस्यात्मक उपन्यासों की प्रेरणा से है। कुसुम कुमारी का रहस्यमय चरित्र, रेनाल्ड के उपन्यास 'दि ब्राँज स्टेच्यू'[1] के सेटिनस के चरित्र से बहुत मिलता जुलता है। रेनाल्ड ने अपनी इस रचना में, मध्य युग के यूरोप में, जो बालिकायें अपने माता-पिता द्वारा गिरिजा-घरों को समर्पित कर दी जाती थी, उनकी दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। गोस्वामी जी ने भी, अपने इस उपन्यास में, इसी प्रकार का प्रसंग लिया है। किन्तु उन्होंने देवदासी प्रथा का एक समस्या के रूप में चित्रण किया है; एक प्रचारक के रूप में उसके विरुद्ध आवाज उठाई है; और हिन्दू समाज से इस कलंक को धोने का अनुरोध

१—रेनाल्ड का यह उपन्यास बंगला में १९ वीं शताब्दी में ही अनूदित हो गया था, और किशोरीलाल गोस्वामी ने उसे सम्भवतः इसी संस्करण में पढ़ा होगा।

किया है। अमरीका के प्रसिद्ध प्रचारात्मक उपन्यास, 'अंकिल टॉम्स केबिन' की रचना पद्धति का प्रभाव इस उपन्यास पर स्पष्ट है।

रेनाल्ड की रहस्यात्मक रचनाओं का प्रभाव, गोस्वामी जी की 'लीलावती' (१९०२) में भी है। बसन्ती बीबी, कलावती, जवाहरलाल और विपिन बिहारी के चरित्र, रेनाल्ड के चरित्रों से बहुत मिलते जुलते है। इस उपन्यास के एक विशिष्ट चरित्र, ललित किशोर के सम्बन्ध में अन्त में इस रहस्य का उद्घाटन होता है, कि वह विजय कृष्ण का पुत्र है। इस प्रकार के रहस्योद्घाटन रेनाल्ड की सभी रचनाओं में है। इस उपन्यास के तेरहवें परिच्छेद में, लीलावती के प्रति अनुरक्त बालकृष्ण ने, अपने प्रतिद्वन्द्वी ललितकिशोर को द्वन्द्व-युद्ध (डुएल) के लिए निमन्त्रित किया है। बाइसवें परिच्छेद में इस द्वन्द्व-युद्ध का विवरण है। किसी रूपसी को लेकर इस प्रकार के द्वन्द्व-युद्धों का वर्णन, अंग्रेजी साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलता है। गोस्वामी जी ने इस प्रकार यह प्रसंग भी अंग्रेजी प्रभाव से लिया है। लीलावती की प्रणय कथा के साथ, उसकी सेविका बिलसिया और गोविन्दचन्द्र के नौकर जंगी का प्रेम प्रसंग, रेनाल्ड के उपन्यास 'जोजेफ विलमट' की लिनटन और सार्लेट की प्रणय कथा के बहुत समान है। इसी प्रकार कलावती का चरित्र भी, अंग्रेजी के इसी उपन्यास की लेडी कैलिन्डी के जीवन-वृत्त से मिलता हुआ है।

रेनाल्ड का प्रभाव गोस्वामी जी की 'चपला' (१९०३-४) पर और भी अधिक स्पष्ट है। इस उपन्यास में एक अभागे भारतीय परिवार की संकट ग्रस्त स्त्रियों की दुःख-गाथा उपस्थित की गई है। साथ ही उसमें अंग्रेजी आचार-व्यवहार के अंधानुकरण से उत्पन्न सामाजिक विकृतियों का चित्रण है। इस उपन्यास का एक चरित्र हरिनाथ रेनाल्ड के उपन्यासों का पाठक है ;[1] और पाश्चात्य समाज की स्वच्छन्द प्रणय की पद्धति, सम्भवतः उसने रेनाल्ड की रचनाओं से ही सीखी है। कमल किशोर की विलासी प्रवृत्ति, रेनाल्ड के 'मिस्ट्रीज ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन' के प्रिंस का स्मरण दिलाती है। विलास-लोलुप प्रिंस के चंगुल से अपने को मुक्त करने के लिए रोज़ ने जिस असीम साहस का परिचय दिया है, गोस्वामी जी ने सौदामिनी को ठीक उसी प्रकार कमलकिशोर के पाश से मुक्त होते हुए दिखाया है। चपला और घनश्याम को जिस स्थान पर बन्दी किया गया है, वह रेनाल्ड के 'फाउस्ट' के उस लिन्डॉर्फ कासिल से मिलता जुलता है, जिसमें सीज़र बर्जिया को क़ैद किया गया था। हरिनाथ का चरित्र, 'फाउस्ट' के एक पात्र आट्ट पनिल्ला के आदर्श पर रचित है। आट्ट पनिल्ला ने

१—**किशोरी लाल गोस्वामी : 'चपला' प्रथ**

जिस प्रकार, सीजर बर्जिया और स्वयं अपने को, उस दुर्ग की कैद से मुक्त किया है, चपला और घनश्याम की मुक्ति की कथा भी ठीक उसी प्रकार की है। कादम्बिनी को विषम परिस्थितियों की प्रेरणा से, प्रचारिका के रूप में कार्य करते हुए, अपने स्वामी के जिन अत्याचारों को सहन करना पड़ा है, वे रेनाल्ड के मेरी प्राइस की दुःख गाथा से बहुत मिलते जुलते हैं। रेनाल्ड के 'मिस्ट्रीज ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन' में रोज़ ने अपने कैद होने की सूचना बाहरी संसार को तीर के सहारे एक पत्र भेज कर दी है; चपला ने भी अपने बन्दी होने की सूचना इसी प्रकार पहुंचाई है। कमलकिशोर के जन्म से सम्बन्धित रहस्य का उद्घाटन, और चपला तथा घनश्याम के अनेक कोरे कागजों पर हस्ताक्षर करने का प्रसंग भी 'फाउस्ट' से ही गृहीत है।

'माधवी माधव' (१९०९) गोस्वामी जी का आत्मकथात्मक शैली में लिखित उपन्यास है, और उस पर रेनाल्ड की इसी प्रणाली की रचना 'जोजेफ विलमट' का स्पष्ट प्रभाव है। गोस्वामी जी का कहना है, कि उनकी इस रचना की कथा वास्तविक जीवन से ली हुई है; किन्तु उन्होंने उसे जिस पद्धति से प्रस्तुत किया है, उसमें रेनाल्ड का प्रभाव प्रकट है। इस उपन्यास का सम्पूर्ण संविधान ठीक 'जोजेफ विलमट' की भांति है। भाग्य की विडम्बना से जोजेफ विलमट को, छोटी अवस्था मे ही, एक अध्यापक के यहां आश्रय लेना पड़ता है; और जब उनका भी सहसा निधन हो जाता है, तो वह संकटों से छुटकारा पाने के लिए लन्दन की ओर चल देता है। माधव ने भी अपने पिता के देहावसान के अनन्तर, अपने एक अध्यापक के यहां आश्रय लिया है, और वहाँ से वह खिन्न होकर दिल्ली चला जाता है। जोजेफ विलमट को सौभाग्य से देलमर के रूप में, एक करुणामय आश्रयदाता मिल गया है। माधव को ठीक इसी प्रकार, लाला रामप्रसाद के रूप में एक करुणाशील स्वामी मिला है। देलमर की भांति रामप्रसाद ने भी अपने आश्रित के विषय में गुप्त रूप से जांच पड़ताल की है। विलमट को अनेक सम्भ्रान्त परिवारों में कार्य करना पड़ा है, जिससे वह समाज के अभिजात वर्ग की दुर्बलताओं एवं ह्रासोन्मुख प्रवृतियों को भली प्रकार समझ सका है। माधव को केवल लाला रामप्रसाद के परिवार में ही रहना पड़ा है; इसलिए वह केवल इसी परिवार के विभिन्न सदस्यों की दुर्बलताओं से परिचित हो सका है। जीवन की लगभग एक ही प्रकार की कठिनाइयों का अतिक्रमण करने वाले ये दोनों चरित्र सत्यनिष्ठ भी है। इन दोनों ही चरित्रों के सम्मुख, नारी वासना का साकार रूप होकर, अपना मोहजाल फैलाती है। विलमट के आगे उसके स्वामी टिनबर्न की साली लेडी कैलिन्डी ने प्रणय निवेदन किया है; ठीक इसी प्रकार माधव के आगे उसके स्वामी रामप्रसाद की साली सरस्वती का स्नेह संबोधन है। जोजेफ

विलमट तो नारी के मोह जाल में आबद्ध हो गया है; किन्तु गोस्वामी जी का माधव, केवल अपने चरित्र को ही दृढ़ नहीं रख सका है, उसने सरस्वती के चरित्र को भी परिवर्तित कर दिया है। लेकिन गोस्वामी जी की जमुना का भाग्य ठीक लेडी कैलिन्डी जैसा होता है।

गोस्वामी जी का यह उपन्यास 'जोजेफ विलमट' के आदर्श का इतना अनुसरण करते हुए भी पूर्णतः उसकी अंधानुकृति मात्र ही नहीं है : गोस्वामी जी ने उसमें हिन्दू परिवार का, पूर्णतः भारतीय वातावरण में, बड़ा यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपनी इस रचना में उन नये विचारो को भी अभिव्यक्त किया है जो अंग्रेजी प्रभाव को लेकर भारतीय समाज में विकसित हो रहे थे। माधवी के पिता माधव के साथ उसका सम्बन्ध निश्चित करना चाहते हैं; किन्तु उसके लिए प्रस्ताव उपस्थित करने से पहले, यह जान लेना चाहते हैं, कि ये दोनों एक दूसरे के प्रति अनुरक्त हैं या नहीं।[1] यह निश्चित रूप से अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत उदार मनोवृति के पिता का दृष्टिकोण है। 'माधवी माधव' के अन्तिम भाग में, मदन और मोहनी का प्रणय प्रसंग, गोस्वामी जी की अपनी मौलिक उपन्यास कला की सृष्टि है। इन उपन्यासों की रचना करते करते, गोस्वामी जी ने अपने निज के कथा कौशल को विकसित कर लिया था, इसीलिए उनके सम-सामयिक जीवन को लेकर लिखे गये अन्तिम उपन्यास, 'अंगूठी का नगीना' (१९१८) में, अंग्रेजी प्रभाव विशेष नहीं है।

गोस्वामी जी के ऐतिहासिक व्यक्तित्वों को लेकर, तिलिस्म के तत्व से ओत-प्रोत उपन्यासों में, रेनाल्ड का प्रभाव और भी अधिक प्रकट है। उनकी इस कोटि की रचनाओं मे 'राज कुमारी' (१९०२) पर, रेनाल्ड के 'फाउस्ट' और 'दि ब्रॉन्ज़ स्टेच्यू', 'मल्लिका देवी' पर 'दि ब्रॉन्ज स्टेच्यू', 'तरुण तपस्विनी' पर 'दि यंग फिशरमैन', 'पन्ना बाई' और 'रजिया बेग़म' पर 'राई हाउस प्लॉट' आदि के प्रभाव हैं। 'तरुण तपस्विनी' पर राईडर एच० हेगर्ड के 'शी' तथा गोल्डस्मिथ के कथा-काव्य 'हर्रामट' का भी कुछ प्रभाव है। गोस्वामी जी के शेष दो तिलिस्मी उपन्यासों 'कटे मूड़ की दो दो बातें' तथा 'लखनऊ की कब्र' पर फारसी के तिलिस्मी साहित्य का सीधा प्रभाव प्रतीत होता है; किन्तु इन रहस्यमय क्रिया-कलापों के वर्णन एवं विभिन्न चरित्रों में देवी तथा दानवी प्रवृत्तियों की अवतारणा आदि में, रेनाल्ड का भी कुछ प्रभाव है। गोस्वामी जी की रचनाओं में, तिलिस्म का तत्व, इस प्रकार, फारसी साहित्य के सीधे सम्पर्क से आने के साथ-साथ, प्रकारान्तर से, कुछ रेनाल्ड की रचनाओं के माध्यम से

---

१ -- किशोरी लाल गोस्वामी : 'माधवी माधव' द्वितीय भाग, पृ० १०१

भी गृहीत है।

गोस्वामी जी को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले अंग्रेजी उपन्यासकार रेनाल्ड की प्रमुख विशेषताएं हैं : एक तो उसकी सभी रचनाएं एक निश्चित उद्देश्य को लेकर लिखित हैं; दूसरे, उसके कुछ चरित्रों के जन्म या कुछ अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं पर, रहस्य का आवरण पड़ा रहता है; तीसरे, उसके चरित्रों में कुछ तो दैवी और कुछ दानवी प्रभाव से कार्य करते हुए दिखाये गये हैं। रेनाल्ड ने, दानवी प्रभाव या शैतान की प्रेरणा को लेकर कार्य करने वाले चरित्रों का सदा दुःखमय अवसान दिखाया है। रेनाल्ड ने अपने कुछ उपन्यासों मे ऐसे भवनों का भी विवरण दिया है जो तिलिस्म से समन्वित है। यह तिलिस्म का तत्व, अंग्रेजी साहित्य में, अरबी और फारसी साहित्यों के माध्यम से ही आया हुआ है।

किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यासों में भी रेनाल्ड के प्रभाव को लेकर ये सभी प्रवृत्तियां मिलती हैं। सम-सामयिक जीवन से सम्बन्धित उनके उपन्यासों में सामाजिक उद्देश्य की बड़ी स्पष्ट अभिव्यक्ति है। कुछ चरित्रों के जन्म एवं विशिष्ट घटनाओं पर रहस्यात्मक आवरण की चर्चा भी, हम एक-दो स्थलों पर कर आए है। गोस्वामी जी के तिलस्मी उपन्यास 'राजकुमारी' में भी इस पद्धति का प्रयोग है, जिसमें रेनाल्ड के 'फाउस्ट' की भांति, एक व्यक्ति के पुत्र को, दूसरे की पुत्री से, बदल दिया गया है; और इस रहस्य का उद्घाटन बहुत बाद को जाकर होता है। पूर्णतः रहस्यमय चरित्र की अवतारणा 'मल्लिका देवी की मालती में है। उसने 'दि ब्रॉज स्टेच्यू' की एंजिला विल्डन की भान्ति, पुरुष का रूप धारण करके इतिहास की ही धारा बदल दी है। रेनाल्ड के उपन्यासों में दैवी और दानवी प्रेरणा से कार्य करने वाले जो चरित्र हैं, गोस्वामी जी ने 'राजकुमारी' और 'मल्लिका देवी' में, उनके भी प्रतिरूप प्रस्तुत किये हैं,। प्रथम में ब्रह्मानन्द और वृद्ध तपस्वी तथा द्वितीय में मालती दैवी प्रेरणा से कार्य करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। दानव या शैतान की प्रेरणा से कार्य करने वाले चरित्र, प्रथम में राम लोचन और द्वितीय में रघुनाथसिंह हैं। इन दोनों चरित्रों ने, स्वयं यह स्वीकार किया है, कि शैतानी प्रभाव ने उन्हें पथ भ्रष्ट कर दिया था। रामलोचन की स्वीकारोक्ति है :

"मैं सुख की नींद सोता और अपने प्रभु की बढवार ही मनाया करता, मगर अफसोस साक्षात शैतान हुसेनी की शैतानी का असर धीरे-धीरे मेरे रोम-रोम में ऐसा भीग गया कि मैं खासा शैतान क्या शैतानों को क़िबलेगाह बन गया और जो कुछ मैंने शैतानी का काम किया अब उसके ख्याल करने से भी रूह कांप उठती है।"[1]

१—किशोरी लाल गोस्वामी : 'राजकुमारी', पृ० १००

रेनाल्ड ने फाउस्ट को भी इसी प्रकार स्वयं शैतान के प्रभाव में आकर पथभ्रष्ट होते हुए दिखाया है। रघुनाथसिंह ने भी यह स्वीकार किया है कि मूर्तिमान पिशाच तुगरिल बेग ने उसे भ्रमित कर दिया था।[1] 'लखनऊ की कब्र' में भी शैतान के प्रभाव का विवरण है। रेनाल्ड शैतान से प्रभावित चरित्रों का सदा दुःखमय अवसान हुआ है। गोस्वामी जी के इस प्रकार के चरित्रों का अन्त भी बिल्कुल ऐसा ही है।

रेनाल्ड के उपन्यासों में अनेक भवनों को तिलिस्म से अनुप्राणित दिखाया गया है। उनकी 'दि ब्रॉज स्टेच्यू' रचना में, प्राग का दुर्ग ऐसी ही करामातों से भरा हुआ है। उस दुर्ग में प्रवेश करते ही, ऐंजिला विल्डन जब अपने चारों ओर देखती है, तो उसे बड़ा विचित्र और साथ ही भयंकर दृश्य देखने को मिलता है;

"Here a plume appeared to wave. There a helmeted head to bow. here an arm to beckon menacingly and there a speare to turn towords her." [2]

गोस्वामी जी के उपन्यास 'राजकुमारी' में, रामलोचन ने अपने स्वामी हीराचन्द को जिस भवन में कैद किया है, उसमें भी ऐसा ही तिलिस्म है। गोस्वामी जी की अन्य रचनाओं में भी इस प्रकार के तिलस्मी भवनों की अवतारणा की गई है।

किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यासों के इस विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने घटनाओं के चयन, उनके विकासक्रम, चरित्र-चित्रण और देश काल के संविधान में, रेनाल्ड का निश्चित प्रभाव ग्रहण किया है। इन दोनों उपन्यासकारों का रचना विधान भी बहुत समान है। गोस्वामी जी को इस प्रकार हम हिन्दी का रेनाल्ड कह सकते हैं। गोस्वामी जी में रेनाल्ड की व्यापक एवं सूक्ष्म चित्रण की प्रतिभा नहीं है। इसका कारण यह है, कि रेनाल्ड के पूर्व, अंग्रेजी गद्य तथा उपन्यास के विकास की एक सुदृढ़ परम्परा रही थी; किन्तु गोस्वामी जी स्वयं हिन्दी में इस साहित्यिक विधा के विभिन्न प्रकारों का प्रारम्भ और गद्य की अभिव्यंजना प्रणाली का परिष्कार कर रहे थे। गोस्वामी जी के ऊपर भारतीय साहित्य की परम्परा के आदर्शवाद का भी प्रभाव रहा है; इसीलिए वे, रेनाल्ड की, विलासिता तथा कूटनीतिक क्रिया-कलापों के चित्रण में, आनन्द अनुभव करने वाली, अस्वस्थ भावना से अपनी रक्षा कर सके हैं।

१—रघुनाथसिंह के इस कथन में पिशाच शब्द का प्रयोग शैतान के ही लिए है, जैसा कि हम रेनाल्ड के उपन्यास 'फाउस्ट' एक अनुवाद में भी देखते हैं।

२—जॉर्ज डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड : 'दि ब्रॉन्ज़ स्टेच्यू', पृ० ११

गोपाल राम गहमरी

अंग्रेज़ी प्रभाव की दृष्टि से, किशोरीलाल गोस्वामी के अनन्तर, गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास आते हैं। गहमरी जी ने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ, बंगला के सामाजिक उपन्यासों के अनुवाद से किया था। किन्तु इसके बाद उन्होंने अंग्रेजी तथा बंगला के जासूसी उपन्यासों के अनुवाद में हाथ लगाया, तथा अपनी मौलिक रचनाओं के लिये भी, यही क्षेत्र निश्चित कर लिया। इस दिशा में उनका 'गुप्तचर' (१८९९) उपन्यास सर्व प्रथम उल्लेखनीय है। यह एक अंग्रेजी उपन्यास का भारतीय वातावरण देकर रूपान्तर है। इसके बाद इन्होंने, अंग्रेजी के एक जासूसी उपन्यास 'स्ट्रेंज मर्डर' का 'अद्भुत खून' (१९०३) के रूप में अक्षरशः अनुवाद किया। इसी प्रकार उनकी बाद को प्रकाशित होने वाली रचनायें 'खून का भेद' (१९०९) 'जाली बीबी' (१९१४) आदि भी अंग्रेजी से गृहीत हैं।

गहमरी जी का बंगला से अनुवादित प्रथम जासूसी उपन्यास 'दो बहन' (१९०२) है। इसके बाद उन्होंने बंगला के प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास लेखक पंचकौड़ी दे की रचनाओं को अनुवादित करना प्रारम्भ किया; तथा प्रियनाथ मुकर्जी की जासूसी उपन्यास माला 'दारोगार दफ्तर' के अनुकरण में 'दरोगा दफ्तर' का प्रकाशन किया। हिन्दी में जासूसी साहित्य की अभिवृद्धि के लिए, गहमरी जी ने कुछ समय तक, एक 'जासूस' नामक पत्रिका भी निकाली थी। गहमरी जी ने अपने जासूसी कथा साहित्य के लिए, सबसे अधिक प्रेरणा, पंच कौड़ी दे की रचनाओं से ली है। इस लेखक की रचनाओं पर अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास लेखकों आर्थर कॉनन डॉयल तथा विल्की कॉलिन्स का प्रभाव है।[1] पंचकौड़ी दे का 'गोविन्दराम' तो डॉयल के 'ए स्टडी इन स्कार्लेट' का रूपान्तर मात्र है; और इसी प्रकार उसके 'जीवन मृत रहस्य' 'तथा 'नीलवसना सुन्दरी' पर कॉलिन्स के 'दि मून स्टोन' तथा 'दि वमन इन ह्वाइट' का छाप स्पष्ट है। आर्थर कॉनन डॉयल के जासूसी उपन्यासों का चमत्कार, उनके द्वारा अवतरित चरित्र, शारलक होम्स की अपराध के मूल कारण तथा अपराधी की सूक्ष्म अन्वेषण पद्धति में है। विल्की कॉलिन्स अपनी रचनाओं में, रूप सादृश्य रखने वाले पात्रों की अवतारणा करके, उनके द्वारा गुप्तचरों को भुलावा देने के प्रसंगों से, हमारा मनोरंजन करता है। पंचकौड़ी दे ने अपने जासूसी उपन्यासों में इन दोनों लेखकों के चमत्कारिक प्रयोगों का उपयोग किया है; और गहमरी जी ने उनसे, इन दोनों प्रवृत्तियों को अपनी रचनाओं में ग्रहण किया है। अंग्रेजी के जासूसी साहित्य के अपने

१—डॉ० प्रियरंजन सेनः 'वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली नावेल', पृ० ४०

निज के अध्ययन से भी उन्होंने ये प्रवृत्तियाँ अपनाई हैं।

गहमरी जी ने अपने मौलिक उपन्यासों 'जासूस की भूल' (१९०१) 'जासूस पर जासूस' (१९०४) तथा 'जासूस की जबानी' (१९१९) में, विल्की कालिन्स की, सदृश पात्रों की अवतारणा की शैली का प्रयोग किया है; और 'घर का भेदी' (१९०३) 'जासूस को जवांमर्दी' आदि में आर्थर कॉनन डॉयल की सूक्ष्म अन्वेषण पद्धति का चमत्कार दिखाया है। उनके आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये 'देवीसिंह' उपन्यास पर, रेनाल्ड के जोजेफ विलनट की छाया है। यह प्रभाव कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, रचना-शैली आदि सभी पर है। अपने जासूसी उपन्यास 'ठन ठन जासूस' में गहमरी जी ने, राइडर एच० हैगर्ड के 'शी' का भी कुछ प्रभाव ग्रहण किया है। इस उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में 'श्री' (१९०३) के रूप में हो चुका था। अंग्रेजी की इस रचना में साहसिकता पूर्ण कृत्यों तथा प्रेमाख्यान का समन्वय है; गहमरी जी ने इससे प्रेरणा लेकर, इन्हीं तत्वों का अपनी जासूसी कथा में समावेश कर दिया है। राइडर हेगर्ड की रचना में, 'शी' की खोज करते हुए, लिग्रो और होरेस को जिस प्रकार के विचित्र अनुभव हुए थे, हरदेवी की खोज करते हुए, गहमरी जी ने, ठनठन को उसी प्रकार के अनुभव कराये है। इस उपन्यास के जासूसी कथा भाग पर, आर्थर कॉनन डॉयल की रचना-पद्धति का प्रभाव है।

प्रेमचन्द

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में, प्रेमचन्द के उदय के साथ, इस साहित्यिक विधा में गुणात्मक परिवर्तन उपस्थित हुआ। प्रेमचन्द जी ने, अंग्रेजी के महान उपन्यासकारों जॉर्ज इलियट, हैरियट स्टो आदि के प्रभाव को, अपनी रचनाओं में ग्रहण करना प्रारम्भ किया। उनका प्रथम उपन्यास 'प्रेमा' (१९१३) इस, साहित्यिक रूप का प्रयोग मात्र था। उनकी दूसरी रचना 'सेवासदन' (१९१८), अपेक्षाकृत परिपक्व कृति थी; और अंग्रेजी प्रभाव भी उस पर बहुत स्पष्ट है। उसकी कथावस्तु, संवाद योजना, चरित्र-चित्रण, सामाजिक परिवेश, रचना-शैली एवं उद्देश्य, सभी औपन्यासिक तत्वों पर अंग्रेजी प्रभाव है। प्रेमचन्द जी के इसके बाद के उपन्यासों पर यह प्रभाव और अधिक घनीभूत हुआ है; थैकरे, हालकेन, गाल्सवर्दी आदि के प्रभाव को भी उन्होंने ग्रहण किया है; किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में, कालावधि की दृष्टि से, हमें केवल 'सेवासदन' पर ही अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण करना है।

प्रेमचन्द जी के इस उपन्यास में, वेश्याओं की समस्या का चित्रण है। उन्होंने प्रारम्भ में उन सामाजिक परिस्थितिओं का विश्लेषण किया है, जिनके कारण वेश्याओं की सृष्टि होती है। अनन्तर उनके जीवन की ऊपरी तड़क-भड़क, किन्तु भीतर के उत्पीड़न एवं विषाद का चित्रण है। अन्त में इस समस्या का निदान, सेवा-सदनों की

स्थापना में, प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचन्द जी ने, इस तर्कशील विधान को प्रस्तुत करने के लिए, समसामयिक जीवन धारा को लिया है। उनका कथानक यथार्थवादी दृष्टिकोण से, कारण-कार्य शृंखला में आबद्ध घटनाओं का अनुक्रम उपस्थित करता है; और यह भारतीय कथा साहित्य की, कल्पना-प्रधान एवं अतिरंजना पूर्ण शैली को छोड़कर, अंग्रेजी उपन्यास की स्वाभाविक अभिव्यञ्जना प्रणाली के अनुरूप है।

प्रेमचन्द जी के चरित्र-चित्रण पर अंग्रेजी प्रभाव और भी स्पष्ट है। उन्होंने मानव चरित्र को, सद् और असद् वृत्तियों के समन्वय के रूप में देखा है; और यह भारतीय परंपरा की श्वेत एवं श्याम चित्रण की प्रणाली के ठीक विरोध में है। भारतीय साहित्य में आदर्शीकृत चित्रण के विधान को लेकर, विभिन्न चरित्रों को प्रतीकों या प्रतिनिधि रूप में अवतरित किया जाता था; प्रेमचन्द जी ने प्रत्येक चरित्र के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना की है। यह भी अंग्रेजी प्रभाव को लेकर है। उन्होंने अपने चरित्र-चित्रण में जन्म-जात संस्कारों या जातिगत वृत्तियों के स्थान पर, परिस्थितियों की प्रेरणा एवं ससर्ग के प्रभाव को अधिक महत्व दिया है। प्रेमचन्द जी के 'सेवासदन' उपन्यास के विभिन्न चरित्रों, कृष्णचन्द्र, सुमन, गजाधर,भोली, पद्मसिंह शर्मा आदि में, अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित इसी चित्रण पद्धति का अनुसरण है। प्रेमचन्द जी की चरित्र-चित्रण की प्रणाली, प्रारम्भ और विकास की अवस्था में तो, अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत है; किन्तु अनेक चरित्रों की परिणति अन्त में उन्होंने, भारतीय साहित्य के आदर्शवादी दृष्टिकोण के अनुरूप की है।

प्रेमचन्द जी के 'सेवासदन' की संवाद योजना भी अंग्रेजी उपन्यासों जैसी है। उन्होंने जिस प्रकार अपने प्रत्येक चरित्र के व्यक्तित्व का अपना अलग विकास दिखाया है, उसी प्रकार उनकी वार्तालाप की प्रणाली भी पृथक२ है। कुछ चरित्र संस्कृत गर्भित भाषा बोलते हैं; कुछ सरल हिन्दी का प्रयोग करते हैं; और कुछ, विशेष रूप से मुसलमान चरित्रों का शीन काफ़ दुरूस्त होता है। इसी यथार्थवादी प्रणाली में, सामाजिक परिवेश को उन्होने, अपनी समस्त दुर्बलताओं एवं शक्ति के साथ उभारा है। उनकी रचनाशैली में, स्वाभाविकता पर विशेष बल है; किन्तु जैसे जैसे कथासूत्र आगे बढ़ता जाता है, उसे वे आदर्श की ओर मोड़ते जाते हैं।

प्रेमचन्द जी के इस उपन्यास पर हैरियट स्टो की रचना 'अंकिल टॉम्स केबिन'का प्रभाव स्पष्ट है। अंग्रेजी के इस प्रसिद्ध प्रचारात्मक उपन्यास में, उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमरीका में प्रचलित, दास-प्रथा का विश्लेषण किया गया है। इस कथात्मक विश्लेषण में, यथार्थ के प्रति आग्रह के साथ, आदर्शवाद का स्पर्श है। प्रेमचन्द जी ने ठीक इसी प्रकार, अपने देश की एक प्रधान सामाजिक समस्या

वेश्याओं की व्यवस्था का. यथार्थ से आदर्श की ओर उन्मुख होता हुआ विश्लेषण उपस्थित किया है । हैरीयट स्टो तथा प्रेमचन्द ने अपनी अपनी समस्याओं के जो समाधान खोजे हैं, वे भी पर्याप्त मिलते जुलते हैं : हैरियट स्टो में दासों की मुक्ति के लिए, टॉम काका की कुटिया को, आश्रय-स्थल के रूप में प्रस्तुत किया है; प्रेमचन्द जी ने उसी, प्रकार वेश्याओं के उद्धार के लिये सेवा सदन का निर्माण कराया है ।

अंग्रेजी की प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका जॉर्ज इलियट का भी कुछ प्रभाव प्रेमचन्द जी पर है । हम पहले कह आये है कि उन्होंने इस उपन्यासकार की रचना 'साइलस मार्नर' का एक स्वच्छन्द ग्रहण 'सुखदास' (१९२०) प्रकाशित किया था । जॉर्ज इलियट ने अपनी इस रचना में इग्लैंड के ग्रामीण जीवन का बड़ा यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । इस उपन्यासकार की एक अन्य विशेषता, चिन्तनशील चरित्रों की सृष्टि है । प्रेमचन्द जी ने इन दोनों ही प्रवृत्तियों को ग्रहण किया है । उनका 'सेवा सदन' उपन्यास, मूलतः तो नागरिक कथानक को लेकर चलता है; पर साथ ही उसमें ग्रामीण जीवन का भी बड़ा यथार्थ चित्रण है । चिन्तनशील चरित्रों की सृष्टि का विधान भी उन्होंने ग्रहण किया है; किन्तु उनके इस कोटि के चरित्र साइलस मार्नर और अंकिल टॉम के समन्वय हैं, उनका चिन्तन व्यावहारिक है ।

प्रेमचन्द जी के ऊपर, इस प्रकार पारम्भ से ही, पर्याप्त अंग्रेजी प्रभाव दर्शनीय है; और समय के विकास के साथ वह बढ़ता भी गया है । किन्तु यह प्रभाव किसी अनुकरण-कर्ता के रूप में नहीं, वरन् मौलिक प्रतिभा सम्पन्न कलाकार के रूप में ग्रहण किया गया है; इसीलिये वह, रचना-विशेष के प्रभाव के रूप में उतना नहीं, जितना पद्धतिगत एवं सूक्ष्म है । रूस के विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार टाल्सटाय की रचनाओं से भी प्रेमचन्द जी, अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ से ही, प्रेरणा ग्रहण करते प्रतीत होते हैं; किन्तु यह प्रभाव भी प्रवृत्तिगत ही अधिक है । टाल्सटाय की लोक-मंगल के आदर्श को लेकर, साहित्य सृजन की विचारधारा को उन्होंने अपनाया है; किन्तु जिस प्रकार टाल्सटाय का आदर्शवाद, ईसाई धर्म की विचारधारा से अनुप्राणित है; उसी प्रकार, प्रेमचन्द जी पर भारतीय साहित्य की आदर्शवादी परम्परा का थोड़ा-बहुत प्रभाव है ।

अन्य उपन्यासकार

अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से, इस काल के अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासकार, ठाकुर जगमोहन सिंह तथा देवकीन दन खत्री हैं । ठाकुर जगमोहन सिंह का महत्व, हिंदी उपन्यास पर रेनाल्ड का प्रभाव प्रारम्भ करने को दृष्टि से है । उनका 'श्यामा-स्वप्न' (१८९१) उपन्यास, अपनी रचना शैली की दृष्टि से तो संस्कृत के कथा साहित्य की

परम्परा में है; किन्तु उसके प्रारम्भिक कथा भाग पर, रेनाल्ड के 'फाउस्ट' की छाया है। अंग्रेजी के इस उपन्यास में, एक बड़े घर की लड़की से प्रेम करने के कारण, फाउस्ट, जेल के सींकचों के पीछे बैठा, शोक की मुद्रा में विचार करता हुआ दिखाया गया है। 'श्यामा-स्वप्न' का प्रारम्भ बिलकुल ऐसे ही प्रसंग को लेकर हुआ है। रेनाल्ड का और व्यापक प्रभाव देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी उपन्यासों में मिलता है। देवकीनन्दन खत्री की इस प्रकार की रचनाओं की मूल प्रेरणा, फारसी के तिलस्मी आख्यानों से मानी जाती है; किन्तु उनके रचना-काल में, बंगला तथा हिन्दी साहित्य दोनों में, रेनाल्ड की विशेष ख्याति थी, इसलिए उन पर इस लेखक का भी प्रभाव हो, यह स्वाभाविक है। रेनाल्ड के उपन्यासों में जिस प्रकार यूरोपीय सामन्तों की विलासिता, उनके दुर्गों, महलों आदि के तिलिस्म, तथा उनके बर्बरता पूर्ण कृत्यों आदि के वर्णन है; देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में उसी प्रकार, भारतीय सामन्तों के जीवन की इन्हीं प्रवृत्तियों का चित्रण है। हिन्दी के इस उपन्यासकार की रचनाओं के चरित्र-चित्रण में, जो कुछ पात्रों में सद्वृत्ति का प्राधान्य तथा कुछ में असद् वृत्ति का आधिक्य दिखाने की प्रवृत्ति है, उसके लिए भी रेनाल्ड की प्रेरणा सम्भव है। रेनाल्ड के तिलस्मी उपन्यासों में 'दि ब्रॉन्ज स्टेच्यू' का प्रभाव, देवकीनन्दन जी के 'चन्द्रकान्ता संतति' तथा 'भूतनाथ' दोनों पर है। एंजेला विल्डन, प्राग के राजमहल में घुसते ही देखती है, कि कोई व्यक्ति शिरस्त्राण पहने हुए उसके प्रति अपना सिर नमित कर रहा है, एक हाथ उसकी ओर बढ़ता हुआ उसे आतंकित कर रहा है, एक दिशा से उसकी ओर भाला बढ़ता चला आ रहा है;[1] चन्द्रकान्ता के ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजीतसिंह ने भी एक जलाशय के बीच खड़े महल में कुछ इसी प्रकार का तिलस्मी दृश्य देखा है। 'भूतनाथ' में, रोहतास गढ़ के तहखाने में, भूतनाथ की मूर्ति के आगे कितने ही स्त्री पुरुषों के बलिदान के जो दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं, वे रेनाल्ड के इस उपन्यास के अल्टेनडार्व कासिल के भयंकर रहस्यों और उसकी पीतल की मूर्ति का स्मरण दिलाते हैं। देवकीनन्दन खत्री मौलिक प्रतिभा सम्पन्न लेखक थे, इसलिए उनकी रचनाओं में अंग्रेजी के इस उपन्यासकार का प्रभाव, प्रेरणा के रूप में है, अनुकरण के रूप में नहीं। किशोरीलाल गोस्वामी की भांति, भारतीय आदर्शवाद का प्रभाव, खत्री जी पर भी रहा है; और उसी को लेकर वे रेनाल्ड की अस्वस्थ भावना से अपनी रक्षा कर सके हैं।

निष्कर्ष

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव के इस विश्लेषण के आधार पर, हम यह कह सकते हैं, कि इस साहित्यिक विधा के लिए यह प्रभाव, पर्याप्त उपयोगी सिद्ध

१—जॉर्ज डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड : 'दि ब्रॉन्ज़ स्टेच्यू', पृ० ११

हुआ है। हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव, सर्व प्रथम बंगला उपन्यासों के अनुवादों के माध्यम से आना प्रारम्भ हुआ। उसके बाद अंग्रेजी के उपन्यास अपने मूल रूप में पढ़े गये; और उनके अनुवाद, रूपान्तर एवं ग्रहण का क्रम चला। अंग्रेजी से अनुवादित आधे से अधिक उपन्यास जार्ज डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड की रचनाएँ हैं। रेनाल्ड की रचनाओं के अनुवादों से ही सर्व प्रथम हिन्दी में इस साहित्यिक विधा के विभिन्न रूप सामने आये, विशेष रूप से तिलस्मी, ऐतिहासिक एवं सम-सामयिक जीवन से सम्बन्धित उपन्यास। रेनाल्ड के उपन्यासों का प्रभाव, बंगला के उपन्यासकारों, स्वयं बंकिमचन्द्र की रचनाओं पर भी है। हिन्दी में देवकीनन्दन खत्री के हिन्दी उपन्यासों में, रेनाल्ड का प्रभाव सर्व प्रथम देखने को मिला। किशोरीलाल गोस्वामी ने, अंग्रेजी के इस उपन्यासकार की सभी प्रकार की कृतियों का व्यापक प्रभाव ग्रहण किया। गोपालराम गहमरी ने, प्रारम्भ में, अंग्रेजी के जासूसी साहित्य के प्रभाव से ओत-प्रोत पंचकौड़ी दे की बंगला रचनाओं के अनुवाद किये। बंगला के इस उपन्यासकार पर, विल्की कालिन्स और सर आर्थर कॉनन डॉयल का प्रभाव है। गहमरी जी ने, अंग्रेजी के इन उपन्यास-कारों का प्रभाव, प्रारम्भ में पंचकौड़ी दे की रचनाओं के माध्यम से ही ग्रहण किया। प्रेमचन्द जी की रचनाओं के साथ, अंग्रेजी के स्वस्थ साहित्यिक उपन्यासकारों का प्रभाव आना प्रारम्भ हुआ। उनकी रचनाओं पर प्रारम्भ में हम जार्ज इलियट, हैरियट बीचर स्टो आदि के प्रभाव देखते हैं।

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव के इस विश्लेषण से, हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए, कि हिन्दी उपन्यासकार ने केवल अंग्रेजी के कथाकारों का अनुकरण मात्र किया है। यह तो सही है, कि हिन्दी उपन्यासकार ने, अंग्रेजी के कथाकारों रेनाल्ड, विल्की कालिन्स, आर्थर कॉनन डॉयल, जॉर्ज इलियट, हैरियट बीचर स्टो आदि का प्रभाव ग्रहण किया है; किन्तु यह प्रभाव प्रेरणागत अधिक रहा है। हिन्दी के उपन्यासकारों ने अपने युग की सामाजिक परिस्थितियों एवं अपने देश की साहित्यिक परम्परा के प्रति सजग होकर, इस प्रभाव को आत्मसात किया है। किशोरीलाल गोस्वामी, यद्यपि रेनाल्ड से बहुत अधिक प्रभावित हैं; किन्तु उन्होंने उसकी भाँति मनुष्य की शृंगारिक एवं षडयंत्रकारिणी प्रवृत्तियों का रस लेते हुए अवस्थ चित्रण नहीं किया है। उनके साहित्यिक दृष्टिकोण में समाज परिष्कार की भावना भी रही है; और इसी दृष्टि से उन्होंने सामाजिक विकृतियों का चित्रण किया है। प्रेमचन्द जी भी, यद्यपि अपनी औपन्यासिक दृष्टि में अंग्रेजी प्रभाव से विशेष ओत-प्रोत हैं; किन्तु भारतीय साहित्य की आदर्शवादी परम्परा की छाप उनके ऊपर स्पष्ट है।

: १० :

हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव

प्राचीन भारतीय साहित्य, विशेष रूप से संस्कृत साहित्य, कहानियों की दृष्टि से बड़ा सम्पन्न है। संस्कृत में इस साहित्यिक रूप के अनेक संग्रह हैं, गुणाढ्य कृत 'विहृद-कथा', क्षेमेन्द्र कृत 'विहृद-कथा-मंजरी', सोमदेव कृत 'कथा-सरित-सागर' इत्यादि। इन ग्रंथों में संकलित कथाओं में, आदर्शवादी दृष्टिकोण से, जीवन के अनेक मर्मस्पर्शी प्रसंग उपस्थित किये गये हैं। ये कहानियां, एक निश्चित उद्देश्य, नैतिक आदर्शों के प्रचार की दृष्टि से, लिखी गई हैं; और इनमें मानव एवं मानवेतर अन्य प्राणियों की चरित्रों के रूप में अवतारणा है। आधुनिक हिन्दी कहानी जीवन का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करती है, इसलिए उसे इन प्राचीन आदर्शवादी कथाओं से उद्भूत कहना समीचीन नहीं है। यह साहित्यिक विधा, हिन्दी साहित्य में, आधुनिक काल में, विशेष रूप से पाश्चात्य कहानी-कला के प्रभाव को लेकर विकसित हुई है। हिन्दी कहानी का शिल्प-विधान और उसमें अभिव्यक्त जीवन-दृष्टि, विशेष रूप से पाश्चात्य कहानी-कला के प्रभाव से अनुप्राणित हैं। हिन्दी कहानी ने, पाश्चात्य प्रभाव से प्रेरणा लेकर उद्भूत होने के अनन्तर, अपने विकास में, संस्कृत के कथा साहित्य और भारतीय जन-कथाओं से भी शक्ति अर्जित की है।

इसलिए हिन्दी के इस साहित्यिक रूप पर, अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन करते हुए, इन प्रभावों का भी हम यथा-स्थान उल्लेख करते रहेंगे।

अंग्रेजी कहानियों का अध्ययन

अंग्रेजी प्रभाव ने अन्य साहित्यिक रूपों की भांति, हिन्दी कहानी पर भी सर्व प्रथम, शिक्षा-संस्थाओं के माध्यम से, कार्य करना प्रारम्भ किया। हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजी के अग्रलिखित कहानीकार एवं कहानी-संग्रह, विभिन्न पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत रहे : नेथैनियल हॉथार्न (१७०४-६४) कृत 'टैगिल उड टेल्स' (१८५३) वाशिंगटन इर्विन (१७८३-१८५९) कृत 'स्केच-बुक' (१८१९-२०), चार्ल्स किंग्सले (१८१९-७५) कृत 'दि हीरोज' (१८५५), शार्लेट मैरी यंग (१८२३-१९०१) कृत 'ए बुक ऑफ गोल्डेन डीड्स' (१८६४) तथा चार्ल्स एवं मैरी लैम्ब कृत 'टैल्स फ्रॉम शेक्सपियर' (१८०७)। अंग्रेजी कहानियों का एक संकलन भी, जिसका प्रकाशन 'वर्ल्ड क्लासिक्स सीरीज' के अन्तर्गत हुआ था, कई वर्षों तक पाठ्यक्रम में स्वीकृत रहा था। इस संग्रह में सर वाल्टर स्कॉट (१७७१-१८३२) की 'दि ट्रू ड्रोवर्स', वाशिंगटन इर्विन की 'रिपवैन विंकिल', नेथैनियल हॉथार्न की 'दि थ्री गोल्ड रेस्टिंग' एडगर एलन पो (१८०४-४९) की 'दि पिट ऐण्ड पैन्डुलम', श्रीमती गैस्किल की 'दि स्क्वायर्स स्टोरी', डॉ० जॉन ब्राउन की 'रैब ऐण्ड हिज फ्रेन्डस्', चार्ल्स डिकेन्स (१८१२-७०) की 'दि सेविन पुअर ट्रैवलर्स', एन्थोनी ट्रोलॉप (१८१५-२२) की 'मालचीज़ लव', जॉर्ज मेरिडिथ (१८२८-१९०९) की 'दि पनिश्मेंट ऑफ शाहपेश', विलियम हेल ह्वाइट की 'मिस्टर ह्विटेकर्स रिटायरमेंट', फ्रैंसिस ब्रैट हार्ट की 'दि इलियड ऑफ सैण्डीबार', रॉबर्ट लूई स्टिवेन्सन (८१५०-९४) की 'प्रॉविडैन्स ऐण्ड दि गीटार' कहानियों संकलित थीं।

हिन्दी कहानी के विकास को अंग्रेजी, की केवल इन गद्य कथाओं से ही प्रेरणा नहीं मिली; इस भाषा के कुछ कथा-काव्यों ने भी, इस विकास में योग दिया है। अंग्रेजी के लघु कथा-काव्य, जो विभिन्न पाठ्यक्रमों में स्वीकृत रहे, गोल्डस्मिथ (१७३०-७४) कृत 'हरमिट' (१७६४), परनेल (१६७४-१७१८) कृत 'हरमिट', टेनिसन (१८०९-९२) कृत 'दि प्रिंसेस' (१८४७) एनॉक आर्डेन' (१८६४), 'एल्मर्स फील्ड' (१८६४), 'दि लेडी ऑफ शैलॉट' (१८५२), 'डोरा' (१८३३) तथा अन्य, मेकॉले (१८००-५९) कृत 'लेज ऑफ एन्शेंट रोम' (१८४२), लॉगफेलो (१८०७-८२) कृत 'इवैन्जिलीन' (१८४७) इत्यादि है। हिन्दी कहानी के विकास, में फ्रांस के हास्य-नाटककार मोलियर के नाटकों के अंग्रेजी संस्करणों का भी कुछ योग रहा है।

अंग्रेजी की गद्य कथाओं में 'टैगिल उड टेल्स' में तो, एक नवयुवक ने कुछ

किशोरियों को, प्राचीन ग्रीक लोक-गाथाओं के कुछ प्रसंग सुनाये हैं। इर्विन कृत 'स्केच बुक' में कुछ तो निबन्ध हैं; और कुछ यूरोप की जन-कथाओं के साहित्यिक संस्करण हैं। पाश्चात्य आलोचकों का कहना है, कि ये जर्मनी की लोक-कथाओं के अमरीकी संस्करण हैं। चार्ल्स किंग्सले ने 'दि हिरोज़' में प्राचीन यूरोपीय वीरों के आख्यान उपस्थित किये हैं। इसी प्रकार 'ए बुक ऑफ गोल्डेन डीड्स' में भी, असीम साहस और महान उद्देश्यों के लिये आत्म-बलिदान के प्रसंग संगृहीत हैं। चार्ल्स एवं मैरी लैम्ब ने, शेक्सपियर के सभी प्रकार के नाटकों को, कहानी का रूप देकर प्रस्तुत किया है। अंग्रेजी कहानियों के संकलन में इस साहित्यिक रूप के अनेक प्रकार हैं, साहसिक आख्यान, मनोवैज्ञानिक प्रसंग, काल्पनिक वृत्त एवं यथार्थ घटनाओं के विवरण। इस प्रकार उसमें मानव रुचि के व्यापक स्वरूप का दिग्दर्शन है। इन कहानियों का रचना शिल्प भी, कभी तो बड़ा सरल और कभी बड़ा कलात्मक है। कथा-काव्यों में, मेकॉले के 'दि लेज़ ऑफ एन्शेन्ट रोम' को छोड़कर, जिसमे साहस और आत्म-बलिदान की कथाएं संकलित हैं, सभी में असफल प्रेम के प्रसंग हैं।

हिन्दी-प्रदेश के विभिन्न पाठ्यक्रमों में स्वीकृत कहानियों के संकलनों में, आज के अर्थ में कहानियां नहीं हैं; यद्यपि समष्टि रूप में, उनसे इस साहित्यिक विधा के विकास की रूप-रेखा अवश्य स्पष्ट हो जाती है। आधुनिक अर्थ में, कहानी वह साहित्यिक रचना है, जो एक छोटे से कथा-क्रम के सहारे, जीवन के विभिन्न पक्षों में से किसी एक पर प्रकाश डालती है। अंग्रेजी के इन सभी ग्रंथों में, जिन्होंने हिन्दी-कहानी के विकास में योग दिया है, इस सीमित अर्थ की कहानी का स्वरूप नहीं है। इन ग्रंथों में संकलित रचनाओं के शीर्षकों से ही यह स्पष्ट हो जाता है, कि वे लोक-कथाएं, रेखा-चित्र, कथा-काव्य आदि हैं। अंग्रेजी कहानी का विकास, साहित्य की इन्हीं विधाओं से हुआ है। अंग्रेजी की लोक-कथा में, एक शिथिल से और छोटे कथा-सूत्र को लेकर, कभी जीवन का यथार्थवादी और कभी काल्पनिक चित्रण उपस्थित किया जाता था। रेखा-चित्र में, कथातत्व से अधिक वातावरण, की सृष्टि पर बल दिया जाता है। कथा-काव्य में भी, कथातत्व के स्थान पर, जीवन के भावात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति पर बल होता है।

अंग्रेजी में जब इन विभिन्न साहित्यिक विधाओं से, कहानी का विकास प्रारम्भ हुआ, तो उसे सर्व प्रथम 'शॉर्ट प्रोज़ नरेटिव' (लघु गद्य कथानक) कहा गया।[1] एडगर एलन पो का, जिन्होंने सर्व प्रथम इस संज्ञा का प्रयोग किया था, कहना है कि

१—जोज़ेफ टी० शिपले : 'डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर', १९६०, पृ० ३७३

इस साहित्यिक रूप के अन्तर्गत वे लघु-कथाएं आनी चाहिएँ, जिनके पढ़ने में आधे घन्टे से लेकर, दो घन्टे तक का समय लगे। इस संक्षिप्तता में, इस साहित्यिक रूप के रचना-विधान की ओर भी सकेत है।[1] पो का कहना था, कि कहानी लेखक को प्रभाव की पूर्णता पर दृष्टि रखनी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति में वह घटना-विधान तथा रचना-शैली में औचित्य तथा संक्षेप का साहरा ले सकता है। अंग्रेजी में इस साहित्यिक विधा के लिए प्रचलित संज्ञा 'शार्ट स्टोरी' का प्रयोग, सर्व प्रथम अमरीकी आलोचक ब्रैन्डर मैथ्यूज़ ने, अपने ग्रन्थ 'दि फिलॉसफी ऑफ शॉर्ट स्टोरी' (१८८५) में किया था।[2] उसका कहना था, कि 'शॉर्ट स्टोरी' वह कथा है, जो शॉर्ट' अर्थात् छोटी हो।

हिन्दी कहानी को भी अपने विकास में, अंग्रेजी कहानी की भाँति, इन विभिन्न अवस्थाओं को पार करना पड़ा है; किन्तु उसने शताब्दियों के विकासक्रम को कुछ वर्षों में ही प्राप्त कर लिया है। इस द्रुतगति पूर्ण विकास की प्रक्रिया में, उसे अंग्रेजी के इस साहित्यिक रूप की रचनाओं के अध्ययन एवं अनुवाद से विशेष सहायता मिली है। हिन्दी में इस साहित्यिक विधा के सर्व प्रथम प्रयोग, अंग्रेजी कहानियों के अनुवाद एवं ग्रहण से ही आरम्भ हुए। उसके बाद संस्कृत के कथा साहित्य और जन-भाषा की लोक-कथाओं को ग्रहण किया गया। बंगला के कथा साहित्य ने, हिन्दी के पूर्व ही, अंग्रेजी प्रभाव आत्मसात् करना आरम्भ कर दिया था, और उसके अनुशीलन से, हिन्दी में इस साहित्यिक विधा के विकास को, विशेष बल मिला। इन विभिन्न प्रभावों के फलस्वरूप ही, हिन्दी कहानी का समुचित विकास सम्भव हुआ है।

प्रारम्भिक कथाएँ

अंग्रेजी प्रभाव जिन दिनों आना प्रारम्भ हुआ था, उन्हीं दिनों बिना उसकी प्रेरणा के, इंशा अल्ला खाँ ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'रानी केतकी की कहानी' (१८०२) उपस्थित की। इंशा ने सम्भवतः हिन्दी-प्रदेश की एक लोक-कथा को, जनसाधारण की भाषा में, अपनी साहित्यिक प्रतिभा से अनुप्राणित करके, उपस्थित कर दिया था। जब उन्होंने यह रचना प्रस्तुत की थी, वे लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार थे; इसलिए उनकी इस कृति में, उनकी मौलिक प्रतिभा का भी पर्याप्त योग है। उनकी इस रचना में, कहानी के यदि सभी तत्व नहीं, तो थोड़े-बहुत अवश्य हैं; किन्तु इसे हम इस साहित्यिक रूप का प्रयोग मात्र ही कह सकते हैं। इंशा ने स्वयं इसके बाद इस

१—जोजेफ टी० शिपले : 'डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर', पृ० ३७३

२—वही, पृ० ३७३

रूप की कोई रचना नहीं प्रस्तुत की; और जब अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी साहित्य पर पूर्ण शक्ति के साथ कार्य करना आरम्भ किया, तभी कहानी अपने समस्त रचना-विधान को लेकर हिन्दी में अवतरित हुई।

अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक दिनों में, अंग्रेजी प्रभाव की छाया में, किन्तु बिना अंग्रेजी साहित्य के ज्ञान के ही, सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' (१८१३) के रूप में एक प्रयोग उपस्थित किया। यह रचना संस्कृत साहित्य से प्रेरणा लेकर लिखी गयी थी। इस प्रयोग के अनन्तर, इस प्रेरणा से भी अन्य कोई रचना नहीं उपस्थित की गयी। इस प्रकार सदल मिश्र के इस प्रयास से भी, हिन्दी कहानी का प्रारम्भ स्वीकार करना उचित नहीं है।

हिन्दी मे, गद्य रूप में लिखित इन कथात्मक रचनाओं को, हिन्दी कहानी के प्रथम उदाहरण तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु इन से उन दो प्रभावों का संकेत अवश्य मिलता है, जिन्होंने, अंग्रेजी प्रभाव को लेकर, हिन्दी कहानी का प्रारम्भ हो जाने के अनन्तर, उसके विकास में विशेष योग दिया है। उनमें से एक तो संस्कृत कथा साहित्य और दूसरा जन-भाषाओं की लोक-कथाओं का प्रभाव है। हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव के विश्लेषण के पूर्व, हम इन प्रभावों की भी विवेचना करेंगे।

प्रारम्भिक प्रयोग

अंग्रेजी कहानी ने, यद्यपि अब उसके मध्य-युगीन और पुनर्जागरण काल के रूप खोज लिये गये हैं, अपना वास्तविक विकास 'दि टैटलर' तथा 'दि स्पेक्टर आदि पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से प्रारम्भ किया था। हिन्दी कहानी भी, हिन्दी की प्रथम पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगजीन'(१८७३)में, अपने प्रारम्भिक रूप में प्रकट हुई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सम्पादित, इस पत्रिका में प्रकाशित सर्व प्रथम कहानी 'मार्टिन वाल्डेक का भाग्य' थी। यह एक जर्मन लोक-कथा पर आधारित, भूतों की कहानी है; और सम्भवतः इसे किसी अंग्रेजी संस्करण से अनुवादित किया गया था। इस अनुवादित रचना के अनन्तर, दो मौलिक प्रयोग 'गुण सिन्धु' तथा 'एक शोक संवाद' प्रकाशित हुए। 'गुण सिन्धु' तो असफल प्रणय की पीड़ा भरी कहानी है, और 'एक शोक संवाद' में, किशोरावस्था की एक हिन्दू विधवा की मानसिक व्यथा का वर्णन है। पाश्यचात्य साहित्य की दुखान्तकी विधा का प्रभाव, इन दोनों ही प्रयोगों में है। 'गुण सिन्धु' पर तो अंग्रेजी प्रभाव और भी प्रकट है, उसका नायक अपने अत्यधिक दुःख के क्षणों में, अंग्रेजी कवि टॉमस मूर की कुछ पंक्तियाँ दोहराने लगता है।

इन प्राम्भिक प्रयोगों के पश्चात् राजा शिव प्रसाद ने, अंग्रेजी की दो कहानियों को, अग्रलिखित शीर्षकों 'सैनफोर्ड और मर्टन की कहानी' (१८७७) और 'राजा

अंकों में प्रकाशित हुआ। फिर 'दि विन्टर्स टेल' का ग्रहण 'अद्भुत योगायोग' (१९०३) संज्ञा में हुआ। इसके कुछ वर्ष बाद 'हैमलेट' का एक कथारूप में ग्रहण, आलोचनात्मक भूमिका के साथ प्रकाशित हुआ। शेक्सपियर से गृहीत इन सभी गद्य कथाओं में, लैम्ब की कृति 'टेल्स फ्रॉम शेक्सपियर' का सहारा नहीं लिया गया है। इनमें से कुछ ग्रहण तो, जैसे सिम्बेलीन', लोक-कथा के रूप में है। 'सरस्वती' में प्रकाशित इस साहित्यिक रूप के प्रारम्भिक प्रयोगों में, शेक्सपियर का प्रभाव कितना अधिक है, यह किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' से स्पष्ट है। इस कहानी को, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने, हिन्दी की सबसे पहली कहानी कहा है;[1] इस कहानी का कथासूत्र शेक्सपियर के नाटक 'दि टेम्पेस्ट' से पर्याप्त मिलता जुलता है।

'सरस्वती' में अंग्रेजी से अनुवादित कहानियों की संख्या बहुत अधिक नहीं है; किन्तु उनका प्रभाव पर्याप्त रहा है। इस पत्रिका में अंग्रेजी से अनुवादित होकर सर्व प्रथम प्रकाशित कहानी, मूलतः एक फ्राँसीसी कथा थी; और उसे 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' (१९०७) शीर्षक देकर, प्रकाशित किया गया था। इसके अनन्तर स्वामी सत्यदेव का एक अमरीकी कहानी का अनवाद 'आश्चर्य जनक घन्टी' (१९०८) प्रकाशित हुआ। यह एक वैज्ञानिक आविष्कार की मनोरंजक कथा थी। इसके बाद एक अमरीकी लेखक वाल्टर सवेज लेन्डॉर की रचना 'राजा रानी' शीर्षक देकर (१९१२) अनुवादित हुई। वृंदावनलाल वर्मा ने भी, इंग्लैंड के नारी जागरण की एक कथा 'सफ्रेजिस्ट की पत्नी' (१९१४) शीर्षक देकर अनुवादित की। इग्लैंड की एक परियों की कहानी भी 'हीरों की रानी' (१९१८) शीर्षक से गृहीत हुई थी। इसके अनन्तर 'स्वप्न' (१९१९) शीर्षक एक रचना, 'द ह्यूमर ऑफ फ्रांस' ग्रन्थ से अनुवादित होकर प्रकाशित हुई।

'सरस्वती' के अतिरिक्त, काशी से प्रकाशित 'इन्दु' पत्रिका ने भी, हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक विकास में विशेष योग दिया है। इस पत्रिका में शेक्सपियर के नाटकों के कहानी रूप में, ग्रहण तो नहीं प्रकाशित हुये; किन्तु अंग्रेजी की कुछ कहानियो के अनुवाद अवश्य प्रकाश में आये। फ्रांस के मोलियर से प्रेरणा लेकर, हिन्दी में हास्य रचनाओं का ओर प्रवृत्त जी० पी० श्रीवास्तव ने, इस पत्रिका में अंग्रेजी की एक हास्य रचना को 'झेंपू की कथा' (१९१३) शीर्षक देकर प्रकाशित किया। इसके अनन्तर जोज़ेफ एडिसन की प्रसिद्ध रचना 'दि विज़न ऑफ मिर्जा', 'मिर्जा का स्वप्न' (१९१६) शीर्षक

---

१ रामचन्द्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', सं० १९५८, पृ० ५०३

देकर अनुवादित हुई। इन अनुवादों के अतिरिक्त राइडर हैगर्ड के प्रसिद्ध उपन्यास 'शी' को, एक कहानी का रूप देकर, 'जीवनाग्नि' शीर्षक के साथ प्रकाशित किया गया। प्रसिद्ध अमरीकी कथा 'रिपवैन विंकिल' भी हिन्दी में अनुवादित हुई।

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित इन अनुवादों के साथ, अंग्रेजी से गृहीत कुछ रचनाएं भी प्रकाश में आईं। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' का कथा-सूत्र शेक्सपियर के 'दि टेम्पेस्ट' के कथानक से इतना मिलता जुलता है, कि उसे हमें ग्रहण ही कहना चाहिए। 'टेम्पेस्ट' का कथासूत्र है : मिलान का शासक प्रॉस्पेरो, अपनी पुत्री मिरांडा के साथ, अपने छोटे भाई द्वारा एक निर्जन द्वीप में निर्वासित किया जाता है। प्रॉस्पेरो को उस द्वीप पर रहते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो जाते हैं; तब एक दिन वह इन्द्रजाल के सहारे, अपने द्वीप के पास ही, एक जहाज़ को दुर्घटना ग्रस्त करा देता है। उस जहाज में उसका छोटा भाई, उसके सहायक नेपुल्स के सम्राट, और उसका पुत्र फर्डिनेन्ड हैं; इसलिए इस जहाज़ के साथ यह इन्द्रजालिक प्रयोग किया गया है। उस जहाज़ के सभी यात्री, उस द्वीप पर सुरक्षित उतर आते हैं; किन्तु प्रॉस्पेरो अपने मायाजाल से, फर्डिनेन्ड को सबसे अलग करके, अपनी पुत्री मिरांडा के पास पहुंचा देता है। फर्डिनेन्ड और मिरांडा, एक दूसरे को देखकर, स्नेह विह्वल हो उठते हैं। प्रॉस्पेरो यह देखकर, मिरांडा के प्रति फर्डिनेन्ड के स्नेह की परीक्षा के लिए, उसे बड़े कठोर श्रम का कार्य सौंपता है। फर्डिनेन्ड उस कार्य को बड़े स्नेह के साथ सम्पन्न करता है। प्रॉस्पेरो तब, अपने स्वप्न को साकार होते हुए देखकर, जहाज़ को पुनः ठीक अवस्था में उपस्थित कर देता है; और यह घोषणा करता है कि वह इन्द्रजालिक प्रयोगों को छोड़ देगा। फर्डिनेन्ड और मिरांडा के विवाह का निश्चय हो जाता है, और प्रॉस्पेरो भी अन्य लोगों के साथ स्वदेश लौटने की तय्यारी करने लगता है। गोस्वामी जी की 'इन्दुमति' की कथा भी बहुत कुछ ऐसी ही है। अंतर केवल इतना है, कि इन्दुमती का पिता इन्द्रजालिक नहीं है; और वह नवयुवक जो उसे देख कर स्नेह विह्वल हो उठता है, उसके पिता के शत्रु का पुत्र नहीं, वरन् उसके पिता के शत्रु का बध करने वाला है। इन्दुमती के पिता ने, यह प्रतिज्ञा की थी, कि वे उसी व्यक्ति को अपनी पुत्री का हाथ देंगे, जो उसके राज्य को हड़प कर उसे निर्वासित करने वाले, इब्राहीम लोदी का बध करेगा। इन्दुमती के प्रति आकर्षित राजकुमार ने, इब्राहीम लोदी को पराजित करके उसका वध किया है; और इस प्रकार उसने उसके साथ विवाह का अधिकार प्राप्त कर लिया है। अंत में इन्दुमती के साथ उसका विवाह भी हो गया है। इस प्रकार गोस्वामी जी की यह कहानी, शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' के कथासूत्र का, एक स्वच्छन्द ग्रहण है।

भोज का सपना' (१८७७) में उपस्थित कीं। इन दोनों कथाओं के मूल लेखक टुकर कहे गये हैं;[1] किन्तु अंग्रेजी साहित्य में यह नाम उपलब्ध नहीं है। 'दि हिस्ट्री ऑफ सैनफार्ड एण्ड मर्टन' (१७८३-८९) टॉमस डे की एक प्रसिद्ध रचना है। उसमें बालकों को दृष्टि में रखकर, यह स्पष्ट किया गया है, कि सद्विचारों की शिक्षा देकर, मनुष्य को सत्कार्यों की ओर प्रवृत्त किया जा सकता है।[2] राजा साहब ने, इस कहानी को, स्वच्छन्द रूप में ग्रहण करते हुए भी, मूल चरित्रों के नाम एवं वातावरण को बचाये रक्खा है। अपने दूसरे अनुवाद में उन्होंने, चरित्रों के नाम परिवर्तित कर दिये हैं, तथा भारतीय वातावरण भी प्रदान कर दिया है; इसीलिए यह मूल भरातीय कथा जैसी लगती है। इस कहानी में भी नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा का प्रयास है।

इन प्रारम्भिक प्रयोगों के अनन्तर, हिन्दी में कहानी के क्षेत्र में यदा-कदा और प्रयास भी होते रहे। बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) की 'नूतन ब्रह्मचारी' (१८८६) शीर्षक रचना, यद्यपि उसे लेखक ने उपन्यास कहा है, वस्तुतः कहानी है। इसके अनन्तर काशीनाथ खत्री ने, लैम्ब की कृति 'टेल्स फ्रॉम शेक्सपियर' का अनुवाद दो भागों में प्रकाशित किया—'शेक्सपियर के परम मनोहर नाटकों के आशय' (१८८३-८६)। शेक्सपियर के नाटकों के कथानकों ने, इस अनुवाद के अतिरिक्त, अन्य प्रकार से भी, हिन्दी कहानी के विकास में योग दिया है, यथा स्थान उसका भी उल्लेख होगा।

'सरस्वती'

सन् १९०० में, प्रयाग से 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ, हिन्दी कहानी का व्यवस्थित विकास प्रारम्भ हुआ। इस विकास में योग देने वाले सभी स्रोत, इस पत्रिका में देखने को मिलते हैं। अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव तो हिन्दी कहानी के लिए आधारभूत महत्व का रहा है; किन्तु उसके साथ ही, संस्कृत के कथा साहित्य एवं लोक-कथाओं ने भी, उसमें पर्याप्त योग दिया है; बंगला कहानी ने भी, जो अंग्रेजी प्रभाव की छाया में ही उद्भूत और विकसित हुई थी, हिन्दी कहानी के विकास में समुचित सहायता दी है। 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित विभिन्न कहानियों में, इन सभी स्रोतों का योग दर्शनीय है।

हिन्दी कहानी के विकास में, अंग्रेजी साहित्य का योग, शेक्सपियर के नाटकों के कथारूप में ग्रहण से प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम शेक्सपियर के नाटक 'सिम्बेलीन' को कथा-रूप में (१९०१) ग्रहण किया गया। इसके अनन्तर 'पेरीक्लीज़' का ग्रहण, दो

१—डॉ० माता प्रसाद गुप्त : 'हिन्दी पुस्तक साहित्य', पृ० २५५

२—सर पॉल हर्वे (सं०) : 'दि ऑक्सफोर्ड कम्पेनिअन टु इंगलिश लिट्रेचर' (१९४६), पृ० ६९५

कर दिया था। शेक्सपियर के नाटकों की कथाएं जब, कहानी के रूप में, हिन्दी में उपस्थित की जाने लगीं, तो संस्कृत साहित्य के पंडितों ने, संस्कृत नाटकों के कथा सूत्रों का आधार लेकर, कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४-१९३८) ने 'सरस्वती' में संस्कृत नाटकों पर आधारित अनेक कहानियां प्रकाशित कीं। सर्व प्रथम श्रीहर्ष की 'रत्नावली' 'सरस्वती' (१९०१) में कहानी रूप में प्रकट हुई। उसके अनन्तर कालिदास कृत 'मालविकाग्नि मित्र' (१९०४) में प्रकाशित हुई। सन् १९१४ में चन्द्रमौलि शुक्ल ने, हर्ष के 'नागानन्द' नाटक को कहानी का रूप दिया। इसके अनन्तर उन्होंने 'नाट्य कथामृत' में संस्कृत के और भी कई नाटकों के कथा सूत्रों को लेकर उन्हें कहानी रूप में उपस्थित किया।

आचार्य द्विवेदी ने संस्कृत कथा साहित्य के कुछ ग्रहण भी अपनी 'सरस्वती' में प्रकाशित किये। उन्होंने स्वयं 'कथा सरित सागर' का आधार लेकर कई कहानियां लिखी थीं। सन् १९०२ में उनकी एक इसी प्रकार की रचना 'काकतालीय घटना' प्रकाश में आयी। वह भी संस्कृत नाटकों के कथानकों की भांति, राज परिवार की प्रणय-कथा थी। इसके अनन्तर उन्होंने, 'तीन देवता' शीर्षक 'कथा सरित सागर' से गृहीत एक कहानी प्रकाशित की। इसमें उन्होंने 'कथा सरित सागर' से कथानक मात्र ग्रहण कर के उसे अंग्रेजी प्रभाव से गृहीत आत्मकथात्मक शैली में उपस्थित किया था। इस कहानी में वररुचि ने, अपनी पत्नी उपकोशा द्वारा राज्य के वरिष्ठ अधिकारियों से अपनी सम्मान रक्षा का प्रसंग उपस्थित किया था। सन् १९०६ में जेमिनी पुराण से गृहीत 'चन्द्रहास का उपाख्यान' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ। काशी की 'इन्दु' पत्रिका ने भी संस्कृत से गृहीत 'ब्रह्मर्षि' और 'पंचायत' शीर्षक दो कहानियां प्रकाशित कीं। ये दोनों ग्रहण जयशंकर प्रसाद (१८८९-१९३७) ने प्रस्तुत किये थे। प्रसाद जी ने इसके अनन्तर स्वच्छन्दतावादी भावना से ओत-प्रोत अनेक मौलिक कहानियां भी लिखीं।

सस्कृत कथा साहित्य के प्रभाव के साथ-साथ भारतीय लोक-कथाओं ने भी, हिन्दी कहानियों के विकास को गति दी है। अंग्रेजी की प्रसिद्ध पत्रिका 'मॉडर्न रिव्यू' में उन दिनों 'शेखचिल्ली' के उपनाम से कोई सज्जन, अनेक भारतीय लोक-कथाओं को कहानी रूप में प्रकाशित कर रहे थे। इन लोक-कथाओं के भी 'सरस्वती' में, कई अनुवाद प्रकाशित हुए। यह वास्तव में बड़ा विचित्र योग रहा, कि भारतीय लोक कथाएं अंग्रेजी से अनुवादित होकर हिन्दी में आईं।

बंगला से अनुवाद

हिन्दी में बंगला से अनुवादित कहानियों की संख्या भी बहुत अधिक है। बंगला

कथाकारों में सर्वप्रथम, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियों के अनुवाद हुये। सबसे पहले उनकी कहानी 'मुक्ति का उपाय' (१९०१) अनुवादित हुई। उसके बाद 'दान प्रति दान' (१९०६), 'पक्का गठबन्धन' (१९०७) 'दलिया' (१९०८) 'एक रात्रि' (१९११) 'प्रायश्चित' (१९१३) 'नीचता और उदारता' (१९१५), 'पड़ोसिन' (१९१६), 'तोते की शिक्षा' (१९१८) प्रकाशित हुईं। इनमें से अधिकांश अनुवाद 'बंग महिला' के द्वारा प्रस्तुत किये गये थे। एक दो अनुवाद विश्वनाथ शर्मा ने भी किये; और आगे चलकर उन्होंने मौलिक कहानियां भी लिखीं। रवीन्द्रनाथ के अतिरिक्त 'बंग महिला' ने बंगला के कुछ अन्य कहानीकारों की रचनाएं भी अनुवादित कीं। इन सभी कहानियों में, पाश्चात्य कथा-शिल्प को लेकर, भारतीय जीवनधारा के बड़े यथार्थवादी चित्र उपस्थित किये गये थे। इन अनुवादों के प्रकाशन के साथ-साथ 'सरस्वती' के प्रकाशक, इंडियन प्रेस के प्रबन्धक, गिरिजा कुमार घोष ने 'लाला पार्वती नंदन' के नाम से, हिन्दी में कई कहानियां लिखीं। उनकी पहली कहानी 'भूतों की हवेली' (१९०३) थी, यह 'सरस्वती' में तीन अंकों में प्रकाशित हुई थी। 'लाला पार्वती नंदन' की अन्य कहानियां, 'रामलोचन झा' (१९०४), 'मेरा पुनर्जन्म' (१९०६) और 'एक एक के दो दो' (१९०६) थीं। बंगला की 'विज्ञान दर्पण' पत्रिका से एक वैज्ञानिक कथा 'अज्ञान और विज्ञान' (१९०४) भी हिन्दी में रूपान्तरित हुई। यह कहानी दो भागों में प्रकाशित हुई थी; और उसमें प्राचीन संस्कारों से ग्रस्त एक भारतीय सज्जन के, वैमानिक यंत्रों से सुसज्जित एक अंग्रेज मित्र के घर जाने पर विचित्र अनुभवों का वर्णन था। 'इन्दु' में भी बंगला से अनुवादित कई कहानियां 'कनकलता' (१९१३), 'लज्जा' (१९१३), 'मान और समाज एक दृश्य' (१९१३), 'संग्राम' (१९१५), 'किरन' (१९१५) आदि प्रकाशित हुई थीं। इन कहानियों में भी 'सरस्वती' में प्रकाशित कहानियों की भांति, भारतीय जीवन धारा के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये गये थे।

हिन्दी कहानी के विकास में सहायक इन विभिन्न प्रभावों में, अंग्रेजी प्रभाव सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा है। अंग्रेजी कथा साहित्य के सम्पर्क से ही, हिन्दी कहानी की बाह्य रूपरेखा और अन्तर्धारा का निर्माण हुआ था। इस निर्माण की प्रक्रिया में, अंग्रेजी की भूलों से संबंधित लोक-कथाओं से लेकर, वैज्ञानिक कहानी तक का योग रहा है। संस्कृत कथा साहित्य के फलस्वरूप तो, हिन्दी को स्वच्छन्दतावादी प्रेमाख्यान और नैतिकतापूर्ण कथाएं ही मिली थीं। संस्कृत साहित्य के कथानकों को लेकर भी महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने, अभिव्यञ्जना प्रणाली अंग्रेजी की ही अपनाई। भारतीय लोक-कथाएं भी, हम अभी कह आए हैं, अंग्रेजी से अनुवादित

होकर ही, हिन्दी में आईं। इस प्रकार उनके साथ भी थोड़ा-बहुत अंग्रेजी प्रभाव आया। बंगला कहानियों के माध्यम से भी अंग्रेजी प्रभाव हिन्दी में आया है। बंगला का कथा साहित्य, अंग्रेजी प्रभाव की छाया में ही विकसित हुआ था। इस प्रकार उसके माध्यम से आया हुआ प्रभाव प्रकारान्तर से अंग्रेजी प्रभाव ही रहा है। बंगला कथाओं के अनुवाद से, कहानी का रचना-विभाग हिन्दी लेखकों को और भी स्पष्ट हो गया। बंगला से अनुवादित कथाएं भी भूतों की कहानियों से लेकर, वैज्ञानिक प्रसंग तक हैं। इस प्रकार अंग्रेजी प्रभाव की भांति, बंगला कहानियों ने भी, हिन्दी कहानी को विशेष बल दिया है। बंगला कहानी ने, अंग्रेजी प्रभाव प्रदान करने के साथ-साथ, कुछ अपना मौलिक प्रभाव भी दिया है; किन्तु यहां हमें केवल अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना करनी है।

किशोरीलाल गोस्वामी एवं अन्य प्रारम्भिक कथाकार

हिन्दी कहानी का व्यवस्थित विकास किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) की रचनाओं 'इन्दुमती' (१९०२) और 'गुलबहार' (१९०२) से प्रारम्भ होता है। प्रथम कहानी के सम्बन्ध में हम पहले ही कह आये हैं, कि उस पर शेक्सपियरके नाटक 'टेम्पेस्ट' का बड़ा स्पष्ट प्रभाव है। किन्तु दूसरी कहानी 'गुलबहार' मौलिक रचना है; और उसमें एक ऐतिहासिक प्रसंग, मीर कासिम के दो बच्चों की, अपने पिता की प्राण रक्षा के लिये आत्म बलिदान की कथा है। इन प्रारम्भिक प्रयोगों के अनन्तर, महावीरप्रसाद द्विवेदी की दो कहानियां 'काकतालीय घटना' (१९०२) और 'तीन देवता' (१९०३) प्रकाश में आईं। ये कहानियां, 'कथा-सरित सागर' की दो कथाओं पर आधारित हैं; किन्तु उनकी अभिव्यञ्जना प्रणाली अंग्रेजी कहानियों जैसी है।

अंग्रेजी से अनुवादित सर्व प्रथम कहानी 'मार्टिन वाल्डेक का भाग्य' (१८७३) भूतों की कथा थी; और बंगला से रूपान्तरित प्रारम्भिक कहानियों में 'भूतों वाली हवेली' (१९०३) में भी इसी प्रकार का एक आख्यान लिया गया था। 'सरस्वती' में अंग्रेजी से अनुवादित पहली कहानी 'मेरी चम्पा' (१९०५) भी भूतों की ही कथा थी। यह कार्लाइल की एक रचना का ग्रहण थी। इन कहानियों से प्रेरणा लेकर भगवानदास ने, 'प्लेग की चुड़ैल' (१९०२) शीर्षक एक कहानी लिखी। यह कहानी प्रारम्भ में तो भूतों की कथा लगती है; किन्तु अंतमें वह भूत, एक जीवित मनुष्य प्रकट होता है। मधु मंगल मिश्र ने इसी प्रकार का प्रयोग 'भुतही कोठरी' (१९०८) उपस्थित किया।

अंग्रेजी तथा बंगला कहानियों के सम्पर्क से, हिन्दी के कहानी लेखकों ने सर्व प्रथम यह ग्रहण किया कि प्रतिदिन के जीवन की सामान्य घटना को लेकर, यथार्थ-

वादी पद्धति से उसका वर्णन करते हुये, कहानी लिखी जा सकती है। गिरिजादत्त वाजपेयी ने, टेनिसन के 'एनॉक आर्डेन' को कहानी का रूप देने के अनन्तर 'पंडित और पंडितानी' शीर्षक एक मौलिक कहानी लिखी। उनकी इस कहानी में एक मध्य वर्गीय भारतीय परिवार की जीवन धारा का चित्रण है। रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' (१९०३), अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत होते हुये भी, वस्तुतः एक मौलिक रचना है; और भारतीय जीवन धारा की एक झलक उपस्थित करती है।

इन प्रारम्भिक प्रयोगों के बाद, कई वर्षों तक, 'सरस्वती' में अंग्रेजी तथा बंगला कहानियों के अनुवाद प्रकाशित होते रहे। वृन्दावनलाल वर्मा ने अवश्य 'तातार और एक वीर राजपूत' (१९१०) शीर्षक एक मौलिक कहानी लिखी। उसका कथासूत्र लोक-कथा पर आधारित प्रतीत होता है। सन् १९१५ में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध रचना 'उसने कहा था', प्रकाशित हुई। इसके अनन्तर हिन्दी के तीन मौलिक कथाकारों प्रेमचन्द, ज्वालादत्त शर्मा, विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की रचनाएं प्रकाशित होने लगीं। हिन्दी में इस समय तक अंग्रेजी प्रभाव को लेकर जासूसी कहानियों का लेखन भी प्रारम्भ हो चुका था। गोपालराम गहमरी अपनी 'जासूस' पत्रिका में अंग्रेजी और उसमें प्रभावित बंगला की जासूसी कथाओं के अनुवाद एवं मौलिक कृतियां भी प्रकाशित करने लगे थे। गहमरी जी का रचना-काल प्रेमचन्द जी के पूर्व ही आता है, इसलिये पहले हम उन्हीं की कहानियों पर वचार कर रहे हैं।

गोपालराम गहमरी

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना करते हुए, हम कह आये हैं, कि गहमरी जी ने अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों से प्रेरणा लेकर, हिन्दी में इसी प्रकार का कथा साहित्य प्रारम्भ किया था। बंगला का जासूसी साहित्य भी, उनके लिए प्रेरणा का स्रोत रहा था। गहमरी जी की अधिकांश जासूसी कहानियां बंगला से ही अनुदित थीं। उन्होंने बंगला के दो जासूसी कथाकारों, पंचकोडी दे और प्रियनाथ मुकर्जी की रचनाएं अनुवादित की थीं : डॉ० प्रिय रंजन सेन ने, बंगला कथा साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव का अध्ययन करते हुये लिखा है कि पंचकौडी दे ने तो अंग्रेजी के जासूसी कथा साहित्य से प्रेरणा लेकर अपनी रचनाएं प्रस्तुत की थीं, किन्तु प्रियनाथ मुकर्जी ने जासूसी विभाग में अपने निज के अनुभवों के आधार पर अपने साहित्य का निर्माण किया था।[१] अंग्रेजी के प्रसिद्ध जासूसी कथाकार आर्थर कॉनल

१—डॉ० प्रियरंजन सेन : 'वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली नावेल', पृ० ४०

डॉयल की रचनाओं का, इन दोनों ही लेखकों पर, विशेष प्रभाव है। इस प्रकार गहमरी जी ने, अंग्रेजी के जासूसी साहित्य से सीधा प्रभाव ग्रहण करने के साथ-साथ, इन लेखकों के माध्यम से भी अँग्रेजी प्रभाव ग्रहण किया है।

गहमरी जी ने अंग्रेजी से भी कुछ जासूसी कहानियां अनुवादित की थीं। 'खूनी कौन है' (१९००), जो कालान्तर में 'किले में खून' संज्ञा से प्रकाशित हुई, अंग्रेजी से ही अनूदित थी। इसी प्रकार 'जाली काका' (१९०२) शीर्षक कहानी भी, अंग्रेजी से गृहीत थी। गहमरी जी ने इसके अनन्तर मौलिक जासूसी कहानियाँ भी लिखीं, और उनमें उन्होंने, अंग्रेजी प्रभाव को, विशेष रूप से आर्थर कॉनल डॉयल की रचना पद्धति को, ग्रहण किया। अंग्रेजी के इस जासूसी कथाकार से उन्होंने अपराधी के अन्वेषण की रीति ग्रहण की है। आर्थर कॉनल डॉयल ने अपनी एक रचना 'ए स्टडी इन स्कार्लेट' में, अपने जासूस शार्लक होम्स के शब्दों में अपनी अन्वेषण पद्धति का इस प्रकार विश्लेषण उपस्थित किया है।

"In solving a problem : the grand thing is to be able to reason backwards."[1]

इस पूर्व की ओर तर्क करने की प्रवृत्ति का उन्होने स्पष्टीकरण किया है कि अन्तः चेतना से, किन कारणों से यह परिणाम सम्भव हुआ है,[2] यह खोजने का प्रयास है। इस मनोवैज्ञानिक अन्वेषण पद्धति को उन्होंने विश्लेषणात्मक तर्क प्रणाली की संज्ञा दी है।[3] इस पद्धति के आधार पर सफल जासूस के लिए, बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वतंत्र मन के साथ अन्वेषण के पथ पर अग्रसर होने का निर्देश है।[4] गहमरी जी ने अपनी कहानियों 'मालगोदाम में चोरी' (१९०२) आदि में इन निर्देशों का समुचित उपयोग किया है।

जयशंकर 'प्रसाद'

प्रसाद जी की पहली कहानी 'ब्रह्मर्षि' (१९०९) 'इन्दु' में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद उनकी अन्य कहानियां 'पंचायत', 'ग्राम', 'चन्दा' 'गुलाम' आदि भी इसी पत्रिका में मुद्रित हुईं। हम कह आए हैं, कि प्रसाद जी की प्रारम्भिक कहानियों 'ब्रह्मर्षि' और पचायत' पर संस्कृत के कथा साहित्य का प्रभाव है। उनका कथा

१—आर्थर कॉनन डॉयल : 'ए स्टडी इन स्कार्लेट' (१९११), पृ० २१५

२—वही, पृ० २१५

३—वही, पृ० २१५

४—वही, पृ० २१५

सूत्र सँस्कृत साहित्य से ही गृहीत है; किन्तु उनकी रचना शैली पर अंग्रेजी प्रभाव प्रकट है। अंग्रेजी के उपन्यासकारों रेनाल्ड, जॉर्ज इलियट आदि का प्रभाव हिन्दी और बंगला दोनों ही भाषाओं के कथा साहित्य पर मिलता है। बंगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिम चन्द्र तक अंग्रेजी उपन्यास से प्रभावित हैं। अंग्रेजी के अनेक उपन्यासों में, प्रारम्भ में प्राकृतिक पृष्ठभूमि का वर्णन है, उसके अनन्तर मुख्य चरित्रों की रूप रेखाएं स्पष्ट की गई हैं, और तब कहानी संवादों के माध्यम से विकसित हुई है। प्रसाद जी ने अपनी प्रारम्भिक कहानियों में यही रचना-विधान अपनाया है।

प्रसाद जी की पहली कहानी 'ब्रह्मर्षि' में, विश्वामित्र को वशिष्ठ की समकक्षता प्राप्त करने के लिये सघर्षशील दिखाया गया है। प्रारम्भ में तपोभूमि के शांत वातावरण का चित्र है। वशिष्ठ ध्यान-मग्न बैठे हुए हैं। उसके अनन्तर संवादों के माध्यम से कथासूत्र का विकास हुआ है। इसी प्रकार उनकी दूसरी कहानी 'पंचायत' में भी, महादेव के दो पुत्रों कार्तिकेय और गणेश के बीच एक दूसरे से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के तर्क-वितर्क का विवरण है। इन दोनों कहानियो के कथानक इस प्रकार भारत के प्राचीन साहित्य से गृहीत हैं, किन्तु उनके रचना-शिल्प पर अंग्रेजी का प्रभाव स्पष्ट है।

प्रसाद जी की शेष कहानियों पर अंग्रेजी प्रभाव और भी अधिक प्रकट है; किन्तु उनमें प्रथम प्रयोग जैसी अनगढ़ता नहीं है। इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है, कि उन पर अंग्रेजी प्रभाव बंगला के माध्यम से आया हुआ है। उनकी 'ग्राम' शीर्षक कहानी का प्रारम्भ, बड़ी यथार्थवादी पद्धति के साथ, स्टेशन पर बजती हुई घंटियों के स्वर से होता है। किन्तु उसके बाद उन्होंने अपनी पहले की कहानियों की रचना शैली ही अपनायी है। इस कहानी में एक जमींदार के, अपनी रियाया. एक निर्धन विधवा और उसकी पुत्री पर, अत्याचारों का वर्णन है। इस कहानी में जमींदार के पुत्र के रूप में, हिन्दी साहित्य को एक नए प्रकार के चरित्र, दार्शनिक मनोवृत्ति का चिन्तनशील नवयुवक प्रदान किया गया है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार जॉर्ज इलियट की रचनाओं में इस प्रकार के चरित्र अनेक हैं। इस उपन्यासकार की रचनाएं हिन्दी प्रदेश में उन दिनों पढ़ी जाती थीं; इसलिये यह सम्भव है कि इस चरित्र के निर्माण में, उसकी कुछ प्रेरणा रही हो। प्रेमचन्द जी ने आगे चलकर जॉर्ज इलियट की एक रचना 'साइलिस मार्नर' को 'सुखदास' नाम देकर ग्रहण किया था। इसलिये यह सम्भव है कि प्रसाद जी ने भी अपने उस चरित्र के निर्माण में, जॉर्ज इलियट से कुछ प्रेरणा ग्रहण की हो। अंग्रेजी शासन ने हमारी जीवन-दृष्टि में जो भौतिकता, और साहित्य-दर्शन में जिस यथार्थवाद की सृष्टि कर दी थी, उसका भी प्रभाव इस रचना

में है ।

प्रसाद जी की 'चन्दा' शीर्षक कहानी में, एक ही लड़की को प्रेम करने वाले, दो कोल नवयुवकों की स्पर्धा का वर्णन है। अंग्रेजी में उन दिनों इस प्रकार की कहानियां बहुत लिखी जा रही थीं। यूरोप के लोग उन दिनों अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि असभ्य या अर्ध-सभ्य देशों में जाने लगे थे। इस प्रकार की यात्राओं में जो अनुभव उन्हें प्राप्त हो रहे थे, उन्हें लेकर अनेक उपन्यास और कहानियां भी लिखी जा रही थीं। 'सरस्वती' में भी एक ऐसी ही कहानी का अनुवाद प्रकाशित हुआ था, जिसमें एक लड़की के लिये पारस्परिक स्पर्धा का परिणाम बड़ी नृशंस-हत्या के रूप में दिखाया गया था। 'चन्दा' का कथा-सूत्र भी ऐसा ही है; इसलिये सम्भव है कि उसके पीछे उस कहानी की प्रेरणा रही हो। इस कहानी का रचना-विधान भी प्रसाद की अन्य कहानियों की भांति अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत है। इसी प्रकार उनकी 'गुलामी' शीर्षक कहानी में प्रतिशोध की भावना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। उसका रचना-शिल्प भी अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित है।

प्रेम चन्द

प्रेमचन्द की कहानियों का प्रकाशन १९१६ से 'सरस्वती' में प्रारम्भ हो गया था; और सन् १९२० तक उनके तीन संग्रह 'सप्त सरोज' (१९१७), 'नवनिधि' (१९१८) और 'प्रेम पूर्णिमा' (१९१८) प्रकाशित हो गये थे। अंग्रेजी कथा साहित्य का प्रभाव प्रेम चन्द की इन कहानियों पर पर्याप्त रूप में है। किन्तु वह इतना उनकी मौलिक प्रतिभा में घुलमिल गया है, कि उसका निश्चित संकेत नहीं किया जा सकता। प्रेमचन्द के उपन्यासों पर, अंग्रेजी प्रभाव का विवेचन करते हुए, हम यह कह आये है, कि उन्होंने अंग्रेजी उपन्यासकारों जॉर्ज इलियट, मेरी स्टो, विलियम मेकपीस थैकरे आदि से विशेष प्रेरणा ग्रहण की थी। रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार टाल्सटाय से भी वे प्रभावित थे। उनकी कहानियों पर भी पश्चिम के इन कथाकारों का प्रभाव है। प्रेमचन्द जी के मन में ग्रामीण जीवन के प्रति स्नेह-भाव तो स्वभावतः था। जॉर्ज इलियट के अध्ययन ने उसे और बद्धमूल कर दिया; तथा साथ ही साथ चिन्तन-शील चरित्रों को चित्रित करने की भी प्रेरणा प्रदान की। थैकरे के अध्ययन से उन्हें जीवन के यथा तथ्य चित्रण की प्रवृत्ति मिली थी। मेरी स्टो, टाल्सटाय आदि की रचनाओं के अनुशीलन ने उन्हें, लोक-मंगल की भावना से साहित्य-निर्माण की ओर तत्पर किया। लोक-कल्याण का भाव तो भारतीय साहित्य में परंपरा से चला आ रहा था; किन्तु व्यक्ति-परिष्कार और समाज-संशोधन की नवीन प्रवृत्तियां हिन्दी साहित्य में पाश्चात्य प्रभाव से आईं। प्रेमचन्द की कहानियों का जीवन-दर्शन

ही नहीं उनका रचना-शिल्प भी पाश्चात्य प्रभाव से ओत-प्रोत है। उन्होंने एक स्थान पर यह स्वयं स्वीकार किया है, कि फ्रांसीसी कथाकार बाल्जेक से वे विशेष प्रभावित हैं। बाल्जेक की रचनाओं में लोक-मंगल के अन्तर्निहित भाव को लेकर यथार्थ जीवन के संश्लिष्ट चित्रण और मानव मनोभाव की जो मनोवृत्तियां मिलती हैं, प्रेमचन्द जी ने उन्हें अपनी कहानियों में प्रकट किया है, जिनमें उन्होंने भारतीय लोक कथाओं को लिपिबद्ध किया है। इन कहानियों का रचना-शिल्प बिलकुल पाश्चात्य कहानियों जैसा है।

जी० पी० श्रीवास्तव

हिन्दी नाटक पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना करते हुये हम यह कह आये हैं कि फ्रांस के हास्य नाटककार मोलियर का प्रभाव श्रीवास्तव जी की रचनाओं पर विशेष है। उनकी कहानियों पर भी यह प्रभाव प्राप्त होता है। प्रसाद जी की कहानियों की भांति श्रीवास्तव जी की कहानियां भी काशी की 'इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं। सर्व प्रथम उनकी कहानी 'झेंपू की कथा' छपी, जो अंग्रेजी की एक कहानी 'कन्फेशन ऑफ ए वैशफुल मैन' का रूपान्तर थी। इसके अनन्तर उन्होंने इसी भावधारा क एक अन्य कहानी को रूपान्तरित किया। इन दो अनुवादों के साथ उन्होंने यह समझ लिया कि अंग्रेजी की हास्य कथाओं को उनके सम्पूर्ण प्रभाव के साथ, अंग्रेजी और भारतीय सामाजिक जीवन में बहुत अधिक विभेद होने के कारण, भली प्रकार रूपान्तरित नहीं किया जा सकता। इसीलिये उन्होंने आगे चलकर 'मास्टर साहब' और 'लतखोरी लाल' शीर्षक मौलिक कहानियां लिखीं। अंग्रेजी की हास्य कथाओं का प्रभाव इन दोनों की रचनाओं पर स्पष्ट है। उनकी दूसरी कहानी तो 'कन्फेशन ऑफ ए वैशफुल मैन' की ही पद्धति पर स्वीकारोक्ति के रूप में लिखी गई है।

अन्य कथाकार

अन्य कथाकारों में विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक, ज्वालादत्त शर्मा, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कहानीकारों की रचनाओं पर अंग्रेजी का प्रभाव कथासूत्र और रचना-कौशल दोनों पर ही दर्शनीय है, किन्तु वह पूर्णतः आत्मसात् होकर प्रकट हुआ है। इन कथाकारों के साथ हिन्दी कहानी में अपना रूप, बहुत कुछ निर्धारित कर दिया था; फिर भी अंग्रेजी और उससे अधिक फ्रांसीसी तथा रूसी कथाकारों का प्रभाव उसकी प्रगति में योग देता रहा।

निष्कर्ष

हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव के इस अध्ययन को समाप्त करते हुये, हम कह सकते हैं, कि यद्यपि संस्कृत कथा साहित्य और भारतीय लोक-कथाओं ने इस

प्रगति में सहायता दी है, तथापि हिन्दी कहानी अंग्रेजी प्रभाव की ही सृष्टि है। हिन्दी कहानी का विकास अंग्रेजी प्रभाव से प्रसूत पत्र-पत्रिकाओं में ही हुआ था; और उनकी कथावस्तु, रूप-विधान, अभिव्यञ्जना प्रणाली आदि पर अंग्रेजी कहानी की स्पष्ट छाया है। हिन्दी कहानी पर अँग्रेजी के आधार-भूत प्रभाव को स्वीकार करते हुये, हिन्दी कहानीकारों के सम्बन्ध में हमें यह स्वीकार करना होगा, कि उन्होंने अंग्रेजी कथाकारों का आधानुकरण नहीं किया है। एक बार अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से कहानी का रचना-विधान ग्रहण कर लेने के अनन्तर उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा को विकास का उन्मुक्त मार्ग दिया। मौलिक प्रतिभा के इस अभ्युदय का मूल कारण इस साहित्यिक रूप की अपनी निज की क्षमता रही है। बंगला कहानी ने भी, हिन्दी कथाकारों को मौलिक प्रयोगों की ओर ही प्रेरित किया है। अंग्रेजी प्रभाव तो इस साहित्यिक रूप के विकास में, अधिकांश में, प्रेरणात्मक ही रहा है।

: ११ :

हिन्दी निबन्ध, आलोचना आदि पर अंग्रेजी प्रभाव

हिन्दी के बड़े साहित्यिक रूपों—कविता, नाटक, उपन्यास और कहानी—पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन हो चुका, अब छोटे साहित्यिक रूपों—निबन्ध, आलोचना, जीवन-चरित्र आदि—पर ही इस प्रभाव का विश्लेषण करना है। यहां, इन छोटे साहित्यिक रूपों को ही अलग २ लेकर, उन पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना होगी। एक बात और यहाँ प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दी जाय : निबन्ध, आलोचना आदि, प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से ही, छोटे साहित्यिक रूप है। कारण, इनका विकास, इस अध्ययन की सीमा में विशेष नहीं हुआ था। इन शेष रहे साहित्यिक रूपों में निबन्ध का विकास ही सर्व प्रथम हुआ, तथा अंग्रेजी प्रभाव ने भी सबसे पहले निबन्ध पर ही कार्य करना आरम्भ किया; इसीलिए निबन्ध पर ही अंग्रेजी प्रभाव के विश्लेषण से, यह प्रकरण प्रारम्भ हो रहा है।

निबन्ध

निबन्ध को, अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० जॉनसन ने, मन का एक ऐसा शिथिल, असंबद्ध और अपरिपक्व विचार - प्रवाह कहा है, जिसमें न तो व्यवस्था हो और न संयोजन। किन्तु आज, इस साहित्यिक रूप से, उस रचना का बोध होता है, जो एक निश्चित विषय पर, साधारण विस्तार में और सामान्यतः गद्य में लिखित हो।

निबन्धकार के लिए, यह भी आवश्यक समझा जाता है, कि वह पाठक को अपना अन्तरंग बना ले, तथा उसके आगे आत्मोद्घाटन कर दे। ए० जी० गार्डनर ने एक स्थान पर कहा है, कि निबन्ध लेखक की एक विशिष्ट मानसिक स्थिति होती है, और उसके जाग्रत हो जाने पर, किसी भी विषय को लेकर, निबन्ध लिखा जा सकता है। अंग्रेजी निबन्ध ने अपने विकास-क्रम में, इन परिवर्तित होती हुई परिभाषाओं के अनुरूप, रूप ग्रहण किया है; और उसका आधुनिक स्वरूप, बहुत कुछ ए० जी० गार्डनर की विचारधारा के अनुसार है। हिन्दी में इस साहित्यिक रूप के सूत्रपात में, अंग्रेजी निबन्ध के अध्ययन का योग रहा है।

हिन्दी-प्रदेश में अंग्रेजी के विशेष रूप से पठित निबन्धकार और उनकी रचनाएँ हैं: फ्रांसिस बेकन (१५६१-१६२६) कृत 'एसेज़', तथा 'दि एडवांसमेंट ऑफ़ लर्निंग', जोज़ेफ एडिसन (१६७२-१७१९) की 'स्पेक्टेटर' से संकलित रचनाएँ, सर रेचर्ड स्टील (१६७७-१७२९) की जोज़ेफ एडिसन के साथ लिखित रचना 'सर रोजर दे कॉवरले', ऑलिवर गोल्डस्मिथ (१७३०-१७७४) कृत 'बी', चार्ल्सलैम्ब (१७७५-१८३४) रचित 'एसेज़ ऑफ एलिया,' विलियम हैज़लिट (१७७८-१८३०) की कृति 'एसेज़' तथा रॉबर्ट लूई स्टिवेन्सन (१८५०-९४) कृत 'वर्जीनिबस प्यूरस्के' अंग्रेजी का एक प्रेरणात्मक निबन्ध संग्रह, हेल्प कृत 'एसेज़ रिटेन इन इंटर्वल्स ऑफ बिज़नेस' भी हिन्दी-प्रदेश के कई पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत रहा था।

अंग्रेजी के इन निबन्धकारों के विभिन्न पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत होने के कारण, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त हिन्दी लेखकों का, बेकन की कृतियों से लेकर स्टिवेन्सन तक की रचनाओं से परिचय हो गया था। फ्रांसिस बेकन ने, जिन्हें अंग्रेजी निबन्ध का जनक कहा जाता है, अपनी इस साहित्यिक रूप की रचनाओं को, 'अपनी विचार परम्परा के खंड', 'चिन्तन के प्रक्षेपण' तथा 'मानसिक प्रवाह' के 'कौतूहल से नहीं वरन् महत्व प्रदर्शन की दृष्टि से संक्षिप्त विवरण' कहा है। बेकन के सम्बन्ध में यह कहा जाता है, कि वे अपनी अथवा जनसाधारण की रुचि के किसी विषय पर चिन्तन करके, अपने निष्कर्षों को इतने संक्षेप में लिपिबद्ध कर देते थे, कि उनके निबन्ध, लोकोक्तियों एवं आदर्श वाक्यों की शृंखला से लगते हैं। अंग्रेजी निबन्ध का इसी रूप में प्रारम्भ हुआ था; और आगे चल कर एडिसन और स्टील ने अपने, सामयिक-पत्रों में उसे लोक, ग्राह्य-रूप प्रदान किया। इन निबन्धकारों की रचनाओं में, सभी प्रकार के वषयों, प्रवृत्तियों, आचारों, नैतिक आदर्शों, कथा-वार्त्ताओं, साहित्यिक वृत्तियों आदि को अभिव्यक्ति मिली। अपने सामयिक-पत्रों 'दि टैटलर' तथा 'दि स्पेक्टेटर' में, वे अधिकांश में, मध्य-वर्गीय रुचि की रचनाएं प्रकाशित किया करते थे: उनके

निबन्ध भी इसी वर्ग को दृष्टि में रखकर लिखित हैं। मध्य-वर्ग के पाठकों में, अपनी रचनाओं को और लोकप्रिय बनाने के लिए, इन्होंने जल्दी पहचाने जा सकने वाले कुछ चरित्रों, सर रोजर दे कॉवरले तथा 'स्पेक्टेटर कल्ब' के अन्य सदस्यों की सृष्टि की थी; और अंग्रेजी में निबन्ध के एक नये प्रकार, चरित्र-अध्ययन का सूत्रपात किया था। ऑलिवर गोल्डस्मिथ ने भी, अपने निबन्धों में यही शैली अपनायी; किन्तु पाठकों तक उनकी पहुँच, अभिव्यञ्जना के विधान में प्रदर्शन रहित और अधिक मानवीय थी। चार्ल्स लैम्ब ने अंग्रेजी निबन्ध को एक पूर्णतः नया स्वर दिया : उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने मानसिक उद्वेग को वाणी दी है; इसीलिए यह कहा जाता है कि उनके निबन्ध, गद्य में लिखित संबोधन-गीत (ओड) हैं। उन्हें सम्भवतः कीट्स के इस मन्तव्य —'मन की सृजनात्मिका शक्ति को निरन्तर विचरने दो'—पर अधिक विश्वास था। फिर भी उन्होंने इस उक्ति के मूल भाव को चरम-सीमा तक नहीं ग्रहण किया था; इसीलिए वे शेली के उस भाग्य-विधान से मुक्त रहे, जिसके संबन्ध में मेथ्यू आर्नल्ड ने कहा है, कि 'वे एक सुन्दर, किन्तु प्रभाव-हीन दिव्य-शक्ति हैं, जो शून्य में अपने चमकीले पंखों को फड़-फड़ाती रहती है।' लैम्ब ने अपने मन के स्वच्छन्द प्रवाह और मानसिक उद्वेग को नियंत्रित कर के, उन्हें प्रगति और विकास की पद्धति में ग्रथित कर लिया था। लैम्ब का समसामयिक हैजलिट, बड़ा अध्ययन शील था, और उसके निबन्धों पर उसके इस अध्ययन की छाप है। स्टिवेन्सन ने अपने निबन्धों में, बाह्य-जगत एवं मनोलोक की अपनी अनुभूतियों को चित्रित किया है, तथा उनमें यौवन के उल्लास और उत्फुल्लता को भी अभिव्यक्ति मिली है। हेल्प के निबन्ध, जैसा कि उनके संग्रह के नाम से ही स्पष्ट है, व्यवसाय के बीच के अवकाश के क्षण में लिखित हैं; और उनके कुछ शीर्षक हैं : 'व्यावहारिक ज्ञान', 'सन्तोष के सहायक', 'दलगत भावना' आदि। कुछ निबन्धों के विषय, जैसे 'व्यावसायिक व्यक्ति की शिक्षा' तथा 'व्यवसाय की प्रक्रिया', व्यवसाय से भी सम्बन्धित हैं।

अंग्रेजी के इन निबन्धकारों को, हिन्दी लेखकों ने पढ़ा तो अवश्य, किन्तु उनकी रचनाओं को, अपनी भाषा में, अन्य साहित्यिक रूपों की भांति, बहुत अधिक अनुवादित और ग्रहण नहीं किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४-१९३८) ने, अंग्रेजी प्रभाव के बहुत वर्षों तक कार्य कर लेने के बाद, सन् १९०० में, बेकन के निबन्धों का एक अनुवाद 'बेकन विचार-रत्नावली' के रूप में प्रस्तुत किया। इसके बाद सन् १९१८ में एडिसन का निबन्ध 'दि विज़न ऑफ मिर्ज़ा' 'इन्दु' पत्रिका में, 'मिर्ज़ा का स्वप्न' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। रोम के प्रसिद्ध साहित्यकार, सिसेरो की एक निबन्ध रचना को भी, 'मित्रता' शीर्षक से अनुवादित किया गया। श्याम सुन्दर दास

जी ने भी, हेल्प के निबन्ध 'संतोष के सहायक' का एक ग्रहण, 'संतोष' संज्ञा देकर सन् १८९४ में, बांकीपुर की एक पत्रिका में, प्रकाशित कराया था। 'मिश्रबन्धु' का 'अध्ययन' शीर्षक निबन्ध, बेकन के इसी विषय के निबन्ध से प्रेरणा लेकर लिखित है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी, अपना निबन्ध 'ज्ञान', बेकन की रचना 'दि ऐडवांसमेंट ऑफ लर्निङ्ग', से प्रेरित होकर लिखा था।

अंग्रेजी निबन्ध का प्रारम्भ तो फ्राँसिस बेकन की रचनाओं से ही हो गया था; किन्तु उसका समुचित विकास, मुद्रण-कला के प्रचार और पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के अनन्तर ही आरम्भ हुआ। हिन्दी में इस साहित्यिक रूप के प्रथम प्रयोग, मुद्रण-कला के प्रचलन और पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के अनन्तर ही देखने को मिले। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने, अपनी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' के प्रथम अंक (१८७३) में ही, इस साहित्यिक रूप के दो प्रयोग 'कलिराज की सभा' और 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' प्रकाशित किये थे। ये दोनों निबन्ध के रूप की रचनाएं, सामान्यतः स्वयं भारतेन्दु जी की लिखित माना जाती है; किन्तु ब्रजरत्न दास के अनुसार, जिन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन एवं कृतियों का विस्तृत अध्ययन किया है, ये कार्तिक प्रसाद खत्री की लिखी हुई है। इन निबन्धों का लेखक चाहे कोई भी रहा हो, इतना निश्चित है कि उसने अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया था। मिल्टन के 'पैरेडाइज़ लॉस्ट' का प्रभाव दोनों निबन्धों पर स्पष्ट है। 'कलिराज की सभा' में कलिराज को, अपने मुसाहिबों और दरबारियों से जिस प्रकार घिरा हुआ दिखाया गया है, उसी प्रकार मिल्टन ने भी, अपने महाकाव्य की प्रथम पुस्तक में, शैतान को, विद्रोह करने के कारण, स्वर्ग से निकाले जाने के बाद, अपने मित्रों, प्रशंसकों और अनुचरों से घिरा चित्रित किया है। शैतान अपने प्रधान सहायकों से परामर्श कर रहा है, कि स्वर्ग से निष्कासित होने के कारण, विपत्ति के जिस चक्र में वह फंस गया है, उससे अपने को तथा अपने अनुयायियों को किस प्रकार मुक्त करे। उसने उन्हें यह भी आदेश दिया है, कि वे उसके लिए तथा अपने लिए भी, एक नये जगत की रचना करें। हिन्दी निबन्ध में भी इसी प्रकार, कलिराज को अपने दरबारियों से यह सलाह करते हुए दिखाया गया है, कि किस प्रकार हिन्दी-प्रदेश में उसका प्रभाव बढ़े; और उसके स्वप्न की संपूर्ति में वे कैसे सहायक हो सकते हैं। इतना ही नहीं, शैतान ने अपने मुख्य सहायकों से जो वार्ता की है, वह भी, कलिराज की अपने दरबारियों से हुई बातचीत से बहुत मिलती जुलती है। इतना साम्य अनायास ही नहीं आ गया है : यह निश्चित रूप से मिल्टन की महान कृति के अध्ययन के कारण है। किन्तु इन दोनों परस्पर पर्याप्त साम्य रखने वाले शब्द-चित्रों

की, अपनी अलग २ रचना प्रणालियाँ हैं। मिल्टन का शैतान और उसके अनुयायियों का चित्र, हमारे मन में आतंक एवं भय के भाव जगाता है; परन्तु कलिराज की सभा का दृश्य, जिसमें हिन्दी-प्रदेश के धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में, फूट और विद्वेष के बीज बोने का षड्यन्त्र हो रहा है, हमारे मन में तीव्र घृणा की वृत्ति उत्पन्न करता है। 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' की दृश्य-योजना भी, बहुत कुछ ऐसी ही है। व्यंग का स्वर, इन दोनो ही निबन्धों में, बड़ा प्रखर है : युग के कई महापुरुषों केशव चन्द्र सेन, राजा शिवप्रसाद आदि—पर बड़ी गहरी चोटें की गयी हैं। यह व्यंगात्मक शैली भी, अन्य किसी प्रेरणा से प्रसूत न होकर, अंग्रेज़ी के लेखकों डॉ० जॉनसन, जोनेथन स्विफट आदि की रचनाओं से ग्रहण की गयी प्रतीत होती हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र संपादित पत्र-पत्रिकाओं में, कुछ और निबन्ध भी प्रकाशित हुए थे। उनकी हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' में ही 'स्वप्न' और 'पब्लिक ओपीनियन' शीर्षक निबन्ध मिलते हैं; किन्तु ये सभी प्रयोग मात्र थे, और उनमें इस साहित्यिक रूप की आवश्यक वृत्तियों का अभाव था। भारतेन्दु जी के अपने प्रयोगों 'चूसा पैगम्बर', 'आलसियों का कोड़ा', 'खुशी' आदि में भी, यह कमी है। इन प्रारम्भिक प्रयोगों की भाषा एवं रचना-शैली भी बड़ी शिथिल और अव्यवस्थित है। बाल कृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) और प्रताप नारायण मिश्र (१८५६-१९९४) ने, सर्व प्रथम स्व-संपादित पत्रिकाओं 'हिन्दी प्रदीप' (१८७७) और 'ब्राह्मण' (१८८३) में, इस साहित्यिक रूप के, उनकी समस्त आवश्यक वृत्तियों से सम्पन्न, उदाहरण उपस्थित किये।

अंग्रेजी निबन्ध के विकास में, एडिसन और स्टील, लेम्ब और हैज़लिट के जिस प्रकार साथ-साथ नाम लिये जाते हैं, उसी प्रकार हिन्दी निबन्ध के इतिहास में, बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र के नाम एक साथ आते हैं; यद्यपि इन दोनों लेखकों में बड़ी विपरीत वृत्तियां देखने को मिलती हैं। भट्ट जी बड़े विचारशील और गंभीर प्रकृति के लेखक थे, और यद्यपि उनके निबन्धों में थोड़ी-सी हास्य की भी वृत्ति है, पर वह बड़ी सूक्ष्म और संयत है। मिश्र जी बड़े वाक्पटु और विनोदा प्रकृति के लेखक थे, और उनके निबन्ध कभी २ हमें बड़ी ज़ोर से हंसा देते हैं।

हिन्दी के इन दोनों निबन्धकारों की रचनाओं पर पाश्चात्य प्रभाव विशेष नहीं है। पं० बालकृष्ण भट्ट ने ईसाइयों के एक विद्यालय में दसवीं कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की थी, इसीलिए उनके निबन्धों में कहीं २ 'बाइबिल' के उद्धरण हैं। अंग्रेजी के कुछ साहित्यकारों को भी सम्भवतः उन्होंने थोड़ा-बहुत पढ़ा था; और कभी २ उन्हें भी उद्धृत किया है। पोप, गोल्डस्मिथ, टेनिसन, जॉन स्टुअर्ट मिल आदि के उद्धरण उनके निबन्धों में हैं। उनका 'पुरुष अहेरी की स्त्रियां हैं अहेर' शीर्षक निबन्ध,

टेनिसन की कुछ पंक्तियों को आदर्श-वाक्य के रूप में रखकर प्रारम्भ होता है। अंग्रेजी शब्दों के यदा-कदा प्रयोग का भी उन्हें शौक था; और उनके प्रत्येक निबन्ध में कुछ न कुछ अंग्रेजी शब्द हैं। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते हुए, उनके उपयुक्त हिन्दी पर्याय भी उन्होंने कोष्ठकों में दे दिये हैं। भट्ट जी ने अपने निबन्ध, अधिकांश में, पर्याप्त विचार विमर्ष के बाद लिखे हैं, इसलिये उनमें बेकन के निबन्धों जैसा विचारात्मक गांभीर्य मिलता है। बेकन के निबन्धों की भांति, कभी २ भट्ट जी के निबन्ध भी किसी सर्वमान्य सत्य के सूत्रबद्ध कथन से प्रारम्भ होते हैं। किन्तु यह साम्य, अभिव्यंजनागत समानता के कारण है, अंग्रेजी के इस निबन्धकार के प्रभाव को लेकर नहीं।

प्रताप नारायण मिश्र के निबन्धों में, इतना भी अंग्रेजी प्रभाव नहीं है। उनकी केवल एक रचना 'कलिकोष', जिसमें कई हिन्दी शब्दों के व्यंगात्मक अर्थ किये गये हैं, डॉ० जॉनसन की अंग्रेजी शब्दों की व्यंगपूर्ण व्याख्या से मिलती जुलती है। डॉ० जॉनसन की रचनाएं, मिश्र जी के जीवन काल में, हिन्दी-प्रदेश में पर्याप्त रूप में पढ़ी जाती थीं, इसलिए संभव है यह साम्य अँग्रेजी प्रभाव के कारण हो। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, कि मिश्र जी ने डॉक्टर जॉनसन के अंग्रेजी शब्दों के उस कोष को स्वयं पढ़ा था, जिसमें अनेक स्थलों पर इस प्रकार के अर्थ किये गये हैं। यह सम्भव है कि उन्होंने, अपने अंग्रेजी पढ़े लिखे किसी मित्र से, डॉक्टर जॉनसन की इस प्रकार अर्थ करने की प्रवृत्ति के विषय में सुना हो, और स्वयं भी उसी प्रकार एक छोटा सा प्रयोग कर डाला हो।

मिश्र जी के बाद हिन्दी निबन्धकारों में बालमुकुन्द गुप्त का नाम आता है, और इनके निबन्धों पर अंग्रेजी प्रभाव बड़ा स्पष्ट मिलता है। गुप्त जी ने भी, एडिसन और स्टील की भांति, पाठकों के साथ आत्मीयता पूर्ण संबन्ध स्थापित करने के लिए, सर रोजर दे कॉवरले की भांति के एक चरित्र 'शिव शम्भु' का निर्माण किया था। किन्तु गुप्त जी का यह चरित्र सर रोजर दे कॉवरले की अनुकृति नहीं है; मनमौजी, भंग-प्रिय, भावुक प्रकृति, अलमस्त, स्वप्न-दर्शन की वृत्ति से अनुप्राणित शिव शम्भु, एक विशेष प्रकार के पूर्णतः भारतीय चरित्र हैं। किन्तु इन दोनों चरित्रों के निर्माण की मूल प्रेरणा एक ही है: लेखक पाठकों के आगे स्वयं अपने को उपस्थित नहीं करना चाहते, इसीलिए उन्होंने, अपने अनुभवों और विचारों को प्रस्तुत करने के लिए, विशेष चरित्रों का निर्माण कर लिया है। सामान्य पाठकों के लिए यह निबन्ध शैली रोचक और मर्मस्पर्शी भी अधिक है। ए० जी० गार्डनर ने निबन्ध रचना के लिए, जिस विशेष प्रकार की मानसिक स्थिति को आवश्यक माना है, वह इन निबन्धों में कार्य करती हुई दृष्टिगत होती है। गुप्त जी ने अपनी इन चरित्रात्मक

निबन्धों का एक सामान्य शीर्षक 'शिव शम्भु का चिट्ठा' दिया था, और वे उनके स्वसंपादित पत्र, 'भारत मित्र' में समय समय पर प्रकाशित होते रहे। कालांतर में उनके दो संग्रह 'शिव शम्भु के चिट्ठे' (१९०.) और 'चिट्ठे और खत' (१९०८) प्रकाशित हुए। प्रथम संग्रह मे उनके ऐसे निबन्ध है, जिनमें सामान्य रुचि के विषयों पर विचार किया गया है; और दूसरे में बंगाल के विभाजन को लेकर लिखे गये, राजनीतिक निबन्ध हैं। ये राजनीतिक निबन्ध, तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड कर्जन को सम्बोधित करके लिखे गये हैं, और बड़ी तीखी व्यंगात्मक शैली में हैं।

अंग्रेजी प्रभाव, हिन्दी के निबन्धकारों में, सरदार पूर्णसिंह की रचनाओं में सब से अधिक है। पूर्णसिंह जी ने इंग्लैंड और अमरीका के शांतिवादी लेखकों एवं विद्रोही प्रकृति के प्रसिद्ध कवि वाल्ट ह्विटमैन की रचनाओं का गहरा अध्ययन किया था। पश्चिम के शान्तिवादी लेखकों की रचनाओं से गृहीत अहिंसा का दर्शन, हिन्दी साहित्य में, सामान्यतः, महात्मा गांधी के भारतीय राजनीति में प्रवेश के बाद आया हुआ माना जाता है। किन्तु सरदार पूर्णसिंह जी ने अपने निबन्धों में उसे उसी समय उपस्थित करना प्रारम्भ कर दिया था, जब गांधी जी का कार्य-क्षेत्र दक्षिणी अफ्रीका तक ही सीमित था। सरदार जी ने केवल पांच निबन्ध—'आचरण की सभ्यता' (१९१२), 'मजदूरी और प्रेम' (१९१२), 'अमरीका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन' (१९१३) 'सच्ची वीरता' (१९१४) तथा 'नयनों की गंगा' (१९१६)—ही लिखे, और ये सभी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुए थे। हिन्दी निबन्धकारों में, इन थोड़ी सी रचनाओं के आधार पर ही उनका विशिष्ट स्थान है: निबन्ध कला अपने उत्कृष्ट रूप में उनकी इन कृतियों में प्रकट हुई है। अंग्रेजी साहित्य में, आज निबन्ध से उस रचना का बोध होता है, जो एक सीमित विषय को लेकर, सामान्य विस्तार में, गद्य में लिखित हो; और जिसमें लेखक ने अपने विचारों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये अपने अनुभवों का उल्लेख और अध्ययन को उद्धृत किया हो।[1] सरदार जी के निबन्ध ठीक इस परिभाषा के अनुरूप हैं। इस प्रकार पूर्णसिंह जी के निबन्धों की अन्तर्धारा और बाह्य स्वरूप, दोनों पर ही अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट है।

हिन्दी के इन निबन्धकारों के अतिरिक्त बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमधन' (१८८५-१९२३), गोविन्द नारायण मिश्र, माधव प्रसाद मिश्र (१८७१-१९०७) चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (१८८३-१९२०), महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४-१९३८) आदि ने भी प्रस्तुत अध्ययन की अवधि में निबन्ध रचना की थी; किन्तु इन पर अंग्रेजी प्रभाव

१—डब्ल्यू० ई० विलियम्स : 'ए बुक ऑफ इंग्लिश एसेज़' १९५४, पृ० ११

विशेष नहीं है। द्विवेदी जी ने अंग्रेजी साहित्य का गहरा अध्ययन किया था; और इस अध्ययन का उपयोग, उन्होंने, विशेष रूप से हिन्दी भाषा एवं साहित्य को, समृद्धिवान बनाने के लिए किया। उनकी जिन रचनाओं को सामान्यतः निबन्ध कह दिया गया है, उनमें से अधिकांश, पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखे गये लेख मात्र है। इन लेखो का सामयिक महत्व था, स्थायी साहित्य की वस्तु वे नहीं बन पाये। द्विवेदी जी ने इन लेखो की सामग्री, कभी २ अंग्रेजी ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओ से भी ली है; किन्तु उसका उपयोग उन्होने बिलकुल अपने ढंग से किया है। उनके स्थायी महत्व के लेखों की भी, जो वास्तव मे निबन्ध हैं, यही स्थिति है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध भी इस काल की अवधि में प्रकाशित होने लगे थे, किन्तु उन पर अंग्रेजी प्रभाव बहुत स्पष्ट नहीं है।

आलोचना

आलोचना का जो रूप हिंदी साहित्य में विकसित हुआ है, वह बहुत कुछ अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित है। साहित्य के क्षेत्र मे आलोचना शब्द का प्रयोग, आलोचक की व्यक्तिगत रुचि अथवा किसी स्वीकृत साहित्यिक मानदण्ड के आधार पर कृति-विशेष के मूल्यांकन अथवा रोचक अध्ययन के लिए होता है। आलोचनात्मक अध्ययन के प्रकार अनेक है, और उनमे से विशेष महत्वपूर्ण, किसी साहित्यकार की कृतियों का व्यवस्थित अध्ययन, उसकी अलग अलग कृतियों का अनुशीलन, एक साहित्यिक वृत्ति अथवा धारा का विश्लेषण, ऐतिहासिक आलोचना, सैद्धान्तिक विवेचना आदि है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी में आलोचना का केवल एक रूप, सैद्धान्तिक विवेचन ही विकसित हुआ था। इन सैद्धान्तिक अनुशीलन के ग्रन्थों में, साहित्यालोचन के विभिन्न सिद्धान्तों की परिभाषाएं और उदाहरण हैं। यह अध्ययन भी अधिकांश मे कविता के विवेचन तक ही सीमित है; और इस प्रकार इन्हें साहित्यालोचन के स्थान पर काव्य-शास्त्र का ग्रन्थ ही कहना चाहिये। हिन्दी में कविता के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक रूपों का सैद्धान्तिक अध्ययन और आलोचना के व्यावहारिक रूप का विकास, अंग्रेजी के आलोचनात्मक साहित्य के अनुशीलन एवं प्रेरणा से ही देखने को मिला।

अंग्रेजी की हिन्दी-प्रदेश में पठित आलोचनात्मक रचनाएं एलेक्जन्डर पोप की, 'एसे ऑन क्रिटिसिज्म', सर वाल्टर रेले कृत 'शेक्सपियर', सेंट्सबरी लिखित 'एलीज़ाबेथन लिट्रेचर' तथा 'नाइनटीन्थ सेंचुरी लिट्रेचर', सिडनी ली का ग्रन्थ 'शेक्सपियर-लाइफ ऐण्ड वर्क्स', मार्क पेटिसन का 'मिल्टन', डॉ० जॉनसन की कृति 'लाइव्ज ऑफ पोप, 'ड्रायडन ऐण्ड कॉलरिज', मेकाले की रचना' 'लाइव्ज ऑफ बनियन, गोल्डस्मिथ एण्ड

जॉन्सन', निकल कृत 'बायरन', मेथ्यू आर्नल्ड कृत 'लिट्रेचर ऐण्ड डॉग्मा', टेन कृत 'हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर', लेस्ली स्टीफेन की रचनाएं 'आवर्स इन ए लाइब्रेरी', 'दि मास्टर्स ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर' आदि हैं। इन ग्रन्थों में आलोचना के लगभग सभी प्रकार आ गये हैं।

अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित हिंदी आलोचना, सर्व प्रथम पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, पुस्तक परिचय के रूप में देखने को मिली। बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने, सबसे पहले स्व-संपादित 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका में श्री निवास दास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना उपस्थित की। प्रेमधन जी ने इस नाटकीय रचना की आलोचना करते हुए, उस पर शेक्सपियर के नाटक 'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस' के प्रभाव का भी उल्लेख किया है। किन्तु इस पुस्तक परिचय में, इस रचना के दोष तो दिखाये गये हैं, अच्छाइयों की चर्चा नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में अधिकांश में, इसी प्रकार के पुस्तक परिचय प्रकाशित हुए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की पहली आलोचनात्मक रचना 'हिंदी कालिदास की आलोचना' (१९०१) का स्तर भी ऐसा ही है : उसमें भी लाला सीताराम कृत कालिदास की रचनाओं के हिंदी अनुवादों की त्रुटियों की ही चर्चा है, गुण नहीं बताये गये।

हिंदी में इस प्रकार, अंग्रेजी प्रभाव को लेकर, प्रारम्भ में ध्वंसात्मक आलोचना का ही विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी की पत्र-पत्रिकाओं में, मौलिक लेखकों तथा अनुवादकों के विकास में सहायक सिद्ध होने वाले पुस्तक परिचय नहीं मिलते। श्रीधर पाठक द्वारा प्रस्तुत गोल्डस्मिथ के 'दि डेजर्टेड विलेज' के अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' (१८८९) का, 'सुदर्शन' पत्रिका के सन् (१९००) के फरवरी मास के अंक में प्रकाशित आलोचनात्मक परिचय,[1] अनुवादक तथा पाठक दोनों के लिये उत्साह-प्रद था। उसमें यह भी स्पष्ट किया गया था, कि मौलिक रचनाएं प्रस्तुत करने वाले कवि, इस अनुवाद, तथा अंग्रेजी के गोल्डस्मिथ जैसे कवियों से, कितनी प्रेरणा ग्रहण कर सकते थे। यह आलोचनात्मक अध्ययन, लन्दन के 'ऐलेन्स इंडियन मेल' में, प्रकाशित इस अनुवाद की आलोचना से पर्याप्त मिलता जुलता है। अंग्रेजी का यह पुस्तक परिचय, सन् १८९० में ही प्रकाशित हो गया था;[2] इसलिए संभव है, हिन्दी आलोचक ने, उससे प्रभावित होकर लिखा हो।

१—श्रीधर पाठक : 'मनोविनोद', तृतीय भाग, 'ओपीनिअन्स ऐण्ड रिव्यूज़' में संकलित है।

२—वही, पृ० ५७ में उद्धृत है।

सन् १८९७ में, काशी से 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के प्रकाशन के साथ, हिंदी आलोचना के विकास को विशेष गति मिली। इस पत्रिका के प्रथम अंक मे, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री का 'समालोचना' शीर्षक एक लेख था, उसमें हिन्दी आलोचना के विकास-क्रम पर, अंग्रेजी प्रभाव के उसमें योग के साथ, विचार किया गया था। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग इस विकास में और क्या योग दे सकते हैं, इसकी भी विवेचना की गई थी, और साथ ही यह भी बताया गया था, कि किन सिद्धान्तों के आधार पर आलोचनात्मक साहित्य का निर्माण होना चाहिये। यह लेख एक वर्ष पूर्व, एक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ था, और उसमें यह स्पष्ट किया गया था, कि भारतीय साहित्य में प्राचीन और मध्ययुग में, आलोचना का समुचित विकास नहीं हुआ था; तथा अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार एवं अंग्रेजी के आलोचनात्मक साहित्य के अध्ययन के बाद ही, व्यवस्थित रूप से यह साहित्यिक विधा आगे बढ रही है। हिन्दी आलोचना का यह नया रूप, उन दिनों पत्र-पत्रिकाओं के पुस्तक परिचय में प्रकट हो रहा था। अग्निहोत्री जी की धारणा थी, कि पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक इन पुस्तक परिचयों से बचना चाहते है, इसलिए अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवकों को जिनमें इस कार्य के लिये अपेक्षित योग्यता है, इस दिशा में अग्रसर होना चाहिये। इन आलोचनात्मक अध्ययनों को, उपस्थित करने के लिए किन सिद्धान्तों का अनुसरण होना चाहिये, यह भी उन्होंने स्पष्ट किया था। आलोचक को सर्व प्रथम उस ग्रन्थ अथवा रचना का सम्यक अनुशीलन करना चाहिये, जिस पर उसे आलोचना लिखनी हो। सत्य के प्रति उसमें पूर्ण निष्ठा होनी चाहिये। उसे शान्त प्रकृति का भी होना चाहिए; साथ ही उसमें अन्य लोगों की अनुभूतियों को, उनके पूर्ण उत्ताप के साथ ग्रहण करने की समुचित योग्यता भी अपेक्षित है। इन सिद्धान्तों पर आधारित पुस्तक परिचयों की उपयोगिता, उन्होने यह कह स्वीकार की थी, कि बुरी पुस्तकों का जनता के बीच प्रचार बाधित हो, तथा अच्छी पुस्तकें शीघ्र लोक-प्रिय हो जायं। आज भी पुस्तक परिचयों से इन्हीं उद्देश्यों की सिद्धि होती है।

साहित्यालोचन के आधारभूत सिद्धान्तों का विवेचन करने वाली एक और रचना पोप के 'ऐन एसे ऑन क्रिटिसिज्म' का जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' कृत अनुवाद, 'समालोचनादर्श' भी, 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के इस अंक में प्रकाशित हुआ था। इस रचना में उपस्थित किये गये आलोचना के सिद्धांत, अग्निहोत्री जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से, पर्याप्त भिन्न हैं। पोप ने किसी साहित्यकार की समस्त कृतियों के आलोचनात्मक अध्ययन की रूप-रेखा स्पष्ट की है। उसका कहना है, कि आलोचक उचित नीति से सही निर्णय पर पहुँच सके, इस दृष्टि से उसके लिए यह अपेक्षित है

"Know well each ancient's proper character
His fable, subject, scope in every page ;
Religion, country, genious of his age"[1]

अध्ययन की इस प्रणाली से प्राप्त ज्ञान का समुचित उपयोग समझने के लिए, इस पद्धति पर लिखे गये आलोचनात्मक ग्रन्थों का अनुशीलन करना चाहिए। 'रत्नाकर' जी ने अपने अनुवाद द्वारा, हिन्दी आलोचकों से, इसी आलोचनादर्श को ग्रहण करने का आग्रह किया है।

किन्तु आलोचना पद्धति के इस विस्तृत स्पष्टीकरण के बाद भी, हिन्दी आलोचना पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पुस्तक परिचयों और यदा-कदा लिखित लेखों तथा निबन्धों तक ही सीमित रही। आलोचना सम्बन्धी ये प्रयोग 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' और 'सरस्वती' में ही प्रकाशित होते रहे। प्रथम में तो श्यामसुन्दर दास, और द्वितीय में महावीर प्रसाद द्विवेदी, कामता प्रसाद गुरु, बद्रीनाथ भट्ट आदि के लेख प्रकाशित हुए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का, कार्डिनल न्यूमन की रचना 'आइडिया ऑफ ए यूनिवर्सिटी' पर आधारित, 'साहित्य' शीर्षक निबन्ध भी, 'सरस्वती' में सन् १९१६ में प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार काशी की 'इन्दु' पत्रिका के सन् १९१४ के एक अंक में, मार्क पेटिसन के कविता संबन्धी विचारों पर आधारित, चन्द्र मोहन मिश्र का 'कविता का मर्म' निबन्ध छपा था। इस लेख में, काव्य-भाषा के स्वरूप पर विचार करते हुए, नेस्फील्ड के अंग्रेजी भाषा के व्याकरण से भी कुछ सामग्री ली गई थी। आलोचना के क्षेत्र में, इस काल में, सबसे महत्व पूर्ण प्रयोग 'मिश्र बन्धु' के 'हिन्दी नवरत्न' (१९११) और 'मिश्र बन्धु विनोद' (१९१३) थे।

किन्तु मिश्र बन्धुओं की ये प्रारम्भिक आलोचनात्मक कृतियां नहीं थीं। उन्होंने सर्व प्रथम सन् १९०० में, 'सरस्वती' में 'हम्मीर हठ' का साहित्यिक मूल्यांकन प्रकाशित किया था, आगे चलकर 'हिन्दी नवरत्न' की भूमिका में उन्होंने यह स्वयं स्वीकार किया था, कि यह प्रथम प्रयास, विशेष साहित्यिक महत्व का नहीं था। सन् १९०४ में उन्होंने, तुलसीदास की कृतियों के आलोचनात्मक अध्ययन के लिए, सामग्री एकत्र करना प्रारम्भ किया। सन् १९०५ में उनका, भूषण की रचनाओं का एक मूल्यांकन, जयपुर के 'समालोचक' में प्रकाशित हुआ। इस रचना से मिश्र बन्धुओं को आलोचक रूप में स्वीकृति मिली ; और 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने भूषण की

१—एलेकजेन्डर पोप: 'ऐन एसे ऑन क्रिटिसिज्म', पं० ११९-१२१

रचनाओं के एक प्रामाणिक संस्करण के संपादन का भार उन्हें सौंपा। 'हिन्दी नवरत्न' के प्रकाशन के अनन्तर सन् १९१३ में यह कार्य प्रकाश में आया। 'हिन्दी नवरत्न' में हिंदी के नौ प्रधान कवियों—तुलसीदास, सूरदास, देव, बिहारी, भूषण, केशवदास, मतिराम, चन्द्र और हरिश्चन्द्र के आलोचनात्मक अध्ययन थे। इस ग्रन्थ में प्रारम्भ में प्राप्त सामग्री के आधार पर, कवियों के प्रामाणिक जीवन-वृत्त, उपस्थित किये गये हैं, फिर रचनाओं की प्रामाणिकता पर विचार-विमर्ष है, और अन्त में भारतीय तथा अंग्रेजी आलोचना सिद्धान्तो के आधार पर उनका साहित्यिक मूल्यांकन है। प्रत्येक आलोचनात्मक अध्ययन के बाद कवि विशेष की कुछ रचनाएं भी दी गई हैं। अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित आलोचना का यह पहला व्यावहारिक रूप था, और उसका साहित्यिक महत्व, उस समय की सर्व श्रेष्ठ पत्रिका 'सरस्वती' द्वारा तत्काल स्वीकार कर लिया गया था :

"नवरत्न' में की गई समाचोचना ठीक वैसी ही समालोचना है जैसी अंग्रेजी समालोचकों के द्वारा की गई शेक्सपियर, मिल्टन और इतर कवियों के काव्य की समालोचना हैं।"[1]

इस टिप्पणी में 'नवरत्न' की आलोचना पद्धति पर अंग्रेजी प्रभाव का भी उल्लेख है।

मिश्रबन्धुओं ने, सन् १९०१ में 'सरस्वती' में प्रकाशित, श्रीधर पाठक की रचनाओं पर एक लेख में, हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने का विचार प्रकट किया था। 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने भी उनसे इस संबंध में आग्रह किया था। 'हिन्दी नवरत्न' की भूमिका में उन्होंने, हिन्दी साहित्य के विकास की एक रूप-रेखा उपस्थित भी की थी। सन् १९१३ में उनका इस क्षेत्र में व्यापक प्रयास, 'मिश्रबन्धु विनोद' तीन भागों में प्रकाशित हुआ। 'हिन्दी नवरत्न' मिश्रबन्धुओं का, हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में, अंग्रेजी प्रभाव को लेकर, पहला प्रयास था; उसी प्रकार यह रचना हिन्दी साहित्य का प्रथम ऐतिहासिक अनुशीलन थी। इस ग्रन्थ की भूमिका में, अध्ययन की प्रणाली का विवेचन है, और उसके बाद कोई सौ पृष्ठों में, हिन्दी साहित्य के विकास का संक्षिप्त विवरण। हिन्दी साहित्य का विकास-क्रम, प्रारम्भ से वर्तमान युग तक आठ कालों में विभक्त किया गया है : पूर्व प्रारम्भिक हिन्दी (सं० ७०० १३४७), उत्तर प्रारम्भिक हिन्दी (१३४८-१४४४), पूर्व माध्यमिक हिन्दी (१ ४५-१५६०), प्रौढ़ माध्यमिक हिन्दी (१५६१-१६८०), पूर्वालंकृत हिन्दी (१६८१-१७९०), उत्तरालंकृत हिन्दी (१७९१-१८८९), परिवर्तन कालिक हिन्दी (१८९०-१९२५)

१—'सरस्वती' १९१२, पृ० १३०

तथा वर्तमान हिन्दी (१९२६-१९७०)। इस प्रयास के अनन्तर, हिन्दी साहित्य के सभी ऐतिहासिक अनुशीलनों में, थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ, यही काल विभाजन स्वीकार किया गया है : कालों का नामकरण अवश्य, युग-विशेष की साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर हुआ है। हिन्दी साहित्य के इस संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण के अनन्तर, कालानुक्रम से गद्य और पद्य के उदाहरण हैं। इसके बाद मूल ग्रन्थ प्रारम्भ होता है, और उसके तीन खण्डों में कोई ४८८ लेखकों पर विचार-विमर्श है। विशेष महत्व के लेखकों पर विस्तार के साथ विचार है : उनके प्रामाणिक जीवन-वृत्त देने का प्रयास है, रचनाओं की प्रामाणिकता का अनुशीलन है, उनकी साहित्यिक विशेषताओं का निर्देश किया गया है, और अन्त में उनकी रचनाओं के कुछ उदाहरण हैं। सामान्य लेखकों के विषय में, मिश्रबन्धुओं ने, उनके रचना-काल और कृतियों के नाम मात्र दे दिये हैं। अपने इस संविधान में 'मिश्र बन्धु विनोद', हिन्दी साहित्य का इतिहास न रह कर, 'कवि-कीर्तन' बन गया है, और यह इसके लेखकों ने स्वयं भी स्वीकार किया है। किन्तु इस प्रकार इस महानग्रन्थ का महत्व घटता नहीं। जब इसका प्रकाशन हुआ था, तब तो यह अपने ढंग की अकेली कृति थी; और आज भी हिन्दी साहित्य संबंधी कोई अनुसंधान कार्य बिना इसके अवलोकन के संभव नहीं है।

मिश्रबन्धु के समकालीन आलोचकों में श्यामसुन्दर दास (१८७५-१९४५), रामचन्द्र शुक्ल (१८८४-१९४१) और कृष्णबिहारी मिश्र (१८९०-१९५९) के नाम उल्लेखनीय हैं। श्यामसुन्दर दास जी ने अपने आलोचनात्मक निबन्धों 'साहित्य और समाज' (१९११), 'चन्द्रवरदाई' (१९१६) आदि में, अंग्रेजी के आलोचना सिद्धान्तों का अनुसरण किया था। 'पृथ्वीराज रासो' पर विचार करते हुए, उसमें चित्रित पृथ्वीराज का अपने सामन्तों के साथ चरित्र, उन्हें इंग्लैण्ड के राजा आर्थर और उसकी गोल मेज के सामन्तों की भांति प्रतीत हुआ है।[1] रामचन्द्र शुक्ल ने; प्रस्तुत अध्ययन की अवधि में, यद्यपि थोड़े से ही आलोचनात्मक निबन्ध लिखे थे, तथापि उन पर भी पश्चिम की सामाजिक आलोचना पद्धति का प्रभाव प्रकट है। कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'चन्द्रावली चमत्कार' (१९१३) तथा इसी प्रकार की अन्य कृतियों में, अंग्रेजी की, पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत कृतियों की भूमिकाओं में प्राप्त आलोचना प्रक्रिया का अनुसरण किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'चन्द्रावली' की आलोचना करते हुये, उसी पद्धति पर उन्होंने, प्रारम्भ में उसका कथानक दिया है, उसके बाद

१—डॉ० हीरालाल (सं०) : 'गद्य-कुसुमावली', पृ० १९६

उसके विभिन्न चरित्रों का चित्रण है, और तदुपरान्त उसके गुण दोषों का विवेचन है। इस युग के अन्य आलोचकों एवं उनकी कृतियों पर भी अंग्रेजी प्रभाव इसी रूप में दर्शनीय है।

जीवनी

साहित्य की विभिन्न विधाओं में अब हमें जीवनी, इतिहास एवं प्रेरणात्मक कृतियो पर और विचार करना है। कुछ साहित्यिक रूपों के प्रयोग पत्र-पत्रिकाओं में ही देखने को मिले थे, उन पर अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण, पत्र-पत्रिकाओं पर विचार करते हुए ही किया जायगा।

हिन्दी में, अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व भी, जीवनी तथा आत्म कथा लिखने के कुछ प्रयोग हुये थे : जीवन-वृत लिखने के प्रयासो मे 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'भक्त माल' आदि उल्लेखनीय हैं। बनारसीदास की 'अर्ध कथा' आत्मकथा का प्रथम प्रयोग थी। इन सभी प्रयोगों में, जीवन-वृत, यथार्थवादी दृष्टिकोण से नहीं, वरन् लोकोत्तरता से ओत-प्रोत प्रस्तुत किये गये हैं, और उनका रूप-विधान भी बड़ा अनगढ़ है। इसीलिए आधुनिक काल के प्रारम्भ में जब इन साहित्यिक रूपों को प्रस्तुत करने के प्रयास किये जाने लगे, तो हिन्दी के पुराने प्रयोगो को नहीं, वरन् अंग्रेजी की कृतियों को आदर्श माना गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सर्व प्रथम, अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत होकर, तथ्य-परक जीवनियां प्रस्तुत कीं। उन्होने ऐतिहासिक महापुरुषों में विक्रमादित्य, नैपोलियन, जार, लार्ड मेयो और लॉर्ड लारेन्स; साहित्यकारों में कालिदास, जयदेव और सूरदास; दार्शनिको में शकराचार्य, रामानुज स्वामी और वल्लभाचार्य; तथा अपने समकालीन प्रसिद्ध व्यक्तियों मे द्वारकानाथ मैत्र, राजाराम शास्त्री आदि की जीवनियाँ लिखीं। इस्लाम धर्म के संस्थापकों मोहम्मद, अली, बीबी फ़ातिमा, इमाम हसन और इमाम हुसैन की भी सक्षिप्त जीवनियां उन्होने उपस्थित कीं। यूनान के प्रसिद्ध विचारक सुकरात का भी एक संक्षिप्त जीवन-वृत उन्होंने लिखा था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद राधाकृष्ण दास ने, जीवनी लिखने का कार्य अपने हाथों में लिया। उन्होंने इस क्षेत्र में सर्व प्रथम, बंगला से अनुवाद प्रस्तुत किये, जो सभी 'विद्या विनोद' में प्रकाशित हुए। उसके बाद उन्होने 'बाप्पा रावल' (१८८८), 'नागरीदास' (१८९४), 'बिहारी-लाल' (१८९५), 'ईश्वरचन्द्र विद्यासागर' (१८९८), 'सूरदास' (१८९०), और 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' की मौलिक जीवनियां लिखीं। इन सभी कृतियो में, अंग्रेजी के जीवनी साहित्य के आदर्श पर प्रामाणिक जीवन-वृत उपस्थित किये गये हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने प्रमाणिक जीवनियाँ प्रस्तुत करने के साथ-साथ, चरित्र निर्माण के

आदर्श का भी समन्वय किया : उनके लिखे हुये जीवन-वृत स्व-संपादित 'सरस्वती' पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे। द्विवेदी जी के समकालीन लेखकों में मुन्शी देवीप्रसाद ने राजस्थान के अनेक ऐतिहासिक महापुरुषों की जीवनियां लिखीं। हिन्दी के इन सभी जीवनीकारों ने, जैसा हम पहले कह आये हैं, इस साहित्यिक विधा के अंग्रेजी आदर्शों को ग्रहण कर, लोकोत्तरता का परित्याग करके, तथ्य-परक रचनायें प्रस्तुत की हैं। इस साहित्यिक रूप का विशिष्ट आदर्श, चरित्र-निर्माण, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की ही रचनाओं में पर्याप्त निखरा है।

इतिहास

हिन्दी में इतिहास लेखन के प्रयास भी, आधुनिक काल में, अंग्रेजी प्रभाव की छाया में प्रारम्भ हुए। इस प्रभाव के पूर्व, इतिहास को हम,पुरा वृत का भावना और कल्पना से अनुरंजित चित्रण, पुराण समझते थे। अंग्रेजी के इतिहास ग्रन्थों के अनुशीलन के अनन्तर, इतिहास का तात्पर्य, पहले की घटनाओं—विशेष रूप से राजनीतिक घटनाओं—का कालानुक्रम विवरण समझा जाने लगा। इसी नवीन इतिहास-दर्शन को लेकर राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने, सन् १८७३ में 'इतिहास तिमिर नाशक' ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ की रचना, उसकी संज्ञा के अनुरूप, भारतीय इतिहास के महान व्यक्तियों एवं विशिष्ट घटनाओं को आवृत करने वाले अंधकार के विनाश के लिये की गई थी। इस प्रथम प्रयास के अनन्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'काश्मीर कुसुम', 'महाराष्ट्र देश का इतिहास', 'बूंदी का राजवंश', 'बादशाह दर्पण या मुसलमान राजत्व का संक्षिप्त इतिहास', 'उदय पुरोदय' और 'कालचक्र' रचनाएँ प्रकाशित की। इन सभी ग्रन्थों में अंग्रेजी के इतिहास ग्रन्थों की वैज्ञानिक, कालानुक्रमिक एवं तथ्य-परक पद्धति का अनुसरण है। इसके अनन्तर, मुन्शी देवीप्रसाद इस दिशा में अग्रसर हुए : उन्होंने राजस्थान के अनेक ऐतिहासिक पुरुषों की प्रामाणिक जीवनियां प्रस्तुत की : 'मानसिंह' (१८८९), 'उदयसिंह' (१८९८), 'प्रतापसिंह' (१९०३) आदि; और उसके बाद 'आमेर के राजे' (१८९३), 'हिन्दुस्तान के मुसलमान बादशाह' (१९०९), 'पड़िहार वंश प्रकाश' (१९११) और 'मुगल वंश' (१९११), 'मिश्र बन्धु' ने 'रूस का इतिहास' (१९०९) और 'जापान का इतिहास' (१९११) प्रस्तुत किये।

प्रेरणात्मक साहित्य

अंग्रेजी की कुछ प्रेरणात्मक रचनाओं ने भी हिन्दी के साहित्यकारों को आकर्षित किया। सैमुएल स्माइल की 'सेल्फ हेल्प', और जॉन स्टुअर्ट ब्लैकी की 'सेल्फ कल्चर' जैसी कृतियां तो विभिन्न पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत भी रही थीं। काशीनाथ ने ब्लैकी

के 'सेल्फ कल्चर' का 'हितोपदेश' नाम देकर अनुवाद भी किया था। लॉर्ड चेस्टरफिल्ड की प्रेरणात्मक रचना 'लेटर्स टु दि सन' को भी 'कर्तव्य शिक्षा' (१९११) नाम से अनुवादित किया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी, अपने प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन में अंग्रेजी की एक रचना को 'आदर्श जीवन' (१९ २) नाम देकर अनुवादित किया था। इस काल के अनेक निबन्धों, जैसे बालकृष्ण भट्ट कृत 'आत्म निर्भरता' पूर्णसिंह कृत 'सच्ची वीरता', 'आचरण की सभ्यता' आदि पर अंग्रेजी की इन प्रेरणात्मक कृतियों का प्रभाव है।

पत्र एवं पत्रिकाएं

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'हरिश्चन्द्र मेगजीन' (१८७३) से लेकर, महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' (१९००) तक, जिसका प्रकाशन अभी तक चल रहा है, विभिन्न पत्र एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री का अगर अवलोकन किया जाय, तो उनमें सभी प्रकार के विषयों पर रचनाएं मिल जाती हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित सूचना के अनुरूप, उसमें अनेक, प्राचीन तथा नवीन साहित्यिक विधाओं की कृतियों को स्थान दिया था; तथा सामान्य रुचि एवं वैज्ञानिक विषयों के भी अनेक लेख प्रकाशित किये थे 'सरस्वती' पत्रिका ने भी अपने प्रथम अंक की प्रस्तावना में इतनी ही विस्तृत योजना की घोषणा की थी :

"इसके जीवन धारणा करने का केवल यही उद्देश्य है कि हिन्दी रसिकों के मनोरंजन के साथ ही साथ भाषा के सरस्वती भंडार की अंगपुष्टि, वृद्धि, यथावत पूर्ति हो, तथा भाषा सुलेखकों की ललित लेखनी उत्साहित और उत्तेजित होकर विविध भाव भरित ग्रंथ-राशि को प्रसव करे। और इस पत्रिका में कौन कौन से

विषय

रहेंगे यह केवल इसी से अनुमान करना चाहिए कि इसका नाम सरस्वती है। इसमें गद्य, पद्य काव्य, नाटक, उपन्यास, चम्पू, इतिहास, जीवन चरित, पंच, हास्य, परिहास कौतुक, पुरावृत्त, विज्ञान, शिल्प, कला-कौशल आदि साहित्य के भावतीय विषयों का यथावकाश समावेश रहेगा और आगत ग्रंथादिकों की यथोचित समालोचना की जायगी। इससे

लाभ

केवल यह सोचा गया है कि सुलेखकों की लेखनी स्फूरित हो जिससे हिन्दी की अंग पुष्टि और उन्नति हो।"

इस घोषणा के अनन्तर, 'सरस्वती' के विभिन्न अंकों में, इस योजना का अक्षरशः काय्यान्वय मिलता है। इस पत्रिका में इस प्रस्तावना में निर्देशित विषयों के अतिरिक्त, यात्रा-विवरण, डायरी के उद्धरण, अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान की विभिन्न शाखाओं, ज्ञान की प्रायः सभी धाराओं पर लेख प्रकाशित हुए थे। इन लेखों के प्रायः सभी लेखक, अंग्रेजी शिक्षा से सम्पन्न थे, इसीलिए अंग्रेजी प्रभाव से भी ओत-प्रोत थे। इन लेखकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, कामता प्रसाद गुरु, 'मिश्रबन्धु' आदि उल्लेखनीय हैं। डॉ० गंगानाथ झा ने भी दार्शनिक विषयों पर अनेक लेख लिखे थे। इस काल की दूसरी महत्वपूर्ण पत्रिका 'इन्दु' (१९०९-१४) थी, और उसने भी 'सरस्वती' की भांति ही, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार में योग दिया था। उस काल के दैनिक पत्र, अंग्रेजी दैनिकों से कितने अधिक प्रभावित थे, यह महावीर प्रसाद द्विवेदी की निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है :

"जितने समाचार पत्र हिन्दी में निकलते हैं, उनमें से प्रायः सभी के सम्पादकीय लेखों और समाचारों के लिए अनेक अंश में पायनियर, बंगाली, अमृत बाज़ार पत्रिका और एडवोकेट ऑफ इंडिया आदि अंग्रेजी पत्र उत्तमर्ण का काम देते हैं मासिक पुस्तकों का भी यही हाल है।"[१]

द्विवेदी जी का विचार था, कि हिन्दी के पत्र एवं पत्रिकाएं तभी उन्नति कर सकती हैं, जब अंग्रेजी शिक्षा सम्पन्न नवयुवक उनके प्रकाशन में विशेष रुचि लें :

"कुछ लोग अंग्रेजी भाषा और उसके जानने वालों से द्वेष करते हैं। ××× उनको जानना चाहिए कि हिन्दी में समाचार पत्रों का निकालना हमने अंग्रेजी जानने वालों की ही बदौलत सीखा है। यह अंग्रेजी शासन का ही प्रसाद है। अंग्रेजी के समाचार-पत्र-साहित्य को अनेक बातों में आदर्श माने बिना हिन्दी के साहित्य को हम कभी उन्नत नहीं कर सकेंगे। मेरी जड़ बुद्धि में तो सम्पादकों के लिए अंग्रेजी जानना आवश्यक नहीं, अपरिहार्य है। मैं तो यहाँ तक कहने का साहस कर सकता हूं कि हमारे साहित्य की इस शाखा की जो इतनी दीन दशा है उसका एक कारण यह भी है कि हम हिन्दी लेखक अंग्रेजी नहीं जानते और जानते भी हैं तो बहुत कम।"[२] द्विवेदी जी के इस आह्वान के फल स्वरूप, अंग्रेजी शिक्षित नवयुवक, जैसे जैसे हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में आते रहे, उनकी रचनाओं के माध्यम से, अंग्रेजी प्रभाव भी, हिन्दी भाषा तथा साहित्य में अभिवर्धित होता गया।

१—'सरस्वती', अक्टूबर, १९११, पृ० ४६३

२—वही, पृ० ४६६—७,

निष्कर्ष

इस अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि छोटे साहित्यिक रूपों निबन्ध, आलोचना, जीवन-चरित्र, इतिहास, प्रेरणात्मक रचनाओं आदि पर भी अंग्रेजी प्रभाव पर्याप्त रहा है। हिन्दी निबन्ध तो विशेष रूप से अंग्रेजी प्रभाव की ही सृष्टि है। हिन्दी आलोचना भी, अंग्रेजी के आलोचना ग्रन्थों के सम्पर्क से, सुदृढ़ हुई है। हिन्दी में जीवन-चरित्र और इतिहास ग्रन्थों के निर्माण में भी अंग्रेजी की कृतियां, आदर्श रूप रही हैं। हिन्दी की पत्रकारिता भी, अपने विभिन्न स्वरूपों में, अंग्रेजी प्रभाव की छाया में, प्रगतिशील रही है।

: १२ :

निष्कर्ष : अंग्रेजी प्रभाव की मुख्य प्रवृत्तियां

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव का यह अध्ययन, हमारी योजना के अनुसार, अब पूरा हो चुका है; केवल उसके अन्तिम निष्कर्ष देना ही शेष रह गया है। इस अन्तिम अध्याय में हम, सर्व प्रथम, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर इस प्रभाव की मुख्य प्रवृतियों को स्पष्ट कर रहे हैं; उसके बाद, हिन्दी भाषा एवं साहित्य पर कार्य करने वाले विभिन्न प्रभावों का तुलनात्मक विश्लेषण होगा; और फिर अन्त में अन्य प्रभावों की तुलना में, अंग्रेजी प्रभाव के महत्व की विवेचना होगी। प्रारम्भ में हम, इसी संयोजना के अनुरूप, हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में, अंग्रेजी प्रभाव के योग तथा अनुदान की प्रमुख प्रवृतियों का स्पष्टीकरण उपस्थित कर रहे हैं।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास में, अंग्रेजी प्रभाव का सबसे बड़ा योग, उसके अवरोधों को समाप्त करके, द्रुतगतिक परिवर्तन के क्रम का सूत्रपात रहा है। इस प्रभाव के आगमन के पूर्व, हम जैसा कह आये हैं, हिन्दी भाषा और साहित्य, 'प्रतिबद्ध समाज' की अभिव्यक्ति रहे थे; इसलिए उनमें प्रगति के तत्वों का अभाव रहा था। किन्तु अंग्रेजी प्रभाव की झंझावात ने, भारतीय समाज के मूलाधारों को ही हिला दिया था; और उसे अपने प्रबल आघातों से झकझोर कर, विकास की ओर, द्रुतगतिशील परिवर्तन की दिशा में, अग्रसर कर दिया था। इस द्रुतगतिक सामाजिक

विकास के फलस्वरूप, उसकी अभिव्यञ्जना के स्वरूपों, हिन्दी भाषा और साहित्य में भी, प्रगतिशीलता के अनुक्रम का समावेश हुआ।

अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी भाषा एवं साहित्य में, इस गतिशीलता के क्रम के सूत्र-पात के अतिरिक्त, अंग्रेजी भाषा और साहित्य के सम्पर्क के माध्यम से, अपनी धाराओं को अधिक निश्चित एवं घनीभूत किया। हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन में हमने, उसके इसी निश्चित एवं घनीभूत रूप, अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रभाव का विश्लेषण किया है। हिन्दी भाषा ने, अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क से, अपने ध्वनि-विन्यास, शब्द-भंडार, वाक्य-विधान, अभिव्यञ्जना प्रणाली आदि में बहुत कुछ ग्रहण किया है; और इसी प्रकार हिन्दी साहित्य ने, अंग्रेजी साहित्य के अनुशीलन से अपने को पर्याप्त परिवर्तित कर लिया है।

अँग्रेजी भाषा, संसार की अत्यधिक उन्नत आधुनिक भाषाओं में से है; और अंग्रेजी साहित्य भी आधुनिकता की वृत्तियों से विशेष रूप से ओत-प्रोत है। हिन्दी भाषा और साहित्य ने भी, इनके सम्पर्क से आधुनिक प्रवृत्तियों को आत्म-सात एवं प्रगतिशील तत्वों को विकसित किया है। अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के माध्यम से, उनकी अपनी तथा कुछ आधुनिक प्रवृत्तियों का ग्रहण, निश्चित अनुक्रम से, किन्तु बड़ा द्रुतगति पूर्ण हुआ है। अंग्रेजी भाषा और साहित्य ने, शताब्दियों के विकास-क्रम में जिन प्रवृत्तियों को विकसित किया था, अंग्रेजी प्रभाव की छाया में, हिन्दी भाषा और साहित्य ने, उन्हें कुछ दशकों, और कभी तो कुछ वर्षों में ही, विकसित किया है। अंग्रेजी प्रभाव से प्रेरणा लेकर, हिन्दी भाषा एवं साहित्य के निर्माण में तत्पर, लेखकों एवं साहित्यकारों के विषय में, यह कहना आवश्यक है, कि उन्होंने कभी अन्धानुकरण नहीं किया, वरन् स्वयं अपनी प्रतिभा, तथा अपने देश की साहि-त्यिक परंपरा के प्रति सजग होकर, अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों को आत्मसात किया है। उन्होंने इस विदेशी प्रभाव से जो कुछ ग्रहण किया है, उसे अपनी मौलिक प्रतिभा से अनुप्राणित करके, अपना बनाकर उपस्थित किया है।

हिन्दी भाषा ने, अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क से, अपने शब्द-भंडार की पर्याप्त अभि-वृद्धि की है : अंग्रेजी के बहुत से शब्द अपने मूल रूप में ग्रहण किये गये हैं; और अनु-वादित करके ग्रहण किये गये शब्दों की संख्या तो और भी अधिक है। अंग्रेजी से अनुवादित रूप में गृहीत शब्दावलियों, प्रयोगों और लोकोक्तियों की संख्या भी पर्याप्त है। अंग्रेजी प्रभाव को लेकर तथा अंग्रेजी व्याकरण के आदर्श पर ही, हिन्दी के व्याकरणिक सिद्धान्तों का विश्लेषण एवं विवेचन हुआ। हिन्दी का वाक्य-विधान भी अंग्रेजी प्रभाव से समन्वित है। विराम-चिन्हों का प्रयोग हिन्दी में अंग्रेजी से ही आया।

है। इसी प्रकार रचना-शैली के कुछ विशिष्ट प्रकार भी अंग्रेजी भाषा से ग्रहण किये गये हैं। अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क के फलस्वरूप, हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति विशेष अभिवर्धित हुई है। हिन्दी गद्य का समुचित विकास तो इसी प्रभाव को लेकर सम्भव हुआ है; और छन्दमयी अभिव्यञ्जना प्रणाली में भी, बड़े महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं।

अंग्रेजी प्रभाव को लेकर, हिन्दी में अनेक नवीन साहित्यिक विधाओं का सूत्र-पात हुआ है। हिन्दी नाटक का समुचित विकास तो इसी प्रभाव की प्रेरणा से सम्भव हुआ है। हिन्दी में उपन्यासों की रचना, अंग्रेजी के इस साहित्य-विधा के ग्रन्थों के अनुशीलन के अनन्तर ही, प्रारम्भ हुई। हिन्दी कहानी और निबन्ध तो पूर्णतः अंग्रेजी प्रभाव की ही सृष्टि हैं। हिन्दी कविता ने भी इस सम्पर्क के फलस्वरूप अपने अन्तर और बाह्य दोनों को परिवर्तित कर दिया है। हिन्दी में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी, अंग्रेजी पत्रकारिता से प्रेरणा लेकर ही हुआ है। अंग्रेजी प्रभाव, ने हिन्दी साहित्य में, नवीन जीवन मूल्यों की सृष्टि में भी योग दिया है।

हिन्दी कविता में नवीन जीवन मूल्यों का उपयोग, सर्व प्रथम बाह्य कलात्मकता के स्थान पर, आन्तरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति एवं प्रकृति के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण में, देखने को मिला। आन्तरिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का क्रम, भारतेन्दु हरिश्चंद्र की काव्य-रचनाओं से प्रारम्भ हुआ, और बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्रीधर पाठक, लोचन प्रसाद पांडेय, जयशंकर प्रसाद आदि में वह बढ़ता ही गया। प्रकृति के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण, यथार्थ चित्रण की वृत्ति का उपयोग भी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं से ही आरम्भ हुआ। श्रीधर पाठक और लोचन प्रसाद पांडेय ने प्राकृतिक शोभा का, उसके समस्त आकर्षण और सम्मोहन के साथ वर्णन किया। प्रसाद जी की रचनाओं में प्रकृति, मानव जीवन पर एक विशिष्ट प्रभाव के रूप में भी, अवतरित हुई। प्रकृति के प्रति इस परिवर्तित दृष्टिकोण के विकास में, अंग्रेजी के कवियों टॉमसन और वर्डसवर्थ की रचनाओं के अध्ययन का विशेष योग रहा हैं। हिन्दी कवियों ने, अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से—ओड, सॉनेट, शोक-काव्य, समाधि-लेख आदि—कुछ नवीन विधाएं भी ग्रहण कीं हैं।

हिन्दी नाटक में, इस परिवर्तित जीवन दृष्टि की अभिव्यक्ति, भारतीय नाट्य परंपरा के रस तत्व के स्थान पर, संघर्ष के मूलात्मा के रूप में ग्रहण में हुई। संघर्ष को मूल तत्व के रूप में स्वीकार करके, हिन्दी नाटक ने, संस्कृत के आदर्शवादी साहित्य-दर्शन से अपने को विच्छिन्न करके, यथार्थवाद को ग्रहण कर लिया। इसी यथार्थवादी साहित्य-दर्शन के ग्रहण के फलस्वरूप, हिन्दी नाटक में सुखान्तकी के

साथ दुखान्तकी रचनाओं को भी प्रश्रय मिला। इस परिवर्तित साहित्यिक दृष्टि के साथ, अंग्रेजी के नाटककारों—शेक्सपियर, एडिसन, शेरिडन आदि की रचनाओं ने भी हिन्दी नाटक को प्रभावित किया। फ्रांसीसी हास्य नाटककार मोलियर का भी कुछ प्रभाव, हिन्दी नाटक, विशेष रूप से, जे० पी० श्रीवास्तव की रचनाओं पर है।

अंग्रेजी प्रभाव से उत्पन्न नवीन जीवन मूल्यों एवं साहित्यिक आदर्शों की अभिव्यक्ति, हिन्दी कथा साहित्य, उपन्यास और कहानी दोनों में ही, और अधिक हुई है। जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टि ने, जो इन दोनों ही साहित्यिक विधाओं में व्यापक रूप से प्रकट हुई है, अब तक जो कुछ अर्थहीन और क्षण-भंगुर समझा जाता था, उसे महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान बना दिया। साहित्य के इन दोनों ही रूपों में, जीवन के मौलिक सत्यों को उनकी समस्त यथार्थता के साथ अभिव्यक्ति मिली : उपन्यास में यह अभिव्यक्ति व्यापक विन्यास में देखने को मिलती है; और कहानी में, जीवन की सामान्य और महत्वहीन प्रतीत होने वाली घटनाओं को भी, कलात्मक सौंदर्य एवं साहित्यिक मूल्य से ओत-प्रोत कर दिया गया है। अंग्रेजी उपन्यासकारों में, प्रस्तुत अध्ययन की सीमा में, सबसे अधिक प्रभाव तो जॉर्ज डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड का है; किन्तु उसके साथ-साथ जॉर्ज इलियट, हैरियट बीचर स्टो, आर्थर कॉनन डॉयल, विल्की कालिन्स आदि ने भी हिन्दी उपन्यासकारों को प्रभावित किया है। हिन्दी कहानी के विकास में, अंग्रेजी प्रभाव, किसी कथाकार विशेष अथवा विशिष्ट रचना का नहीं वरन् शिल्पगत अधिक रहा है।

अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी में कुछ नवीन साहित्यिक रूपों—निबन्ध, जीवन-चरित, इतिहास आदि—का भी विकास हुआ है। इन नवीन साहित्यिक रूपों के प्रारम्भिक प्रयोगों में, अंग्रेजी प्रभाव अन्तर्धारा में भी देखने को मिलता है। अंग्रेजों के साथ आई हुई नई विचारधारा की अभिव्यक्ति, विशेष रूप से, निबन्धों में है। हिन्दी में प्रारम्भ में जो जीवन-चरित और इतिहास ग्रन्थों की रचना हुई, उनमें अंग्रेजी की इन साहित्यिक रूपों की कृतियों के आदर्शों का अनुसरण किया गया। हिन्दी में व्यावहारिक आलोचना का अभ्युदय भी, अंग्रेजी के आलोचनादर्शों के अनुशीलन तथा उनके व्यवहारिक स्वरूप के अनुशीलन के फलस्वरूप हुआ। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी, इसी प्रकार, अंग्रेजी पत्रकारिता से प्रेरणा लेकर प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजी प्रभाव ने इस प्रकार, हिन्दी साहित्य के सभी रूपों पर, अपनी स्पष्ट छाप छोड़ी है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर, अंग्रेजी प्रभाव के अनुशीलन के अनन्तर, अन्य प्रभावों के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन भी यहां अपेक्षित है। अंग्रेजी प्रभाव के

पूर्व, संस्कृत और अपभ्रंश प्रभावों ने, हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में योग दिया था। इन दोनों प्रभावों के पूर्णतः भारतीय होने के कारण, इन्हें प्रभाव के स्थान पर, परम्परा का अनुदान कहना उपयुक्त होगा। फारसी भाषा और साहित्य का प्रभाव, विदेश से आया हुआ होने के कारण, निश्चित रूप से प्रभाव कहा जा सकता है। हिन्दी भाषा और साहित्य ने, यद्यपि पर्याप्त फारसी प्रभाव ग्रहण किया है, तथापि उसका योग अंग्रेजी प्रभाव की तुलना में, थोड़ा प्रतीत होता है। फारसी प्रभाव के फलस्वरूप, हिन्दी के भाषा सम्बन्धी तथा साहित्यिक आदर्शों में, कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआ था। फारसी भाषा के बहुत से शब्द और पर्याप्त संख्या में मुहावरे तथा कहावतें हिन्दी में गृहीत हुईं। हिन्दी साहित्य में फारसी की प्रेरणा से, 'पद्मावत,' 'मधुमालती', आदि प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना हुई। अंग्रेजी प्रभाव ने फारसी प्रभाव की तुलना में, हिन्दी भाषा तथा साहित्य को, मध्ययुगीन प्रवृत्तियों से विच्छिन्न कर के, पूर्णतः आधुनिक बना दिया। हिन्दी भाषा तथा साहित्य में, अंग्रेजी प्रभाव के बिना भी, आधुनिक प्रवृत्तियों का सूत्रपात हो गया होता; किन्तु जो वस्तु-स्थिति है, उसमें हमें, अंग्रेजी प्रभाव का योग स्वीकार करना होगा। अंग्रेजी प्रभाव इस प्रकार हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों में, सबसे अधिक सशक्त कहा जा सकता है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव का यह अध्ययन समाप्त करते हुए, यह कहना भी आवश्यक है, कि प्रस्तुत अध्ययन की अवधि सन् १९२० के बाद भी वह चलता रहा है। अंग्रेजी प्रभाव को आज भी हम, कार्यशील देख रहे हैं; किन्तु अब उसने यूरोपीय देशों और उससे भी अधिक सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत, जिसके अन्तर्गत अमरीका भी आ जाता है, के प्रभाव का व्यापक रूप ग्रहण कर लिया है। अंग्रेजी प्रभाव के माध्यम से हम, केवल पाश्चात्य जगत ही नहीं एशिया के अनेक देशों के साहित्यों के सम्पर्क में आये हैं। अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के सम्पर्क के फलस्वरूप ही आज हम, विश्व के अनेक देशों की साहित्यिक प्रगति और भाषागत विकास से परिचय प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी भाषा तथा साहित्य में, जिस द्रुतगति पूर्ण परिवर्तन का सूत्रपात किया, अंग्रेजी राज्य की समाप्ति के बाद, आज भी वह उसी चेतना को जगा रहा है।

परिशिष्ट 'क'

अयोध्याप्रसाद खत्री द्वारा, 'अवध अखबार' से, 'खड़ी बोली का पद्य' (१९८९) में अवतरित निम्नलिखित प्रसंग, यह स्पष्ट करता है, कि अंग्रेजी शब्द उन्नीसवीं शताब्दी में ही, भारतीय जीवन धारा में इतने अधिक घुल-मिल गये थे, कि उनके प्रयोग के बिना प्रति दिन का कार्य चलना भी दूभर हो गया था :

चार बजे शाम का वक़्त है। हम दिनभर की रियाज़त और दर्दसरी के बाद अपने कमरे में एक कोच पर लेटे हुये आराम कर रहे हैं, और चुरुट पीते जाते हैं। चंद अहबाब और एक····· ····· मेहमान जी जो कल सुबह रोखसत होने वाले हैं, 'अवध अखबार' की एक खत-किताब पर जिसका उनवान "उर्दू-ज़बान में अंग्रेजी अल्फाज़" है, बहस करके दिमाग चाटे जाते हैं। हम कहते हैं उर्दू जबान में अंग्रेजी अल्फाज़ जरूर शामिल होते जायेंगे। इस वास्ते उनके समझने की कोशिश करनी चाहिये। वह कहते हैं कि अंगरेजी का एक लफ़्ज़ उर्दू के साथ इस्तेमाल न करना चाहिये। मैं कहता हूँ बगैर अंगरेजी अल्फाज़ के बोले हुये इस जबान में चारा नहीं है। वह कहते हैं कि हमने अहद कर लिया है कि कभी अंगरेजी न बोलेंगे। मैं कहता हूं कि बहुत बेहतर, आपके अहद में मैं भी शरीक हूँ और इन्शाह अल्लाह ताला ! कल सुबह से एक लफ्ज़ अंगरेजी का उर्दू में न मिलाऊंगा। अब इस

बहस में ग्यारह बज गये और हम लोग आब व गिज़ा से फरागत हासिल करने के बाद यह अहद करके सो रहते हैं कि कल सुबह से अंगरेजी का कोई लफ्ज़ उर्दू तहरीर और न तक्रीर में इस्तेमाल करेंगे और जो शख़श ऐसा करेगा उसका मुंह बन्द कर देंगे या उसके हाथ से कलम लेकर तोड़ डालेंगे। दो-एक घंटे सो कर सात बजे के करीब बेदार हुये।

हम— कोई है !

आदमी— जी।

हम— क्या बजा है ?

आदमी— हुजूर अंधेरे में मुझे न मालूम होगा, कहिये घड़ी उठा लाऊं।

हम— अच्छा।

आदमी— कौन सी घड़ी लाऊं, टाइम पीस या क्लाक ?

हम— महज़ वक्त बताने वाली।

आदमी— उसका हाल मुझको मालूम नहीं है।

हम— अभी दो घड़ियों का नाम लिया है। उसमें से वह ला जिसका पहले नाम लिया था।

आदमी— अब मुझे क्या याद है कि किसका नाम पहले और किसका नाम बाद में लिया था ?

हम— अच्छा फिर नाम ले।

आदमी— आप मुझसे जिस घड़ी को कहिए ले आऊं।

हम— अच्छा जाने दो। एक वह ले आओ, तम्बाकू लपेटा हुआ पत्ता जो हम पीते हैं।

आदमी— तम्बाकू का पत्ता इस वक्त कहां से आवे दुकान खुलने दीजिये।

हम— अबे वह जो बकस (अरे तोबा !) सन्दूकचा में रक्खे हुये हैं।

आदमी— हुजूर सन्दूकचा न छुऊंगा। उसमें औवल तो कुलुफ लगा होगा। दूसरे अगर खुला हो तो उसमें रुपया पैसा रक्खा होगा।

हल— भाई, वह सन्दूकचा नहीं, दूसरा लकड़ी का खाना जिसमें तम्बाकू की भिन्डियां रक्खी हुई हैं। जिनको हम हुक्के के बदले पीते हैं और तुम लाते हो।

आदमी— हमको पहेली बूझना नहीं आता, साफ़-साफ़ कहिये।

हम— अच्छा मुंह धोने को पानी और मिस्वाक ले आओ।

आदमी— (नीम का मिस्वाक और पानी रख कर लीजिये।

हम— यह नहीं, अंगरेजी मिस्वाक जिसमें बाल ऐसे लगे होते हैं।

आदमी— पल्लू की मिस्वाक अब कहां हैं। यह नीम की मिस्वाक भी अपने लिये लाया था वर्ने यह भी इस वक्त न मिलती।

हम— नाश्ता के लिये विलायती टिकियां और मुर्ग़ाना ले आओ।

आदमी— दूसरी क्या चीज़ आपने बताई ?

हम— वह पानी जो हम पीते हैं, छना हुआ।

आदमी— फिल्टर का पानी।

हम— हां ! हां !! भाई।

आदमी— (डेवढ़ी पर जाकर) आया ! विलायती टिकियां नाश्ते के लिये दे जाव।

आया— कह देना टिकियों के लिये आज आदमी लन्दन भेजा जाएगा।

आदमी— हुजूर आया ने कहा है कि विलायती टिकियां नहीं है।

हम— कहना वही मामूली नाश्ता जो आता था, भेज दो।

आदमी— (थोड़ी देर के बाद आकर) हुजूर विस्कुट दिये हैं।

हम— हां, यही तो मांगने थे।

आदमी— (आपस में) आज मियां की तबियत कुछ बहक गई है। अजब अजब बातें करते हैं। अभी कहा था कि विलायती टिकियां ले आओ और जब कई मरतबे चक्कर काटकर मैं बिस्कुट ले आया तो कहने लगे कि यही तो।

हम— (बाहर आकर) यहाँ आव।

आदमी— जी।

हम— गाड़ीवान् को बुला लाव।

आदमी— गाड़ीवान आज छकड़ा लेकर बाहर चला गया है।

हम – यह नहीं दूसरा गाड़ीवान जो घोड़ों की गाड़ी हाँकता है।

आदमी— क्या कोचवान को बुला लाऊं।

हम— हां।

आदमी— (अस्तबल में जाकर) अरे भाई गाड़ीवान ! चलो तुमको मियां बुलाते हैं।

कोचवान— गाड़ीवान् तुम और तुम्हारे बाप ! ! हम शरीफ़ आदमी है। बग्घी हांकने से गाड़ीवान थोड़ा हो जाऊंगा।

आदमी— अरे ख़फ़ा न हो आज यह खिताब मियां ने तुमको दिया है। वहां चल कर देखो तो कैसी बहकी-बहकी बातें करते हैं।

कोचवान— कहिये हुजूर।

हम— एक छोटी गाड़ी दो पहियों वाली ले आओ।

मेहमान—हज़रत ! नौ बजा चाहते हैं। रेल का वक्त आ गया। अब स्टेशन जाने की जल्दी कीजिए।

हम— लाहौल विला कूवत ! तुमने तो आज आफियत तंग कर दी और आखिर वही किया जो हम कहते थे।

मेहमान—क्यों ? क्या ?

हम — कोई अहद किया था।

मेहमान— हां ! तो फिर।

हम— मैं आज सुबह से हैरान वो परेशान हूं न तो अभी तक मुंह धोया है न नाश्ता किया न कंघी। न कपड़े बदले। जो काम करना चाहता हूं यह अहद सामने होता है।

मेहमान— हां।

हम— भाई जान ! मेरी आदत थी सुबह को उठकर एक चुरुट पीता या ब्रुश से दांत साफ करता था। बाद उसके दो एक विस्कुट खाकर नाश्ता करता था। पानी मैं हमेशा फिल्टर का पिया करता हूं। इन सब चीज़ों को अजब अजब तरकीबों से मैंने बताया और तबियत पर निहायत जोर देकर तरजु मां करना चाहा पर कुछ न हुआ। आदमी अपने दिल में कहता होगा कि मियां को आज खुदा जाने क्या हो गया है। बिस्कुट के बदले मैंने विलायती टिकियां तलब कीं। तब आया ने जवाब दिया कि लंदन को आदमी भेजा गया है।

मेहमान -- (कह कहे लगा कर) ऐ ! लाहौल बिला कूवत ! तोबा !! तोबा !!

हम — तुमने सारी कैफियत तो सुनी ही नहीं, यार हंसते हंसते लोट जाते।

*

परिशिष्ट 'ख'

हिन्दी-प्रदेश में सन् १८७० से १९२० तक विभिन्न पाठ्य-क्रमों में स्वीकृत अंग्रेजी साहित्यकार और उनकी रचनाओं की साहित्य-विधा और कालानुक्रम से सूची :

कविता :

जॉन मिल्टन : 'पैराडाइज़ लॉस्ट', 'लिसीडस', 'ल' एलेग्रो', 'इल पेन्सोरोज़ो'
एलेक्ज़ेन्डर पोप : 'दि टेम्पिल ऑफ फेम', 'ऐन एसे ऑन क्रिटीसिज्म', 'एसे ऑन मैन'
सैमुएल जॉनसन : 'दि वैनिटी ऑफ ह्यमन विशेज़' 'लन्डन'
ऑलिवर गोल्डस्मिथ : 'दि हरमिट', 'दि डेज़र्टेड विलेज', 'दि ट्रैवलर'
जेम्स टॉमसन : 'दि सीज़न्स'
विलियम काउपर : 'दि टास्क'
टॉमस ग्रे : 'एलेजी रिटेन इन ए कन्ट्री चर्चयार्ड'
विलियम वर्डस्वर्थ : 'एक्सकर्सन'
सर वाल्टर स्कॉट : 'ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल', 'मैरमियन', 'दि लेडी ऑफ दि लेक'
जॉर्ज गॉर्डन बायरन : 'चाइल्ड हेरॉल्ड्स पिलग्रिमेज'
पर्सी बिशे शैली : 'एडोनेस'

जॉन कीट्स : 'हाइपरियन', 'स्लीप एन्ड ब्यूटी'
एल्फ्रेड टेनिसन : 'एल्मर्स फील्ड', 'दि प्रिन्सेस', 'एनॉक आर्डेन', 'मॉरटेड आर्थर', 'डोरा', 'यूलिसीज़', 'दि लोटस ईटर्स'
मैथ्यू आर्नल्ड : 'सोहराब एन्ड रुस्तम'
टॉमस बेबिंगटन मेकॉले : 'लेज़ ऑफ एन्शेन्ट रोम'
हेनरी लॉन्गफलो : 'इवेन्जेलीन'
ए० सी० वार्ड (सं०) 'इंगलिश पोएट्स्' खण्ड ३ और ४

नाटक :

क्रिस्टफर मार्लो : 'डॉक्टर् फास्टस'
विलियम शेक्सपियर : 'जूलियस सीज़र', 'कैरोलिनस', 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम', 'मच एडो एबाउट नथिंग', 'हैमलेट', 'ओथैलो', 'मैकबेथ', 'किंग लियर', 'दि टेम्पेस्ट','दि मरचेन्ट ऑफ वेनिस', 'ट्वेल्थ नाइट', 'किंग जॉन', रिचर्ड सेकेन्ड', 'हेनरी फोर्थ', 'हेनरी फिफ्थ', 'दि टेमिंग ऑफ दि श्रू'
बेन्जमिन जॉन्सन : 'एवरी मैन इन हिज़ ह्यूमर', 'दि एल्केमिस्ट'
जॉन मिल्टन : 'कोमस', 'सैमसन एगोनिस्टिस'
जोजेफ एडिसन : 'कैटो'
ऑलिवर गोल्डस्मिथ : 'शी स्टूप्स टु कॉन्कर'
रिचर्ड बी० शेरिडन : 'दि राइवल्स', 'दि स्कूल फॉर स्कैन्डल'

उपन्यास :

जॉन बनियन : 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस'
डैनियल डेफो : 'राबिन्सन क्रूसो'
सर वाल्टर स्कॉट : 'आईवन हो', 'केनिलवर्थ'
जेन आस्टीन : 'प्राइड एण्ड प्रेजुडिस'
चार्ल्स डिकेन्स : 'ए टेल ऑफ टू सिटीज़'
विलियम एम थैकेरे : 'हेनरी एस्मण्ड', 'बैनिटी फेयर', 'दि न्यूकम्स'
चार्ल्स रीड : 'दि क्लायस्टर एण्ड दि हर्थ'
जॉर्ज इलियट : 'साइलस मार्नर', 'एडम बेडे', 'रोमोला', 'मिडिलमार्च'
टॉमस ह्यूजेज़ : 'टॉम ब्राउनस् स्कूल डेज'

कहानी :

चार्ल्स एण्ड मेरी लेम्ब : 'टेल्स फ्रॉम शेक्सपियर'
वाशिंगटन इरविंग : 'दि स्केच-बुक'
नैथेनियल हॉथार्न : 'दि टैंगिलउड टेल्स'
शार्लेट मेरी मंग : 'ए बुक ऑफ गोल्डेन डीड्स'
सेलेक्टेड इंग्लिश शार्टस्टोरीज : (फर्स्ट सीरीज़ एवरी मैन्स लाइब्रेरी)

निबन्ध :

फ्राँसिस बेकन : 'ऐसेज़', 'दि एडवान्समेन्ट ऑफ लर्निंग'
जोजफ एडिसन : 'एसेजज'
जोज़ेफ एडिसन तथा रिचर्ड स्टील : 'सर रोजर दे कॉवर्ले'
ऑलिवर गोल्डस्मिथ : 'सेलेक्शन फ्रॉम दि बी'
चार्ल्स लैम्ब : 'एसेज़ ऑफ इलिया'
विलियम हैज़लिट : 'एसेज़'
राबर्ट लुई स्टीवेन्सन : वर्जीनिबस प्यूरस्के'

आलोचना :

जॉन ड्राएडन : 'एसे ऑन ड्रामेटिक पोएसी'
एलेक्ज़ेन्डर पोप . 'एन एसे ऑन क्रिटिसिज्म'
सैमुअल जॉन्सन : लाइवज़ ऑफ पोप एण्ड ड्राएडन'
सैमुअल टी० कालरिज : 'लिटरेरी क्रिटिसिज्म'
टॉमस बी० मैकॉले : 'लाइवज़ ऑफ बनियन, गोल्डस्मिथ एण्ड जॉन्सन'
जॉर्ज सेन्ट्सबरी : 'एलिजाबीथन लिट्रेचर', 'नाइन्टीन्थ सेन्चुरी इंग्लिश लिटरेचर'
मेथ्यू आर्नल्ड : 'लिट्रेचर एण्ड डाग्मा'
एडमाड गॉस : 'ऐटीन्थ सेन्चुरी लिट्रेचर'
मार्क पेटिसन : 'मिल्टन'
सिडनी ली : 'दि मास्टर्स ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर'
सर वाल्टर रैले : 'शेक्सपियर'
लेस्ली स्टीफेन : 'आवर्स इन ए लायब्रेरी'

प्रेरणात्मक साहित्य :

जॉन स्टुअर्ट ब्लैको : 'सेल्फ कल्चर'
सैमुअल स्माइल्स : 'सेल्फ हेल्प'

परिशिष्ट 'ग'

अंग्रेजी से अनुवादित रचनाएँ

काव्य रचनाएँ :

गोल्डस्मिथ	'हरमिट'	लोचनप्रसाद	'योगी'	(१८७६)
,,	,,	श्रीधर पाठक	'एकान्तवासी योगी'	(१८८६)
,,	'दि डेजर्टेड विलेज'	,, ,,	'ऊजड़ ग्राम'	(१८८९)
,,	'दि ट्रैवलर'	,, ,,	'श्रान्त पथिक'	(१९०२)
लॉगफेलो	'इवेन्जेलीन'	,, ,,	'अन्जलैना'	(१८८६)
पर्नेल	'हर्मिट'	,, ,,	'योगी'	(१८९५)
टॉमस ग्रे	'एलेजी'	विद्यारसिक	'ग्रामस्थ शवागर लिखित शोकोक्ति'	(१८९७)
,,	,,	महेशचन्द्र	'शोकोक्ति'	(१९१५)
मेकॉले	'होरेशस'	छंगालाल मिश्र	'होरेशस'	(१९०३)
,,	,,	बच्चन पाण्डेय	,,	(१९११)
,,	,,	रघुनाथप्रसाद कपूर	,,	(१९१२)

नाटक :

शेक्सपियर की रचनाएँ

'दि कॉमेडी ऑफ एरर्स	मुंशी इमदाद अली	'भ्रम जालक'	(१८७६)
'दि मर्चेंट आफ वेनिस'	हरिश्चन्द्र	'दुर्लभ बन्धु'	(१८८०)
'दि कॉमेडी ऑफ एरर्स'	लाला सीताराम	'भूल भुलैय्याँ'	
'मच एडो एबाउट नथिंग'	,, ,,	'मनमोहन का जाल'	
'दि टेम्पेस्ट'	,, ,,	'जंगल में मंगल'	
'रोमियो एण्ड जूलियट'	,, ,,	'प्रेम परिणय'	
'ऐज़ यू लाइक इट'	,, ,,	'अपनी अपनी रुचि'	
'हेनरी फिफ्थ'	,, ,,	'हेनरी पंचम'	
'दि विन्टर्स टेल'	,, ,,	'शरद ऋतु की कहानी'	
'हैमलेट'	,, ,,	'हैमलेट'	
'किंग लियर'	,, ,,	'राजा लियर'	
'ओथेलो'	,, ,,	'ओथेलो'	
'जूलियस सीज़र'	,, ,,	'जूलियस सीज़र'	
'सिम्बेलीन'	,, ,,	'सिम्बेलीन'	
'रिचर्ड सेकेन्ड'	,, ,,	'रिचर्ड द्वितीय'	(१९१५)
'मैकबेथ'	,, ,,	'मैकबेथ'	(१९१५)
'रोमियो एण्ड जुलियट'	पुरोहित गोपीनाथ	'प्रेम लीला'	(१८९९)
'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस'	(?)	'वेनिस का व्यापारी'	(१८८१)
,, ,, ,,	गोकुलचन्द शर्मा	'वेनिस का बांका'	(१८८६)
'ओथेलो'	गदाधर सिंह	'ओथेलो'	(१८९४)
'एज़ यू लाइक इट'	(?)	'ऐज़ यू लाइक इट'	(१८९७)
,, ,, ,, ,,	पुरोहित गोपीनाथ	'मनभाव'	(१८९६)
'दि विन्टर्स टेल'	(?)	'शरद् ऋतु की कहानी'	(१८८१)
'जूलियस सीज़र'	गणपति कृष्ण गुर्जर	'जयन्त'	(१९१२)
'रोमियो एण्ड जूलियट'	चतुर्भुज औदीच्य	'रोमियो जूलियट'	(१९११)
'ओथेलो'	(?)	'ओथेलो'	(१९१५)
,,	गोविन्दप्रसाद घिल्डियाल	,,	(१९१८)
जोज़फ एडिसन कृत 'कैटो'	'ए ट्रेजेडी : तोताराम	'केटो कृतान्त'	(१८७९)

अंग्रेजी से अनुवादित फ्रांसीसी नाटक

मोलियर की रचनाएँ

'मॉक डाक्टर'	जी० पी० श्रीवास्तव	'मार मार कर हकीम'	(१९११)
,, ,,	लल्लीप्रसाद	'ठोंक पीटकर वैद्यराज'	(१९१२)
'ला' मार मेडोमाँ'	जी० पी० श्रीवास्तव	'आँखों में धूल'	(१९१२)
'ला मेडिसीं वोलाँ'	,, ,, ,,	'हवाई डाक्टर'	(१९१४)
'ला मैरीज फोर्स'	,, ,, ,,	'नाक में दम'	(१९१८)
'जॉर्ज डान्डां एण्ड लाजेलुसी टु बार्वानिली'		'जवानी बनाम बुढ़ापा'	(१९१८)

पारसी नाटक कम्पनियों द्वारा उपस्थित अंग्रेजी नाटकों के रंगमंचीय रूपान्तर

शेक्सपियर के सुखान्तकी

'दि विन्टर्स टेल'	'मुरादे शक'	(१८९५)
'सिम्बेलीन'	'जुल्मे नाहक़'	(१८९५)
,,	'मीठा ज़हर'	(१९००)
'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस'	'दिल फ़रोश'	(१९००)
'मेजर फॉर मेज़र'	'हुस्नारा'	(१९००)
,, ,, ,,	'शहीदे नाज़'	(१९०५)
'ट्वेल्फ्थ नाइट'	'भूल भुलैयां'	(१९०५)
'ए कॉमेडी ऑफ एरर्स'	'गोरख धन्धा'	(१९१२)

शेक्सपीयर के दुखान्तकी

'रोमियो एण्ड जूलियट'	'बज्मे फानी'	(१८९९)
'हैमलेट'	'खूने नाहक'	(१८९९)
'ओथेलो'	'शहीद वफ़ा'	(१८८९)
'टाइटस एण्ड्रोनियस'	'जुनूने वफ़ा'	(१९००)
'किंग लियर'	'हार जीत'	(१९०५)
,, ,,	'सफेद खून'	(१९०६)
'रिचार्ड थर्ड' एण्ड 'किंग जॉन'	'सैदे हवस'	(१९०६)
'एन्टनी एण्ड क्लियोपेट्रा'	'काली नागिन'	(१९०६)
,, ,, ,,	'जान मुरीद'	(१९०९)

अन्य लेखकों के नाटक

डब्ल्यू० टी० मोन्क्रीफ : 'दि ज्यूएस'	'करिश्माई कुदरत' या 'अपनी या पराई'

डब्ल्यू० टी० मौन्क्रीफ		'यहूदी की लडकी'
लार्ड लिटन	'लेडी ऑफलियान'	'धूप छाया'
एच० ए० जोन्स	'दि सिल्वर किंग'	'सिल्वर किंग'
मेसेन्जर्स एण्ड डेकर्स	'दि वर्जिन मार्टयर'	'हूरे अरब'
शेरिडन	'पिजारो'	'असीरे हिर्स'
एलेक्जेन्डर ड्यूमा	'दि टावर ऑफ नाइल,	'खूने जिगर'

उपन्यास

डैनियल डेफो:	'राबिन्सन क्रूसो'	पं० बद्रीलाल	'राबिन्सन क्रूसो का इतिहास' (१८६०)
जॉन बनियन:	'दि पिलिग्रम्स प्रोग्रेस'		'यात्रा स्वप्नोदय' (१८६७)
जॉर्ज डब्ल्यू०एम० रेनाल्ड	'फाउस्ट'	चुन्नीलाल खत्री	'नरपिशाच' (१९०१)

जार्ज० डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड की अन्य रचनाएँ

'राई हाउस प्लाट'	कन्हैयालाल शर्मा	'सत्य वीर'	(१९०२)
,, ,, ,,	चुन्नीलाल खत्री	'सच्चा बहादुर'	(१९०४)
'जोजेफ विल्मट'	यशोदानन्दन औदीच्य	'जोजफ विल्मट'	(१९०५)
'दि यँग फिशरमैन'	गंगा प्रसाद गुप्ता	'किले की रानी'	(?)
'वर्जीनिया'	रूपनारायण शर्मा	'गुप्त रहस्य'	(?)
'लायला, दि स्टार ऑफ मिग्रेलिया'	देवीप्रसाद खजांची	'प्रवीण पाठिका'	(१९११)
'दि ब्रान्ज़ स्टेच्यू'	(?)	'पीतल की मूर्ति'	(१९१७)
मिस्ट्रीज़ ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन'	सदानन्द शुक्ल	'लन्दन रहस्य'	(१९१३–१५)
,, ,,	ठाकुर प्रसाद खत्री	,, ,,	(?)
राबर्ट मेकायर	(?)	'राबर्ट मेकायर'	(?)

जी० डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड की अन्य रचनाएँ

(?)	चुन्नीलाल खत्री	'अनंग तरंग'	(१९०८)
(?)	जैनेन्द्र किशोर	'दुर्जन'	(१९०८)
(?)	चन्द्र शेखर पाठक	'रहस्य भेद'	(१९१८)
'फाउस्ट'	(?)	'शैतान'	(?)
राईडर हैगार्ड 'शी'	कन्हैयालाल	'श्री या अवश्य माननीय'	(१९०२)

डैनियल डेफो: 'राबिन्सन् क्रूसो' : जनार्दन झा : 'रॉबिन्सन क्रूसो' (१९१३)
,, ,, : द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी : ,, ,, (१९१३)
पॉल डे काक: 'दि वेम्पायर' (फ्रांसीसी) जैनेन्द्रकिशोर : 'चुड़ैल' (१९१०)
एलेक्जेन्डर ड्यूमा: 'दि काउन्ट : चुन्नीलाल खत्री 'मोतियों का खजाना' (१९१४)
ऑफ मान्टीक्रिस्टो' (फ्रांसीसी)
विल्की कॉलिन्स: 'दि वमन इन ह्वाइट' : 'ईश्वरी प्रसाद शर्मा : 'शुक्ल वसना सुन्दरी' (१९६१)
हैरियट बीचर स्टो:'अंकल टॉम्प कैबिन' : महावीर प्रसाद पोद्दार : 'टाम काकाकी कुटिया' (१९१६)
जोनेथन स्विफ्ट : 'गुलिवर्स ट्रेवल्स : जगन्नाथ प्रसाद : 'विचित्र भ्रमण' (१९१८)
जॉर्ज इलियट : 'साइलस मार्नर' : प्रेमचन्द : 'सुखदास' (१९१८)

जुल बर्न की रचनाएँ

'ए जर्नी इन टु इन्टीरियर ऑफ दि अर्थ' : गिरिजाकुमार घोष : 'रसातल यात्रा' (१९१२)
'ए जर्नी टु मून' : जयराम दास गुप्त : 'चन्द्रलोक की यात्रा' (१९०७)
,, : ,, (?) : ,, ,, (१९०७)
'ए जर्नी बाइ बैलून' : , : 'बैलून बिहार' (,,)

कहानी

टुकर (?) : राजा शिव प्रसाद : 'राजा भोज का सपना'
,, (?) : ,, ,, ,, : 'सैन्ड फोर्ड और मार्टन की कहानी' (१८७७)
वाशिंगटन इर्विंग : द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी : 'रिपवान विकल' (१९१२)
'चार्ल्स एण्ड मेरी लैम्ब : टेल्स फ्रॉम शेक्सपियर' : काशीनाथ खत्री : 'शेक्सपियर के परम मनोहर नाटकों के आशय' (१८८३-८६)

निबन्ध, आलोचना और अन्य विधाएँ

फ्रांसिस बेकन : एसेज़ महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'बेकन विचार रत्नावली' (१९००)

सिसेरो	'फ्रेन्डशिप'	'मित्रता' (१९००)
एलेक्ज़ेन्डर पोप	'एन एसे ऑन क्रिटिसिज्म'	जगन्नाथ दास रत्नाकर 'आलोचनादर्श' (१८९७)
सैमुअल स्माइल्स	'सेल्फ हेल्प'	नाथुराम प्रेमी 'स्वावलम्बन' (१९१६)
,, ,,	'थिफ्र्ट'	,, ,, 'मितव्ययिता' (१९१४)
,, ,,	,,	रामचन्द्र वर्मा 'मितव्ययिता' (१९१६)
लॉर्ड चेस्टर फील्ड :	'एडवाइस टु हिज़ सन'	ऋषीश्वरनाथ भट्ट : 'कर्तव्य शिक्षा'

परिशिष्ट 'घ'

बंगला से अनुवादित रचनाएँ :

काव्य रचनाएँ

माइकेल मधुसूदन दत्त	मैथिलीशरण गुप्त	'विरहिणी व्रजांगना'	(१९१५)
,, ,, ,,	,, ,,	'मेघनाथ वध'	(१९१९)
नवीनचन्द्र सेन	,, ,,	'पलासी का युद्ध'	(१९२०)

नाटक

यतीन्द्रमोहन ठाकुर	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'विद्या सुन्दर'	(१८६८)
माइकेल मधुसूदन दत्त	(?)	'पद्मावती'	(१८८८)
,, ,, ,,	(?)	'वीर नारी'	(१८८९)
,, ,, ,,	(?)	'कृष्णा कुमारी'	(१९२०)
रामगोपाल विद्यान्त	(?)	'रामाभिषेक'	

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाएँ

रवीन्द्रनाथ ठाकुर	गोपालराम गहमरी	'चित्रांगदा'	(१८९५)
,,	,, ,,	'राजर्षि'	(१९१०)
,,	,, ,,	'डाकघर'	(१९२०)

द्विजेन्द्रलाल राय की रचनाएँ

द्विजेन्द्रलाल राय	नाथूराम प्रेमी	'दुर्गादास'	(१९१६)
,, ,,	,,	'मेवाड़ पतन'	(१९१७)
,, ,,	,,	'शाहजहां'	(१९१७)
,, ,,	,,	'उस पार'	(१९१७)
,, ,,	,,	'नूरजहां'	(१९१८)
,, ,,	,,	'ताराबाई'	(१९१८)
,, ,,	,,	'भीष्म'	(१९१८)
,, ,,	,,	'चन्द्र गुप्त'	(१९१८)
,, ,,	,,	'सीता'	(१९१८)
,, ,,	,,	'मूर्ख मंडली'	(१९१८)
,, ,,	,,	'भारत रमणी'	(१९१९)
,, ,,	,,	'पाषाणी'	(१९२०)
,, ,,	,,	'सिंहल विजय'	(१९२०)
क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद	उदयलाल कासलीवल	'चाँद बीबी'	(१९२०)

उपन्यास

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय	गदाधरसिंह	'दुर्गेश नन्दिनी'	(१८८२)
,, ,,	हरीश्चन्द्र	'राधा रानी'	(१८८३)
,, ,,	प्रतापनारायण मिश्र	'युगलांगुलीय'	(१८९४)
,, ,,	,,	'राजसिंह'	(१८९४)
,, ,,	,,	'कपाल कुंडला'	(१९०१)
,, ,,	अयोध्यासिंह	कृष्णकान्त का दान पत्र'	(१८
,, ,,	गुलज़ारी लाल	'कृष्णकान्त का विल'	(१९१६)
,, ,,	बालेश्वरप्रसाद मिश्र	'देवी'	(१८९९)
,, ,,	ब्रजनन्दन सहाय	'चन्द्रशेखर'	(१९०१)
,, ,,	किशोरिलाल गोस्वामी	'इन्दिरा'	(१९०८)
,, ,,	रामेश्वर पाण्डे	,,	(१९१६)
,, ,,	गिरिजा कुमार घोष	,,	(१९१९)
,, ,,	गुलजारीलाल चतुर्वेदी	'विष वृक्ष'	(१९१५)
,, ,,	जयरामदास गुप्ता	'मृणालिनी'	(१९१८)

रमेशचन्द्र पन्त	गदाधरसिंह	'बंग विजेता'	(१८८६)
,, ,,	गोपालराम गहमरी	'माधवी कंकण'	(१९०८)
,, ,,	जनार्दन झा	,, ,,	(१९१२)
,, ,,	वेनीप्रसाद	'संसार'	(१९०१)
,, ,,	जनार्दन झा	'समाज'	(१९१३)
,, ,,	,, ,,	'राजपूत जीवन संध्या'	(१९१३)
,, ,,	रुद्रनारायण	'महाराष्ट्र जीवन प्रभात'	(१९१३)

पंच कौडी दे की रचनाएँ

पञ्चकौडी दे	गोपालराम गहमरी	'जीवन मृत रहस्य'	(१९०४)
	,, ,,	'आंखों देखी घटना'	(१९१०)
	,, ,,	'गोविन्दराम'	(१९०५)
	,, ,,	'जासूसी चक्कर'	(१९१२)
	,, ,,	'मनोरमा'	(१९१३)
	,, ,,	'नीलवसना सुन्दरी'	(१९१३)
	रामलाल वर्मा	'भीषण भूल'	(१९१७)
	,, ,,	'घटना चक्र'	(१९१८)

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाएँ

,, ,,		'मुकुट'	(१९१०)
,, ,,		'आश्चर्य घटना'	(१९१३)
,, ,,		'आंख की किरकिरी'	(१९१३)

अन्य रूप

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय	नाथूराम प्रेमी	बंकिम निबन्धावली	(१९१६)
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर		'विधवा विवाह'	(१८८८)

*

परिशिष्ट

विशेष सहायक ग्रन्थ

१ हिन्दी

	काव्य रचनाएं
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'भारतेन्दु ग्रन्थावली', तृतीय खण्ड
बद्री नारायण चौधरी	'प्रेमघन सर्वस्व', प्रथम भाग (१९३९)
श्रीधर पाठक	'मनोविनोद', प्रथम भाग (१८८२)
,, ,,	,, ,, द्वितीय भाग (१९०५)
,, ,,	,, ,, तृतीय भाग (१९१२)
,, ,,	'जगत सचाई सार', (१८८७)
,, ,,	'घन विनय', (१९००)
,, ,,	'गुणवन्त हेमन्त', (१९००)
,, ,,	'काश्मीर सुषमा', (१९०४)
,, ,,	'वनाष्टक', (१९१२)
,, ,,	'देहरादून', (१९१५)

,, ,,	'भारत गीता', १९१८)
लोचन प्रसाद पाण्डेय	'प्रवासी', (१९०७)
,, ,,	'कविता कुसुम माला', (१९१०)
,, ,,	'मेवाड़ गाथा', (१९१४)
,, ,,	'माधव मंजरी', (१९१५)
,, ,,	'पद्य पुष्पाञ्जली', (१९१५)
'श्रीधर'	'चारण', (१९१६)
जयशंकर प्रसाद	'प्रेम राज्य', (१९१०)
,, ,,	'कानन कुसुम', (१९१२)
,, ,,	'प्रेम पथिक' (१९१३)
,, ,,	'महाराणा का महत्व' (१९१३)
,, ,,	'चित्राधार' (१९१८)
,, ,,	'झरना' (१९१८)
बाल मुकुन्द गुप्त	'स्फुट कविता' (१९१०)
मैथिली शरण गुप्त	'रंग में भँग' (१९१०)
,, ,,	'जयद्रथ वध' (१९१०)
,, ,,	'भारत भारती' (१९१२)
,, ,,	'पद्य प्रबन्ध' (१९१२)
,, ,,	'किसान' (१९१७)
,, ,,	'वैतालिक' (१९१९)
सियाराम शरण गुप्त	'मौर्य विजय'
अयोध्या सिंह उपाध्याय	'प्रिय प्रवास' (१९१४)

नाटक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'भारतेन्दु नाटकावली' (सं०, ब्रज रत्न दास) खण्ड १ एवं २
श्रीनिवास दास	'रणधीर प्रेममोहिनी' (१९८०, द्वितीय संस्करण)
,, ,,	'तप्ता सम्वरण' (१८८३)
,, ,,	'संयोगिता स्वयंवर' (१८८६)
,, ,,	'प्रह्लाद चरित्र' (१८८८)
प्रताप नारायण मिश्र	'कलि कौतुक' (१८८६)

केशव राम भट्ट	'सज्जाद सुम्बुल' (१८७३)
,, ,,	'समशाद सौसन' (१८८०)
बी०पी० श्रीव.स्तव	'उलट फेर' (१९१८)।
,, ,,	'दुमदार आदमी' (१९१९)
,, ,,	'मर्दानी औरत' (१९२०)
राधाकृष्ण दास	'राधाकृष्ण ग्रन्थावली' (सं० श्यामसुन्दर दास)
बद्रीनाथ भट्ट	'कुरुवन दहन' (१९१२)
,, ,,	'चँगी की उम्मेदवारी' (१९१४)
,, ,,	'चन्द्रगुप्त' (१९१५)
जयशंकर प्रसाद	'करुणालय' (१९१२)
,, ,,	'प्रायश्चित' (१९१४)
,, ,,	'राज्यश्री' (१९१५)

उपन्यास

श्रीनिवास दास	'परीक्षा गुरु' (१८७८)
किशोरी लाल गोस्वामी	'प्रणयिनी परिणय' (१८८९)
,, ,,	'त्रिवेणी' (१८८९)
,, ,,	'स्वर्गीय कुसुम' (१८८९)
,, ,,	'हृदय हारिणी' (१८९०)
,, ,,	'लवँग लता' (१८९०)
,, ,,	'प्रेममयी' (१८९१)
,, ,,	'लावण्यमयी' (१८९१)
,, ,,	'सुख शर्वरी' (१९०१)
,, ,,	'कुसुम कुमारी' (१९०१)
,, ,,	'राज कुमारी' (१९०२)
,, ,,	'तारा' भाग १ एवं २ (१९०२)
,, ,,	'कानन कुसुम' (१९०३)
,, ,,	'चपला' भाग १-४ (१९०३-१९०४)
,, ,,	'चन्द्रावती' (१९०५)
,, ,,	'कटे मूड़ की दो-दो बातें' (१९०

किशोरी लाल गोस्वामी	'मल्लिका देवी'	(१९०५)
,, ,,	'तरुण तपस्विनी या कुटीर वासिनी'	(१९०६)
,, ,,	'याकूती तख्ती या यमज सहोदरा'	(१९०६)
,, ,,	'लखनऊ की कब्र या शाहीमहल' भाग १-३	(१९०६-७)
,, ,,	'पुनर्जन्म या सौतियाडाह'	(१९०७)
,, ,,	'माधवी माधव या मदन मोहिनी', भाग १-२	(१९०९-१०)
,, ,,	'सोना और सुगन्ध या पन्ना बाई', भाग १-२	(१९१०-१२)
,, ,,	'लाल कुँअर या शाही रंगमहल'	(१९१३)
,, ,,	'रजिया बेगम'	(१९१५)
,, ,,	'अंगूठी का नगीना'	(१९१८)
गोपालराम गहमरी	'नये बाबू'	(१८९४)
,, ,,	'बड़ा भाई'	(१८९८)
,, ,,	'सास पतोहू'	(१८९८)
,, ,,	'देवी सिंह'	(१९०१)
,, ,,	'देवरानी जेठानी'	(१९०१)
,, ,,	'तीन पतोहू'	(१९०४)
,, ,,	'गुप्तचर'	(१८९९)
,, ,,	'अद्भुत खून'	(१९०२)
,, ,,	'खूनी का भेद'	(१९०९)
,, ,,	'जासूस की भूल'	(१९०१)
,, ,,	'जासूस पर जासूस'	(१९०४)
,, ,,	'घर का भेदी'	(१९०३)
,, ,,	'ठन ठन जासूस'	(१९१०)
,, ,,	'जाली बीबी या डाकू साहेब'	
,, ,,	'जासूस की जवाँमर्दी'	
ठाकुर जगमोहन सिंह	'श्यामा स्वप्न'	
देवकी नन्दन खत्री	'चन्द्रकान्ता'	(१८९२)
,, ,,	'नरेन्द्र मोहिनी'	(१८९३-९५)

,,	,,	'वीरेन्द्र वीर' (१८९५)
,,	,,	'चन्द्रकान्ता सन्तति' (१८९६)
,,	,,	'कुसुम कुमारी', भाग १-४ (१८९९)
,,	,,	'नौलखा हार' (१८९९)
,,	,,	'गुप्त गोदना', भाग १-२ (१९०२-१९०६)
,,	,,	'काजर की कोठरी' (१९०२)
,,	,,	'अनूठी बेगम' (१९०५)
,,	,,	'भूतनाथ', भाग १-६ (अपूर्ण)
प्रेम चन्द		'प्रेमा' (१९०५)
,,		'सेवासदन' (१९१८)

कहानी

बालकृष्ण भट्ट		'नूतन ब्रह्मचारी' (१९११)
किशोरी लाल गोस्वामी		'इन्दुमती या बन विहंगिनी' (१९०२)
,,	,,	'हीराबाई' (१९०४)
गोपालराम गहमरी		'बेगुनाह का खून' (१९००)
,,	,,	'सरकती लाश' (१९००)
,,	,,	'खूनी कौन है' (१९००)
,,	,,	'जमुना का खून' (१९०१)
,,	,,	'जयराज' (१९०२)
,,	,,	'मालगोदाम में चोरी' (१९०२)
,,	,,	'गर्ती काका' (१९०२)
,,	,,	'जासूस की चोरी' (१९०२)
,,	,,	'अंधे की आंख' (१९०२)
,,	,,	'किले में खून' (१९०२)
जयशंकर प्रसाद		'छाया' (१९१२)
जी० पी० श्रीवास्तव		'लम्बी डाढ़ी' (१९१४)
,,	,,	'नोक झोंक' (१९१९)
,,	,,	'लतखोरी लाल' (१९३०)
प्रेमचन्द		'सप्त सरोज' (१९१७)
,,		'नव निधि' (१९१८)
,,		'प्रेम पूर्णिमा' (१९२०)

विश्वम्भरनाथ शर्मा	'गल्प मन्दिर'	(१९१९)

निबन्ध

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'खुशी'	(१८१७)
बालमुकुन्द गुप्त	'शिवशंभु के चिट्ठे'	(१९०६)
,,	'चिट्ठे और खत'	(१९०८)
,,	'गुप्त निबन्धावली'	(१९१२)
मिश्रबन्धु	'पुष्पाञ्जली' (१९१६)	
प्रताप नारायण मिश्र	'निबन्ध नवनीत' (१९१९)	
महावीर प्रसाद द्विवेदी	'रसज्ञ रंजन' (१९२०)	
,, ,,	'अद्भुत आलाप' (१९२४)	
बालकृष्ण भट्ट	'साहित्य सुमन' (१९२२, द्वि० सं०)	
श्यामसुन्दर दास (संपादक)	'हिन्दी निबन्ध माला', भाग १-२ (१९३२)	
गोविन्द नारायण मिश्र	'गोविन्द निबन्धावली' (१९२५)	
माधव प्रसाद मिश्र	'माधव मिश्र निबन्ध माला' (१९३६)	

आलोचनात्मक अध्ययन

गंगा प्रसाद अग्निहोत्री	'समालोचना' (१८९६)	
महावीर प्रसाद द्विवेदी	'हिन्दी कालिदास की समालोचना' (१९०१)	
मिश्रबन्धु	'देव ग्रन्थावली (१९१०)	
,,	'हिन्दी नवरत्न' (१९१०)	
,,	'भूषण ग्रंथावली' (१९१२)	
,,	'मिश्रबन्धु विनोद' भाग १-३ (१९१३)	
महावीर प्रसाद द्विवेदी	'नाट्य शास्त्र' (१९१२)	
श्याम सुन्दर दास	'गद्य कुसुमावली' (१९२४) (सं० हीरालाल)	

जीवनी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'हरिश्चन्द्र कला' (राम दहिनसिंह बांकीपुर)	
राधाकृष्ण दास	'राधाकृष्ण ग्रंथावली' (१९३०) (सं० श्याम सुन्दर दास)	
महावीर प्रसाद द्विवेदी	'चरित्र चित्रण'	
,,	'चरित्र चर्चा' (१९३०)	

इतिहास

राजा शिव प्रसाद	'इतिहास तिमिर नाशक' (८६८-७३)
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'हरिश्चन्द कला' (राम दहिनसिंह, बांकीपुर)
देवी प्रसाद	'मानसिंह' (१८८६)
,,	'उदयसिंह (१८९३)
,,	'प्रतापसिंह' (१९०३)
,,	'आमेर के राजे' (८१९३)
,,	'हिन्दुस्तान के मुसलमान बादशाह' (१९०९)
,,	'पडिहार वंश प्रकाश' (१९१०)
,,	'मुगल वंश' (१९१०)
मिश्रबन्धु	'रूस का इतिहास' (१९१०)
,,	'जापान का इतिहास' (१९१०)

पत्र-पत्रिकाएँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (१८७३)
,, ,,	'कवि-वचन-सुधा (१८६८)
,, ,,	'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (१८७३)
बालकृष्ण भट्ट	'हिन्दी प्रदीप' (१८७७)
प्रताप नारायण मिश्र	'ब्राह्मण' (१८८३)
नागरी प्रचारिणी सभा (प्र०)	'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (१८९७)
किशोरी लाल गोस्वामी	उपन्यास' (१८९८)
गोपाल राम गहमरी	'जासूस'
इंडियन प्रेस	'सरस्वती' (१९००-१९२०)
अम्बिका प्रसाद गुप्त	'इन्दु' (१९०१-१९२०)

सन्दर्भ ग्रन्थ

रामचन्द्र शुक्ल	'हिन्दी साहित्य का इतिहास'
डॉ० राम कुमार वर्मा	'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'
मिश्रबन्धु	'हिन्दी साहित्य का इतिहास'
डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी	'हिन्दी साहित्य की भूमिका'
श्यामसुन्दर दास	'हिन्दी भाषा और साहित्य'
,, ,,	'मेरी आत्म कहानी'

डॉ० अमर नाथ झा	'विचार धारा'
डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	'विचारधारा'
डॉ० केशरी नारायण शुक्ल	'आधुनिक काव्य धारा'
डॉ० एल० एस० वार्ष्णेय	'आधुनिक हिन्दी साहित्य'
कृष्ण शंकर शुक्ल	'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास'
डॉ० श्रीकृष्ण लाल	'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास'
ब्रजरत्न दास	'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'
,, ,,	'हिन्दी नाट्य साहित्य'
शिव नारायण	'हिन्दी उपन्यास'
डॉ० रामरतन भटनागर	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'
,, ,,	'जयशंकर प्रसाद'

२—अंग्रेजी

तुलनात्मक साहित्य

डॉ सय्यद अब्दुल लतीफ पी-एच डी०	'दि इन्फ्लुएंस ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर ऑन उर्दू लिट्रेचर
डॉ० प्रिय रंजन सेन	'वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली लिट्रेचर'
एच० एम० दासगुप्त	'स्टडीज़ इन वेस्टर्न इन्फ्लुएंस ऑन नाईन्टीन्थ सेन्चुरी बेंगाली पोयट्री'
एल्फ्रेड होरेशियो उपहम	'फ्रेंच इन्फ्लुयेंस इन इंग्लिश लिट्रेचर'
टी० जी० टक्कर, लिट० डी०	'दि फारेन डेट ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर'
डडले एच० माइल्स	'फ्रेन्च इन्फ्लुएंस, ऑन रेस्टोरेशन ड्रामा'
ताराचन्द, पी-एच० डी०	'इन्फ्लुएंस आफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर'
आर० के० यज्ञिक	'दि इंन्डियन थियेटर'

तुलनात्मक भाषा-विज्ञान

मेरी एस० सर्जीन्टसन	'ए हिस्ट्री आफ फारिन वर्डस इन इंग्लिश'
मलिक हरदेव बाहरी, डी० लिट०	'पर्शियन इन्फ्लुएंस ऑन हिन्दी'
जॉन बीम्स	'ए कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ इन्डोआर्यन लैंगवेजेज ऑफ इन्डिया'
ए० एफ० रूडोल्फ हार्नली	'ए कम्पेरेटिव ग्रामर, ऑफ गौडियन लैंगवेजेज विद स्पेशल रिफ्रेन्स टु ईस्टर्न हिन्दी'

अन्य

ओटो जेस्पर्सन	'लैंग्वेज'
,, ,,	'एशेन्सल्स ऑफ इंग्लिश ग्रामर'
एस० एच० केलाग	'हिन्दी ग्रामर'
रेवरेन्ड इ० ग्रीव्ज्	'ग्रामर ऑफ मॉडर्न हिन्दी'
,, ,, ,,	'नोट्स ऑन दि ग्रामर ऑफ तुलसीदास रामायण'
सुनीति कुमार चैटर्जी	'दि ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंन्ट ऑफ बेंगाली लेंग्वेज'
सी० एल्फान्जो स्मिथ	'स्टडीज इन इँग्लिश सिन्टेक्स'
हर्बर्ट रीड	'इँग्लिश प्रोज स्टाइल'

आलोचनात्मक अध्ययन

ए० आर० एन्ड् विसिल	'ए स्टडी आफ पोएट्री'
क्रिस्टोफर काडवेल	'इल्यूजन एण्ड रियलिटी'
कोर्ट होप	'हिस्ट्री आफ इंग्लिश पोएट्री'
स्टेफोर्ड ए० ब्रुक	'नेचुरलिजम इन इँग्लिश पोएट्री'
एलाडइस निकल	'मिभरी आफ ड्रामा'
,, ,,	'ब्रिटिश ड्रामा'
एडविन म्यू	'दि स्ट्रक्चर ऑफ दि नावेल'
ई० एम० फॉस्टर	'एस्पेक्ट्स ऑफ दि नावेल'
ए० इ० वर्ल्सफोर्ड	'दि जजमेंट इन लिट्रेचर'
सैमुएल जॉन्सन	'लाइव्ज ऑफ पोएट्स'
मैथ्यू आर्नाल्ड	'एसेज इन क्रिटिसिज्म'
आइफर इ० ईवान्स	'ट्रेडीशन एन्ड रोमैन्टीसिज्म'
डब्ल्यू० एच० हडसन	इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ लिट्रेचर
(एवी मैन्स लाइब्रेरी)	इंग्लिश क्रिटिकल स्टडीज (अठारहवीं सदी)
,,	,, (उन्नीसवीं सदी)

अन्य साहित्यिक

आइफर इ० ईवान्स	'ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ इंगलिश लिट्रेचर'
एमिली लिग्विज एन्डलुई कैजमिओ	'ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर'

'आक्सफोर्ड कम्पेनियन टु इंगलिश लिट्रेचर'
'दि डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर'

एस० के दे 'संस्कृत पोयटिक्स'

जय कान्त मिश्र 'ए हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर'

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक

कार्टने लाक 'दि फर्स्ट इंगलिश मैन इन इंडिया'

सर एल्फ्रेड लायल 'दि राइज एन्ड एक्सपैन्शन ऑफ दि ब्रिटिश डोमिनियन इन इण्डिया'

'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इन्डिया', भाग पांचवां

'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया', भाग छः

सरकार एण्ड दत्त 'टेक्स्ट बुक ऑफ इन्डियन हिस्ट्री' भाग, द्वितीय

प्रमथ नाथ बोस 'हिन्दू सिविलाइजेशन अन्डर दि ब्रिटिश रूल'

नूरुल्ला एण्ड नायक 'हिस्ट्री आफ एजुकेशन इन इन्डिया'

टामस रोएबक 'एनल्स ऑफ दि कालेज ऑफ फोर्ट विलियम'

विलियम हन्टर 'रिपोर्ट आफ दि एजुकेशन कमिशन (१८८-८२)

'रिपोर्ट आफ दि जनरल एजुकेशन कान्फ्रेन्स एलाहाबाद (१८७१-७२)'

'सेंट जान्स कालेज आगरा' (१८४०-१९४०)

जॉन क्लार्क मार्शमैन 'दि लाइफ एन्ड टाइम्स ऑफ कैरे मार्शमैन एण्ड वार्ड'

जॉन क्लार्क मार्शमैन 'दि स्टोरी, ऑफ कैरे मार्शमैन एण्ड वार्ड'

की 'लाइफ ऑफ सर चार्ल्स मेटकाफ'

'इकोज फ्रॉम ओल्ड कैलकटा'

थीसीस

एल० एस० वाष्र्णेय, डी० लिट्० 'दि ग्रोथ एण्ड डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दी लिट-रेचर (१८५०-१९००)

डी० एन० शुक्ल, डी० फिल्० 'इण्डियन एजुकेशन पालिसी (१ ५१-१९०४)

पत्र-पत्रिकाएं

एलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज़ १९३३, १९४६ और १९४७
जर्नल ऑफ दि डेवलपमेंट ऑफ़ लेटर्स, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलकटा, १९३३
'कैलकटा रिव्यू' (१९२६ से १९३३)